सीताराम सीताराम सीताराम
श्रीमैथिली रमणो विजयते
श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः
श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः
श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश
नाम-रूप-लीला-धामात्मक
पूर्वार्ध
संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'
सीताराम सीताराम सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध
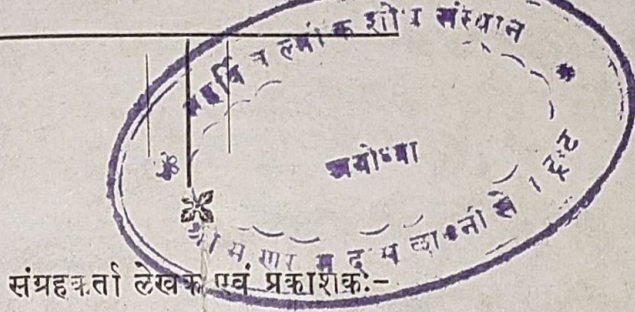
संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्रीचारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण	माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती	न्यौछावर
१०२५ प्रति	सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०	१५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

ग्रन्थ लेखक का संक्षिप्त परिचय

लेखक का जन्म उ० प्र० शाहजहाँपुर जिलान्तर्गत ग्राम शाहपुर भुड़िया के निकट रहीमपुर में तोमर क्षत्रीयवंश में शौभाग्यशाली श्रीदिशासिंह जी की स्वधर्मपत्नी के गर्भसे भाद्रपद कृ०अष्टमी १९३२ ई०में हुआ। बालकके जन्मसे ८ दिनपूर्व ही श्रीरामगंगा नदी ने सम्पूर्ण ग्राम को अपने गर्भ में ले लिया । इस कारण बालक नदी के रेते के टीले पर जन्म लिया । उस समय में, उसरेतेका टीला चारों ओर नदी के जलसे घिरा हुआ था । जन्म नक्षत्र मूल था । इससे ग्रामवासी बालकको अभाग्यशाली दृष्टि से देखे । कुछ लोग वालक को नदीमें प्रवाह करदेने की सम्मति दे रहे थे कारण, सबोंको भय था कि जन्म के पूर्व ही ग्राम सर्व स्वाह होगया, आगे न जाने क्या क्या दुर्दशा सामने आयेगी । परन्तु, माता-पिता को पुत्रसे प्रेम था, किसी की बात पर ध्यान न दिया । प्रथम वर्ष में ही वालक को सूखा रोग पकड़ लिया । गाँव वाले समझे कि स्वयं यह अभागा वालक अब संसारसे विदा हो जायगा । परन्तु "हरिइच्छा वलीयसी चरितार्थ हुआ वालक आरोग्य हो गया । ७ वर्ष की आयु में पिता का स्वर्गवास हो गया । १९५० में माता भी चल वसी । देहाती शिक्षा प्राप्तकर १९५३ में वालक विरक्त हो गया । पीलीभीत जिला के अमरैया खाता मढ़ी के अनन्त श्री लालवावा फलाहारीजी तपस्वीजी की छावनीकी परम्परावालों ने गुरुपूर्णिमाको श्रीवैष्णव पंचसंस्कार कर कर श्रीयुगल षड़ाक्षर श्रीसीताराममन्त्र की दीक्षादी । उपरोक्त वालक कानाम गुरुने सत्यनारायणदास रख दिया । १ मास गुरुसम्पर्कमें रहनेके वाद दोनों गुरु-शिष्य वहाँसे चलकर अवधमें श्रीतपस्वीजीकी छावनीमें आये । गुरुआज्ञासे १९५३ से १९५७ तक बड़ी छावनी में रामायणी श्री रामस्वरूपदास जी तथा तुलसीचौरा पर रामायणी श्री सुखरामदास जी से श्री तुलसी मानस रामायण का अध्यन किया । इसके अलावे एकादश ग्रन्थावली का अध्यन कर जानकीघाट में श्री जानकीशरण जी मधुकर से रसमय श्रीसीतारामोपासना का वोध किया । वही मधुकर जी ने पुनः नाम बदलकर सीताशरण रखे । यह नाम लेखक को पसन्द हुआ, इसलिये सभी पुस्तकों में सीताशरण नाम लिखा है । १९५३ से ६० तक तपस्वी जी की छावनी और १९६०से गोलाघाट श्रीसद्‌गुरुसदनमें आये और १९६५तक रहे, वादमें सद्‌गुरुकुटी में रह रहे हैं ।

इनका यथानाम तथागुण भी है । हरग्रन्थों के मंथनकर सारअंश इस पुस्तक में पिरोदिया है जो रामभक्तों के लिये अमृतोपान ही होगा ।

सूर्यनारायण मिश्र व्यवस्थापक, संस्कृत-साकेत पत्र, अयोध्या

श्री श्री १०८ श्री भगीरथराम जी ब्रह्मचारी जी की

शुभ सम्मति

पावनपुरी श्री अयोध्याजी सद्गुरु कुटीर पापमोचनघाट पर निवास करते हुये, अपने आन्तरिक तप तथा मन्त्राराधन के अनुष्ठान से अभिषिक्त अन्तःकरण श्रीसीताशरण जी युगल रूपमाधूरी में सर्वथा तन्मयताप्राप्त करते हुये प्रभु कृपाकटाक्ष के संकेतानुसार "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" नामक ग्रन्थ की रचना करने में संलग्न हुये। श्रीरामतत्त्व के सम्बन्ध में वेद से लेकर उपनिषदों एवं पुराणो इतिहासो तथा विद्वानों साहित्यकारों के विविध प्रकाश उपलब्ध हैं। जो भली प्रकार अवलोकन करनीय है। इस ग्रन्थ में साधारण भाषा के जानकार सज्जनों को सुगमतापूर्वक श्रीसीताराम तत्त्व वोध कराने के लिये वर्तमान प्रकाशन प्रस्तुत करने का लेखक का सराहनीय प्रयास है। आशा है सुधीपाठक बृन्द श्री सीताराम जी के चरणों में प्रगाढ़ अनुराग की उपलब्धि केलिये इसग्रन्थ को आदरपूर्वक अपनायेंगे। इसग्रन्थ रत्न के समयोचित प्रयासके लिये हम हृदयसे लेखक कों वधाई देतेहैं। और इसके प्रचार प्रसार के लिये शुभ कामना अर्पित करते हैं।

शुभेच्छु—भगीरथराम "ब्रह्मचारी"

श्रीवशिष्ठकुण्ड, श्री अयोध्या जी दि० ५-२-७६ (श्रीसरस्वती जन्म पर्व)

श्री श्री १०८ म०—श्रीहरिरामशरण शास्त्री जी की शुभ सम्मति

श्री हनुमत सदन—श्री अयोध्या जी

'श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश' नामक ग्रन्थ का अवलोकन, समयानुसार हमने विहंगम दृष्टि से किया है। यह एक संकलित ग्रन्थ है। इसका संकलन संत श्री सीताशरण जी ने कठिन परिश्रम से किया है और इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। फलतः ग्रन्थ श्रीसीताराम युगलोपासकों के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआहै। ग्रन्थ के सभी विषय सुन्दर हैं, किन्तु षड्माधुरी ने इसे मधुमय बना दिया है, और युगल स्तवराज ने ग्रन्थ में गरिमा ला दी है। संग्रहकर्त्ता के स्वरचित फुटकर पद्य जो कि इसमें समाविष्ट हैं भावुक भक्तों के हृदयमें स्पदंन पैदा कर देत है। अस्तु हमें विश्वास है कि इसग्रन्थ का दिनानुदिन विकाश होता रहेगा और वैष्णव समाज इससे सदा उपकृत होता रहेगा।

अन्त में—रचयिता के प्रति कल्याण की कामना करते हुए करुणा वरुणालय श्री किशोरी जी से प्रार्थना है कि इन दोनों (ग्रन्थ और उसके रचयिता) को चिरायु प्रदान करें और समय-समय पर सेवा का सुअवसर दें॥ जय सीताराम॥

हरिरामशरण

❀ श्रीजानकी रमणो विजयते ❀

श्री श्री १०८ मं० श्री नृत्यगोपालदास जी महाराज की "शुभ-सम्मति"

❀ दो शब्द ❀

अनादिकाल से भवाटवी में भूला भटका जीवन सही दिशा प्राप्त नहीं कर पा रहा है। चेष्टा करने पर भी दुरत्यया माया स्वरूप कञ्चन कामिनी के व्यामोह में आवद्ध हो पुनः पुनः भ्रमित होता रहता है। "आचार्यं मां विजानीयात्" अपार करुणावरुणालय श्री भगवान् स्वयं आचार्य रूपसे जीव को कृतार्थ कर मार्ग दर्शन कराते हुए कहते हैं—"लक्ष्यं तदेवा क्षरं सौम्य विद्धि"। अक्षर अविनाशी सच्चिदानन्द घन परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्री सीताराम जी जीव मात्रके ध्येय एवं गेय हैं।

प्रिया प्रियतम जिस प्रकार अभिन्न हैं—"गिरा अर्थ जल वीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न"। परन्तु नाम रूपसे लीला हेतु भिन्न रूपसे दृश्य होते हैं तद्वत् परात्पर तत्व भगवान् श्री सीताराम जी अपने नाम रूप-लीला एवं धाम रूपसे अभिन्न हैं। यथा—"रामस्य नामरूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एवच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्॥ परन्तु साधकों की साधना एवं साध्य दृष्टि से भिन्न रूपेण ग्राह्य होते हैं।—"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता" 'एकमेवादितीयं ब्रह्म" श्रीभगवत्तत्व अद्वितीय है एवं मनसा वाचा अगोचर है। अनन्त महिमा एवं वैभव का प्रतिपादन जीव मात्र की सामार्थ्य से परे है फिर भी रसास्वादन हेतु महिमा गायी जाती है यथा "समुझि समुझि गुण ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ" हृदयमें प्रीति प्रतीति उत्पादनार्थ अनन्तके गुणाम्बुधि में अवगाहन किया जाता है।

सन्त श्री सीताशरण जी रस साधना में सदा निमग्न रहते हैं। प्रेमीजनों के प्रिय अनेक प्रकाशन प्रकाशित कर अनेक सद्ग्रन्थोंके लेखन एवं सम्पादन से सुर-भारती की सराहनीय सेवा की है। उसी परम्परा में सद्ग्रन्थ सार सर्वस्य "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" भी अनुपम कृति है इसमें विभिन्न मधुर-माधुरी, श्री नाम-रूप-लीला-धाम माधुरी, विनय माधुरी आदि के साथ संत-समाज, मानव जीवन, सत्संग सुधा। श्री जानकी स्तवराज, रामस्तवराज की भाषा टीकाकर अनेक रस वैचित्री से प्रिया-प्रियतम् प्रसाद प्राप्त प्रेमी जन धन्य एवं कृतकृत्य होंगे ऐसी आशा है श्री सद्गुरु चरणारविंदानुरागी श्री सीताशरण जी के सत्प्रयास का रसग्राही पाठक समर्थन करेंगे एवं धन्य धन्य होंगे।

नृत्यगोपालदास

अनन्त श्री मणिरामदासजी महाराज की छावनी, श्रीअवधधाम—दि २६-२-७६

श्री श्री १०८ म० श्री हरिनामदास जी महाराज की

❊ शुभ-कामना ❊

श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश नामक पुस्तक का मैंने अवलोकन किया उससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि "परोपकारायसतां विभूतयाः" एवं "परउपकार वचन मन काया सन्त सहज स्वभाव खगराया" के अनुसार परम रसिक सन्त श्री सीताशरण जी ने अत्यन्त उत्कृष्ट भावुक हृदय से परम वौद्धिक कुशलतापूर्वक इस ग्रन्थरत्न के संग्रह में महान् परिश्रम किया है जिसमें—"रामस्य नामरूपश्च लीलाधाम परात्परं, एतच्चतुष्टयं नित्यंसच्चिदानन्द विग्रहम्" इस नारद •पञ्चरात्रोक्त सिद्धान्त के अनुसार जीवमात्र के परम प्राप्य "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "आनन्दं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" · 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि, इति रामपदेनासौ परंब्रह्मभिधीयते" इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य परमानन्द स्वरूप सच्चिदानन्द घन—

"गिराअर्थ जलवीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न, वन्दौं सीताराम पद जिनहिं परमप्रिय खिन्न" के अनुसार अभिन्न स्वरूप करुणा वरुणालय अखिल हेय प्रत्यनीक वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणगुण निलय भगवान् श्री सीताराम जी के साध्यसाधन स्वरूप नामरूप लीलाधाम चतुष्टय का एवं आचार्य परत्व इत्यादि का श्रुति स्मृति पुराण संहिता इत्यादि प्रमाणों से तथा सरल भाषामें स्वरचित स्वानुभूति पूर्ण कविता से निरूपण करके आस्तिक जगत्का महान् उपकार किया है, मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री कृपारूपिणी श्री किशोरी जी की कृपासे इस ग्रन्थ रत्न को पढ़कर तथा सुनकर भावुक भक्तों को महान् सुख एवं ज्ञान की उपलब्धि होगी तथा अवोध अज्ञ प्राणियों को भगवतत्त्व का यथार्थ वोध प्राप्त होगा। अलमति विस्तरेण।

हरिनामदास वेदान्ती

श्रीजानकीघाट, श्री अयोध्या जी

श्री श्री १०८ पं० श्रीहर्याचार्यजी महाराज व्या० वेदान्त साहित्याचार्य न्यायशास्त्री की

❊ शुभ-सम्मति ❊

श्री सीताशरण जी के द्वारा सङ्गृहीत श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश नामक ग्रन्थ श्री सीताराम जी के उपासकों तथा प्रेमियों के लिये सर्वतोभावेन उपादेय है। इस ग्रन्थ में श्री सीताराम जी के नाम धाम, लीला रूप तथा इसकी प्राप्ति के मूल कारण गुरु महाराज की महामहिमा शालिनी माधुरी का सर्वातिशायी प्रतिपादन किया गया है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्त का मधुकर वृत्त्या सञ्चय इस ग्रन्थ का

प्रतिपाद्य विषय है। हिन्दी संस्कृत के विविध स्तोत्रों से सजाया गया इसका करणकलेवर सोने में सुगन्धि के समावेश के समान परमाह्लाद का विषय हो गया है। स्वामी श्री-वैष्णवाचार्यजी के श्रोत सिद्धान्त ने इसमें प्राण शक्ति भर दी है। श्रीमधुकरियाजी के द्वारा अर्थपंचक शुक मुखास्वादित फल के सदृश माधुर्यातिशयाधान इस ग्रन्थ की उपादेयतामें समृद्धिकर सिद्धहै। इस ग्रन्थके प्रचार द्वारा सज्जनोंको लाभहो, और श्रीसीता-रामजीके चरणों में ग्रन्थ संग्रहकर्त्ता का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़े यह हमारी आकांक्षा है।

हर्याचार्य--बोधायन आश्रम
श्रीजानकीघाट-श्रीअवधाम।

श्री श्री १०८ महान्त श्रीरामप्रतापदास जी महाराज की शुभ सम्मति

❀ शुभ कामना ❀

"श्रीसीताराम तत्व प्रकाश" नामक ग्रंथ यह भगवद् भक्तों के लिये परम उपयोगी तथा अत्यंत आवश्यकीय है। इस ग्रंथ में जितने भी विषय प्रतिपादन किये गये हैं, वे सभी विषय जन कल्याण हेतु तथा भक्ति वर्द्धक एवं सांसारिक बंधनों से रहित करने वाले हैं। श्रीसीतारामजी के नाम, रूप लीला धाम आदि के विषय में भगवद् पद पराग रस रसिक संत शिरोमणि श्रीसीताशरणजी ने अकथनीय परिश्रम किया है। आपने जो यह अद्वितीय कार्य किया है वह निष्काम दृष्टि से ही किया है। मैं आशा करता हूँ कि जगज्जननी श्रीमिथिलेश किशोरीजी की कृपा से महान जन-कल्याण होगा। तथा श्रीसीताशरणजी का परिश्रम सफल होगा।

अनन्त श्रीस्वामी रघुनाथदासजी महाराज
की बड़ी छावनी, श्रीअयोध्याजी
म० रामप्रतापदास शास्त्री
दि० ४-३-७६

❀ श्री श्री १०८ श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज की शुभ सम्मति ❀

श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश ग्रन्थ को श्रीसीताशरणजी ने श्रीसद्गुरु कुटी स्थान में रहकर लेखन व प्रकाशन सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में भगवान् श्रीसीतारामजी के नाम, रूप, लीला, धाम, शरणागति, प्रपत्ति श्रीगुरु महिमा माधुरी, श्रीजानकी स्तवराज श्रीरामस्तवराज, मानवजीवन, सतसंग सुधा इत्यादि प्रसंग अच्छे हैं तथा इनके पढ़ने वालों को श्रीसीताराम तत्त्व का बोध और अनुराग प्राप्त होगा। मेरी शुभ कामना है कि इस ग्रन्थ रत्न से सज्जन लोग लाभ उठायेंगे।

श्रीकान्त शरण
दि०-२८-२-७६ ई०

श्री श्री १०८ श्रीस्वामी सीतारामशरणजी महाराज की

❀ शुभ सम्मति ❀

अखिलहेय प्रत्यनीक स्वाभाविक अनवधिक अतिशय असंख्येय दिव्यकल्याण गुणगणसागर श्रीजानकी वल्लभजी के नाम-रूप-लीला-धाम के अनन्य उपासक सन्त श्रीसीताशरणजी द्वारा सम्पादित "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" ग्रन्थ का अवलोकन कर महती प्रसन्नता हुई। यद्यपि अनादिकाल से ब्राह्मणात्मक वेद एवं तदुपबृंहणभूत इतिहास पुराणों द्वारा ही परतत्त्व का विवेचन होता आया है, किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में भक्ति साहित्य के प्रचार प्रसार की नितान्त आवश्यकता है।

विरक्त संत, सद्गृस्थ भक्त एवं मनीषीगण इस सम्बन्ध में संगठित होकर प्रचार प्रसार करें तो यह कार्य सानन्द सम्पन्न हो सकता है अभी भी दुर्लभ रहस्यों से परिपूर्ण सन्त साहित्य विपुल मात्रा में अप्रकाशित हैं। श्रीमद्भागवत्, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की संस्कृत टीकाओं का अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं किये जा सके। संस्कृत में निबद्ध रहस्य ग्रन्थों का हिन्दी व्याख्या के साथ प्रकाशन होना अत्यन्त आवश्यक है।

रसिक सन्त श्रीसीताशरणजी ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन द्वारा इस दिशा में सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश, ग्रन्थ में अनेक विषयों का समावेश किया गया है अनेक सन्तों विद्वानों एवं लेखकों द्वारा लिखित लेखों का संग्रह कर इस पुस्तक को सर्वजनोपयोगी बनाने का सराहनीय प्रयत्न किया गया है। श्रीगुरु-महिमा-माधुरी, श्रीसीताराम नाम महिमा माधुरी आदि शीर्षकों से प्रतिपाद्य विषयों का सम्यक् विवेचन किया गया है। श्रीजानकी स्तवराज, श्रीरामस्तवराज आदि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हैं। रामस्तवराज की भूमिका में नास्तिक आस्तिक दर्शनों का जो पं० श्रीहरिदासजी महाराज ने संक्षिप्त विवेचन किया है वह रामस्तवराज के प्रतिपाद्य विषयों से असम्बद्ध होने के कारण अधिक उपयुक्त नहीं है, साथ ही ग्रन्थ को बोझिल भी बना दिया है। उत्तम तो यह होता कि भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के संस्कृत भाष्य की प्रस्तावना के १० पृष्ठ से ३६ तक की हिन्दी व्याख्या करदी जाती तो उसीसे पाठकों को महान् लाभ होता। सम्पादक श्रीसीताशरणजी के साहित्य प्रचारकार्य सर्वथा श्लाघ्य है। श्रीसीतारामजी की कृपा से इस ग्रन्थ का भक्त समाज में समादर होगा ऐसी आशा है। इस ग्रन्थ के लेखक के प्रति मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

सीतारामशरण

१-३-७६ श्रीलक्ष्मणकिला-श्रीअयोध्याजी।

※ श्री श्री १०८ श्रीगणेशदासजी महाराज की शुभ सम्मति ※

रामं विद्धि परं ब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं, भक्ताभीष्टप्रदायकम् ॥

अखिल ब्रह्माण्डनायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीसीतारामजी के भावात्मक शुद्धान्तःकरण में दर्शन कराने हेतु विविध ग्रन्थों में ऋषि मुनि तथा विद्वानों द्वारा सविस्तार वर्णन मिलता है। संस्कृत ग्रन्थों में जितना अधिक विवेचन किया गया है आज अल्प बुद्धि वाले लोगों के लिये उनका भली प्रकार समझ पाना अशक्य सा हो गया है। ऐसी स्थिति में सतत् प्रयत्न करके तत्तद् ग्रन्थों के मुख्यांश का सङ्कलन करते हुये हिन्दी भाषा अनुवाद प्रस्तुत करके साधारण पढ़े लिखे श्रद्धालुजनोंको श्रीरामतत्त्व का बोध प्रस्तुत ग्रन्थ में कराया गया है। जिससे थोड़े ही समय में भावनाविभूषित सरल अन्तःकरण वाले सज्जन वृन्द यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे।

इस ग्रन्थ रत्न "श्रीसीताराम तत्व प्रकाश" के लेखक श्रीसीताशरण जी ने जो उदारता दर्शाई है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं और हम इस ग्रन्थ के सुचारु प्रचार प्रसार के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें अर्पित करते हैं।

गणेशदास

दिनाँक २३-२-७६ बसन्तिया पट्टी श्रीहनुमानगढ़ी
श्रीअयोध्याजी, (उ० प्र०)

मानस केशरी, पं० श्रीवाल्मीकिप्रसाद जी, एम०ए० एम०एड० रामायणी जी की ※ शुभ सम्मति ※

श्रीअवधाम के रस-मर्मज्ञ सन्त श्रद्धेय श्रीसीताशरणजी महाराज द्वारा सम्पादित श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ प्राप्त हुआ। ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढ़ा गया ग्रन्थ में श्रीरामनन्दीय वैष्णव दर्शन की युगलोपासना के आवश्यक साहित्य का वर्तमान सन्दर्भ में अत्यन्त ही समीचीन समावेश हुआ है। समग्र ग्रन्थ को श्रीसीतारामोपासनाका लघु 'एनसाइक्लोपीडिया' कहा जायतो अत्युक्ति न होगी। श्रीगुरुमहिमा माधुरी श्रीजानकीस्तवराज, की सान्वय हिन्दी टीका, नाम, रूप, लीला और धाम-माधुरी, सत्संगसुधा, सन्त समाज, अहिंसादि दैवी सम्पद् निरूपण, प्रभृति विविध विषयों का जितना सरल और शास्त्रीय निरूपण इस ग्रन्थ में सुलभ है, अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रन्थ श्रीरामोपासकों के लिये उपादेय तो है ही रसिकोपासना के शोधार्थियों के निमित्त भी अत्यन्त उपादेय है। निसन्देह सन्त श्रीसीताशरणजी महाराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से सम्प्रदाय एवं साहित्यक-संसार दोनों का समवेत उपकार किया है। तदर्थ श्रीमहाराजजी भूरि भूरि साधुवाद के पात्र हैं।

—मानस केशरी, पं० वाल्मीकि प्रसाद मिश्र,
श्रीनिधिकुञ्ज, शहडोल (म० प्र०)
बसन्त पञ्चमी १९७६ ई०

श्री श्री १०८ पं० श्री रामकुमारदासजी महाराज मानस तत्वान्वेषी, वेदान्त भूषणजी की शुभ सम्मति

आज विज्ञान ने अनेक सम्मान्य वक्ता विद्वानों के लिये पुस्तक लेखन कार्य सुलभ कर दिया है। अर्थात् जिनका प्रवचन टेप होता जाता है, उस टेप को बार बार सुनकर लोग प्रेस कापी तैयार कर देते हैं। ऐसे वक्ताओं की प्रतिमास दो दो तीन तीन बड़ी पुस्तकें तैयार होती रहती हैं। मौलिक उपन्यास कहानियों की पुस्तकें कर्ता की कल्पना प्रतिभा पर तैयार हुआ करतीं हैं। उन्हें केवल लिखने मात्र का कष्ट करना पड़ता है, शास्त्रों से प्रमाण संग्रह करने का परिश्रम एवं दायित्व नहीं उठाना पड़ता है। परन्तु जो शास्त्रों से प्रमाण संग्रह करके हाथ से प्रामाणिक ग्रन्थ लिखते हैं उनके परिश्रम को उनके समान धर्मी ही जान सकते हैं। इसी तरह मूल पुस्तक का ठीक ठीक पद्यानुवाद करना भी कठिनतर कार्य है ॥ २ ॥ इसी तरह अनेक विद्वानों एवं भावुकों के लेखों का स्वप्रतिपादित विषयानुसार संग्रह करके सम्पादन करना भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य है ॥ ३ ॥

इन तीनों तरह की कठिनाइयों का कुछ कुछ अनुभव मुझे हैं। इससे अनुमान करता हूँ कि जिस तरह प्रयोग निपुण मालाकार अनेक क्यारियों में से उत्तमोत्तम पावन पुष्पों का चयन करके सुन्दर गजरा तैयार करता है उसी तरह श्रीसीताशरण जी ने महान् परिश्रम से अनेक विद्वानों के लेख प्रसूनों को चुन-चुनकर श्रीसीताराम तत्व प्रकाश रूप सुन्दर बनमाला तैयार कियाहै जिसे "जिस गिरा अर्थ जल बीचि सम" अभिन्न युगल सरकार तो प्रसन्नता पूर्वक धारण करेंगे ही उसे अवलोकन करने वाले आस्तिक सज्जन भी अपने "लोक लाहु परलोक निबाहू" का मार्ग प्रशस्त करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

पं० रामकुमार दास
२-३-१९७६

❋ विद्वद्वर पं० श्रीरुद्रप्रसाद अवस्थीजी की शुभसम्मति ❋

महात्मा श्रीसीताशरणजी की कृति श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश नाम का ग्रन्थ रत्न हमें देखने को मिला, मैंने ग्रन्थ को भली भाँति अवलोकन किया। कुछ कुछ अंशों को विशेष रूप से अध्ययन किया, प्रस्तुत ग्रंथ लोक समाज, धर्म प्रकाशक, तथा सनातन धर्म का पोशक प्रतीत हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जनकल्याण अवश्य होगा हमें यह विश्वास है, अतः हमारी शुभ कामनायें इस ग्रन्थ के साथ हैं, तथा श्रीअंजना नन्दनजी से प्रार्थना है कि यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित होकर समाज के समक्ष आकर उसे भी प्रकाशित करे।

सम्मतिदाता :-

रुद्रप्रसाद अवस्थी (अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य)
विश्वविद्यालय लखनऊ, सम्मानित सम्पूर्णानन्द, वि० वि० बाराणसी

GOOD – WISHES........!

I studied this compilation compiled by the devotee Shri Sita Sharanji Maharaj. Actually, his attempt is praiseworthy. A Few new chapters as, Shri Guru Mahima Madhuri, Shri Sita Rama Nama Mahima Madhuri,Shri Rama Rupa Madhuri, Shri Janaki Stavaraj, Shri Ramastavaraj, Vinay Madhuri, Shri Sita Rama Lila Madhuri, Shri Dhama Madhuri, Charpata Manjari, Prashnotari, Manava Jiwan, Ahimsa Nirupana, Santa Samaj etc. have been included to make the book even more useful for the devotees.

I wish to express my grateful thanks to Shri Sita Sharan ji Maharaj who has tried his best to make it clear so many complicated questions in this compiled humble book.

LAXMAN PANDEY, 'Shastri' (M.A.)
Sad Guru Niwas,
Golaghat – Ayodhya.

पं० श्रीराजनारायण मिश्र जी की शुभ सम्मति

प्रेषक :-राजनारायण मिश्र, एम०ए० (अंग्रेजी) एल०एल०बी०, पी०एच०ई०डी०,
रीवां-(म० प्र०)

सम्मति पत्र :-- आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश का आद्योपान्त अध्ययन किया। इस ग्रंथ में प्रतिपादित समस्त विषय एक से एक बढ़कर हैं। परन्तु श्रीगुरु महिमा माधुरी एवं नाम, रूप, लीला, धाम की माधुरी ने इस पाषान हृदय को भी रसप्लावित कर दिया। श्रीजानकीस्तवराज की टीका तथा उसका पद्यानुवाद एवं अन्त में दी गई विशेष टिप्पणी अत्यन्त ही विद्वता पूर्ण एवं भाव समन्वित है। इस सम्पूर्ण संकलन को एक साथ प्रस्तुत करने के लिये आपको जितने भी साधुवाद समर्पित किये जायँ; थोड़े ही हैं। मैं आपकी समस्त भावनायें ग्रंथ के प्रकाशन के लिये आपको समर्पित करता हूँ।

भवदीय :- आर० यन० मिश्र, १८।२।७६

पं० श्रीरूपनारायण मिश्र जी की शुभ सम्मति

* शुभाशंसनम् *

श्रीसीतारामतत्त्वस्य प्रकाशेऽस्मिन सुपुस्तके। श्रीसीताशरणः प्राज्ञो गगर्य्या भृतसागरः ॥१॥ गुरुं विना न पश्यन्ति सत्यं मार्गं बुधा अपि। तस्मात् प्राग गुरर्ममहिमा वर्णितोऽत्र महात्मना ॥ २ ॥

पं० श्रीरूपनारायणजी मिश्र 'प्राचार्य' साहित्यव्याकरणा-आचार्य
श्री नि०वो०रा०सं० महा वि० उत्तर तोताद्रिमठ, श्रीअयोध्याजी
दि० २६-२ ७६ ई०

श्री १०८ श्री पं० श्रीअखिलेश्वरदासजी ज्योतिष शास्त्री वेदान्त साहित्याचार्यजी की

* शुभ सम्मति *

श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश नामक पुस्तक का मैंने आरम्भ देखा गुरु-महिमा प्रकरण को देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ बड़े परिश्रम से श्रीसीताशरणजी ने प्रामाणिक ऋषि महर्षि प्रणीत शास्त्रों, सन्तों के बचनों से गुरुमहिमा का प्रतिपादन सरल हिन्दी में किया है तथा अग्रिम प्रकरणों में अर्थपंचक, तत्वत्रय आदि विषयों का विशद रूप से शास्त्रान्वेषण से किया है आपका परिश्रम प्रशंसनीय है इस पुस्तक से वैष्णवों को भक्ति में पूर्ण सहायता मिलेगी और परोपकारी होगा इति शुभम्।

१--३--७६ पं० अखिलेश्वर दास

* रामायणी श्रीसुरेन्द्रकुमार जी की शुभ सम्मति *

गुरुमहिमा माधुरी पूर्णसद्ग्रन्थ मनोहर। श्रीसीतावर विनयमाधुरी परिपूरितवर ॥
नाम, रूप, लीला, सुधाम की नवल माधुरी। मानवता उत्थान दिव्य स्तोत्र चातुरी ॥
सभीविषय शास्त्रोक्तरच,कियोपरम परमार्थयह। धन्य-२ सीताशरण सबजग बारम्बारकह॥

—सुरेन्द्रकुमार रामायणी नेहनिकुँज, अजयगढ़ [म०प्र०] १७।२।७६ ई०

❋ प्रकाशकीय विनम्र-निवेदन ❋

अहैतुकी करुणावरुणायलय अखिलहेयप्रत्यनीक क्षमा दया औदार्य वात्सल्यादि अनन्त कल्याणगुणगणनिलय भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे पूजनीय सन्तसमाज एवं भगवतपादारविन्द-मकरन्द रसास्वादन परायण भगवद्भक्तों के समक्ष श्रीसीतारामतत्त्व-प्रकाश ग्रन्थ प्रस्तुत है। इसका विषय पूज्य सन्तों और भगवद्भक्तोंके द्वारा प्रकाशित कई ग्रन्थों से संग्रह किया गयाहै। यद्यपि संग्रहकर्ता अबोध होनेके कारण इतने विषयों को संग्रह करके यथोचित स्थानपर नियुक्त करने में सर्वथा असमर्थ था। तथापि श्रीगुरुदेव, पूज्य सन्तों एवं प्रभुकृपाने अपनी सामर्थ्य से यहकार्य सम्पन्न करवा लिया है। लेखक तो यन्त्रवत् यन्त्री की प्रेरणानुसार घूमतारहा, कार्य उरप्रेरक की प्रेरणा द्वारा ही सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थमें यदि अच्छी नामकी कोई बात है, तो वह श्रीगुरुदेव पूज्य सन्तों एवं प्रभुकी कृपा ही है। और विषयोंमें विषयान्तर, क्रमान्तर तथा प्रकाशन सम्बन्धी अशुद्धियाँ लेखक की अवोधअवस्था का ही परिणाम है।

ग्रन्थका प्रधान विषय श्रीगुरुमहिमा माधुरी, श्रीसीतारामनाम माधुरी, श्रीसीताराम रूपमाधुरी. श्रीजानकी स्तवराज, श्रीराम स्तवराज, श्रौतसिद्धान्त चालीसा, विनय माधुरी श्रीसीताराम लीलामाधुरी, श्रीधाम माधुरी, चार नमस्कार मालायें, स्तुति, श्रीसीताकृपा कटाक्ष, श्रीभरताग्रजाष्टक, चर्पट मंजरी, प्रश्नोत्तरी, मानव जीवन, सत्संग सुधा, अहिंसा निरूपण, सन्त समाज भक्त नामावली स्मरण आदि हैं। ये सब विषय जिन महान्पुरुषों की पुस्तकों से संग्रह किये गये हैं उनका संक्षित परिचय क्रमशः इस प्रकार है,—

श्रीगुरुमहिमा माधुरी में दीक्षा की आवश्यकता नामक शीर्षक, परमश्रध्येय पं० श्रीअवधकिशोरदास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्री जनकपुरधाम वालों की दीक्षा पद्धति नामक पुस्तक के पृ० २ के भावानुसार प्रश्नोत्तर रूपमें दिया गया है॥ यह विषय प्रस्तुत ग्रन्थमें पृ० २४ से ३३ तक है। पृ० ३३ से ४० तक श्रीगुरु चरन कमलवा बन्दौं सोइ से पृ० ४० तक। मानस तत्त्वान्वेषी पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज रामायणी श्री मणिपर्वत वालों का लेख, श्रीलक्ष्मणकिला से प्रकाशित श्री अवधसंदेश पत्रिका के वर्ष १३ के श्रीगुरुमहिमा नामक विशेषांक के पृ० ४१ से पृ० ४६ तक, गीताप्रेस गोरखपुर के कर्मचारियों से निवेदन लेखक का भाव है। यहाँ का कुछ विषय भूलसे छूट गया था जो पृ० ५० में सभी

को ढोंगी पाखण्डी कहती हैं से लेकर पृ० ५४ तक हैं। पृ० ४० का शेष विषय, पृ० ५५ से ५८ तक है। पृ० ५६ से ६८ तक पं० श्री रामकुमारदास जी महाराज रामायणी मणिपर्वत वालों द्वारा नारी दीक्षा नामक पुस्तक के पृ० ४ श्लोक नं० २ से पृ० १६ में श्लोक नं० ११ तक यत्र तत्र से लिया गया है। पृ० ६६ में श्रीगुरुअर्चन पद्धति, इस पुतस्क को श्री जानकी घाटस्थ जयपुर मन्दिर के महान्त पूज्य श्रीराजकिशोरीवरशरणजी ने श्रीगुरुअर्चा पद्धतिके नामसे प्रकाशित करवाईथी, प्रकाशनकार्य में कार्य कर्त्ताओं की असावधानी से कहीं कहीं कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, उसी पुस्तक को हमारे परमश्रध्येय पं० श्री अभिलाष प्रसाद जी त्रिपाठी (बड़ेरामजी) ने यथा शक्ति संशोधन एवं हिन्दी भाषा में सरल अनुवाद करके सद्गुरु प्रेमियों के उपयोगी बनाया है। वही पृ० ६६ से ७४ तक श्रीगुरुअर्चन पद्धति है। पृ० ७५ में अर्थपंचक है, इसको लेखक के परमपूज्य श्रीगुरुदेव अनन्त श्री जानकीशरणजी महाराज श्रीचारुशीला मन्दिर श्रीचारुशीलाबाग श्रीजानकीघाट वालों ने लिखा है, यह प्रसंग पृ० ७५ से ८४ तक है। पृ० ८४ से १३७ पृ० तक पंच संस्कार गतिबोध नामक पुस्तक जो चित्रकूटी परमहंस श्रीजानकीवल्लभदास जी महाराज की लिखी और प्रकाशित करवाई हुई थी, दीक्षापद्धति पं० अवधकिशोर दास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्रीजनकपुर धाम वालों द्वारा प्रकाशित, तथा प्रपत्ति रहस्य, यह पुस्तक मानस भाष्यकार सम्पूर्ण श्रीतुलसी साहित्य के व्याख्याता श्री श्री १०८ श्री पं० श्रीकान्तशरण जी महाराज श्री सद्गुरु कुटी गोलाघाट वालों के द्वारा प्रकाशित, पुस्तकों से लिखा गया है, जो विषय जिस पुस्तक से लिया गया है, वहाँ पर उस पुस्तक का पृ नं० भी दिया गया है। भूल से कहीं छट भी गया होगा, उसको महापुरुष क्षमा करेंगे क्योंकि भूल सभी से हो जाती है, फिर यह लेखक तो अबोध ही है।

पृ० १३७ से पृ० १४८ तक भगवतशरणागतिकी महिमा और शास्त्रीयप्रमाण। पृ० १४८ से पृ० १५५ तक श्रीगुरु महिमा। १५५ पृ० से १६३ पृ० स्त्री और गुरु श्री अवधसंदेश पत्रिका के वर्ष १३ के गुरुमहिमा विशेषांक पृ० ११७ से १२३ तक के अनुसार लिखा गया है॥ पुनः पृ० ६८ का प्रसंग भूलसे छूटा हुआ पृ० १६५ से पृ० १६७ तक मानस में नारी दीक्षा नामक पुस्तक के पृ० १६ से पृ० २१ तकके अनुसार लिखाहै। पृ० १६७ से १७५ तक श्रीसीतारामनाम महिमा, अनन्तश्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज द्वारा संग्रह श्रीसीतारामनाम प्रताप प्रकाश पुस्तक के पृ० ७७ से आगे लिये हैं। १७६ पृ० में ७ श्लोक "श्रीरामनाम महिमा" स्वामी

श्री रामनारायणदास जी महाराज शास्त्री द्वारा प्रकाशित के पृ० ६, ११, १४ २५ से लिये हैं। पृ० १८१ से श्रीसीताराम रूपमाधुरी पृ० २०० तक श्री सुरेन्द्रकुमारजी रामायणी, नेहनिकुंज, स्टेट अजयगढ़ म० प्र० वालों द्वारा लिखित है। पृ० २०१ से २३२ पृ० श्रीजानकीस्तवराज का सान्वय हिन्दी अनुवाद "एवं पद्यानुवाद तथा विशेष सहित "मानस केशरी" पं० श्रीवाल्मीकि प्र० मिश्र एम० ए० एम० एड० रिसर्च-स्कालर रीवां विश्वविद्यालय, श्रीनिधिनिकुंज, विराट-नगर-शहडोल म० प्र० वालों द्वारा लिखी हुई है। पृ० २३३ से ३३४ तक श्रीरामस्तवराज की विद्वत्तापूर्ण तात्पर्य बोधिका हिन्दीटीका विद्वत्वर पं० श्री हर्याचार्य जी महाराज श्री बोधायन आश्रम श्री जानकीघाट श्रीअवधधाम वालों कृत है। पृ० ३३५ से ३४२ तक श्रौतसिद्धान्तचालीसा पं० सम्राट स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य जी महाराज कृत है। इस चालीसा में महाराज श्री ने श्रीरामानन्द वेदान्त का सार सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। पृ० ३४२ में श्री हनुमान मधुर चालीसा लेखक का जोड़ तोड़ किया हुआ है। पृ० ३४३ से ३५९तक विनयमाधुरी, प्रातः स्मरणीय पूज्यचरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज, एवं श्रीसदगुरु भगवान, श्री अवधकिशोरदास जी (भैया जी) शहडोलवाले, और कुछ पद लेखक का बालविनोद है। पृ० ३५९ से ४४० तक श्रीसीताराम लीलामाधुरी कई महापुरुषों एवं भगवद्भक्तों के हृदय का उद्गार तथा कुछ लेखक की अटपट भाषा है। पृ० ४४१ से ४६२ तक श्रीधाम माधुरी, बृहद्ब्रह्म संहिता, श्री मद्वाल्मीकीयरामायण श्रीराम चरितमानस, ध्यान मंजरी इत्यादि ग्रन्थों से कई विद्वानों द्वारा संग्रहीत है। लेखकों का नाम व पता प्रसंग में लिखा गया है। क्रमशः पृ० ४६३ से ४६६ तक श्रीसीतानमस्कारमाला, श्रीरामनमस्कारमाला, श्रीहनुमन्नमस्कारमाला, श्रीरामानन्द नमस्कारमाला, हैं। चारों नमस्कारमालायें पं० सम्राट स्वामी श्री वैष्णवाचार्य जी महाराज अहमदाबाद वालों कृत हैं॥ पृ० ४६७ से ५०० तक श्री वैष्णव सम्प्रदाय की स्तुति है। कुछ श्लोक भूलसे वहाँपर छूट गये थे, वह आगे लिखे जायेंगे।

पृ० ५० से ५४ तक श्रीसीताकृपाकटाक्ष स्तोत्र है, इसी स्तोत्र को ब्रजभक्तों ने श्रीराधाकृपाकटाक्ष स्तोत्रके नाम से श्रीसीता शब्द के स्थान पर श्रीराधानाम तथा अन्य लीलापात्रों का नाम परिवर्त करके प्रकाशित किया है। सुबोध पाठक स्वयमेव समझ लेंगे कि स्तोत्र के शब्दों से यह स्तोत्र श्रीसीताजी के लिये लेखक ने लिखा है, अथवा श्रीराधा जी के लिये॥ यद्यपि मैं ही क्या सभी सुधीजन यह जानते हैं कि भगवत्तत्त्वमें विभाजन नहीं है, वस्तुतः एकही परमतत्त्व "उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो

रूपकल्पना" के सिद्धान्त से भक्तों के भावनानुसार अनेक रूपोंमें प्रत्यक्ष होता है । किन्तु ध्यानरहे ! ये बात व्यापकत्त्व में ही निहित है, लीलाकाल में नहीं । भगवान् जिससमय जो लीला करते हैं, उससमय सारी चेष्टायें तदनुसार ही करतेहैं । अस्तु इस स्तोत्र के प्रथम श्लोक के 'नृपेन्द्रसूनु संगते" तृतीय श्लोक के"अवधेशभूपनन्दने" एकादश श्लोक के "प्रमोदकाननेश्वरी" द्वादश श्लोक के "नृपेन्द्रसूनु मन्दिरप्रवेशनम्" अष्टादश श्लोक के "रघूत्तम:" शब्द पर पाठक विचार करें कि ये शब्द श्रीअवध की उपासनासे सम्बन्धित हैं, अथवा ब्रज की उपासना के प्रतिपादक हैं । यदियह कहाजाये कि श्री सीताजी एवं श्री राधाजी दोनों एकतत्त्व हैं, तो फिर नाम बदलने की आवश्यकता ही क्या है ? उपासकों को चाहिये कि जो वस्तु जैसी हो, उससे स्वयं रसानुभूति करलें, किन्तु उस वस्तु का स्वरूप विकृत न करें । पृ० ५०४ से ५०५ तक श्रीभरताग्रजाष्टक श्रीभरत-दासजी महाराज कृत है, यह स्तोत्र श्री जानकीदासजी महाराज जयपुर वालों द्वारा प्रकाशित श्रीवैष्णव स्तोत्रसंग्रह से लिया है। पृ० ५०५ से ५०६ तक जू गु॰ श्रीस्वामी आदि शंकराचार्य कृत चर्पट मंजरी पृ० ५०६ से ५१६ तक प्रश्नोत्तरी भी श्रीशंकरा-चार्य कृत है । पृ० ५१६ से ५४३ तक मानवजीवन है, इसका विषय श्री कबीर मतावलम्बी सन्त श्री अभिलाषदास जी की "आप किधर जा रहे हैं" और 'जीवन क्या है" इन दो पुस्तकों के आधार से लिखा गया है । आवश्यकतानुसार कहींकहीं परिवर्धन एवं परिवर्तन किया गयाहै। पृ०५४३से५४५ तक सत्संगसुधा लेखकका विचार है । पृ० ५४६ से ५४६ तक अहिंसा निरूपण कुछ लेखक का विचार शेष प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा नामक पुस्तक मोतीलाल जालान द्वारा प्रकाशित है उससे लिया गया है । पृ० ५४६ से ५५० तक सन्त समाज लेखक का विचार । पृ० ५५१ में श्रीमुखवचन ५५२ में लेखक का निवेदन तथा प्रभु प्रसाद, ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थमें विद्वानोंका लेख जिस किसी पुस्तकसे गिया लया है उसे यथा-वकाश सरलभाषा में प्रकाशन करने का प्रयत्न लेखक ने किया है । यत्र तत्र कुछ शब्दों को ब्रेकट (कोष्टक) में सरल करके लिख दिया है । क्लिष्ट भाषामें अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं ही, किन्तु कमपढ़े लिखे व्यक्तियों को उन महान् विद्वतापूर्ण ग्रन्थों से लाभ नहीं हो पाता है । अस्तु इस ग्रन्थ में लेखक ने विशेष ध्यान देकर सरल शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है । कहीं कहीं भूल से कुछ शब्द भले ही क्लिष्ट हो गये हों । परन्तु अपनी ओर से सरल शब्द ही लिखे गये हैं । प्रभु कृपासे भलेही विद्वान् भी इस ग्रन्थ द्वारा रसास्वादन करें किन्तु लेखक का विचार तो यही रहा है

कि इस ग्रन्थसे कमशिक्षा प्राप्त भगवत् प्रेमी अधिक लाभ उठायें। प्रस्तुत ग्रन्थ के संग्रह करने में तथा प्रकाशन करने में जिन सन्तों और भगवत प्रेमियों ने सहयोग दिया, वे सभी प्रभु के प्रिय कृपा पात्र हैं, अस्तु उनका स्मरण करना प्रभु कृपा का प्रतीक है। ग्रन्थ में विषय कई पुस्तकों से दिया गया है। वह पुस्तकें पं० सम्राट स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी महाराज, पं० राज सार्वभौम सारस्वत स्वामी श्रीमद्भगवदाचार्यजी महाराज, श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज अहमदाबाद और पं० श्रीअवध–किशोरदासजी महाराज श्रीजनकपुर धाम परम सन्त श्रीरामटहलदासजी महाराज, श्री गणेशदासजी महाराज, श्रीजनकदुलारीशरणजी रसिक बाबा श्रीचित्रकूट धाम और श्री अवध में श्री सद्गुरुदेव जी, म० श्री हरिनामदास जी वेदान्ती श्रीजानकीघाट, अनन्त श्रीस्वामी मणिरामदास जी महाराज की छावनी के वर्तमान श्रीमहन्त जी महाराज, मानसभाष्यकार पं० श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज, श्रध्येय स्वामीश्रीसीतारामशरणजी महाराज श्री लक्ष्मण किलाधीश जी, श्री चन्द्रकलाशरण जी महाराज श्री भक्तमाली जी गोलाघाट, मधुकरिया श्री किशोरीशरण जी, श्री वैदेहीवल्लभशरण जी महाराज, श्री वैदेहीशरण जी महाराज, श्री रामअभिलाषशरण जी महाराज श्री सद्गुरुकुटी गोलाघाट. म० श्री रामसूरतशरणजी महाराज सद्गुरुसदन गोलाघाट, पं० श्रीछोटेलाल जी, भैया श्री अवधकिशोरदास जी, श्री मैथिलीरमणदास जी, श्री सुरेन्द्रकुमार जी, श्री हरिगोविन्ददास जी द्विवेदी, श्री चक्रपाणि जी त्रिपाठी, श्री रामउजागर जी चतुर्वेदी और म० श्री साकेतविहारीदास जी महाराज श्री मिथिलाविहारीकुञ्ज पो० मु० खजुहा जि० रीवां [म० प्र०] पं० श्री अलखनारायण जी रामायणी दक्षिणीचक स्टेशन अटमलगोला जि०पटना विहार, पं०श्रीशत्रुहनलालजीत्रिवेदी, राजपालसिंह पो० मु०मदनापुर, श्रीजनकनन्दिनीशरणजी ग्रा० प्रतापपुर, श्रीकिशोरीशरणजी ग्रा० लश्करपुर, श्रीमिथिलेशनन्दिनीशरण जी, श्री सियादुलारीशरण जी, मास्टर जयचन्दसिंह ग्रा० फीरोजपुर डूंड़ा पो० मदनापुर, मास्टर रामपालसिंह स० अ० वरुआ, परमश्रध्येय संत श्री जगदीशराम जी जोधपुर, श्री मैथिली सहचरीजी, श्रीसीतारामशरण जी (खीवंराज भाटी) श्री रामशरण जी, श्री मैथिली सहचरी जी की माता जी, श्री सियारामदुलारी जी जोधापुर, श्रीरघुवरशरणजी सद्गुरुकुटी गोलाघाट

उपर्युक्त सन्तों एवं प्रभु प्रेमियों ने अपनी शक्ति सामर्थ्य भर विद्या, बुद्धि, ग्रन्थ, तथा अर्थ का सहयोग दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ का श्रेय इनसभी सन्तों और प्रभु प्रेमियों को है। मैं तो केवल कठपुतली सदृश्य सूत्रधर के संकेतपर नृत्य करता रहा। अस्तु प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि वह ग्रन्थ के सहयोगियों पर सर्वदा अपनी कृपा

दृष्टि की वृष्टि करते रहैं। पूज्य सन्तों एवं प्रिय भक्तोंको विदित हो कि प्रस्तुत ग्रन्थ ५८० पृ० में अभी पूवार्ध प्रकाशित हुआ है, और इसका उपनिषद् खण्ड द्वितीय भाग उत्तरार्ध अभी प्रकाशित होना है। अस्तु उसमें भी आप सब अपना ही कार्य जानकर सहयोग प्रदान करेंगे।

प्रभु विधानसे सात वर्ष की अवस्था में ही मेरे पार्थिव शरीर के पिताजी का देहावसान हो गया था, आठवीं वर्ष में विद्या पढ़ना आरुम्भ करके दशवर्ष तक शिक्षा प्राप्तकर १८ वर्ष की अवस्था में पढ़ना छोड़ा, दो वर्ष घर पर रहकर बीसवीं वर्ष में श्री किशोरी जी की कृपासे सद्गुरु के दर्शन हुये। जि० पीलीभीत स्टेशन पूरनपुर के पास ग्राम अमरैया मढ़ीपर रहनेवाले अनन्त श्री लालबाबा फलाहारी जी महाराज ने श्री गुरुपूर्णमासी मंगलवार सन् १९५३ में पंच संस्कार किया, श्री सीताराम जी का मन्त्र प्रदान किया। अपने साथ श्री अवध में अपने गुरुद्वारा अनन्त श्री तपस्वी जी महाराज की छावनी में रखकर श्रीरामचरित मानस अध्यन करने की आज्ञा दी। १९५७ तक मैंने श्रीरामचरित मानस एवं एकादश ग्रन्थ का अध्यन किया। १९५७में कार्तिक पूर्णिमा मंगलवार को अनन्त श्री जानकीशरण जी महाराज (मधुकर) जी से माधुर्य रसोपासना का बोध प्राप्त किया, १९६० में श्री सद्गुरु सदन गोलाघाट में आकर रहा, बीच में कुछ समय श्रीराममहल कटरा में और श्यामासदन श्रीरामघाट माझा में भी रहा १९६५ से श्री सद्गुरुकुटी गोलाघाट में रहता हूँ। अनेक सन्तों भगवतभक्तों से प्राप्त पुस्तकों का संग्रह कर मैंने यहीं रहकर श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश पुस्तक का लेखन व प्रकाशन किया। स्थान की ओर से मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता एवं आवश्यकतानुसार सहयोग मिलता रहा है। महाराज श्री का तो वात्सल्य भली भाँति रहा और है ही, साथही उत्तराधिकारी श्री रामअभिलाषशरण जी का विशेषसौहार्द रहता है। स्थान के अन्य भी सभी संत मेरे ऊपर कृपा रखते हैं। मेरी ही असावधानी के कारण बहुत सी अशुद्धियाँ छूट गई हैं। अस्तु विद्वानों भगवतभक्तों और पूज्य सन्तों से विनम्र प्रार्थना है कि आप लोग सुधारकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करलें। छपाई का ढंग या अशुद्धियों पर दृष्टि न डालकर प्रतिपाद्य विषयों पर भाव का अन्वेषण करने पर ही यत्किंचित रस मिलना संभव है। तर्क या शंका करने पर कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।

प्रमोदवन श्रीजानकीनिवास स्थान के वर्तमान श्री महान्त जी के शिष्य श्री रामदास जी महाराज हमारे परम प्रिय सन्त हैं। इनने प्रस्तुत पुस्तकके प्रकाशनकार्य में अकथ परिश्रम किया है। अस्तु श्री किशोरी जी से मंगल कामना है कि वह इनको अपने श्रीचरण कमलों का पावन प्रेम प्रदान करें।

* श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ की विषय अनुक्रमणिका *

मधुर मधुर गीतं रामचरितामृतं यो, व्रत परमपुनीतं यस्य विमला सुकीर्ति । जयति तुलसिदासो काव्य–कुसुमाकरस्य, हरियश–रस रसिकः–कोकिलः मत्तभृङ्गः ॥१॥ श्रीमत्तुलसीदासाय रामभक्ताय साधवे । सीता रामपदाम्भोज भ्रमराय नमो नमः ॥२॥ सर्व श्रुतिधरं विज्ञं नाना भाषा विशारदम् । दिव्य प्रबन्ध कर्तारं हुलसी नन्द नं नमः ॥३॥ रामचन्द्र कथा सिन्धुन् मथित्वा तुलसी कविः । दर्शयन् परमं तत्त्वं चकार मानसामृतम् नानापुराण निगमागम् क्षीर–सिन्धो, निर्मथ्य देव नरदानव वन्द्य शम्भुः । श्रीरामचन्द्र चरितामृतपूर्ण चन्द्रं, निष्काशितो विजयते सहि मानसेन्दुः ॥५॥

वेद इक्षुदण्ड रामयश काढ़योविधि, वाल्मीकिपाग कीन्हें शङ्कर महानहै । वेद व्यास वरफी जमाई सु उमंग भरे, कालिदास कलादन्द कीन्हें करिकान है । सिंह ली "कुमार" दास कीन्हीं है मलाई स्वच्छ, क्षेमेन्द्र श्रीर पाग कीन्हें करि ध्यानहै । तुलसी गोसाईं निज कविता कटपेरिन में षटरस भोगधरे वहु परिमान है ॥ छाई जवै जवा-नन की रीति सुभारती नीतिगई घुलसी । पाप परायण में नरनारि न भावत भक्ति जो वेदलसी ॥ घोर शृंगारमें डूबिगई मति मूढ कविन्द्रन की भुलसी । काव्य कलानयभक्ति उधारको विप्र "कुमार" भये तुलसी ॥ मानसरामचरित्रके भीतर भूरि गुणावलि है शुचि सीकी । वेदन को शुचि अर्थ अनूपम मोहति दिव्य कथा सिय पीकी ॥ सार "कुमार" धरयो सब सारमन काव्य पुराणहुँ को अति नीकी । गागर में भरयो सागर साँच सों लागै लखि कविता तुलसी की ॥ कविता तुलसीकृत सोहति है वसुधा में अनूप लहै छविता । छविताकी कहै कवि कैसे कोउ सियराम सुप्रेमहिं की सरिता ॥ सरिताकी नहीं तिहुंलोकनमें अवलोकत दे भवधार विताकी । रविता उपमा में "कुमार" नहीं दिन रैन जगै तुलसी कविता ॥ जाके पढ़े सब पाप नसै सियराम स्वरूप हिये झलकाहीं । जाके सुने मति निर्मल होति बढ़ै रुचि रामपदाम्बुजमाहीं ॥ जाके गुने गुन राम सिया कर भाषत भाव "कुमार" सदा हीं । सो शुचि मानस राम चरित्र पवित्र विचित्र नमो मनमाहीं ॥ जाको सदा सब शब्द सुमन्त्रहै जो नित राम चरित्रहिं भाषै । जो सिय–राम स्वरूप अनूप हिये धरिनाम सुधारस चाषै । जाकी कृती लखि विज्ञ "कुमार" न दूसर ग्रन्थ हिये अभिलाषै । सो तुलसी तुलसी सम पावन मोहि पदाम्बुज पासहिं राखै ॥ श्री तुलसी तुलसी सम पावन पाव न कोउ समता तुलसी की । जो शुचि मानस मानस राजति राजि तहाँ सब पुण्य यशी की ॥ तीरथ तीर थके कविहेरत है रतराम सिया पतिनी की । देव "कुमार" कुमारग होत गहो तव आश सुमानस हीकी ॥ रामको न मानै ताको रावण को वंश जानों, कृष्ण को न माने ताको कंश वंश मानिये । वेद को न मानै वृक वृषभसमान जानो शास्त्र को न माने ताको साड़िया वखानिये ॥ माता पिता गुरुको न मानै विड़ बराह सों तो, द्विजदेव को न मानें ताहि राषभ पिछानिये । भक्ति भाव सानी हुलसी "कुमार" तुलसी की भाषा को न मानै ताको साखा मृग जानिये ॥ २ ॥

❀ ॐ गु ं गुरवेनमः श्री गुरुःशरणं मम् श्री गुरुःशरणं मम् ❀

❀ श्री मैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्री मन्मारुतनन्दनाय नमः ❀

❀ श्री मते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀

* श्रीगुरुमङ्गलाचरण *

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदंदर्शितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः॥१

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मैश्रीगुरवेनमः ॥२

अर्थ- जिसने अखण्ड मण्डल (गोलाकार) जड़ चेतनात्मक जीवों समेत ब्रह्माण्ड रूपी समस्त विश्व को व्याप्त कर रक्खा है, जो सर्वदा एकरस अखण्ड रूप में ही रहता है। उस परंब्रह्म परमात्मा को जिनने लक्षित कराया है, उन श्रीगुरुदेवजी को नमस्कार है॥१॥ श्री गुरुदेव जीं ब्रह्मा के समान शिष्य के हृदय में सद्गुण,सद्विचार ,सद्भावनायें, सद्-वृत्तियों को प्रगट करते हैं। पुनः अपने दिव्य उपदेशामृत द्वारा भगवान् विष्णु के समान सद्गुणों, सद्विचारों सद्भावनाओं एवं सद्वृत्तियों का पोषण करते हैं। और शिक्षाप्रद उचित डाँट फटकार लगाकर रुद्र के समान अपने शिष्य के अवगुणों, असद्विचारों, कुभावनाओं, और कुवृत्तियों का नाश करते हैं। और श्री गुरुदेव ही साक्षात् परंब्रह्म परमात्मा को लक्षित कराते हैं। ऐसे परम कृपासागर श्री गुरुदेव भगवान को नमस्कार है। ॥२॥

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन सलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येनतस्मै श्रीगुरवेनमः॥३

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम्। अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्देगुरुपरम्पराम्॥४

जिनने कृपा करके ज्ञानरूपी अंजन को सलाई से लगाकर अज्ञान रूपी अँधेरेसे अन्धी हुई आँखों को खोल दिया है। उन श्री सद्गुरु भगवान् को नमस्कार है॥३॥ जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व के एक मात्र मूलकारण भगवान् श्री सीताराम जी से प्रारम्भ होने वाली, जिसके मध्य में जगदगुरू अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्य हैं, और हमारे श्रीसद्गुरुदेव, पर्यन्त स्थित है, ऐसी श्री गुरु परम्परा की वन्दना करता हूँ॥४॥

❀ श्रीसीताराम वन्दना ❀

श्यामां सरोजबदनां मृगपोतनेत्रीं, मन्दस्मिता मुर्रासजां मृदुमञ्जुकेशीम् ।
श्रीपाणिपद्ममणिभूषणभाविताङ्गीं, संजीवनीं शरणमेमि च रामरामाम् ॥ १ ॥
श्यामा तन द्युतिहेम प्रभा सम बदन सोहावन । परमानन्द स्वरूपप्रेमरतिरसप्रगटावन॥ १॥
मृगशावक ज्यों सरस नयन मंजुल अति पावन ।
चितवनि सौम्य रसाल रसिक वर मन ललचावन ॥२॥
मञ्जु मधुर मृदु हँसन लसन प्रीतम बश करनी ।
निज इच्छा अनुसार सदा लीला तन धरनी ॥३॥
मंजुल मंजु सुकेश सरस मनहरन सुधारे ।
शुचि सुन्दर सुठि सुमन केर मालादि सम्हारे ॥४॥
दिव्य भव्य आभरण अंग भूषित छविखानी ।
शोभित सुषमा सदन रसिक रघुवर पट रानी ॥५॥
अमल सरस प्रिय तरुण अरुण कल कमल धरे कर ।
राजत श्री मैथिली मधुर मूरति सनेह घर ॥५॥
नृपकिशोर चितचोर चतुर चूड़ामणि मनहर ।
प्राण सजीवन मूरि सरिस मानत श्री रघुवर ॥७॥
श्रीविदेहनन्दिनी चरण शरणागत जानी ।
दीजै प्रेम प्रवाह हृदय भरि रति रस खानी ॥८॥
दोहा—हे करुणागुण आगरी, क्षमा दया भण्डार ।
सीताशरण शरण परयो, करगहि लेहु सम्हार ॥ १ ॥
श्यामं पिसङ्गबसनं बनजातनेत्रं, प्राणप्रियं प्रणतपालमपाररूपम् ।
स्मेरं सुधांसुबदनं मणि भूषणाङ्गं, रामं नमामि बचसाबपुषा हृदा च ॥ २ ॥
कोटि काम कमनीय श्याम सुन्दर मन मोहन ।
पीत बसन शुचि कमल अमल वर नैन सु जोहन ॥१॥
प्राणहुँ ते प्रिय प्राण प्राण के जीवन दाता ।
शरणागत प्रतिपाल जाल भवहर जगत्राता ॥२॥
मन्द मधुर मुस्कान मंजु रसमय मृदुगाता ।
कोटिन चन्द्र लजात बदन सुख सदन सोहाता ॥३॥
मणि मंडित आभरण अमल भूषित छवि छावन ।
प्रेमिनप्रेमपियूष दान मन मोद बढ़ावन ॥४॥

अंग अंग रस सिन्धु सुघर प्रिय मधुर मनोहर ।
परिकर प्राणाधार प्यार पूरक सनेह घर ॥५॥
लीला लम्पट लसत ललित लालन अति लोने ।
परमानन्द सुमूर्ति अमित मन्मथ मद खोने ॥६॥
परतम, परमपरेश, परमगति, घट घट बासी ।
निजानन्द, निरुपाधि, अमल, अनुपम अविनासी ॥७॥
निर्विकार, निर्लेप, निराश्रय, सब जग कारण ।
सोइ मम जीवन प्राण प्रगटि भव भार उतारण ॥८॥

दोहा—रसमय मंजुल मूर्तिवर, सुषमागार उदार ।
सीता शरण सु स्वामि मम, रघुनायक श्रुतिसार ॥ २ ॥
जगजीवन जगदीश जो, जगताधार अशेष ।
राम रमेउ सब विश्व में, सुमिरत जाहि महेश ॥ ३ ॥
भाव प्रेम ग्राहक सतत, भक्त भक्ति परतन्त्र ।
वनिनित नव लीला करत, यद्यपि परम स्वतन्त्र ॥ ४ ॥

जयति जनक जायाः पादपद्मं मनोज्ञं हरिहर विधिवन्द्यं साधकानां सुसेव्यम् ।
नखर निकरकान्तं मुद्रिका नूपुराद्यैः वरमुनि हृदि मध्ये योग योगीश भाव्यम् ॥३॥

अर्थ-श्रीजनकराजकिशोरी जू के पावनाति पावन परम मंगलमय श्रीचरण कमलों की जय हो। जिन श्री चरण कमलों को, सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अपने मन मानस में ध्यान करके, सादर सप्रेम अर्चन वन्दन करते रहते हैं। त्रिदेवों समेत अन्य सभी देवता एवं सभी साधकों द्वारा, परमप्रेममयि भक्ति भावना पूर्वक, सम्यक प्रकार पूजित श्री-चरणों की श्री नखमणि चन्द्रिका, अपनी ज्योतिष्ना से समस्त लोकों को प्रकाशित करती है। और उन श्री चरण कमलों में, दिव्यातिदिव्य काञ्चन रत्नमणि जटित मुद्रिका, तथा नूपुरादि आभूषणों का परम प्रिय मधुर रसमय शब्द प्रगट हो रहा है। श्रेष्ठ मुनिगणों और योगी एवं परमहंस योगीराजों द्वारा, जिन श्री चरणों की भावना की गई, अर्थात् यह सभी महामुनि समूह, परमहंस और योगीराज, सर्वदा अपने हृदय निकुन्ज में, भक्ति भावना पूर्वक, सेवन करके अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं।

श्लोकः--जय जय रघुराज प्राणिपुण्यावतार मधुर मधुर मूर्ते चन्द्रकीर्ते रसेन्द्र ।
अभिनव नवभावैर्मादृशान्दास भृत्यान् भर नर वरभूप पादमूलोपसन्नान ॥४॥

अर्थ-हे श्रीरघुराजकिशोर श्रीरामजी ! आपकी जय हो जय हो २। आप अखिल विश्व के सभी प्राणिमात्र के पुण्यस्वरूप प्रगट हुये हैं, अर्थात् आप विश्वात्मा हैं, समस्त देवी देवता एवं त्रिदेवादिकों तथा, भगवान् या ईश्वर शब्द वाच्य प्रेरकों के भी, परम प्रकाशक

आपही हैं। आपकी परम मंगलमय मञ्जुल मधुरातिमधुर सरस प्रियमूर्ति, प्राणिमात्र के लिए परम सुख प्रदायक है। हे रसेन्द्र! अर्थात् रसिकों में सर्वश्रेष्ट, भवदीय निर्मलनिष्क लंक, निरावरण, कमनीय कीर्ति, समस्त लोकों में प्रकाशित है। श्रेष्ट भूपालों की पंक्तियाँ हाथ जोड़े, अपने मणिमय मुकुटों से ही, आपके श्री चरणकमलों की आरती उतारते हैं, अस्तु हे राजराजेश्वर! आप मुझे अपना भृत्य (दास) समझ कर, अपनी परम कृपामयि दृष्टि से अवलोकन कर, मुझे अपने श्री चरण कमलों की नित्य सेवा में, सर्वदा के लिए श्रीचरणों के निकट तमनिकट स्थान दीजिये। और ऐसी दया कीजिये कि मेरे हृदय में आपकी सेवा के, नित्य नये नये उद्गार (भाव) जाग्रत होते रहें। आपकी परमरसमयि मंजुल मधुर झाँकी, क्षण क्षणप्रति अतिसय प्रिय लगे, और मेरा मन मधुप आपके श्री चरणारविन्दों को, स्वप्न में भी कभी नहीं त्यागे॥

श्लोकः--वन्दे विदेह तनयापदपुण्डरीकं कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम्॥ ५॥

अर्थ--भूतमन भावन भगवान श्री भोलेनाथ जो, स्तुति करते हुये श्री जानकी जी से कहते हैं कि--हे श्री विदेहराज किशोरी जी, मैं आपके श्री चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। नवविकसित पूर्ण खिले हुये, परम सुगन्ध से भरे आपके जिन श्रीचरणकमलों को, योगि जन सर्वदा अपने चित्त में चिंतवन करते हैं। अर्थात् आपके श्री चरणकमलों को सरस प्रिय मधुर सुगन्ध, विशुद्धात्मा योगियों के चित्त को, हठात अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। फिर वे महा भागवत् परमहंस, योगिराज, सर्वदा आपके श्री-चरणारविन्दों के ही ध्यान में मगन रहते हैं। तीनों तापों से तपे हुये चेतनों के, दैहिक दैविक भौतिक सभी सन्तापों का समन करने वाले, मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में हंस समान विचरने वाले, अर्थात् मुनियों द्वारा सेवित श्रीचरणकमल भक्त रूपी धानों को, परम सुखद पावस ऋतुसमान पराग से भरे हुये हैं, वे भयदीय श्री चरणारविन्द हमारे आश्रयदाता हैं। मैं आपके उन श्री चरणकमलों की शरण में हूँ।

दूर्वा दलद्युति तनुं तरुणाब्ज नेत्रं, हेमाम्बरं वर विभूषण भूषिताङ्गम्।
कन्दर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्तिं, पूर्तिमनोरथ भवां भजु जानकीशम्॥ ६॥

दूर्वादल सदृश्य मंगलमय मंजुल श्याम विग्रह वाले, पूर्णविकसित अरुण कमल के समान विशाल नेत्र वाले, विजली के समान चमकदार पीताम्बर धारण करने वाले, सर्वाङ्ग में यथोचित श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित, (शोभित) करोड़ों कामदेव से भी सौंदर्य युक्त किशोर मूर्ति, आश्रितों के सर्वाभीष्ट प्रदायक, अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्री जानकीनाथ भगवान् श्रीरामजी का भजन करता हूँ॥

लोक प्राणांनिलप्राणं सर्व साधक साधकम्। प्रणमामि हनूमन्तं साधु बाधक बाधकम्॥

समस्त लोकों के प्राणभूत श्री वायुदेव के प्रियप्राण समान पुत्र, सर्व साधकों को सभी साधनों के सिद्धिफल देने वाले, और श्री राम भक्तों के बाधक जो खल उनके बाधक, ऐसे श्री हनुमान जी महाराज को प्रणाम करता हूँ॥

नमाम्यहं मारुतसूनु माञ्जनं, श्री जानकी जीवन प्रियम्।
सौमित्रि मित्रं कपिराज वल्लभं, श्री राम भक्तं शरणं प्रपद्ये॥८॥

पवन पुत्र श्री अन्जनी कुमार को मैं नमस्कार करता हूँ। जो श्री हनुमान जी श्री जानकी जीवन भगवान् श्री राम जी को प्राणाधिक प्रिय हैं। और माता श्री सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण जी के परम मित्र, एवं कपिराज श्री सुग्रीव जी के परम प्यारे, श्रीराम भक्त शिरोमणि श्री हनुमान जी की शरण में मैं प्राप्त हूँ।॥

ॐ गुं गुरवे नमः श्री गुरुः शरणं मम् श्री गुरु शरणं मम्

श्री मैथिली रमणो विजयते

❀ श्री गुरु महिमा माधुरी ❀

समस्त शास्त्रज्ञों एवं वेद वेदितव्यों को विदित ही है कि दृश्या दृश्य समस्त जगत के परमाधार, परमाश्रय, सृजक, संचालक औरनिस्तारक अहैतुकी कृपासागर, करुणा-वरुणालय, भक्तवत्सल, भावग्राहक, परम उदार परात्पर प्रभु श्री सीताराम जी हैं। सर्व-तन्त्र, स्वतन्त्र, सर्वेश्वर श्री सीतारामजी की विशद एवंविस्त्रित महिमासे कोई भी विद्वान अपरिचित नहीं है। सभी निगमागम विमुक्तकण्ठसे आपकी कमनीय कीर्तिकामिनीकेकोमल कलित गीत गाते हैं। प्रभु श्रीसीताराम जी सर्वदा अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। अखिलविश्व आप की इच्छाशक्ति (संकल्प)का विलाश है। श्री सीताराम जी की भृकुटि का संकेत पाते ही सर्वथा आपके आधीन रहनेवाली, आप की कृपा से महाबलवती माया क्षणमात्र में, अनन्तानन्तब्रह्माण्डों का सृजन करदेती है। पुनः उन सभी ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि त्रिदेव भगवान् श्री रामजीके अंश से प्रगट होकर संसारकी सृष्टिपालन एवं संहार लीला करते हैं। और श्री राम जी से परम अभिन्नात्मा आद्याशक्ति, श्रीसीता जी के अंश से प्रगट ब्रह्माणी, उमा, और श्रीलक्ष्मी जो त्रिदेवियाँ उन त्रिदेवों के सृष्टि लीला की सहयोगिनी होती हैं॥

शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना॥

श्री रा० च० मा० बा० का० दोहा १४८ पंक्ति ६ और -

जासु अंश उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

बा० दोहा १४८ पं० ३ एवं -

भृकुटि बिलाश जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई ।।

उपरोक्त दोहा की पंक्ति ४ पुनः आरण्य काण्ड में -

भृकुटि बिलाश सृष्टि लय होई

दो० २८ पंक्ति ४ और यथर्ववेद में भी -

यस्यांशेनैव । ब्रह्मा विष्णु महेश्वराऽपिजाता महाविष्णुर्यस्य दिव्य गुणः ।
सएव कार्य कारणयोः परः परम पुरुषो रामोदाशरथिर्वभूवः ।।

अर्थात् निश्चय करके जिसके अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रगटहोते हैं । महाविष्णु जिसके दिव्य गुणस्वरूप हैं। कार्य और कारण से परे वही परम पुरुष श्री राम जी श्री दशरथ जी के घर में पुत्ररूप से प्रगट हुए। जिन श्री राम जी की महिमा का स्वल्पांश मात्र सती जी ने ऐसा दर्शन किया कि -

देखे शिव विधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ।।
वन्दत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ।।
सती विधात्री इन्द्रा देखी अमित अनूप ।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ।।

(श्री रा० च० मा० बा० का० दो० ५४ पंक्ति ७ से १० तक)

सती जी ने अनेक शंकर, ब्रह्मा विष्णु को एक से एक प्रभावशाली रूप में देखा । और इन्द्रादिक सभी देवताओं को भी अनेक प्रकार के वेष में श्री सीताराम जी के चरणों की वन्दना और सेवा करते देखा । अनेक सती अनेक ब्रह्माणी और अनेक लक्ष्मी जी को, उपमारहित आश्चर्य जनक रूप में देखा। ये सभी त्रिदेवियाँ उन त्रिदेवों के ही अनुरूप थीं। अर्थात् अनेक शंकर जी के साथ में तदनुरूप अनेक सतीं और अनेक ब्रह्मा जी के साथ में अनेक ब्रह्माणी और अनेक विष्णु भगवान के साथ अनेक लक्ष्मी जी श्री सीताराम जी की सेवा में उपस्थित थीं। पुनः माता श्री कौशिल्या जी ने भी अगनित रबि शशि शिव चतुरानन। अनेक सूर्य, चन्द्र, शंकर, ब्रह्मादिकों को श्री-राम जी में देखा । और श्री भुशुण्डी जी ने भी श्री राम जी के उदर (पेट) में—

कोटिन चतुरानन गौरीशा । अगणित उडगन रबि रजनीशा ।।

(रा० च० मा० उ० का० दो० ८० पंक्ति ३ से १० तक ।

एक एक ब्रह्माण्ड में रहेउँ बरस सत एक ।
यहि विधि देखत फिरौं मैं अण्ड कटाह अनेक ।।

अर्थात् अनेक ब्रह्माण्डों में अनेक प्रकार के ब्रह्मा, विष्णु, महेश; तारा, सूर्य और अनेक चन्द्रमाओं को देखा । पूर्णब्रह्म भगवान् श्री सीताराम जी की महिमा

ऋषियों ने शास्त्रों में इस प्रकार गाई है। जिसका दिग्दर्शन प्रस्तुत ग्रंथ में समीचीन रूप से उपलब्ध होगा।

परन्तु ब्रह्म तत्त्व के परिज्ञान के पूर्व श्री गुरु तत्त्व का बोध (ज्ञान) होना परमावश्यक है। क्योंकि शास्त्रों में गुरु तत्त्व की महिमा अपार रूप में पाई जाती है। पुनः शास्त्रों का बिशेषार्थ श्री गुरु कृपा के बिना सर्वथा अप्राप्य रहता है। श्रुति, स्मृति; शास्त्र, पुराणों के तत्त्व स्वरूप ब्रह्म का बोध प्राप्त करने के लिए एकमात्र श्री गुरुकृपा ही परमाधार है। विचारना यह है कि जागतिक किसी भी व्यवहार कार्य को. कोई भी व्यक्ति किसी से सीखे बिना नहीं कर पाता। तब आत्मा, परमात्मा, एवं विश्व सृष्टि के वास्तबिकता का ज्ञान स्वयमेव (अपने आप) नहीं हो सकता है। अस्तु जिस व्यक्ति विशेष के द्वारा आत्म स्वरूप, परमात्म स्वरूप, अविद्या जनित अज्ञान से उत्पन्न होने वाले संसार का यथार्थ बोध हो। उसे ही गुरु कहते हैं। गुरु तत्त्व की जानकारी के बिना व्यक्ति के जीवन में उसकी आवश्यकता की अपेक्षा न होकर उपेक्षा हो जाती है। जानकारी होने पर ही गुरु तत्त्व की अपेक्षा मानव अपने जीवन में अनिवार्य रूप से समझता है। अस्तु गुरु तत्त्व की जिज्ञासा मानव मात्र को सर्वथा अपेक्षित है। इसलिये मानव मात्र को उचित है कि किसी भगवत् भक्ति परायण महानुभाव को गुरुरूप में वरण (स्वीकार) करके इस अज्ञान अन्धकार दुखमय संसार से छुटकारा पाने का मार्ग प्राप्त करें। एक बात का ध्यान रखना अनिवार्य है कि-कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किसी साधक की व्यर्थ प्रसंशा सुनकर भ्रम में पड़कर उस साधक में श्रद्धावान होकर उसे गुरु रूप में स्वीकार न करें। अन्यथा बाद में बहुत ही पछताना पड़ेगा। यदि गुरु वरण करना हो तो स्वयं ही भलीभाँति निरीक्षण करके तब गुरु वरण करें। जिस महानुभाव के प्रति अपनी आत्मा यह स्वीकार करले कि ये वास्तव में सच्चे महापुरुष हैं। इनमें सामर्थ है कि अपने उपदेश के द्वारा हमारे अज्ञान को नाश करके दिव्य ज्ञान हमारे हृदय में भर देगें। और इनके बताये हुये मार्ग पर चलने से निश्चय ही हमारा कल्याण हो जायेगा। तभी किसी महानुभाव से दीक्षा प्राप्त करें। जितना अन्वेषण करना हो गुरु वरण के पूर्व ही कर लें। क्योंकि अपने जीवन की बागडोर सौंपना है। इसलिये अन्वेषण करना परम अनिवार्य है। ऐसी कोई आपत्ति नहीं है कि आज और अभी ही गुरुवरण कर लें। जो भी मिल जाये उसे ही गुरु बना लें। अच्छी प्रकार सोच विचार कर गुरुवरण करे। स्वयं बिना बिचारे और के बहकाये से किसी को गुरु नहीं बनाना चाहिये। भोरे स्वभाव के लोग दूसरे के कहने पर किसी साधक को गुरु मान लेते हैं। बाद में बहुत पछताते हैं कि हमसे भूल हो गई। इसलिये प्रथम ही खूब जानकारी करके ही किसी को गुरु बनाना चाहिये। जिस साधक में दोष हों उसे गुरु न बनावें। सर्वथा निर्दोष भगवत् भक्त, सभी बिषयों से परम विरक्त,

वेद शास्त्रों के ज्ञाता, महापुरुष को अपना गुरु बनावें। गुरुवरण करने के बाद उनके दोषों का निरीक्षण करना महान् अपचार है। अस्तु मानव मात्र को उचित है कि किसी महापुरुष को गुरु रूप में वरण करके, उनकी सेवा सुश्रूषा करते हुये, उनके अमृतमय शुभ उपदेशों का पालन करके, मानव शरीर पाने का परम लक्ष्य भगवत् कृपा को प्राप्त करें। मानव देह पाकर भी यदि जन्ममरण रूपी संसार चक्र न छूट सका, तो फिर चौरासी चक्र में पड़कर पुनः महान कष्ट उठाना पड़ेगा। अनन्त करुणावरुणालय प्रभु ने, जीवों को मानव देह केवल इसी लिये प्रदान की है कि शास्त्रोक्त शुभ साधन करके संसार चक्र से मुक्त हो, प्रभु की कृपा को प्राप्त करके, साश्वत अमृतमय भगवान् के दिव्य धाम में, पार्षद रूप से प्रभु को प्राप्त हो, नित्य कैंकर्य को प्राप्त करे। अस्तु संसार चक्र से मुक्त होने तथा प्रभु की प्राप्ति करने की इच्छा रखने वाले सज्जनों को, सच्चे महापुरुषों से दीक्षा लेकर ही भजन करना चाहिये।

❀ गुरु दीक्षा की आवश्यकता ❀

प्रश्न—क्या गुरु दीक्षा के बिना भगवान् नहीं मिल सकते।

उत्तर—भगवान् स्वतन्त्र हैं, वह अपनी अहैतुकी कृपा से चाहे महान पापी को ही क्यों न मिल जायें। और गुरुदीक्षित भजन करने वाले को भी न मिलें। परन्तु यह नियम सर्व साधारण के लिये सामान्यतया नहीं हो सकता है। भगवान् ने ही ऋषियों को प्रेरणा करके सद्ग्रन्थों की रचना करवाई है। उन सभी सत्शास्त्रों में; गुरु दीक्षा लेकर भजन करने पर ही, भगवत् प्राप्त का बिधान बताया है।

प्रश्न-भगवान् तो प्रेम पूर्वक भजन करने से मिलते हैं, तब गुरु दीक्षा की परमावश्यकता क्यों है।

उत्तर-बिना गुरु दीक्षा लिये भजन करने का बिधान ही समझ में नहीं आवेगा, बिना बिधान जाने भजन कैसे करेगा। और भगवान को बिना जाने उनमें प्रेम होना असम्भव है।

प्रश्न-क्या गुरु दीक्षा लेने से भगवान का ज्ञान एवं उनमें प्रेम हो जाता है।

उत्तर-भाई गुरु शब्द का तो अर्थ ही यह है कि शिष्य के हृदय में से अज्ञान रूपी अन्धकार को अपने शुभ उपदेशामृत से दूर करके आत्मा के ज्ञान रूपी दिव्य प्रकाश भर दें। जब हृदय का अज्ञान नष्ट हो जायेगा। तब मैं कौन हूँ। मेरा कर्तव्य क्या है। मैं किसके लिये हूँ। मेरा रक्षक एवं भोक्ता कौन है। उससे मेरा क्या सम्बन्ध है। मैं अपने उस परम प्रियतम से अलग क्यों हो गया, मेरे और उन प्रभु के बीच में कौन है, जो हमें अपने परम प्रियतम प्रभु से मिलने नहीं देता। प्रभु से मिलने का उपाय

क्या है। और प्रभु से मिलने का परिणाम क्या होगा। ऐसी अनेक उपयोगी बातों की जानकारी श्री गुरु कृपा से होती है। इन सब बातों को श्री गुरुदेव के अतिरिक्त विधिवत कौन समझायेगा। और उपरोक्त बातों का बिना ज्ञान हुये, भगवानमें प्रेम कैसे होजायेगा। अस्तु गुरु दीक्षा की परमावश्यकता है। बुद्धिमानों को गुरुदीक्षा अवश्य ही लेना चाहिये।

प्रश्न-क्या सभी जीव भगवान् के अंश नहीं हैं, यदि हैं तो गुरु दीक्षा रूप आवरण की आवश्यकता क्यों।

उत्तर-यद्यपि सभी जीवात्मा भगवान् के ही अंश हैं। यह बात सर्वथा सत्य है। तथापि अविद्याकृत अज्ञान के कारण, सभी आत्मा यह नहीं मानते कि हम परमात्मा के अंश और उनके ही भोग्य हैं। अज्ञान एवं भ्रम के कारण अपने को उन परम प्रभु के परतन्त्र न मानकर स्वतन्त्र और स्वयं भोक्ता मानता है। इसलिये हमको भगवान् से मिलना अनिवार्य है ऐसी जिज्ञासा ही नहीं जगती, तब प्रभु उनसे कैसे मिल पायें। श्री-सद्‌गुरु कृपा से इस बात का ज्ञान हो जाता है कि हम प्रभु के परतन्त्र और उनके ही भोग्य हैं। हमारे एकमात्र भोक्ता और रक्षक भगवान् ही हैं। उनकी सेवा कैंकर्य करना हमारा सहज स्वरूप है। अनित्य संसार के सभी सम्बन्धों को त्यागकर अपने प्राणाधार प्रभु के श्री चरणकमलों का दर्शन सेवन अर्चन करना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है। तब उनमें प्रेम स्वभाविक होता है। श्री सद्‌गुरु के बिना यह ज्ञान कौन करायेगा। अस्तु गुरुदीक्षा लेना सभी को परमावश्यक है।

प्रश्न-यदि हम किसी व्यक्ति को गुरु न बनाकर भगवान् श्री हरि को ही गुरु मानकर भजन करें तो क्या हानि है। मनुष्य तो सभी एक समान हैं, उनको गुरु बनाने से क्या लाभ है।

उत्तर-भगवान् श्री हरि तो चराचर जगत के परमाराध्य हैं ही। इसमें दो मत नहीं हैं। परन्तु भगवान का कार्य अलग है। सद्‌गुरु का कार्य दूसरा है। यद्यपि भगवान् सत्य संकल्प हैं। यदि चाहें तो समस्त जगत को एक क्षण के अन्दर ही आत्मा परमात्मा माया का दिव्य ज्ञान कराके, सभी जीवों को विषयों से बिमुख करके, अपना प्रेम प्रदान करके अपने नित्यधाम ले जासकते हैं। तथापि ऐसा करते नहीं हैं। भगवान् का कार्य है-विश्व की सृष्टि, पालन, पोषण करना। पुनः स्वेच्छा से अपने में ही विलीन कर लेना, किन्तु शिक्षा दीक्षा देने का कार्य भगवान ने भगवान् रूप से अपने हाथ में न रखकर अपने ही अभिन्नात्मा प्रिय भक्तों को सौंप दिया है।

अस्तु उपदेश देना भगवत् भक्तों का कार्य है। भगवान् का नहीं। दूसरी बात यह भी है कि-यदि हम भगवान को गुरु मान लें, ठीक है, फिर भगवान् किसे मानेगे। गुरु शब्द का तो अर्थ ही यह है कि-माया ग्रसित जीव को समस्त विषयों से

बिमुख करके भगवान् श्री हरि में लगावे। एक समस्या यह भी है, कि भगवान् हमें मिलेंगे कहाँ, कि हम उन्हें गुरु मान लें। यदि मिल भी जायें तो फिर गुरु बनाने की आवश्यकता ही समाप्त हो जायेगी। भगवान् से मिलने के लिये ही गुरु बनाया जाता है। सभी जीवों के परम प्राप्य भगवान् ही हैं। उनसे बढ़कर कोई और तत्त्व है ही नहीं। तब भगवान को गुरु बनाने से भगवान् किस तत्त्व का उपदेश देंगे। यदि कहा जाये कि बिना मिले ही मन से भगवान् को गुरु मानकर भजन करने लगें। यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि गुरु तो शिष्य को प्रत्यक्ष होकर उपदेश देते हैं। भगवान् मन में ही हैं, तब मन्त्र दीक्षा कहाँ मिलेगी। कौन देगा। और उस मन्त्र का अर्थ एवं जप बिधि, भगवान् का ध्यान, मनमें उठने वाली शंकाओं का समाधान कौन करेगा। इस पर यदि कोई कहे कि सभी मन्त्र पुस्तकों में लिखे हैं। जो प्रिय हो, उसे याद करके जपने लगे। अर्थ किसी भी विद्वान से पूछ लें, गुरु बनाने की क्या आवश्यकता है। यह कार्य भी ठीक न होगा। क्योंकि पुस्तकों में लिखा मन्त्र अचेतन (जड़वत) माना जाता है। उसका जप करने पर चैतन्यता आती है। यदि किसी विद्वान् को बिना ही गुरु माने, अविधि से मन्त्रार्थ पूछेंगे तो वह बतायेगा ही नहीं। उदारता पूर्वक यदि बता भी दे तो श्रद्धारहित होने से लाभ न होगा। अस्तु संसार से मुक्ति और भगवत् प्राप्ति की कामना वाले सज्जनों को तर्क छोड़कर अवश्य ही गुरु वरण करना चाहिये।

प्रश्न-क्या गुरु ही भगवान् के ठेकेदार हैं। कि उनकी कृपा के बिना जीव को भगवान् नहीं अपनायेंगे।

उत्तर-यद्यपि भगवान् श्री हरि कृपा सागर हैं। तथापि यह उनका सहज स्वभाव है, कि अपने भक्तों के द्वारा ही किसी को अपनाते हैं, यह उनका अपना स्वन्त्र विधान है। विशेष ध्यान देने वाली एक बात यह भी है कि-जिसे भगवत प्राप्ति की कामना होगी, वह व्यक्ति नाना प्रकार की तर्कों में न पड़कर भगवान् के विधान को सहर्ष स्वीकार कर लेगा और जिसे संसार ही प्रिय है, उसे वहीं आनन्द का अनुभव करना चाहिये। भगवान् से मिलने वाले सज्जनों को तो, संसार के सभी सम्बन्धी, शारीरिक सभी सुख स्वाद और लौकिक मान प्रतिष्ठा त्यागकर, योग्य महानपुरुष को गुरु वरण करके, उनकी आज्ञानुसार ही भजन साधन करना परमश्रेयकर होगा। साधारण जीवों की कौन कहे, स्वयं भगवान् श्री हरि ही जब भक्तों पर कृपा करके मानव रूप में प्रगट होते हैं, तब यद्यपि प्रभु ज्ञान विज्ञान के रूप ही हैं, तथापि हम जैसे तुच्छ जीवों के शिक्षार्थ गुरुवरण करने की लीला करके दिखाते हैं। यद्यपि आपको बिलकुल आवश्यकता नहीं है। यथा-भगवान् श्री राम जी ने श्री बशिष्ठ जी को स्वीकार किया था। भगवान् श्री कृष्ण जी ने श्री सन्दीपन ऋषि को गुरु रूप में बरण किया था। अस्तु मानव मात्र को गुरु वरण करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

प्रश्न-क्या गुरु ही साक्षात् पारब्रह्म परमात्मा है। जैसे कि कहा जाता है कि-

गुरुसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

उत्तर--गुरु ही भगवान् हैं। तब भगवान् क्या रहेंगे। गुरु भगवान नहीं हैं। भगवान को बताने वाले हैं। यद्यपि सत्यबात यही है। तथापि भगवान का स्वभाव है कि गुरु का पद अपने से भी अधिक मानते हैं। यह है भागवान् की उदारता। और लोकलीला में भगवान ने सर्व सामान्य एवं विशेष सभी के लिये यही सिद्धान्त बनाया है कि-शिष्य अपने श्री गुरुदेव को मुझ से भी अधिक आदर करे। अस्तु भगवान के इस सिद्धान्ता--नुसार जो भक्त भगवान की कृपा प्राप्त करना चाहे तो श्री सद्गुरुदेव को भगवान् से भी अधिक श्रद्धा भक्ति युत अर्चन वन्दन करे। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान को भूल जाये। गुरुतत्त्व जीव को भगवान में लगाने के लिये ही है। स्वतन्त्र ब्रह्म नहीं है। यदि कोई साधक गुरु को स्वच्छन्द ब्रह्म माने तो उसकी गुरु निष्ठापर भगवान् श्री हरि रीझ कर उस भक्त को अपनी भक्ति करने वाले की भी अपेक्षा अधिक प्यार प्रदान करेंगे। किन्तु सर्व सामान्य से ऐसी निष्ठा कर आद्योपान्त निर्वाह होना असंभव है। कारण यह है कि श्री सद्गुरु के पार्थिव शरीर में मानवोचित सभी क्रियायें होना अनिवार्य हैं। यदा कदा दोष दर्शन होना भी सम्भव है। क्यों कि पंचभौतिक शरीर धारियों में संस्काराधीन गुण एवं दोषों का उदय होना भी अनिवार्य है। उसका कारण यह है कि सभी चेतनात्माओं का शरीर पूर्व जन्म कृत शुभाशुभ कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। इसलिये शारीरिक क्रिया का परिवर्तन होना अनिवार्य है। सर्वशास्त्रों का मन्तव्य है कि ब्रह्म कर्माधीन शरीर धारण नहीं करता। शरीर धारण करने पर भी वह पूर्ण स्वतन्त्र रहता है। परतन्त्रता कभी उसे स्पर्श भी नहीं करपाती। उस अवस्था में भी वह पूर्ण तथा सम्पूर्ण विश्व का नियमन करता रहता है। सर्वव्यापकता, सर्वप्रेरकता, एवं सर्वसंरक्षकता उसी में समाहित रहती है। और गुरुदेव का शरीर आधि व्याधिग्रसित होते तथा विसर्जन होते देखा जाता है। तब सर्व साधारण तथा जन समुदाय श्री गुरुदेव को भगवान कैसे मान पायेगा। यदि कहा जाये कि रोग व्याधिया शरीर त्याग यह तो श्री सदगूरुदेव की लीला है। इस में बात ऐसी है कि तब तो शिष्यों का भी रोगी होना या शरीर विसर्जन को भी लीला मानना पड़ेगा। तो गुरु शिष्य समान हो गये। न कोई भक्त बचा न भगवान। ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि--गुरुदेव भी तो भगवान का भजन करते हैं। यदि स्वयं भगवान हैं तो भजन करने की आवश्यकता नहीं है। जन्मजात कोई भी गुरु नहीं होता। बाद में सत्शास्त्रों का अध्यन एवं सत्संग तथा भगवान का भजन करके ही सभी गुरुबनते हैं। तब भगवान तो नहीं। भगवान के परम प्रिय भक्त अवश्य ही हैं। भगवान का स्वभाव है, कि अपने भक्तों को, अपने समान ऐश्वर्य देकर अपने समान या अपने से भी अधिक बनाये रहते हैं। उस अवस्था में भी सृष्टि लीला, भरण पोषण, प्रलय, प्रेरणा

आदि कार्य अपने हाथ में ही रखते हैं। भक्तों को समर्पित नहीं करते। भगवत् कृपा से मुक्तावस्था में भगवान की सामींप्यता प्राप्त होने पर ब्रह्म सूत्रअ० ४ पा० ४ के २१वे सूत्रमें लिखा है कि-**भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च** अर्थात् ऐश्वर्य सुख-भोग अपने समान प्रदान करते हैं। तथापि-**जगत् व्यवहार वर्जनम्**॥ उस अवस्था में भी जगत व्यवहार प्रभु अपने ही हाथ में रखते हैं। भक्त को नहीं देते हैं। तब सोचिये कि इस प्राकृत लोक में प्राकृत शरीर को भगवान मानना कहाँ तक सत्य होगा। अस्तु श्री गुरुदेव को भगवान न मान कर भगवान का परम प्रिय भक्त मानना चाहिये॥

प्रश्न:-- भक्तमाल में लिखा है कि- **भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुरनाम वपु एक।** भक्त तथा भक्ति और भगवान एवं गुरु ये चारों नाम एक ही शरीर के हैं। तब गुरु देव को भगवान क्यों न माना जाये ?

उत्तर:- यह बात भक्तमाल लेखक महाराज श्री की उच्चतम दिव्य भावना की है। इसका रहस्य यह है कि- यदि साधक भगवान के भक्त एवं प्रभु की भक्ति तथा भगवान और श्री गुरुदेव को भिन्न-भिन्न मानेगा, तो उसके मन में भगवान की अपेक्षा भक्त, भक्ति और गुरु देव में भाव कम रहेगा। श्रद्धाभाव के अभाव में साधक को गुरु बचनों में विश्वास न होगा, गुरु बचनों में विश्वास न होने से उनकी बताई हुई साधना भी नहीं करेगा। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि:- साधक जब तक जागतिक सम्बन्धी जनों में आशक्त रहेगा। शारीरिक सुख स्वाद में लम्पट रहेगा, तब तक भगवान की कृपानुभव न हो सकेगी। सभी जीव स्वभाव से ही शारीरिक सम्बन्धी एवं सुख स्वाद में आशक्त हैं। तब संसार से वैराग्य और भगवान में अनुराग प्रदान करने वाले श्री गुरुदेव के अतिरिक्त और कौन हैं। क्यों कि गुरु देव ही कृपा करके यह बतलाते हैं कि- संसारी सभी पदार्थ अनित्य हैं। और कोई भी किसी का सम्बन्धी नहीं है। सभी अपने ही स्वार्थ परायण हैं। भगवान की भक्ति एवं भक्तों की महिमा अपार है। भक्तों के द्वारा कीगई भक्ति भगवान को वश करलेती है। सभी जीवात्माओं के प्राप्य एक मात्र भगवान श्री हरि ही हैं। तभी कोई भावुक भगवान तथा उनके भक्त एवं प्रभु की भक्ति के प्रति प्रेम करता है। भगवान का स्वभाव है कि अपने भक्तों को स्वामी मानते हैं। स्वयं उनके भक्त बन जाते हैं। यथा- शंकर जी को भगवान बनाकर पूजन करते हैं। फिर भी शंकर जी भक्त ही हैं, भगवान नहीं हो पाये। इसी प्रकार भक्ति भी प्रभु के श्री चरण कमलों की सेवा में ही रहने वाली हैं। प्रभु से पृथक सत्ता नहीं है। भगवान से सम्बन्ध होने पर ही भक्त भक्ति, एवं श्री गुरुदेव जी की अपार महिमा है। स्वतन्त्र नहीं। यह बात अवश्य ही है, कि जीव जब तक प्रेम पूर्वक भगवान की

भक्ति न करेगा। और प्रभु के भक्तों को अपना पूज्य नहीं मानेगा। तथा श्री गुरु देवजी को भगवत् स्वरूप न मानेगा। तब तक भगवान की कृपा दृष्टि की वृष्टि न होगी। इसी लिये पूज्य चरण श्री नाभा स्वामी जी ने। भक्त, भक्ति, भगवन्त गुरु चतुर्नाम बपु एक कहा है ॥तत्त्वतः ये चारों ही एक हैं। स्वरूपतः चारों भिन्न हैं। अस्तु इन चारों को अभिन्न मानते हुये भी भक्ति (उपासना) तो भगवान की ही करनी चाहिये। समयानुसार यथा शक्ति सेवा सुश्रूषा भगवत् भक्त एवं श्री गुरुदेव जी की भी भाव पूर्वक करना परमावश्यक है। कारण कि भगवान भक्त और गुरुदेव जी की सेवा के बिना किसी की सेवा को अपनी सेवा नहीं मानते हैं। प्रभु की कृपा चाहने वालों को प्रभु के भक्त और श्रीगुरुदेवजी को भगवान् से पूर्व और अधिक श्रद्धा प्रेम रखना चाहिये। कोई भी भक्त सभी भक्तों की भावना का ठेकेदार नहीं है। भावना करने में सभी भक्त स्वतन्त्र हैं। श्रीनाभा स्वामी जी की ही भावना सभी भक्तमान लें, यह अनिवार्य नहीं है। ऐसा होता भी नहीं है। न होना सम्भव ही है। प्रेरक प्रभु अनेक भक्तों के हृदय में अनेक प्रकार की भावना उत्पन्न करते हैं। जिस भक्त के हृदय में ऐसी भावना होती हो कि श्रीगुरुदेवजी साक्षात् ब्रह्म हैं, तो उसके ऊपर प्रभु की महान कृपा है, उसे ऐसी भावना करना चाहिये। किन्तु जिसके मन में कभी भी ऐसी भावना नहीं आती कि-श्रीगुरुदेवजी साक्षात् ब्रह्म हैं, तो उसको नास्तिक समझना या मूर्ख कहना भी बुद्धिमानी नहीं है। **'भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर्नाम बपु एक। इनके पद वन्दन किये, नासैं विघ्न अनेक ॥'** जिस भक्त को उपर्युक्त लाभ की आवश्यकता होगी। वह भक्त भक्ति भगवन्त गुरु को एक रूप मानेगा ही। किन्तु जिसे आवश्यकता नहीं है, उसके माथे बरबस मढ़ना भी अच्छा नही है। श्री गुरुदेवजी केवल अपने परम श्रद्धालू शिष्य के ही लिये ब्रह्म हैं। न तो अपने लिये ब्रह्म हैं, न शिष्य के अतिरिक्त किसी भी अन्य के ही लिये ब्रह्म हैं। शिष्य की श्रीगुरुदेवजी के प्रति श्रद्धा विश्वास दृढ़ बना रहे, इसीलिये मान्यता है कि—**'गुरु साक्षात् परब्रह्म वस्तुतः'** जीव कभी भी ब्रह्म होता ही नहीं है। ऐसा ही सिद्धान्त सभी श्रीवैष्णवाचार्यों का है। तब गुरुदेह में निवास करता चेतन (जीव) ब्रह्म क्यों हो सकता है। अस्तु श्रीगुरुदेवजी को ब्रह्म मानने या न मानने में शिष्य की अपनी श्रद्धा ही मूल कारण है। जिसकी श्रद्धा हो माने। जिसको श्रद्धा न हो तो वह नहीं माने। हाँ यह बात अवश्य ही है कि-जो शिष्य श्रीगुरुदेवजी को ब्रह्म (भगवान्) ही मान कर सेवा सुश्रूषा करेगा। उस पर भगवान श्रीहरि प्रसन्न होकर अपनी कृपा-दृष्टि की वृष्टि अवश्यमेव करेंगे। यदि शिष्य ब्रह्म भाव रखकर निष्ठा पूर्वक श्रीगुरु सेवा करता है, अथवा करेगा, तो निश्चय ही प्रभु की कृपा प्राप्त करेगा। तथापि अश्रद्धालू शिष्य को मन न चाहने पर भी यह बोझा ढोना कि गुरु ब्रह्म हैं, अनिवार्य या आवश्यक नहीं है।

प्रश्न—श्रीगुरुदेवजी की किन २ आज्ञाओं का पालन किया जाये ?

उत्तर—सर्वदा इस बात का विशेष ध्यान रहे कि—गुरु शब्द का अर्थ क्या है ? हमने गुरु बनाया किसलिये है। हमारा गुरु से सम्बन्ध क्या है। तब कभी भी भूल न होगी। गुरुशब्द का मोटा अर्थ है कि—दुख, अज्ञान, अन्धकारमय इस संसार सागर से मुक्त करके सुख, ज्ञान, प्रकाशमय सच्चिदानन्दघन प्रभु की ओर चित्त को लगावे। अस्तु प्रत्येक साधक को चाहे बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक कोई भी हों, सभी को श्रीगुरुदेवजी की उन्हीं आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। जिनके पालन से साधक का मन भगवान् श्रीहरि की भक्ति एवं भक्त तथा श्रीगुरुदेव के प्रति विशुद्ध भाव से लगा रहे। ऐसी आज्ञा का पालन न करे कि-जिसके पालन करने से भगवान् तथा प्रभु की भक्ति (उपासना) भगवत् भक्तों एवं गुरुदेवजी के प्रति ही श्रद्धा का अभाव हो जाये। प्रथम बात तो यही है कि-भली भाँति छान-बीन करके तब गुरुवरण करे, कामी, क्रोधी, लोभी, लम्पट स्वभाव वाले व्यक्ति को गुरुरूप में वरण ही न करे। चाहे उसमें लाखों गुण, कलायें, चमत्कार क्यों न हों। लोक में चाहे जितनी भी प्रतिष्ठा हो। कितना भी असाधारण पाण्डित्य, वाक्य पटुता, व्यवहार कुशलता क्यों न हो। फिर भी उपर्युक्त दोष संयुक्त व्यक्ति को गुरु न बनावे। साधक जिसे गुरुवरण करना चाहता हो, स्वयं ही उसके स्वभाव व्यवहार का पता लगाने के बाद जब अपना मन माने तब गुरुवरण करे। जिस जिस महान पुरुष का भगवान् के भक्तों तथा प्रभु की भक्ति और भगवान् श्रीहरि में स्वभाविक प्रेम हो। प्रभु के नाम, रूप, लीला, धामाधि में भलीभाँति श्रद्धा प्रीति हो। जो शान्तचित सरल विचार उदार प्रकृति एवं विशुद्ध भाव वाला हो। ऐकान्तिक प्रिय प्राणिमात्र का हितचिन्तक हो। उसे गुरु रूप में वरण करे। यदि बिना ही विचार किये, प्रचारकों के द्वारा किसी को झूठी प्रशंसा सुनकर शीघ्रतावश शिष्य बन गये, तो जीवन भर पछताना पड़ेगा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच विषयों से मुक्त होने वाले उपदेश ही गुरु को देना चाहिये। भूल से पाखण्ड परायण व्यक्ति को गुरु बनाने पर वह इन विषयों में ही आवद्ध होने वाला उपदेश करेगा। वर्तमान युग में न जाने कितने ही पाखण्ड मूर्ति व्यक्ति हैं, जो अपने ही लघु वयसक शिष्य एवं शिष्यायों के साथ विषयावृत्ति परायण हैं। परन्तु फिर भी जो भगवत् भक्त हैं, जिसमें प्रभु कृपा से गुरुता है। वह भूलकर भी ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता। जिसने गुरु शिष्य धर्म को जाना ही नहीं। बाहरी बेष बनाकर ही पुजा खाना सीखा है। उन्हीं की बधाई समाजमें यत्रतत्र बजती है। और बजती रहेगी। सत् पुरुषों में सभी दोषों का सर्वथा अभाव और शुभ गुणों का भली भाँति समावेश है। और रहेगा। अभी भी महत्पुरुषों का सर्वथा अभाव नहीं है। यत्र तत्र सर्वत्र गुप्त प्रगट रूप में विद्यमान हैं। समाज की कमी है कि अन्वेण किये बिना ही बाहरी वेष बनाने वाले; आडम्बरियों के चक्कर में फसकर बाद में पछताते हैं।

प्रश्न—बाहरी बेषधारी किसे कहते हैं ? क्या बाहर से छापादि न लगाये जायें ?

उत्तर—बाहरी बेषधारी वह व्यक्ति हैं, जो भागवत् प्रीत्यर्थ कण्ठी, तिलक, माला और भगवान के आयुध धनुष बाण शंख चक्रादिकों की छाप न लगाकर केवल समाज को दिखाने के लिये ही धारण करते हैं। ताकि हमें भी समाज, भक्त या सन्त समझे हमारी पूजा करे। हम मन माने सुख स्वाद भी भोगते रहें, और लोक में प्रतिष्ठा भी प्राप्त करें। किन्तु ध्यान रहे कि ऐसे बनावटी लोगों का भेद जब तक छिपा रहै तभी तक कुशल है। प्रगट होने पर तो प्राणों का संकट आजाता है। यथा—'रावण बनावटी यती' (सन्यासी) बनकर श्रीजानकी हरण किया। भेद प्रगट होने पर सपरिवार काल के गाल में स्थान पाया। और कालनेमि ने भी मुनि का वेष बनाया था। परिणामतः वह भी भेद खुलने पर श्रीहनुमानजी के हाथ से मारा गया। इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी को ठगने के लिये साधु वेष बनाता है। उसे दुर्दशा भोगनी ही पड़ती है। और यदि कोई सज्जन स्वभाव वाला व्यक्ति कंठी तिलक और भगवत् आयुधों की छाप लगाकर सादर सप्रेम भगवान श्रीहरि का स्मरण करता है। तो वह प्रभु की कृपा प्राप्त करता है। अस्तु प्रभु की कृपा प्राप्ति के लिए तिलक, कन्ठी, माला, छाप धारण करना अनिवार्य है।

प्रश्न—यदि कन्ठी, तिलक, माला, छाप, न भी लगावें; प्रेम पूर्वक भगवान का भजन करें। तो क्या भगवान की प्राप्ती न होगी। या भगवान प्रसन्न न होंगे ?

उत्तर—यद्यपि करुणा सागर प्रभु प्रेम के ही भूखे हैं। बाहरी दिखावा नहीं चाहते हैं। तथापि विचारणीय बात यह है कि—कोई पति सेवा परायण युवती प्रेम पूर्वक पति की सभी सेवा करे। किन्तु सौभाग्य सूचक चिन्हों को धारण न करे। तो उसके पति को विशेष प्रसन्नता नहीं होती है। वह अपने मन में सोचता है कि मेरे जीते जी यह विधवाओं जैसे रहती है। अस्तु यह चाहती है कि मैं मर जाऊँ। अन्य व्यक्ति भी सौभाग्य सूचक चिन्ह न धारण करने के कारण विधवा ही समझते हैं। इसलिये पति की प्रसन्नता प्राप्त करने में पति की सेवा भी करना चाहिए। क्योंकि सेवा न करने पर चाहे जितना भी सौभाग्य के चिन्हों को धारण किया करे। पति की प्रसन्नता नहीं होती है। तब निर्णय यह है कि सौभाग्य चिन्ह तथा पति की सेवा दोनों ही परम अपेक्षित हैं। किसी की उपेक्षा करना उचित नहीं है। उसी प्रकार कण्ठी, तिलक, मुद्रा छाप लगाना और प्रेम पूर्वक भजन करना दोनों कार्य अनिवार्य हैं। केवल मुद्रादिकों को धारण करने से बिना भजन के भगवान प्रसन्न नहीं होते, और भक्तों का वेष तिलक माला कण्ठी छाप न लगाने से भागवत भक्तों की अनुकम्पा प्राप्त न होने के कारण, भगवान को भी प्रियता नहीं होती। बिचार की बात तो यह है कि प्रभु की प्रियता चाहने

वाले व्यक्ति अपनी हठ रूपी दुराग्रह को साथ क्यों ढोते हैं । कि हमें यह कार्य प्रिय नहीं, भगवान प्रसन्न हों या अप्रसन्न हम ऐसा तो कर ही नहीं सकते । अथवा हमें यही कार्य प्रिय है ऐसा ही करेंगे। भक्त तो वह है जो भगवान का विधान माने। अपना विधान भगवान पर लगाना यह तो भक्त होने के लक्षण नहीं हैं। अस्तु भगवान की आज्ञा स्वरूप सत्शास्त्रों के कथनानुसार ही भक्त को भक्ति करनी चाहिये। अपनी हठ करना उचित नहीं है।

प्रश्न– तिलक, माला, कण्ठी, छाप भक्त कितने समय से लगाते हैं ।

उत्तर– सृष्टि के पूर्व भगवत् धाम में नित्य पार्षद भगवान् की सेवा करने वाले सभी तिलक माला छाप लगाते हैं। सगुण स्वरूपों के सभी उपासनाओं की परम्परायें उन्हीं नित्य पार्षदों द्वारा प्रचलित हैं। आजकल कुछ अनविज्ञ व्यक्ति ऐसा प्रचार कर रहे हैं कि श्री वैष्णव सम्प्रदाय अभी दो हजार वर्षों के अन्तर्गत बनी है । उनका कोई दोष भी नहीं है। उन बिचारों के पास शास्त्रावलोकन के लिये विद्या रूप आँख और अवकाश ही नहीं है। सद्ग्रन्थों को बिना देखे ही कल्पना करके लिखने वाले व्यक्ति विपरीत लेख लिखते हैं ।

प्रश्न--तिलक, कंठी, माला, छाप तो बाहरी दिखावा है इसके बिना क्या हानि। हृदय में प्रेम होना चाहिये । अपनी भावना शुद्ध रखना चाहिये ।

उत्तर--वर्तमान युग में भारत वर्ष में कांग्रेस पार्टी द्वारा राज्य सत्ता चल रही है। सभी कांग्रेसी सदस्य खद्दर की धोती, कमीज, टोपी पहिनते हैं । त्रिरंगा झंडा का सम्मान करते हैं यदि कोई नया व्यक्ति कांग्रेस पार्टी का सदस्य बनना चाहे। किन्तु यह कहे कि भाई हम कांग्रेस पार्टी के सदस्य तो बनेंगे । परन्तु यह खद्दर की धोती, कमीज, टोपी, पहिरना हमें अच्छा नहीं लगता, और यह झंडा को तो बाँस में कपड़ा रंग के लगा दिया है। इसे नतमस्तक होने से कुछ लाभ नहीं है। हम झंडा को शिर न झुकायेंगे। अब सोचिये। क्या उस व्यक्ति से हमारी कांग्रेस सरकार के सदस्य प्रेम करेंगे। सभी कहेंगे कि ये तो राज और देश द्रोही है उसके मन में कितना भी प्रेम क्यों न हो, उसे कौन देखेगा। पार्टी का प्रिय बनने के लिये, पार्टी के प्रति प्रेम भी चाहिये। और बाहरी चिन्ह खद्दर के बस्त्र पहिरना भी होगा, तथा झंडा का सम्मान भी करना अनिवार्य होगा। हृदय के प्रेम से काम न चलेगा। इसी प्रकार भगवत् पार्षदों का बनाया हुआ वह विधान कि, कंठी, तिलक छाप भी लगाना होगा, और हृदय में प्रेम भी परमावश्यक है। अस्तु तर्क छोड़कर शास्त्राज्ञानुसार ही भजन करना परम श्रेयकर होगा।

प्रश्न--ऊपर कहा गया कि श्री गुरुदेवजी को भगवान का स्वरूप मानना चाहिये या भगवान् से भी अधिक भाव रखना चाहिये । ऐसा क्यों ।।

उत्तर--श्री गुरुतत्त्व भगवान् की कृपाशक्ति ही जीवों के कल्याण करने के लिए,

मूर्तिमान होकर प्राप्त होती है। वह शक्ति तत्त्व सर्वव्यापक है। अनेकानेक रूपों से प्राप्त होती है। सोचिये तो सही कि श्रीगुरुदेव जी ने कितना उपकार किया है। जीव संसारी अनित्य वस्तु व्यक्ति और मायिक सम्बन्धों में बँधा था। उसे उन सब बन्धनों से मुक्त करके, हमारे प्राणाधार परम प्रियतम प्रभु से हमारा सम्बन्ध स्थापित कराया। कृपा-सागर श्री हरि का शील स्वभाव, उदारता, भक्तवत्सलता, सुहृदता, सौलभ्यता एवं हम पाँवरों पर भी अपनत्व प्रदर्शन कराया है। विशेष बात तो यह है कि प्रत्यक्ष में भगवान् कृपा तब करते हैं। जब श्री गुरुदेव अपने उपदेशामृत से हमारे अज्ञान तिमिर को नष्ट करके हृदय में ज्ञान रूपी दिव्य प्रकाश करके भजन भावना भर देते हैं। भगवान् का बचन है कि–**मोहिं कपट छल छिद्र न भावा**। और दुष्टात्माओं को कहा है कि–**मोरे सन्मुख आव कि सोई**। परन्तु श्री गुरुदेव तो महान् से महान् पापी, पाखण्डी, भ्रष्टाचारी, दुराचारी व्यक्तियों पर भी कृपा करके उपदेश देकर प्रभु के अनुकूल करते हैं। भगवान हैं। उनका भजन किये बिना संसार चक्र नहीं छूटेगा। यह बात भी तो गुरुकृपा से ही प्राप्त होती है। भगवान् चन्दन का वृक्ष और सन्त रूपी गुरु वायु हैं। वायु के द्वारा ही चन्दन की सुगन्ध सर्वत्र सचारित होती है। भगवान समुद्र और संतरूपी गुरु बादल हैं। सागर से जगत को विशेष लाभ नहीं। क्योंकि उसका जल खारा होता है। बादलरूपी संतगुरु समुद्र रूप प्रभु के दिव्य गुण, यश, रूपी मधुर जल की वृष्टि करके समस्त जगत को लाभान्वित करते हैं। इसलिये श्री गुरुदेवजी भगवान से भी बढ़कर मानने योग्य हैं।

श्री गुरुतत्त्व की महिमा अपार है। पूर्णरूप से आज तक कोई भी नहीं कह पाया है। फिर भी सभी ने स्वमति अनुसार कही ही है। तदनुसार हमारे परम श्रध्येय। मानस तत्त्वान्वेषी पं० श्री रामकुमारदास जी रामायणी श्री मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी निवासी महाराज द्वारा लिखित श्री गुरु महिमा का प्रेमी पाठक रसास्वादन करें।

श्री गुरुचरणकमलवा वन्दौं सोइ। जासु कृपा लवलेसहि शुचिमति होइ॥

श्री गुरुदेवजी की महिमा भला कौन कह सकता है। जबकि–**महिमा गुरु की नहिं हरिहू बखानि सकैं०**। वेद की आज्ञा है कि–**इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पथि-कृद्भ्यः** (अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त २।२ ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १४ मन्त्र १५) अपनी शिक्षा दीक्षा से मोक्षमार्ग भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले पूर्वजों–पूर्व ऋषियों–भगवन्मन्त्र प्रदाता पूर्वाचार्यों को प्रथम इदं नमः–बारम्बार नमस्कार है। इसी को स्पष्ट करते हुये श्री रामचरित मानस में महर्षि श्री वाल्मीकिजी ने श्रीरामजी से ही कहा है कि–

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकलभाव सेवइ सनमानी॥

[अयोध्या कां० दो० १२९ पं० ८] **छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित**

यह अधम शरीरा ॥ कि० कां० दो० ११ पं० ४ ॥ इस अधम शरीर को श्रीगुरुदेवजी पंचसंस्कारों से संस्कृत करके पवित्र करके भगवत्सेवा योग्य बना देते हैं। जैसा कि वेद का कथन है ॥ **यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवामर्चयति द्वयेन। मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अमा अनुमृक्षीष्ट तन्वंदुरुक्तैः ॥** (ऋ० १।१४७।४) अर्थ—अग्ने ?—हे अग्रणी परमात्मन् ! अररिवान्-दूसरों के दानादि सत्कार्यों में विघ्न डालने वाला। अघायुः—पाप परायणप्राणी। नः-हम (सन्मार्गियों का) द्वयेन-तन और मन दोनों से। मर्चयति-तिरस्कार करता है, अर्थात् हमें नीचा दिखाने में सचेष्ट रहता है। अस्मै—(षष्ठ्यर्थे चतुर्थी) इसको निन्द्यकार्यों से हटाकर सन्मार्ग में लगाने वाले। मन्त्रः गुरुः अस्तु—'मन्त्र प्रदाता गुरू जी। दुरुक्तैः-दुर्जनों से महापुरुषों को निन्दा युक्त दुष्ट वाक्यों से दूषित। तन्वम्-इसके शरीर को। अनुमृक्षीष्ट-अनुमार्जन अर्थात् पावन करें ॥

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आनमन्ति। इमे शंसं वनुष्यतो निपन्ति गुरु द्वेषो अररुपेदधन्ति ॥ (यजुर्वेदीय मैत्राणीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक १४ अनुवाक १८ मं० ५ ऋ० ७।५६।१६ तै० ब्रा० २।८।५।६)

इमे गुरुः—ये श्री गुरुदेव जी, समस्त लोक कल्याण के लिये। मरुतः-पवन के समान सतत भ्रमण और पालन करते हैं। वे तुरम्-सेवा में शीघ्रकारी अर्थात् निरन्तर गुरु-सेवा में तत्पर शिष्य को। रामयन्ति-श्रीराम जी में रमण कराते हैं। जैसे माता पिता बालक को विविध प्रकार के खिलौनों से प्रसन्न किया करते हैं। वैसे विविध आवश्यक भोग सामग्री देकर शिष्य के शरीर को सुपुष्ट, प्रसन्न और आत्म परमात्म तत्त्व समझाकर शिष्य के मन को ब्रह्म-श्रीरामजी में लगाते हैं। इमे-ये श्री गुरू जी। सहः-अपने भजनबल दिव्य शक्ति से। सहसः-बलवान घमंडी, जगत पीड़ाकारी, चोर दस्यु आदि हिंस्रा मनुष्यों को। आनमन्ति-झुका देते हैं। अर्थात् दिव्य दिव्य प्रभाव से कुमार्गगामी प्राणि वर्ग को भी सन्मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। (सन्त नानकशाह का कोड़े राक्षस को, पीपाजी का सिंह को, चैतन्य महाप्रभु का जगाई मधाई को, गौतमबुद्ध का अंगुलिमाल डाकू को प्रभु भक्त बनाना जगत प्रसिद्ध है।) इतना ही नहीं ॥ इमे शंसम्-ये श्री गुरू जी अपने प्रशंसक शिष्य को अर्थात् स्तुति नमस्कार आदि द्वारा गुरू पूजा में निरत साधक को। वनुष्यतः-हिंसक से वाह्य क्रूर प्रकृति सिंह मनुष्यादि शत्रुओं से। निपतन्ति-निरन्तर रक्षा भी किया करते हैं। यदि कोई व्यक्ति गुरु सेवा से विमुख है, वह किसी प्रकार भी गुरु सेवा में अपने तन मन धन वचन आदि साधनों का प्रयोग नहीं करता है। तथा घमंड में चूर रहता है। भक्ति शास्त्र सम्मत गुरु चरणों में आत्म-निवेदन का मार्ग ग्रहण नहीं करता तो ॥ अररुणे-उस आत्म निवेदन न करने वाले ढोंगी शिष्य के लिये। द्वेषः-अप्रिय अनिष्ट को भी यह श्री गुरुदेवजी दधन्ति धारण करते

हैं। अर्थात् कठोर दण्ड के द्वारा शिष्य को "चमत्कार को नमस्कार' वाली युक्ति अनुसार सीधे रास्ते पर लाया करते हैं।

न तं तिग्मंचन त्यजो न द्रासदभितं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसोव ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः॥ (ऋ० ८। ४७। ७)

आदित्यासः—सूर्य के समान प्रतापी। सप्रथः--परोपकृति योग--चमत्कारादि से लब्ध-ख्याति की श्री गुरुदेवजी। अनेहसः---निष्पाप सरल हृदय से आप। यस्मै--जिस प्रिय शिष्य के लिये। शर्म---सुख अर्थात् लौकिक सुख भोग एवं मोक्ष को। अराध्वम्---सम्पादन करें। तम् अभिगुरुम्---उस गुरु आज्ञाकारी गुरुभक्त शिष्य को। तिग्मंचन---तीक्ष्ण स्वभाव वालों को भी। त्यजः न द्रासद्---क्रोध बुरी तरह नहीं पकड़ता। (द्राकुत्सायांगतौ) अर्थात् उसके समीप भूलकर भी नहीं फटकता। केवल क्रोध ही नहीं, क्रोध का कारण काम और काम की अवान्तर जाति लोभ और उनके सहचारी मोह मद मत्सर भी। तम् न द्रासत्—उस साधक को आक्रान्त नहीं कर पाते। अतएव ॥ वः ऊतयः-आपके संरक्षण अर्थात् शिष्य रक्षा के प्रकार। सुऊतयः—सुन्दर संरक्षण हैं। वः ऊतयः—यह दुरुक्ति पूर्व उक्ति के लिये की गई है। श्रुति है अग्नि की उपासना देवोपासना की प्रवेशिका है। और विष्णोपासना देवोपासना विश्वविद्यालय की अन्तिम उपाधि (डिग्री) है। क्योंकि--

अग्निर्वै देवानामवम्मे, विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वाः अन्यादेवाः॥

(ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका १ अ० १ मं० १)

अग्नि देवताओं में--अवम्=छोटा है, और विष्णु परम=श्रेष्ठ हैं। इसके बीच और सब देवता हैं। इसी की सुपुष्ट व्याख्या करते हुये पौराणिकों ने कहा है कि--

अन्यादिषु हि या भक्तिर्गाणपत्ये समाहितः। तुष्टे गणपतो यस्य भक्तिर्भवति भास्करे॥ प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शक्ति के। शक्तेस्तुष्टे ततस्तस्य भक्तिर्भवतिशांभवे॥ तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे॥ + + + + + + ततो भुक्ति च मुक्ति च सम्प्राप्नोति द्विजोत्तमः॥ (ब्र० पु०)

शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई॥
(रा० च० मा० उ० यो० १०६)

संग्रह ग्रन्थों में संग्रहीत है कि--

सात्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैः प्रमथाधिपः। राजसैः सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैस्तु सरस्वती॥
(ब्र० पु०)

हिरण्यगर्भोरजसा शंकरस्तसावृतः। सत्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मा सदसम्मया॥ लिं०पु०

वन्धकः भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः। कैवल्यदा परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातनः ॥
(स्कं० पु०)

वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥ (प० पु०)

निगमागमने यह निश्चय किया कि सर्वश्रेष्ठ श्रीवैष्णवी दीक्षा है। और असंख्य वैष्णव मन्त्रों में श्रीराम मन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। इस श्रीराम मन्त्र से अधिक तो क्या इसके तुल्य भी कोई मन्त्र नहीं है। जाके सम अतिशय नहिं कोई। राम सकल नामन ते अधिका। राका रजनी भक्ति तव राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगण विमल बसहिं भगत उर व्योम ॥ (रा० च० मा० अ० कां० ४२ दो०) परन्तु वह श्रीराम मन्त्र (या कोई भी मन्त्र) योग्य गुरु से प्राप्त होने पर ही पूर्ण फल प्रद होता है। गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई ॥ (उ० कां० ९३ दो० पं० ५) योग्य गुरु के सम्बन्ध में औपनिषदिक श्रुति का निर्देश है कि शास्त्रज्ञ और भगवन्निष्ठ को ही गुरु करना चाहिये।

सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः। श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

जो भगवत्प्रेमी नहीं है, कोरा विद्वान् मात्र है, तो वह शिष्य को नास्तिक बनाकर अपने साथ उसका भी लोक-परलोक बिगाड़ेगा। और ब्रह्मनिष्ठ-भगवन्निष्ठ भजनानन्दी होते हुये भी यदि श्रोत्रिय=शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं है, तो शिष्य की शंकाओं का समाधान नहीं कर सकता है, क्योंकि---

भिन्ननावाश्रितः स्तब्धो यथा पारं न गच्छति। ज्ञान हीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

जैसे--स्तब्ध-अर्थात् मूर्ख व्यक्ति टूटी-फूटी नाव पर चढ़कर नदी पार नहीं कर सकता। वैसे ही ज्ञान विहीन (रहित) गुरु करके कोई मोक्ष नहीं पा सकता, और सर्वशास्त्रज्ञ होते हुये भी गुरु का भगवत् भक्त होना अनिवार्य है----

महाकुल प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥
(नारद पंचरात्र)

परमोत्तम कुल में उत्पन्न, सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित और वेदों की हजारों शाखाओं का अध्यन करने वाला होते हुये भी यदि वह वैष्णव नहीं है, तो उसे गुरु नहीं करना चाहिये। आज तो - पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव। पुत्रोत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने ॥ भा० माहात्म्य अ० १--७५ ॥ अर्थात् गृहस्थ पंडितगण स्त्रियों के साथ भैंसों की तरह रमण करते हैं। वे सन्तान पैदा करने में तो परम कुशल हैं, परन्तु मुक्ति साधन में सर्वथा अकुशल हैं। इस समय ॥ इसी लिये गीतामें आदेश है कि—

दशकर्म व्रतबन्धं विवाहं श्राद्धतीर्थकम् । षट् स्थाने गुरुर्विप्रा दीक्षायां वैष्णवोगुरुः ॥

॥ ना० गी० ८ ॥ यहाँ वैष्णव से विरक्त वैष्णव का तात्पर्य है । जैसा कि अगले श्लोक में सुस्पष्ट है कि—

"पाषाणस्य यथा नौका न तरति न तारयति । तथा गृहीगुरुश्चैव न तरति न तारयति" ॥

॥ ना० गी० ६ ॥ अतः सभी विषयों से परम विरक्त, और भगवन्निष्ठ, श्रुति शास्त्रवेत्ता, पौराणिक, साम्प्रदायी श्री वैष्णव विद्वान् को गुरु बनाना चाहिये । जैसा कि पुराण एवं श्रुति का आदेश है—

"तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । शाब्देपरे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

[भा० ११-३-२१] इसलिये जो परम कल्याण—मोक्षमार्ग का जिज्ञासु हो उसे ऐसे गुरुदेव की शरण में जाना चाहिये जो शब्द—वेद शास्त्र के तत्त्वज्ञ हों और परब्रह्म में पूर्ण निष्ठा- भक्ति हो । एवं उनका चित्त शान्त हो, व्यवहार के प्रपंच में विशेष प्रवृत्त न हों । इसी से औपनिषदिक श्रुति कहती है कि—

तद्दर्शनं सदाचार्यमूलम् । आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः । मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥ गुरुभक्तिसमायुक्ताः पुराणज्ञो विशेषतः । एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते" ॥

[अद्वयतारकोपनिषद् ८६। द्वयो१० २,] भगवद्दर्शन के मूल कारण आचार्य श्री गुरुदेव हैं । स्वयं आचरण करने वाला अर्थात् सदाचारी वेदज्ञ, विरक्त वैष्णव, मत्सररहित, मंत्रार्थज्ञाता, मन्त्रजापक, सदापरम्परागत प्राप्त मन्त्र का आश्रयण करने वाला हो, इस प्रकार के लक्षणों से युक्त विरक्त गुरु होना चाहिये ।

नोट—इस प्रसंग में उन्हीं गृहस्थों की चर्चा है जो भगवान् श्रीहरि को विस्मृत करके संसाराशक्त, मोहाशक्त हैं । जो सद्गृहस्थ भगवत्भक्त हैं उनकी निन्दा नहीं है । भगवन् विमुखों को तो श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि—'रामविमुख लहि विधि समदेही । कवि कोविद न प्रशंसहिं तेही" ॥ तब साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है । श्री गुरुदेव की महिमा सम्यक् प्रकार कहना तो किसी के भी वश की बात नहीं है । तथापि पूज्यचरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानसमें लिखा है कि-"वन्दौं गुरुपदकंज कृपासिन्धु नररूपहरि" ॥ यहाँ पर 'नरहरि'

कहकर श्री गुरुदेव जी को साक्षात् ब्रह्म जनाया है । शत्शिष्य को चाहिये कि श्रीरा
मन्त्र प्रदाता श्री गुरुदेव को साक्षात् ब्रह्म मानकर सेवा करें । श्रीगुरुपदरज को प्रसूतं
वशकरणी, और मलहरणी कहकर बताया कि श्री गुरुदेव जी ब्रह्म हैं । और उनके
चरणरज आद्याशक्ति है । जो साधक के हृदय में सद्वृत्तियों भगवत् भक्ति]
प्रसूती (उत्पत्ति) पालन और असद्वृत्तियों (मद, मोह, मत्सरादि) की निवार
है । प्रसूती से उत्पत्ति क्रिया, वशकरणी से पालन किया, मलहरणी से संहार क्रिया
को-सूचित किया । समस्त भवरोग की औषधि के रूप में खाना चाहिये । यथा-
"अमिय मूरियम चूरन चारू" ॥ कारण यह है कि--'सकल सुमंगलमूलजग गुरुपद
पकज रेणु ॥ ध्यान करने से जो--'काई विषय मुकुर मनलागी" वह विषय रूपी
काई दूर हो जाती है । मन स्वच्छ हो जाता है । अतएव-'जन मर मंजु मुकुर मल
हरनी" । श्री गुरुचरण सरोजरज निजमन मुकुर सुधारि ॥ पुनः--"सुकृत शम्भुतन
विमल विभूती ॥ अस्तु स्थूल एवं सुकृत दोनों शरीरों में लगाना चाहिये । तन्त्रग्रन्थों
में मनुष्य, देवता, पशु. प्रेतादिकों को वश में करने के लिये जो प्रयोग लिखे गये हैं।
उन्हें वशीकरण प्रयोग कहा जाता है और उनमें अनेक प्रकार की विधियाँ करनी
पड़ती हैं । किन्तु उन सभी प्रयोगों में कोई भी ऐसा प्रयोग नहीं है कि जिस एक ही
प्रयोग से सभी गुण वश में हो जायें । परन्तु श्री गुरुपद रज ही एक ऐसा है कि-' किये
तिलक गुणगण वश करनी" ॥ एक ही वैभव की प्राप्ति अनेक उपायों से होने पर भी
वह एकरस नहीं रहता है । परन्तु श्री गुरुपद रज को श्रद्धा समेत शिर पर धारण करने
से समस्त वैभव सर्वदा उसके आधीन रहते हैं । यथा--

"जे गुरुचरण रेणु शिर धरहीं । ते जन सकल विभव वश करहीं" ॥

॥ अयो० कां० दो० ३ ॥ अतएव श्री गुरुपद रज को सर्वदा सादर सप्रेम शिर पर
धारण करना चाहिये । श्री गुरु पद रज एक दिव्य अंजन है, इसका नाम नयनामिय
अंजन है । इसे आभ्यन्तरिक नेत्र ज्ञान वैराग्य में लगाने से उन्हें अत्यन्त निर्मल कर
देती है ।

"गुरुपद रज मृदुमजुल अंजन नयनअमिय दृग दोष निभंजन" ॥

जिसे लगाने से--"तेहि करि विमल विवेक विलोचन" ॥ चक्रवर्ति श्री दशरथ
जी श्री वशिष्ठ जी से कहते हैं कि--"जे गुरुचरण रेणु शिर धरहीं । ते जन सकल
विभव वश करहीं ॥ मोहि सम यह अनुभवेउ न दूजे । सब पायों रज पावन पूजे ॥
॥ रा० च० मा० अयो० कां० दो० ३ पं० ५, ६ ॥

श्री गुरु पद रज अनुरागी बड़भागियों की प्रशंसा लोक, वेदों, वैदिक साहित्यों में भी मुक्त कण्ठ से की जाती है। सकल सुमंगल मूल जग, गुरुपद पंकज रेणु। और जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहु वेदहु बड़भागी ॥ अयो० कां० १५६ ॥ अस्तु श्री गुरुपद रज पर अपना सारा छरभार कार्य रखकर चलने वाले भक्त कभी भी असफल नहीं होते ॥ "गुरु पद रजहिं लाग छर भारू" ॥ विनय पत्रिका में सारा छरभार का उत्तरदायित्व परमात्मा के ऊपर रखा है ॥ यथा—"यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहै हौं" (वि० पत्रि० पद १०४) ॥ श्री गुरुपद रज से मारन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन इत्यादि भी हो सकता है। यथा—"समन सकल भवरुज परिवारू यह मारण है ॥ मोहन—शारीरिक शोभा अति वृहत् मोहनास्त्र है, और श्री गुरुपदरज "सुकृत शम्भुतन विमल विभूती ॥ उच्चाटन—"जन मन मंजु मुकुर मल हरणी ॥ वशीकरण—"किये तिलक गुण गण वश करणी" ॥ आकर्षण—"यथा सुअंजन आँजि-दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं शैल वन भूतल भूरि निधान" ॥ भगवान् श्री राम जी ने श्री गुरुपद रज की निर्मायिक सेवा को अपनी सर्वश्रेष्ठ नवधाभक्ति में तीसरी भक्ति बताई है ॥ यथा—"गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान" (अ० कां० दो० ३५) ॥

नोट—इस तीसरी भक्ति का अधिकारी वही स्त्री या पुरुष हो सकता हैं जिसने गुरु वरण किया हो। जिसने गुरु वरण नहीं किया है। केवल वन्दे कृष्णं जगद्गुरुं से ही कार्य चलाया है, वह सज्जन इस तीसरी भक्ति श्री गुरुपद सेवा से सर्वदा वंचित ही रहेंगे। अस्तु तर्क त्याग सभी स्त्री पुरुषों को वीतराग, त्यागी, विरक्त महाभागवतों से मन्त्रदीक्षा प्राप्त करके श्री गुरु सेवा का परम लाभ से लाभान्वित होना चाहिये। ब्राह्मणों के पास तो ब्रह्मगायत्री है ही जो सब मंत्रों से श्रेष्ठ है, तब अन्य मंत्र की दीक्षा की आवश्यकता नहीं कहने वाले सज्जन ध्यान दें। गायत्री केवल ब्राह्मणों के ही पास होती, और किसी के पास न रहती तब तो यह किसी अंश में ठीक भी था। परन्तु गायत्री तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य द्विजाति कहलाने वाले तीनों के पास साधिकार प्राप्त है। तब युक्त शंका ठीक नहीं है। श्री रामचरित मानस में देखिये तो पता लगेगा कि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के सिद्धान्त में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं। यथा-पूजिय विप्र शील गुण हीना। अ० कां० दो० ३४ ॥ पुनः उ० कां० श्री रामजी ने भी श्री कागभुसुण्डी जी से कहा है कि—

"मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविधि प्रकारा" ॥

यद्यपि, "सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहिं भाये" ॥

पुनः मनुष्यों में भी—"द्विज प्रिय हैं । द्विज में श्रुतिधारी प्रिय हैं ॥ यद्यपि द्विजाति शब्द का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य परम्परागत माना जाता है । तथापि जहाँ कहीं केवल द्विज शब्द का प्रयोग होता है वहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों का बोधक न हो करके ब्राह्मणों का ही बोधक होता है । ऐसी ही रूढ़ी है श्री रामचरित मानस में जहाँ भी द्विज शब्द लिखा गया है, वहाँ द्विज शब्द को केवल ब्राह्मणों में ही प्रयोग किया है । अस्तु यह निश्चय हुआ कि सब मनुष्यों में द्विज (ब्राह्मण) श्रेष्ठ हैं । अन्य लोगों की तो बात ही क्या । भगवान् श्री राम जी स्वयं ही शिक्षार्थ ब्राह्मणों की पूजा प्रतिष्ठा करते थे । यथा—"विप्र बृन्द वन्दे दोउ भाई । वा० कां० दो० ३०८ पुनः—"सकल द्विजन मिलि नायो माथा । धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ॥ उ० कां दो० ४ ॥ श्री राम जी ने परशुराम जी से कहा था कि—"सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इनपर सुराई ॥ वा० कां० दो० २७३ भाव यह है कि—देवता, ब्राह्मण, भगवत्भक्त, और गाय को हमारे पूर्वज पूज्य मानते आये हैं, इसलिये इन चारों पर शूरता वीरता नहीं करते । इन चारों को मार देने पर पाप लगेगा, और हारने पर अपकीरति होगी । अस्तु—मारत हूँ पा परिअ तुम्हारे । आप हमें मारेंगे तो भी हम आपसे युद्ध न धरके आपके चरणों में ही पड़ेंगे ॥ पुनः—"विप्र वंश की अस प्रभुताई । अभय होय जो तुमहिं डराई" ॥ वा० कां० दो० २८४ ॥ और विनय पत्रिका में तो कहा कि—"मम मूरति महिदेव मई हैं" ॥ ब्राह्मणों को अपना स्वरूप वतलाया है । और श्री गुरुदेव जी के लिये तो कहा है कि—"तुम ते अधिक गुरुहिं जियजानी । सकल भाय सेवइ सनमानी" ॥ अयो० कां० दो० १२९ ॥ श्री वाल्मीकि जी ने श्री राम जी से कहा कि श्री गुरुदेव जी को आप से भी अधिक मानकर सम्यक् प्रकार भावना पूर्वक सनमान करते हुये सेवा करे ॥

अस्तु श्री गुरु का स्थान ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है ॥ दूसरी बात यह भी है कि—ब्राह्मणों को अन्य मनुष्यों की भाँति ब्यवहारिक क्रिया कलाप सीखना न पड़ता, विना सीखे ही जागतिक सभी व्यापार करते, तब तो भले ही ठीक था, किन्तु जब संसार की सभी बातें ब्राह्मणों को भी सभी मनुष्यों की ही भाँति सीखनी पड़ती हैं, तब भगवद्भक्ति भजन करना विना सीखे कैसे आ जायेगा । जिससे भजन करना सीखेंगे वही गुरु कहलायेगा । और यदि चातुर्यता पूर्वक किसी से भजन करना सीख लें, और उसे गुरु न मानेंगे, तो कृतघ्नता का महान दोष लगेगा ।

यद्यपि गीताप्रेस गोरखपुरके कार्यकर्ताओं ने सद्ग्रन्थों का प्रकाशन करके स्वल्प-मूल्य में देकर, कल्याण पत्रिका में विविध विद्वानों द्वारा महर्षियों के अमृतमय सैद्धान्तिक उपदेशामृत का वितरण करके सनातन हिन्दूधर्म को बहुत उत्कर्ष बढ़ाया। अनेकानेक चेतनों को श्री हरि की ओर आकृष्ट किया ।। भारत का ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी कल्याण पत्रिका के द्वारा सुधार करने का भारी प्रयास किया । बहुमात्रा में व्यक्तियों को लाभ हुआ। किन्तु अत्यन्त खेद के साथ व्यक्त करना पड़ रहा है कि कुछ कार्य ऐसे हठ पूर्वक भी किये गये हैं, जिनसे समाज की प्रगति का अवरोध होना स्वाभाविक है। सेठ जयदयाल गोयन्दका जी एवं श्री हनुमान पोद्दार भगवत्भक्त तथा विचारक व्यक्ति थे। फिर भी नारी अंक और नारी धर्म नामक पुस्तक में प्रमादपूर्वक प्रकाशन हुआ । नारी अंक के पृ० २१३ से २१५ तक पतिरेव गुरुः स्त्रीणां, शीर्षक के लेखक—पं० श्री जानकीनाथ जी शर्मा ने नारी दीक्षा को विषय बनाकर बड़े ही सुदृढ़ता के साथ लिखा है कि—शास्त्रों में नारी दीक्षा का बिलकुल विधान एवं प्रमाण नहीं है । इतना ही नहीं प्रवाह में प्रवाहित होकर लिख डाला कि—दीक्षा देने वाले सर्वथा शास्त्रानभिज्ञ हैं। इनके पास केवल बाबा वाक्यं प्रमाणम् के अतिरिक्त शास्त्रीय आधार की शून्यता है । स्वयं ही प्रश्नोत्तर करके सभी साम्प्रदायों की परम्परायें अनर्गल—अप्रमाणिक तथा अमान्य मानी । यद्यपि श्री जानकीनाथ शर्मा जी व्यावहारिक भाषा में कहने को विद्वान हैं, तथापि बुद्धि के दरिद्र जैसे प्रतीत होते हैं । शास्त्रीय सिद्धान्त है कि विद्याददाति बिनयम् ।। अत्यन्त कटुतापूर्ण लेख लिखना विद्वान को उचित नहीं ।। क्यों कि मनु वाक्य हैं कि—"सत्यं ब्रूयाति प्रियं ब्रूयाति न ब्रूयाति सत्यमप्रियं ।। सर्व प्रथम बात तो यही है कि आप्तशास्त्रों (आप्त पुरुषों के बचनों) में कई स्थलों पर नारी दीक्षा का सुस्पष्ट वर्णन है ही । साथ ही साथ विचार ये भी करना अनिवार्य है कि—सभी सम्प्रदायें महान विरक्त भगवत्भक्त, विषय से सर्वथा दूर रह कर आत्म परमात्म चिन्तक मनीषियों द्वारा प्रचारित प्रसारित हैं । शर्माजी के कथनानुसार यदि यह मान लिया जाये कि स्त्रियों को मन्त्र दीक्षा देने वाले व्यक्ति शास्त्रानभिज्ञ थे । तब सभी साम्प्रदायाचार्य श्रुति शास्त्रानभिज्ञ सिद्ध हो जायेंगे । परन्तु बात इसके ठीक विलोम है । वह यह कि सभी साम्प्रदायाचार्य श्रुति शास्त्रों के विशिष्ट बिज्ञ (जानकार) थे । जगतगुरु आदि श्री शंकराचार्य जी, जगत गुरु श्री रामानुजाचार्य जगत गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी ज० गुरु श्री माधवाचार्य जी ज० गुरु श्री निम्बार्काचार्य जी इत्यादि इन महान् पुरुषों को कौन नहीं जानता, इन सभी महात्माओं ने जिज्ञासु

स्त्री पुरुषों को मन्त्र दीक्षा दी है, इतिहास प्रमाण है । पाठक पढ़े ही होंगे, यहाँ पर प्रमाण देने से ग्रन्थ विस्तार हो जायेगा। परम विचारक होते हुये भी सेठ जयदयाल गोयन्दकाजी ने भी शर्माजी की भांति ही कटुतापूर्ण लेखनारी धर्म नामक पुस्तक में लिख कर अपने हृदय का परिचय दिया। यदि ईर्षा द्वेषवाद विवाद और अपनी दुराग्रह (हठ) त्यागकर मानवता (सज्जनता) पूर्वक नारीधर्मनामक पुस्तक के पृ० ३१-३२ के लेख पर बिचार किया जाये तो यह मानना ही होगा कि इस लेख को लेखक ने किसी व्यक्ति विशेष से अप्रसन्न होकर अर्थात् भंग के नशे में लिखा है । इसीलिये साधु, महान्त और भक्तों को ठग लिखा पुनः उनको नरकजाना अर्थात् घोर दुर्गति को प्राप्त होना लिखा है । प्रभु विधानवशगोयन्दका जीका तो देहाबसान होगया, बचे उनके साथी मित्रवर्ग, उनसे पूछाजाय और यदि वह सत्यतापूर्वक निर्णय दें, तो क्या उन्हें स्वीकार होगा कि सभी साधु महान्त या भक्त पर धन परदारारत हैं । तब उन्हें मानना ही होगा कि समाज में भले और बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति हैं । हाँ यह माना जा सकता है कि कुछ साधु, महान्त, भक्त दुराचरण परायण होंगे । परन्तु ऐसी मान्यता रखना या लेख लिखना कि स्त्रियों को दीक्षा देनेवाले सभी साधु, महान्त, या भक्त ठग हैं वे घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। यह प्रमाणित करता है कि लेखक बोतल भर मद्य के नशे में चूर होकर पागलपन में भूल से लिखगया । यद्यपि सेठजी भगवत भक्त थे, सन्तों में अपने ढंग की श्रद्धा भी थी। तथापि ऐसा भ्रमपूर्ण लेख क्यों लिखा प्रभुजाने ॥

गीताप्रेस के वर्तमान व्यवस्थापक एवं सम्पादक तथा संचालक विचार करें कि क्या नारीधर्म नामक पुस्तक से नारी समाज का कल्याण होगया है, होरहा है, अथवा भविष्य में होना सम्भव है । यदि सम्भव है, तो गीताप्रेस कार्यालय के व्यवस्थापक एवं संपादक महोदय विवाद या शास्त्रार्थ की बात न सोचकर मानवता के नाते सुहृदता पूर्वक कल्याण पत्रिका में कुछ प्रश्नों का उत्तर आर्षग्रन्थ शास्त्रीय प्रमाणों से प्रमाणित करते हुए छापने का कष्ट उठावें ॥

क्या अन्य युगों में महिलायें मन्त्र दीक्षा लेती थीं या नहीं । यदि अन्य युगों में लेती थीं तो वर्तमान में निषेध क्यों । बिना हरिभजन किये ही क्या स्त्री संसार चक्र से मुक्त हो जायेगी । आज जिस स्त्री का जो पति है वही पूर्व में भी था और भविष्य में रहेगा । यदि पूर्व में अनेक जन्मों की पति सेवा से संसार चक्र न छूटा तो इस जन्म में विना हरिभजन किये केवल पति सेवा से ही जन्म मृत्यु से मुक्त हो जायेगी । क्या कोई जीव किसी जीव का भोग्य या भोक्ता है। है तो शास्त्रीय प्रमाण

लिखे जायें। यदि कोई भी जीव किसी भी जीव का भोग्य या भोक्ता नहीं है। सभी जीवों के एकमात्र भोक्ता ब्रह्म (भगवान श्रीहरि हैं,) और सभी जीव उस ब्रह्म के ही भोग्य हैं, तब केवल पति सेवा से बिना हरि भजन के ही स्त्री की मुक्ति का विधान॥

यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि स्त्री पतिव्रत का सम्यक प्रकार पालन करते हुये, पतिसेवा परायण होकर भगवत् भजन करने पर प्रभु कृपा से मुक्त हो जायेगी। मैं ही क्या कोई भी शास्त्रज्ञ व्यक्ति यह मानने को तैयार न होगा कि—स्त्री पति सेवा से विमुख होकर स्वच्छन्दचारिनी होकर पर पतियों से रति (विषयावृत्ति) करते हुये भजन करने पर प्रभु की कृपा प्राप्त करेगी। तथापि इतनी बात अवश्य ही है कि सम्यक् प्रकार पति सेवा करने पर भी भगवत भजन किये बिना स्वर्ग (इन्द्रादिक लोक) तक ही प्राप्ति हो सकती है। नित्य सच्चिदानन्दमय भगवत् धाम की प्राप्ति तो श्रीगुरु कृपा से प्राप्त उपासना के द्वारा ही सम्भव है अन्य किसी भी साधन से भगवद्धाम की प्राप्ती न होगी॥

सत्यबात तो यह है कि स्त्री को मन बचन कर्म से पति की सेवा करते हुये, भगवान् श्रीहरि की उपासना करनी चाहिए। जन्म मरण का महान दुख भगवन् कृपा से ही छूट सकता है। अन्य साधन सहायक मात्र हैं। स्वयं मुक्ति प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ हैं। पतिव्रत पालन और पति सेवा करना ये दोनों कर्म स्त्रियों के धर्म हैं। धर्म का फल लोक में यश और शरीरान्त होने पर स्वर्ग (देवलोक) में निवास एवं महान ऐश्वर्यमय सुख भोग की प्राप्ती ही है। केवल धर्म मोक्षप्रद नहीं होता। जब धर्म के साथ भगवत् भागवत शब्द जुड़ते हैं, तब भगवत् या भागवत् धर्म संज्ञा होती है। तीर्थ, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, तप, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, मातृभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, पतिभक्ति, अतिथिसेवा इत्यादि ये सभी कार्य धर्म कार्य हैं। इनके करने से लोक में यश और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यद्यपि ये सभी कार्य भगवत्प्राप्ति के सहयोगी हैं तथापि यदि भगवान् श्रीहरि का भजन होता है, तब तो यह सभी कार्य महान लाभकर हैं। परन्तु ध्यान रहे कि श्रीहरि भक्ति रहित ये सभी साधन मिलाकर भी जीव को संसार से मुक्त नहीं करपायेंगे॥

इसका अर्थ कोई ऐसा न समझे कि श्रीहरि भक्ति में उपर्युक्त साधनों का तिरस्कार है। श्रीभगवद् भक्ति महारानी जहाँ पधारती हैं वहाँ यह सभी साधन स्वयं ही सेवक की तरह उपस्थित हो जाते हैं लोक में सभी साधनों का प्रचार भगवत् भक्तों ने हो किया है। अस्तु सभी साधन सम्पन्न जीव ही भगवद्भक्ति का स्वाभाविक अधिकारी होता है। यह तो श्रीभक्ति

महारानी जी अहैतुकी दया है कि सर्व साधन हीन दीन, पतितों को भी वरण कर लेती हैं। इसलिये पतिव्रत परायण स्त्री को अनिवार्य रूप से भगवत् भक्ति करनी चाहिये। इतिहास साक्षी है कि माता श्री कौशल्या जी पतिव्रत परायण होते हुये भी नित्य श्री रंगनाथ जी का पूजन करती थी। श्रीं यशोदा जी भी देवार्चना करती थीं। श्री मद्वाल्मीकीय रामायण में सभी श्री अयोध्या वासिनी माताओं का पंचदेवाराधन करना लिखा है। इसलिये यह धारणा सर्वथा भ्रमात्मक है कि स्त्रियों को पति के अतिरिक्त किसी का भी पूजन न करना चाहिये। सृष्टिकाल से अद्यावधि पर्यन्त हरतालिका व्रत चला आ रहा है, जो केवल सती साध्वी देवियों का ही धर्म माना जाता है।

भारतीय परम्परानुसार क्वाँरी कन्यायें तो श्री दुर्गा जी (पार्वती) पूजन करती ही आ रही हैं। पुराणों में ग्राम्यदेवी देवताओं के पूजन का विधान भरा पड़ा है। व्याह के पूर्व श्री रुकमिणी जी देवी पूजने गईं थीं वहीं से भगवान श्री कृष्ण अपहरण कर ले गये। श्री जानकी जी ने भी गिरजा पूजन किया। श्री रा० च० मा० अयो० का० दो० ८ में लिखा है कि श्री राम जी की माता जी ने पूजीं ग्राम देवि सुर नागा। और दो० ६ में गहे चरन सिय सहित बहोरी॥ वा० का० दो० ३५७ में॥

भारतीय परम्परा है कि ऋषि मुनि एकान्त में भजन करें। प्रभु प्रेरणा से प्रेरित होकर जब किसी सद्गृहस्थ के घर पर पधारें तो वह उनका समुचित रूप से सत्कार करके अपने को कृतार्थ माने। श्री रामचरित मानस में कई स्थलों पर सती साध्वी महिलाओं द्वारा ग्राम देवी देवताओं का पूजन ब्राह्मणो एवं संतों की चरण वन्दना तथा पूजन श्री गुरु पूजन स्पष्ट लिखा है। जो कि गीता प्रेस से ही छोटे बड़े कई साइजों में प्रकाशित है। क्या प्रेस के कर्मचारी अपनी आँख बन्द कर लिये हैं। इस रामायण से गीता प्रेस ने कई करोड़ रुपया उपार्जन किया होगा। तथापि यह आँख मिचौनी कैसी॥ गीता प्रेस ने ही तो उ० कां० में छापा है कि—गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई। जो विरंचि शंकर सम होई॥ दो० ६३ पंक्ति ५ क्या यह चौपाई पुरुषों के लिये ही गीता प्रेस ने छापी है, महिलाओं का इस पंक्ति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा ही था तब तो इस पंक्ति के नीचे इस प्रकार टिप्पणी लिख देना चाहिये था कि यह पंक्ति (चौपाई) केवल पुरुषों के ही लिये गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लिखी है। महिलाओं के लिये यह विधान नहीं है। किन्तु यह भारी भूल गीता प्रेस के संस्थापक सम्पादक एवं संचालकों से हुई है कि इस चौपाई को

भी अन्य चौपाइयों की भाँति ही रहने दिया । अति उत्तम तो यही था कि जिसप्रकार कई चौपाइयाँ गीता प्रेस से निकाल दी हैं तदनुसार गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई : इस चौपाई को भी प्रकाशित न करता किन्तु अपनी ही भूल के कारण केवल पश्चा-ताप करना ही अविशिष्ट है । एक ओर गीता प्रेस लिखता है कि—गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । जो विरंचि शंकरसमहोई ॥ और नारी धर्म नामक पुस्तक में लिखता कि—आज कल बहुत से लोग साधु, महन्त और भक्तों के वेष में बिना गुरु के मुक्ति नहीं होती, ऐसा भ्रम फैलाकर भोली भाली स्त्रियों को मुक्ति का झूठा प्रलोभन देख कर उनके धन और सतीत्व का हरण करते हैं । और घोर नरक के भागी वनते हैं । पाठकगण विचार करें कि गीता प्रेस के कार्यकर्ता भंग के नशे में पागल हैं या नहीं। क्यों कि ऐसा लेख पागलपन में ही लिखा जाता है । विना गुरु के मुक्ति नहीं होती यह भ्रम तो सारे संसार में गीता प्रेस ने कम पैसौं में श्री रामायण देकर फैलाया है । अब अपनी भूल को अन्य साधु, महन्त या भक्तों के शिर पर पटकना दूसरी भूल है । विना गुरु के ही यदि मुक्ति होती है, गुरु बनाने की किसी को आवश्यकता नहीं है, तो गीता प्रेस अपने प्रकाशन से गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । जो विरंचि शंकर सम होई ॥ इस चौपाई को निकाल दे । यदि यह पंक्ति नहीं निकाली जाती है, तब तो विज्ञव्यक्ति यही समझेगा कि गीता प्रेस भी सभी की भाँति गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । को मानता है । पाठकगण सम्पादकों का एक पागलपन और भी देखें । वह यह कि अ० कां० दो० ५ की दशवीं पंक्ति है एकइ धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥ और ग्यारहवीं पंक्ति है कि—जगपतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुरान संत सब कहहीं ॥ परन्तु नारीधर्म नामक पुस्तक में इन दोनों चौपाइयों के मध्य में एक नवीन चौपाई की कल्पना करके लिख दी, वह यह है कि—मन बच कर्म पतिहि सेवकाई । तियहि न यहि सम आन उपाई ॥ इस चौ० के लिखने कातात्पर्य है कि स्त्री को पति सेवा के अतिरिक्त किसी भी देवी देवता, ईश्वर, भगवान्, या ब्रह्म की सेवा पूजन करना सर्वथा निषेध है । तथापि श्रीरामायणजी में कई थग्लों पर महि-लाओं से देवी, देवताओं का पूजन करना लिखा है । विनय पत्रिका पद १७४ में गीता प्रेस ने ही छापा है कि—भगवान् से विमुख करने वाले सभी सम्बन्धियों का परित्याग करके भगवत् भजन करने वाले का मंगल होता है । तज्योपिता प्रहलाद विभीषण वन्धु भरतमहतारी । वलिगुरु तज्यो कन्त ब्रजवनितन भये मुदमंगल कारी ॥ श्री ब्रजाङ्गनाओं ने अपने पतियों की आज्ञा का सर्वथा तिरस्कार करके जगत्पति भगवान् श्री कृष्ण से प्रेम किया, श्री मद्भागवत प्रमाण है । तब यह चौ० की कल्पना

करने का भारी पाखण्ड क्यों किया गया कि—मन बच कर्म पतिहि सेवकाई । तियहिं न यहि सम आन उपाई ॥ अजी भाई यह बात तो सभी धार्मिक विद्वान एक स्वर से मानते ही हैं कि स्त्री को मन बचन कर्म से पतिव्रतपालन करना चाहिये । तथापि साथ ही साथ ग्राम्य देवी देवता तथा कुल देवी देवताओं का पूजन भी परम्परागत होता ही आरहा है । और भगवान् श्रीहरि की उपासना करना तो जीवमात्र का स्वाभाविक स्वरूप ही है, इसका परित्याग क्यों । मेरे लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि महिलायें पति सेवा से विमुख होकर व्यभिचारिणी बन जायें। मेरा लक्ष्य तो केवल इतना ही है कि जीवात्मा का कल्याण भगवत् भजन से ही होना सम्भव है, अस्तु स्त्री पुरुष सभी चेतन भगवान श्रीहरि की भक्ति करके अपना कल्याण सम्पादन करें । इसलिये पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी गुरुवरण करके भगवान् की उपासना प्राप्त करके भजन भावना करते हुये पति सेवा करना अनिवार्य है । गीताप्रेस ने वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम् कहकर भगवान् श्रीकृष्ण को ही गुरु मानो इसप्रकार स्त्री पुरुष सभी को गुरुवरण की दिशा से मोड़ा है । किन्तु यह मोड़ गलत है । श्रीकृष्ण जी तो भगवान् हैं, वह वर्तमान समय में गुरु बन कर उपदेश दें. यह संभव नहीं । यदि कहा जाय कि उनकी वाणी गीता को उपदेश मानकर चलेंगे, तो भी ठीक नहीं । पुस्तकों से जीव का कल्याण संभव होता तो भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीसन्दीपन ऋषि को गुरु रूप में वरण करने की लीला नहीं करते । यद्यपि गीता भगवान् की वाणी है. पाठ करने, और जीवन में अभ्यास किया जाये तो वहुत लाभकर है। तथापि श्रीगुरुकृपा द्वारा प्राप्तज्ञान की विलक्षण महिमा है । जो पुस्तकों द्वारा प्राप्त होना सर्वथा असंभव है। यदि कोई महानुभाव यह कहें कि महिलायें गुरुवरण करने से पतन हो जाती हैं। इसलिये गुरु बनाना अनुचित है । क्यों कि आजकल सच्चे गुरु नहीं मिलते। यह कथन सर्वथा असत्य है। गुरु बनाने से कोई भी देवी पतन नहीं होती । गुरु बनाने से तो उत्थान होने का दिव्यज्ञान प्राप्त होता है । वर्तमान समय में भी लाखों साध्वी महिलायें महात्पुरुषों की कृपा से पतिव्रत परायण एवं सदाचारिणी होकर सादर सप्रेम भगवत भजन करती हैं। हां कुछ कुलटायें अवश्य ही समाज में प्रवेश करके साधिनी अर्थात विरक्त बनकर पति को त्यागकर यत्र तत्र कुछ साधकों को भ्रष्ट करती हुई अपना जीवन नष्ट कर रही होंगी। उन उन पर समाज नियन्त्रण करे। पाठक ध्यान दें पाश्चात् सभ्यता के प्रचार के कारण बड़े-बड़े शहरों (नगरों में रहने और न्युलाइट (नवीन सभ्यता) में पोषण होने वाली बालिकायें किसी भी साधु संत भक्त या महान्त को कुछ भी नहीं समझती हैं।

भगवान् श्रीहरि तथा हरिभक्त पति प्रसङ्ग

रुक्मिण्याद्याः षण्महिष्यो मम श्रीर्नीला चयामम भार्या खगेन्द्र । सर्गे पूर्वस्मिन्हव्यवाहस्य पुत्री सास्ता भज सद्य एवा विशेषात् २७ ॥ कन्यैव सा कृष्णपत्नी च कामांस्तांस्तान् भजेन मनसा चिन्तितांश्च । अतीव यत्नं कव्यवाहं खगेन्द्र पितृणवेकः सर्वदावै चकार २८ ॥ तथैव सा नैव भर्तारमाय यतस्तु सा कृष्णनिष्ठैकचित्ता तदाब्रवीत्कव्यवाहश्च पुत्रीं पतिं किमर्थं नेच्छसि मूढ़बुद्धे २९ ॥ तदब्रवीत्कव्यवाहंच पुत्री हरिबिना सर्वगुणोपपन्ने । जन्मन्यस्मिन् भर्तृता नास्ति देवयतो भर्ता हरिरेवैक एव ३० ॥ यतो लोके सुस्त्रियः सर्वएव सदाज्ञेया विधवास्ते हि नित्यं । अनादि नित्यभुवनैकसारं सुसुन्दरं मोक्षदं कामदं च ३१ ॥ एतादृशं न विजानन्ति यास्तुसर्वास्ता वैविधवाः सर्वदैव । निमित्तभूतं भर्तृरूपं च जीव दैवोपेतं हरिभक्त्या विहीनम् ३२ ॥ सुकश्मलं नवरंध्रैः श्रवन्तं दुर्गन्धयुक्तं सर्वदा कुत्सितं च । एताः दृशे भर्तृजीवेनु तान् प्रयोजनं नास्ति कृष्णं विहाय ३३ ॥ देवस्त्रियो निजभर्तृन्विहाय तत्र स्थितं प्रीणयन्त्येव नित्यम् । एतश्च ताः सधवाः सर्वदैव लोकैर्वंद्या नात्र विचार्यमस्ति ३४ ॥ भर्तास्ते हरिभक्ता यदि स्युरासां स्त्रीणां जन्म साफल्यमेव । अनेक जन्मार्जित पुण्य संचयस्तद्भर्तारो हरिभक्ता भवेयुः ३५ ॥ यद्भर्तारो हरिभक्ता न संति ताभिस्त्याज्यं स्वीगात्रं भृशं हि । स्वभर्तृभूत कृष्णरूपं हरिं च स्मृत्वा सम्यग यदि गात्रं त्यजेयु ३६ ॥ तदानैव ह्यात्महत्यानिदोषाः स्त्रीणामेवं निर्णयोयं हि शास्त्रे । यदभर्तारो न विजानन्ति विष्णुं तासां संगोनैव कार्या कदापि ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मार्जित पुण्य संचयात्तद्भर्तारो विष्णु भक्ताभवेयुः । कलौयुगे दुर्लभा विष्णुभक्ता हरेभक्तिदुर्लभा सर्वदैव ॥ ३८ ॥ हरेः कथा दुर्लभा मर्त्यलोके हरेर्दीक्षा दुर्लभा च । हरेस्तत्त्वे निर्णयो दुर्लभो हि हरेर्दासैः संगमो दुर्लभश्च ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणं दुर्लभंवैमुरारेनमस्कारो दुर्लभो वै कलौ च । तद्भक्तानां पालनं दुर्लभं च सद्वैष्णवानां दुर्लभं ह्यन्नदानम् ॥ ४० ॥ तन्त्रोक्तपूजा दुर्लभावै मुरारेर्नामग्रहो दुर्लभश्चैव विष्णोः सुवैष्णवानां पूजनं दुर्लभं हि सद्वैष्णवानां भाषणं दुर्लभं च ॥४१॥ शालग्रामस्पर्शनं दुर्लभं च सद्वैष्णवानां दर्शनं दुर्लभं हि । गोस्पर्शनं दुर्लभं मर्त्यलोके सद्गुरु दर्शनं दुर्लभं सद्वरं च ॥४२॥ इतिगरुड़पुराण उ० खं० ब्रह्मकां० अ० १९ श्रीवैंकटेश्वर प्रेस बम्बई की प्रकाशित ॥

अर्थ—श्रीकृष्णजी बोले ऐ गरुड़ ! रुक्मिणी, श्री, नीला इत्यादि जो मेरी ६ स्त्रियायें हैं, वह पूर्वकाल में हव्यावाह की कन्यायें थीं । २७ । उन्होंने अपने मन में कामना की कि हम श्रीकृष्णजी की स्त्री होवें । परन्तु ऐ गरुड़ उनके पिता हव्यवाह ने उन कन्याओं से कहा कि—ऐ मूर्खाओं तुम सब किस कारण से पति की इच्छा नहीं

करती हो। तब उन कन्याओं ने कहा कि–हे देव ! सर्वगुणों से सम्पन्न श्री भगवान् के विना इस जन्म में हम लोगों का दूसरा पति नहीं हो सकता है। कारण कि निश्चय करके एक भगवान् ही पति हैं ॥ ३० ॥ क्यों कि भगवान् के विना पति हुवे संसार में सुन्दर व्रतवाली जितनी स्त्रियायें हैं, वह सब निश्चय ही सदा नित्य प्रति विधवा ही हैं, सो जानो, कारण कि—जो अनादि, एकरस, नित्य, संसारमात्र में एक ही सार रूप सुन्दर, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष देने वाले हैं ॥ ३१ ॥ ऐसे भगवान् को जो स्त्रियाँ पति नहीं समझतीं, वह सर्वदा निश्यच करके विधवा ही हैं। क्यों कि भगवान् की भक्ति से हीन सदा काल में कर्म बन्धन से बँधे हुये पति रूप वह जीव निमित्त मात्र पति कहा ता है ॥ ३२ ॥ हे तात ! श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त जो सदाकाल निन्दित अनेक पापों से युक्त नवछिद्रों से दुर्गन्ध बहते हुये ऐसे जीव पति से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ॥३३॥ इसी कारण से देवस्त्रियायें अपने पतियोंको छोडकर नित्यप्रति भगवान् से प्रीति करतीहैं। अतः भगवान् से प्रेम करने के ही कारण संसारसे पूजिता और वन्दिता हैं। और वह सर्वथा सधवा (सौभाग्यवती) बनी हैं। इसमें कुछ भी विचार करने का काम नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि हरिभक्त पति मिल जाये तब तो स्त्रियों का जन्म सफल है, किन्तु अनेक जन्मों के पुण्यसंचय होने पर हरिभक्त पति मिलता है ॥ ३५ ॥ यदि पति हरिभक्त न मिले, तो भगवत्भक्ता स्त्रियों को चाहिये कि अपने शरीर को त्याग देवें, और सच्चे पतिरूप भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण करती हुई सावधानी से शरीर को त्यागें तो ॥ ३६ ॥ आत्महत्या का दोष भी नहीं लगता, स्त्रियों के लिये शास्त्रमें यही निर्णय है। यदि प्रति हरभक्ति तथा भगवान् को नहीं मानता जानता हो, तो हरिभक्ता स्त्री ऐसे भगवत् भक्ति विमुख पति का कदापि संग न करे। क्यों कि गरुड़पुराण उ० खं० ब्रह्म कां० अ० १४ के ३६ वें श्लोक में लिखा है कि—हरिभक्ति विहीनाये ह्यसुराः परिकीर्तितः ॥ अर्थ—भगवान् की भक्ति से रहित मनुष्य असुर कहे जाते हैं ॥ ३७ ॥ अनेक जन्मों के पुण्य एकत्रित होने पर स्त्री को भगवत्भक्त पति मिलता है। कलयुग में भगवद्भक्त तथा भगवान् की भक्ति सर्वदा दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ मृत्युलोक में भगवान् की कथा दुर्लभ है, श्री वैष्णवीय दीक्षा दुर्लभ है, और भगवत्तत्त्व निर्णय करना दुर्लभ है, तथा हरिदासों (भगवान् के भक्तों) का समागम सत्संग होना दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ भगवान् की परिक्रमा करना दुर्लभ है निश्चय करके कलियुग में भगवान् को नमस्कार करना दुर्लभ है, और भक्तों का पालन (सन्त सेवा) करना दुर्लभ है, तथा सज्जन वैष्णवों को अन्नदान देना दुर्लभ है ॥ ४० ॥ तन्त्रोक्त भगवान्

का पूजन करना, और भगवान् के मंगलमय श्री सीताराम, राधाकृष्ण, नारायण वासु-देवादि नामों का जप करना दुर्लभ है, तथा श्री वैष्णवों का पूजन करना एवं उनसे हरिचर्चा करना दुर्लभ है ॥ ४१ ॥ मृत्युलोक में शालिग्राम का स्पर्श, श्री वैष्णव दर्शन, गौओं का दर्शन स्पर्श, भगवान् के गुणगान करना, सद्गुरु का सत्संग, ये सब दुर्लभ हैं । ४२ ॥ गतिवोध उत्तरार्द्ध पृ० २६७ से २७२ तक ॥

सज्जनवृन्द प्रिय पाठकगण ध्यान दें कि—इस उपर्युक्त प्रसंग से सुस्पष्ट है कि भगवान् की भक्ता स्त्री भगवद्भक्तिपति के ही साथमें भगवान् की भक्ति भावना उपा–सना पूजा–पाठ) करते हुये पतिव्रत परायण होकर सुखपूर्वक जीवन वितावे । पूर्व संस्काराधीन यदि हरिभक्त पति न मिल पाये, और यदि हरिभक्ता पत्नीहै, तो उस स्त्रीको यदि भगवान् में दृढ़ में प्रेम हो, शारीरिक सुख भोग का लोभ तथा मरने के कष्ट से भय न लगे तो अपने इष्टरूप भगवान् का स्मरण करके सावधानी से भगवन्नाम जपते हुये शरीर त्याग देना चाहिये । उसे आत्महत्या का दोष न लगेगा, न अकाल मृत्यु ही होगी । भगवान् के नाम जप तथा भगवान् में सद्भाव होने के कारण भगव–त्कृपा की अधिकारिणी होगी ॥ किन्तु शरीर त्याग देना खेल नहीं है । शरीर के सुख सभी को प्रिय हैं, तव रो रोकर जीवना विताना ही शेष है । शारीरिक सुख के लोभ रहित स्त्रियायें वन्धन मुक्त हैं । उन पर भगवत् विमुख पति की दासता में रहने का कड़ा शासन नहीं है । हाँ यह वात अवश्य है कि जव तक विषयों से वैराग्य और भगवान् में अनुराग न हो, तव तक तो पति का अनिवार्य वन्धन है । परन्तु जव विषय कर्म से चित्त सर्वथा ऊपर उठ जाये, सभी सुखों की वासना नष्ट हो जाये, एकमात्र भगवान् के दर्शन विना सारा संसार अप्रिय लगने लगे, उस स्त्री को भववत् भक्ति विहीन हरिविमुख पति का मोह त्यागकर संसार की लज्जा भय संकोच न मानकर निर्भयरूप से अपने मनको भगवान् में लगाकर शरीर त्याग देना चाहिये, या तपस्विनी वन कर सत्संग में भाग लेकर भजनमय जीवन विताना चाहिये । भगवत्विमुख नास्तिक पति की सेवा से मुक्त नहीं पायेगी ॥

किन्तु इस प्रसंग को पढ़कर जिन स्त्रियों को सभी विषयों में पूर्ण प्रेम है, भगवान् में साधारण प्रेम है, शारीरिक सुखों की आवश्यकता है, ऐसी महिलायें भी भूल से अपने पति को त्याग कर तपस्विनी वनने का झूँठा स्वाँग न वनावें अन्यथा भगवान् तो क्या मिलेंगे, व्यभिचार मय जीवन वन जायेगा । लोक परलोक दोनों नष्ट होकर नर्क की दुर्गन्धमय नालियों में विचरण करने का शुभ अवसर मिलेगा । अस्तु स्त्री को घर से वाहर जाने का संकल्प भी हितकर न होकर हानिकर होगा । सुख

दुख उठाकर दशवात सहकर भी घर में ही रहना उचित है । क्यों कि स्त्री जहाँ जायेगी, विषयाभिलाषी लोग उसे वहीं अनुचित भाव से देखें गे । जो शारीरिक सुविधायें देगा, उसका संकोच करके उसकी रुचि का पालन करना अनिवार्य होगा ही, जैसा कि वर्तमान समय में देखा सुना जाता है कि न जाने कितनी देवियाँ तपस्विनी बनी हुई हैं, वे स्वयं तो नरक गामिनी हैं ही, लाखों साधकों को भी नर्कगामी बना रहीहै । परन्तु सभी देवियाँ भी व्यभिचारिणीं नहीं हैं । लाखों की संख्यामें कुछ भगवत् कृपापात्रा भी हैं, तथापि अधिक देवियों का जीवन विकृतरूप में देखा सुना जाता है। इसलिये देवियों को घर छोड़कर विरक्त बनना उचित नहीं है । यद्यपि माया के चक्र में पड़ कर बड़े बड़े सिद्ध विरक्त ऋषि मुनि भी साधनपथ भ्रष्ट हो जाते हैं, तथापि उनमें स्वतन्त्रता होने के कारण कोई विवशता नहीं रहती । स्त्री का शरीर स्वाभाविक आकर्षक होने के कारण उसको विरक्त वनने में महान कष्ट एवं आपत्ति का सामना करना पड़ता है । फिर भी जिसका मन भगवान् में आशक्त हो गया है वह संसार के सभी बन्धनों को तोड़कर प्रेममूर्ति भक्तिमती श्री मीरा वाई जी, सहजोवाई, श्री सीता सहचरी जी, इत्यादि सदृश्य भगवान् के लिये मरने जीने से बिलकुल भी डरती नहीं, सब से सोचनीय विषय तो यह है कि–आजकल नवीनावस्था की वालिकायें और बालक विरक्त बनने को तैयार हो जाते हैं । और गुरु लोग अनुमति देकर विरक्त वना लेते हैं । यह भी नहीं सोचते कि—जब ये लोग युवा (जवान) होंगे, और इनको विषय में प्रवृत्ति उत्पन्न होगी तब क्या होगा । उसी का भयंकर दुस्परिणाम है कि उन नवीनावस्था वाले साधकों की यत्र तत्र वधाइयाँ वजती हैं । महान पुरुषों से निवेदन है कि—लघुवयस्क वालकों की विरक्त न वनाया जाये । आश्रमों पर आने वाले वालकों को समझा बुझाकर वापस घर भेज देना चाहिये । अन्यथा दिनों दिन समाजी ब्यवस्था बिगड़ती ही जागेगी ।

सभी को ढोंगी, पाखण्डी कहती हैं । न राम या रहिमान को ही मानती । तथापि ब्याह के पूर्व ही चार छै वालकों की माँ वन जाती हैं तब ब्याह का कोरा पाखण्डमात्र होता है । इस बात को कौन नहीं जानता है । इन वालिओं का किस साधु महान्त या भक्त से पतन होता है । तो कहना ही पडेगा कि उन्हीं धर्मावतारों के द्वारा जो साधु महांत और भक्तों को पाखन्डी बताते थे । सभी बड़े नगरों में अनाथालय हैं, जिनमें हजारों छोटे बड़े बालक और वालिकायें हैं । जिनका भरण पोषण वहाँ की समिति अथवा शासन की ओर से हो रहा है । कहिये श्रीमान लोगों यह अनाथ वालक वालियें किसके हैं, तो सभी चुप हो जायेंगे । वड़े साहस करके

बोलेंगे कि ये सब अज्ञात हैं। यह क्यों नहीं कह देते कि साधु, महान्त या भक्तों के, किन्तु कैसे कहैं। यह कहना क्या सरल है। गुरु बनाने से महिलायें पतन होनी चाहिये थीं किन्तु विना गुरु बनाये ही इनका पतन क्यों होता है। तब हार मानकर पछताते हुये माथा पीट कर कहेंगे कि कालेज के इस्टूडेन्टस (लड़के) और टीचरों के साथ, या घर में सेवा करने वाले सर्वेन्ट (नौकरों) के साथ। अब कहो, आप क्या सोचते हैं कि महिलाओं का सुधार कैसे संभव है। बालकपन में बिगड़ी चाल को क्या पति भगवान् सुधार सकते हैं। जो कि स्वयं ही न जाने कितनी बालिकाओं से अवैधानिक सम्बन्ध जोड़ चुके हैं। और व्याह होने के बाद भी सुन्दर स्त्री देखकर तमक जाते हैं। यदि उनकी चले तो उससे प्रेम अवश्य ही करलें। वश न चलने पर वेचारे हाथ मीज कर कहरते हुये किसी तरह रह जाते हैं। कहिये जी ऐसी पतिव्रता देवियाँ जो चार बालक जन्माकर पतिवरण करें। और ऐसे एक पतिनीव्रत वाले पुरुष जो कि व्याह के पूर्व दश वीस वालिकाओं के पति बनकर तब पत्नी बरण करें। इन सबका उद्धार करने का उपाय गीता प्रेस वाले बतावें क्या होगा।

इन बालक बालिकाओं के पतन में किसी भी साधु, महान्त या भक्त का दोष नहीं है। सामायिक प्रेर्णा से प्रंगित शिक्षा का परिवर्तन विदेशी संस्कृति का समावेश पेपर (समाचार पत्र) में झूठ बातें पढ़ना, रेडियो द्वारा अश्लील गाना सुनना, सिनेमा में नग्नचित्र देखना, और मनमाने रूप से भक्ष्याभक्ष्य सभी पदार्थों का सेवन करना ही विषम परिस्थिति का मुख्य कारण है। अभी भी सभी बालक या वालिकायें पतन नहीं होते हैं। जिन बालक बालिकाओं का पालन प्राचीन संस्कृति (सभ्यता) के अनुसार होता है। शिशु जीवन से ही जिनके जीवन में धार्मिक भगवत् भक्तों की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। भगवान् श्री हरि के मंगलमय आवतारिक दिव्य लीला गुणकीर्तन कथा श्रवण करायी जाती है। जिस सद्गृहस्थ के घर में नित्य भगवान् का पूजन होता है, भगवान् का भोग लगा हुआ प्रसाद खाने को मिलता है। जो माता-पिता बच्चों को सिखाते हैं कि भगवान् को प्रणाम करो, अपने से बड़ों का समादर करो। गुरुजनों की आज्ञा मानो और उनकी सेवा करो। जिन्हें शुद्ध सात्विक पदार्थ खिलाये जाते हैं, वे बालक वालिकायें आज भी सौम्यस्वभाव वाले, सुशील एवं सदाचार सम्पन्न चरित्रवान हैं। अस्तु महिलाओं के चरित्र दोष में साधु सन्त महान्त या भक्तों का अपराध नहीं है।

यह बात अवश्य ही है कि साधु, सन्त, महान्त या भक्तों का रूप बनाकर साधु सन्त महान्त और भक्तों का नाट्य करने वाले पाखण्डी लोग स्वच्छन्दता पूर्वक रहते हैं। कभीवैष्णव कभीशैव्य, कभीनागा, कभीत्यागी बनकर मनमाना व्यवहार करते हैं। उनके ऊपर समाज एवं शासन को वैधानिक विधान लगाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा, त्यागी पाखण्डी हैं। सच्चे श्रीवैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा, त्यागी तो जगत हितचिंतक हैं। किन्तु जो हृदय से न बनकर बाहर से ही लोगों के ठगने के लिये वैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा; त्यागी बनकर पैसा रुपया कमाना ही जिसका एकमात्र लक्ष्य है, वही व्यक्ति अनुचित करते हैं। जिन श्रीवैष्णवों, शैव्यों, शाक्तों नागा, त्यागियों का ध्येय भगवत प्राप्ति या मुक्ति प्राप्त करना है. वह महानुभाव कभी भी अनुचित कार्य नहीं करते। अस्तु सभी साम्प्रदायिक सन्त, महान्त; भक्त जगत हितचितक हैं। यदि कोई सन्त, महान्त या भक्त कहीं अनुचित करते हैं तो जनता को उचित है कि उनको चेतावनी दे, उन्हें सावधान करे कि आप विरक्त हैं, अनुचित कार्य आपके योग्य नहीं है। फिर भी न मानने पर समाज एवं शासन को उनपर उचित शासन करना चाहिये। किन्तु किसी एक व्यक्ति के अपराध करने पर सम्पूर्ण समाज को ढोंगी पाखण्डी मानना भारी भूल है। सभी साधु, सन्त, महान्त और भक्त ढोंगी पाखण्डी नहीं हैं। इसलिये जन समुदाय को उचित है कि भली भाँति छानबीन करके अच्छे स्वभाव व्यवहारवाले साधु, सन्त, महान्त और भक्तों से सम्बन्ध स्थापित करके भगवत् भक्ति भावना जानकर अपना कल्याण सम्पादन करें। परन्तु यह भावना मन में रखना भारी भूल है कि महिलायें गुरुदीक्षा लेने से चरित्रहीन हो जाती हैं। गुरुदीक्षा से चरित्र हीन तो नहीं होती हैं, चरित्रवान बनजाती हैं। तथापि यदि समाज में देखा सुना जाता हो कि किस सन्त महान्त या भक्त के सम्पर्क से देवियों का चरित्र भ्रष्ट होता हो, तो समाज को उचित है कि उस अनुचितकर्ता व्यक्ति की रिपोट थाना में पुलिस कर्मचारियों को देकर इन्कवारी (अन्वेषण) करावें। यदि बात सत्य हो तो पुलिस उस व्यक्ति को कारागार (जेल) बन्द करदे। जिस क्षेत्र में दशबीस पाखण्ड जेल में बन्द हो जायं, उस क्षेत्र का तुरंत ही सुधार हो जाये। परन्तु खेद तो इसी बात का है कि जनता साधु महान्त. भक्तों की निन्दा भी करती है। पुनः उन्हीं के पैर भी पूजती है। यह महान अनुचित है। जो सन्त, महान्त, भक्त निन्दा के पात्र हैं उनकी पूजा और प्रशंसा करना अधर्म, अन्याय, पाप को उत्कर्ष बढ़ाना है। और जो सन्त, महान्त,

भक्त पूजा प्रशंसा के पात्र हैं उनकी निन्दा करना महान पाप है। इसलिए निन्दापात्र व्यक्ति अर्थात् जो चरित्र भ्रष्टव्यक्ति हो, उसकी पूजा और प्रशंसा कभी भी नहीं करनी चाहिये। क्यों कि अग्नि में हवन करने पर ही हवनकर्ता को यथेष्ठ लाभ होता है। राख में हवन करने से समय श्रम तथा द्रव्यपदार्थ सभी व्यर्थ हो जाते हैं। और पूजा प्रशंसा के पात्रों की निन्दा करने पर भगवत् विधानानुसार महानपाप का भागी बनना पड़ता है। अस्तुजन समाज जिस सन्त, महान्त भक्त को चरित्रवान भगवत् भक्तिपरायण जनहितचिंतक समझता हो उसी के उपदेशामृत को मानकर साधन करे। और जिस सन्त, महान्त, भक्त के विषयिक ऐसी सत्य जानकारी हो कि यह व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट है, उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद उसी समय करले। वह व्यक्ति भले ही असाधारण पाण्डित्य पूर्ण वाक्यपटु और नाना सिद्धियाँ प्राप्त क्यों न हो। उसका सम्पर्क किसी को विशेष लाभ कर नहीं होपाता है। गीताप्रेस जिसग्रन्थ का श्लोक प्रकाशित करता है उसका नाम तथा अध्याय भी लिखता है। परन्तु नारीधर्म नामक पुस्तक में ३१ पृ० पर "पत्यौजीवित यो तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैवगच्छति" इस श्लोक का कुछ भी पता नहीं लिखा। संभव यह श्लोक भी काल्पनिक है। यदि प्रमाणिक होता तो अन्य श्लोकों की भाँति ग्रंथ का नाम तथा अ० एवं श्लोक नं० लिखा जाता॥ दूसरी बात यह भी है कि—गीताप्रेस से प्रकाशित श्रीरामचरितमानस अयो० कां० ८६ दो० में लिखा है कि—"राम दरसहित नेमब्रत करत नगर नर नारि" यहाँ पर नरों के साथ नारियों का भी नेमव्रत करना लिखा है, क्या वह सभी स्त्रियाँ विधवा थीं। यदि विधवा नहीं थी, तो नेमब्रत क्यों करती थीं। इससे सिद्ध है कि पति के रहते हुये भी स्त्रियों को श्रीसीताराम दर्शन के लिये नेमब्रत करना गीताप्रेस मानता है। पुनः श्रीदशरथजी के देहावसान के पश्चात दाह संस्कार के समय—'गहिपद भरत मातु सब राखी। रहीं राम दर्शन अभिलाषी॥ अयो० काँ० दो० १७०॥ पतिव्रत परायण साध्वी देवियों को पति के साथ सती होना ही उत्तम माना गया है। परन्तु श्रीभरतजी की प्रार्थना सुनकर सती होने को तैयार होते हुये भी श्रीकौशल्यादिक सभी मातायें सती न होकर श्रीराम दर्शन के लिये जीवित रहीं। इससे भी यह सिद्ध है कि श्रीरामदर्शन का पद सती होने से बहुत ऊंचा है। अस्तु पती के रहते हुये तथा पति के मरने पर दोनों अवस्थाओ में स्त्रियों को श्रीसीताराम, दर्शनार्थ नेम, व्रत, उपवास पूर्वक श्रीसीताराम उपासना करनी चाहिये॥

पुनः लंका कां० में देखिये पंचकन्याओं में गणना होनेवाली मंदोदरी ने रावण से श्री राम भजन करने को बहुत प्रेरणा की। रावणवध के बाद भी कहा कि—अब तब शिर भुज जम्बुक खाहीं। रामविमुख यह अनुचित नाहीं॥ जब कि सती देवियों को भूलकर भी पति के अतिरिक्त किसी पुरुष की प्रसंसा करना अनुचित माना जाता है। इससे भी सिद्ध है कि पतिव्रतायें भी श्री राम जी की उपासना कर सकती हैं। पतिव्रत धर्म में हानि नहीं होगी।

प्रिय पाठकों से निवेदन है कि वह गीताप्रेस के कर्मचारियों के एक महान प्रमाद पर दृष्टिपात करें कि वास्तव में वह लोग पूर्वापर (आगे पीछे) का बिचार न करके मस्ती में आकर जो चाहते लिखकर प्रकाशित कर देते हैं। वह यह है कि- भक्तचरितांक में पृ० ३०४ से ३०७ तक जगतगुरु श्री स्वामी शंकराचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित है जिसमें लिखा है कि श्री शंकराचार्य जी केवल सात वर्ष की आयु में वेद वेदान्त और वेदांगों का पूर्ण अध्यन करके घर लौट आये। आठ वर्ष की आयु में माता की आज्ञा से गृहत्याग कर नर्वदातट पर स्वामी श्री गोविन्द भगवत्पाद् से सन्यास की दीक्षा ली। और भक्तचरितांक पृ० ३०३ से ३०४ तक जगतगुरु श्री विष्णु स्वामी जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र में लिखा है कि थोड़े समय में संपूर्ण वेद पुराण का ज्ञा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। और भ० च० पृ० ३३५ से ३३७ तक जगतगुरु श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि- १३ साल की अवस्था में में ही वे वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र आदि में पूर्णनिष्णात हो गये। और पृ० ३३० में जगतगुरु श्री स्वामीं निम्वार्काचार्य जी के जीवन चरित्र में लिखा है कि—तब मुमुक्षु पुरुष सद्गुरु की शरण ग्रहण करता है। गुरु द्वारा उपदिष्ट उपासना द्वारा शुद्धचित्त में भक्ति का प्राकट्य होता है। यही भक्ति जीव को भगवत् प्राप्ति कराकर मुक्त करती है। पृ० ३३० में ज० गु० श्री स्वामी माध्वाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि—जब वेद शास्त्रों की ओर इनकी रुचि हुई तो थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करली। पृ० ३३८ में प्रेमावतार श्री चैतन्यदेव के जीवन में लिखा है कि— श्रीवासुदेव सार्वभौम और प्रकाशानन्द सरस्वती इनके अनुयायी श्री कृष्णप्रेमी बन गये पृ० ३०५ में श्री यामुनाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि ये वाल्यावस्था में ही अद्भुत प्रतिभाशाली एवं विद्वान थे। पृ० ३३० में ज० गु० श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि—उन्होंने लगभग १०८ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें भगवत्भक्ति कूट कूठ कर भरी है।

[पृ० ४० के बाद का शेष]

अस्तुमानव मात्र को योग्य महान पुरुषों से मन्त्रदीक्षा लेकर भगवत् भजन करके मनुष्य जीवन प्राप्त करने का परम लाभ लेना चाहिए ॥ अब पतिरेको गुरुः स्त्रीणां पर भी विचार करलिया जाये । पतिरेको गुरुः स्त्रीणां का शाब्दिक अर्थ हुआ कि—स्त्रियों के लिये एकमात्र पति ही परम पूज्य है । यह चाणक्य नीति अ० ५ का वचन है, इसका भाव है कि स्त्री शारीरिक सभी सम्बन्धियों की अपेक्षा पति को अधिक पूज्य (श्रेष्ठ) माने ॥ परन्तु इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि पति के अतिरिक्त किसी भी अन्य को कुछ भी न माने । शास्त्रोक्त वचनानुसार यह मान्य है कि स्त्री के लिये पति ही सर्वस्व है । तथापि अनादिकाल से परम्परागत पति के सम्बन्धी श्वसुर ज्येष्ट देवर इत्यादि का भी सत्कार देवियाँ करती ही आरहीं हैं । लोक मर्यादा का विचार रखकर आवश्यकतानुसार सेवा भी करती हैं । किन्तु पतिभाव एकमात्र पति में ही रहता है । इतने पर भी अन्य पूज्य वर्गों में भी पूज्य भाव रहता है, और रहना ही चाहिये ॥

कुछ नवीन विचारकों का कहना है कि स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष के चरण स्पर्श न करे । यदि चरणस्पर्श करती है, तो पतिव्रत नष्ट होजायेगा । किन्तु यह बात सर्वथा अनर्गल है । भारतीय परम्परा में देवियाँ अपने पति के पिता को अपने पिता के समान पूज्य भावरखकर शुद्ध हृदय से प्रणाम एवं सेवा करती आ रही हैं ॥ पतिव्रत भंग होने की बात तो काम भाव में हैं, पूज्य भाव में नहीं । श्री मिथिलाजी से बरात लौटकर श्रीअवध आई सभी का यथोचित सत्कार हुआ । तत्पश्चात् श्रीदशरथजी महाराज महल में पधारे । श्रीकौशल्यादिक महारानियों से कहने लगे कि— बधू लरिकिनी परघर आईं । राखेहु पलक नयन की नाईं । बा० कां० ३५५ दो० ॥ अर्थात वधुयें अपने माता पिता से विछोह होकर परघर आपके घरों में आई हैं । अब आप सब इन्हें अपनी प्रिय पुत्रीवत् दुलार पूर्वक रखिये । जैसे पलक नेत्र की रक्षा करता है । वैसे ही आप लोग भी वात्सल्य पूर्वक इनका लालन पालन कीजिये । इसके पूर्व पूज्य चरण श्रीगोस्वामीजी ने लिखा है कि—बधूसप्रेम गोद बैठारीं । बार-बार हिरिष दुलारीं ॥ बा० कां० ३५४ दो० ॥ क्रम से चारों बधुओं को वात्सल्य भाव से अपनी आत्मज प्रिय पुत्री के समान प्यार पूर्वक गोद में बिठाकर दुलार किया । और भी देखिये—भूसुर भीर देखि सबरानी । सादर उठीं भाग्य बड़जानी ॥ बा० कां० ३५२ दो० ॥ पायं पखारि सकल अन्हवाये । अर्थात् सभी महारानियों ने ब्राह्मणों की भीर देखी, तो अपना बहुत बड़ा भाग्य जानकर आदर पूर्वक उठीं । और उन ब्राह्मणों के चरण धोये तथा स्नान करने की पूर्ण व्यवस्था की ।

पुनः श्री विश्वामित्र जी की—"कीन्हि प्रशंसा भूपति भूरी । रानिन सहित लीन्ह पग धूरी ॥ अर्थात् राजा ने बहुत प्रशंसा करके महारानियों समेत श्रीविश्वामित्र जी के चरणों की धूल लेकर अपने मस्तक पर चढ़ाई ॥ और—भीतर भवन दीन्ह वर बासू । मन जोगवत रह नृप रनिवासू ॥ अर्थात् अन्तःपुर में श्री विश्वामित्र जी को निबास स्थान दिया । और राजा चक्रवर्ति श्री दशरथ जी तथा रनिवास [मातायें [मनोनुकूल सेवा करती रहती थीं ॥ पुनः—पूजे गुरु पद कमल बहोरी । बधुन समेत कुमार सब रानिन सहित महीश । पुनि पुनि वन्दत गुरु चरन देत अशीष मुनीश ॥ बा० कां० ३५२ दो० ॥ अर्थात् बन्धुओं समेत चारों राजकुमार एवं श्री कौशल्यादिक महारानियों ससेत श्री दशरथ जी बारम्बार श्री विश्वामित्र जी के श्री चरणों की वन्दना करते हैं ॥

पुनः श्री पार्वती जी के प्रगट होने का समाचार पाकर श्री नारद जी श्री हिमांचल जी के घर में पधारे, तो । नारि सहित मुनि पद शिर नावा । चरन सलिल सब भवन सिंचावा ॥ निज सौभाग्य वहुत गिरिवरना । सुता वोलि मेली मुनिचरना ॥ बा० कां० ६५ दो० ॥ अर्थात् अपनी धर्म पत्नी श्री मैंना जी समेत श्री नारद जी के चरणों में मस्तक झुकाकर चरण धोये, पुनः उसी चरणामृत से सम्पूर्ण घर को सींचा । और अपने भाग्य की बहुत प्रशंसा करके श्रीपार्वती जी को बोलाकर श्रीनारद जी के चरणों मस्तक रख कर प्रणाम करवाया । इन प्रसंगों में पतिव्रता शिरोमणि माताओं क्वाँरी वालिकाओं को महान पुरुषों के चरणों का स्पर्श करना प्रणाम करना सुस्पष्ट रूपेण प्राप्त होता है । तथापि कतिपय सज्जनों की हठ है कि स्त्री को अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष का चरण नहीं छूना चाहिये । श्री मद्भागवत में एवं अन्य पुराणों में भी कई सती साध्वी पतिव्रताओं के द्वारा सन्त महान पुरुषों एवं व्राह्मणों के चरण स्पर्श तथा पूजन का प्रमाण है । तो भी हठी व्यक्ति को सम-झाना ब्रह्मा जी के भी वश की वात नहीं है ।

किसी एक स्मृति या संहिता के आधार पर हठ वाँधकर यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि स्त्री को किसी भी परिस्थिति में पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष के चरण नहीं छूना चाहिये तो सभी बुद्धजीवी बनने वाले बुद्धि के दरिद्रों से मेरा नम्र निवेदन है कि—यह वात आप लोग किस युग की देवियों (महिलाओं) के लिये वता रहे हैं, पति के अतिरिक्त किसी भी पुरुष के पैर न छूना चाहिये ।

हाँ यह तो हो सकता है कि—मातायें वहिनें इन हठवादियों की वात मानकर सन्त महान पुरुषों एवं पूज्य विद्वान ब्राह्मणों के चरण स्पर्श करना तो सहज ही में

बन्द कर देंगी । अथवा न्यूलाइट (नवीन संस्कृति) में पोषण होने वाली माताओं बहिनों ने छोड़ ही दिया है । वह तो सन्तों एवं ब्राह्मणों को पाखण्डी समझती हैं, तब प्रणाम क्यों करेंगी , यह सब प्रभाव विदेशी सभ्यता का है ।

परन्तु ध्यान देना कि—पूज्य सन्तों और ब्राह्मणों के तो चरण स्पर्श मात्र से पतिव्रत नष्ट हो जायेगा । किन्तु थियेटर हालों [सिनेमाघरों] में हजारों की भीड़ में घुसते तथा निकलते और मेलाओं तथा मार्केटों (बाजारों) में धक्का खाने में पतिव्रत धर्म लाखगुणा बृद्धि को प्राप्त होता होगा । और क्लबों में मद्द (शराब) पीकर कई स्त्री पुरुष एक साथ नग्न होकर नृत्य गान करने में तो साक्षात् भगवान् ही मिल जाते होंगे ।

अजी भारत वासियों अपनी प्राचीन परम्पराओं को अनर्गल मानकर नवीन पद्धति के ही अपनाने का यह सब भयंकर परिणाम है । अस्तु अपनी प्राचीन पर-म्पराओं का अतिक्रमण न करके अनुसरण करने में ही श्रेय प्राप्त होगा । सन्तों तथा ब्राह्मणों से जगत का परम हित हुआ है, होता है, भविष्य में भी होगा । अस्तु पूज्यों के चरण स्पर्श में पतिव्रत नष्ट तो न होगा । अपितु उनके प्रसाद (आशीर्वाद) से शुभ उपदेश से पातिव्रत में दृढ़ता होगी ।

अजी यह कौन कहता है कि पतित स्वभाववाले सन्तों या ब्राह्मणों का पूजन करो । वर्तमान की तो सभी मातायें वहिने पढ़ी लिखी बुद्धिमान हैं । जिन सन्तों या विद्वान ब्राह्मणों का जीवन निन्दनीय हो । उनसे भूल कर भी व्यवहार नहीं करिये । किन्तु अपनी बुद्धि से भली भाँति कसौटी करके भगवत् कृपापात्र सन्तों या ब्राह्मणों का समादर स्वागत) करके उनके अमृतमय शुभोपदेश से लाभ उठाना चाहिये । विचार कीजिये कि हृदय में पूज्य भाव रखकर शुद्ध मनसे सन्तों या विद्वान ब्राह्मणोंके चरण स्पर्श करने से तो पतिव्रता धर्म नष्ट हो जायेगा—किन्तु मेल ट्रेनों में मोटरों में सादियों के अवसर पर जब ५० व्यक्तियों की सीटों पर सौ से भी अधिक व्यक्ति बैठते हैं उस समय गाड़ी पर चढ़ने और उतने में सर्वाङ्ग से रगड़ हो जाती है । उस परिस्थिति का मुझे पता है । मैं बार बार यात्रा करता रहता हूँ । जब उस भीड़ में सर्वाङ्ग स्पर्श से किसी भी माता वहिन का पतिव्रत धर्म नष्ट नहीं हो जाता है, तब यह कहना या लिखना कि सन्तों या गुरुजनों के भी चरण स्पर्श नहीं करना चाहिये । ये कहाँ तक उचित होगा ।

बन्धुओं सारा धर्म अथवा अधर्म तो भावना से ही सम्बन्धित रहता है। विचार किया जाये कि—आप सब जिस आँख से अपनी स्त्री को देखते हैं। उसी आँख से अपनी लड़की, बहिन, माता, चाची मौसी; नानी इत्यादि को भी देखते हैं। भेद केवल भावना का ही रहता है। यद्यपि माता, बहिन लड़की. मौसी इत्यादि तथा स्त्री के सर्वाङ्गों की बनावट तथा क्रिया सामान्य तया एक जैसी ही है। तथापि भाव भेद से हमें और आपको महान अन्तर दीखता है। यद्यपि सभी स्त्री एवं पुरुषों को विषय भोग में स्वाभाविक रुचि रहती है। तथापि न तो सब स्त्री ही सब पुरुषों के साथ विषय की रुचि रखतीं हैं न सब पुरुष ही सब स्त्रियों से विषय की रुचि रखते हैं। जैसे स्त्री अपने पति के साथ और पुरुष अपनी पत्नी के साथ एकान्त रहने पर समयानुसार विषय सेवन की रुचि प्रगट करके विषयानन्द का अनुभव करते हैं। किन्तु धार्मिक स्त्री अपने पिता भाई चाचा मामा इत्यादि के साथ और पुरुष अपनी माता बहिन बेटी चाची इत्यादि के साथ एकान्त रहने पर भी विषय सेवन की भावना नहीं करते हैं। यदि विषय की भावना करें तो वह स्त्री पुरुष पतित माने जाते हैं।

एक बात और सोचिये कि—वर्तमानकाल में अधिक से अधिक स्त्री पुरुष रोग ग्रस्त होते हैं। तब अस्पतालों में जाना पड़ता है। डाक्टर सभी स्त्री या पुरुषों का हाथ पकड़ते हैं पेट में हाथ लगाते हैं गुप्त प्रगट अनेक बाते पूछते हैं। विशेष रोग होने पर आप्रेशन करना पड़ता है तब डा० सभी अङ्गों को स्पर्श करता है। यहाँ तक कि गुप्त अंगों का भी आप्रेशन करना पड़ता है तब डा० सभी अंगों को स्पर्श करता है। यहाँ तक कि गुप्त अंगों का भी आप्रेशन होता है। तथापि यह धारण रखना कि गुरुजनों के चरण स्पर्श करने से धर्म नष्ट हो जायेगा भारी भूल है।

बार.बार ऐसा सुना जाता है कि अमुक ग्राम नगर या शहर में अमुक सन्त ने अमुक की बहू बेटी के साथ अनुचित आचरण किया। अथवा किसी के घर में चोरी करवादी है।। परन्तु विचार किया जाये कि क्या सन्त ऐसा घृणित कार्य करेंगे। ये सब कार्य चोर एवं ठगों के हैं। जो केवल लोगों के ठगने के ही लिये सन्तों का बेष बनाये हैं। ऐसे लोगों को खूब सावधानी से पहचानना चाहिये। तब व्यवहार करना चाहिये। सन्त बाहर भीतर से एक ही रहनी रखते हैं। जिनकी बात और व्यवहार न मिलता हो, उनसे व्यवहार नहीं करना चाहिये।। लेखक—

पं० श्रीरामकुमार दासजी महाराज रामायणी। मानस तत्वान्वेषी, वेदान्त भूषण द्वारा लिखित मानस में नारी दीक्षा नामक पुस्तक से संग्रहित, प्रमाणों को पाठकगण समाहितचित से अवलोकन करें। मानस में नारीदीक्षा पृष्ट ४ से प्रारंभ श्लोक नं २ से—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्य माप्यते ॥ (शुक्ल यजुर्वेद १६। ३४) अर्थात् जब जीव भगवत् प्राप्ति का व्रत=संकल्प लेता है, तब उस ॥ व्रतेन=संकल्प से उसे, दीक्षायाम=पंच संस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र की दीक्षा ॥ आप्नोति=प्राप्त होती है। भगवत् कृपा से उसे योग्य गुरु की प्राप्ति होकर उन भगवत् स्वरूप श्रीगुरु से भगवन्मन्त्र मिलता है ॥ दीक्षाया दक्षिणाम् आप्नोति=भगवन्मन्त्र प्राप्त होने पर भगवत् निष्ठा भावना रूपी राजश्री परमैश्वर्य प्राप्त होता है ॥ दक्षिणा (दक्षिणाया)=रस भावना रूपी ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर, श्रद्धाम आप्नोति=अपनेइष्ट में श्रद्धा=रस की निष्ठा दृढ़ होजाती है ॥ श्रद्धया=दृढ़निष्ठा—रस भावना के परिपक्क हो जाने पर उसे, सत्यम् आप्नोति—सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म—रस भावनानुकूलता सत्यस्वरूप पर ब्रह्म की अखण्ड प्राप्ति होजाती है।

॥ पृ० ८ दीक्षा शब्द की निरुक्ति अर्थात् दीक्षा शब्द का अर्थ ॥

दी—दी का अर्थ है, भगवान् के रूप, स्वरूप, गुण, बिभव आदि का चरमज्ञान—जिसके आगे और कोई ज्ञान प्राप्त करना शेष नहीं रहजाता। तथा, क्षा—क्ष (संचलने) समस्त पाप समूह नष्ट होजाता है। इसी से पंडित लोग—भगवन्मन्त्र क्रिया को दीक्षा कहते हैं ॥१॥ जो समस्त पापों का नाश करके भगवत् तत्त्व का दिव्यज्ञान देनेवाली क्रिया है। महात्मा विद्वान लोग उसे दीक्षा कहते हैं। २–दयते चरमं ज्ञानं क्षीयते पाप पंजरः। आब्रह्मभुवनस्याथ तस्माद्दीक्षोच्यते बुधैः ॥ १ दिव्य ज्ञानं यतोदद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम्। तस्माद् दीक्षेतिसाप्रोक्ता देशिकैस्तत्त्व कोविदैः ॥ २

पृ० ६—यथा कांचनता याति कांस्यं रस विधानतः। तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥ पितृ गोत्री यथा कन्या स्वामि गोत्रेण गोत्रिका। तथैव विष्णु मन्त्रेणचाच्युत गोत्रेण गोत्रिका ॥ यह तो सर्वजनिक नियम हुआ। अब पाठक गणविशेष रूप से स्त्री दीक्षा के ही सम्बन्ध में पढ़ें। कुछ लोगों ने शातातप स्मृति के नाम से यावत्यर्णनिमन्त्रादेः स्त्री शूद्रेभ्योदापयेत। तावत्यो ब्रह्महत्यांहः स्वयमाह प्रजापतिः ॥ यह श्लोक लिखा है, परन्तु कई स्थलों से प्रकाशित शातातप स्मृति में

१२—दीक्षिता स्त्री प्रसंगे न जायते दुष्ट रक्तदृक् । सपातक विशुद्धयर्थं प्राजापात्यं द्वयं चरेत् ॥ (शातातपस्मृति अ० ५ श्लोक ३४) अर्थात् भगवन्मन्त्र की दीक्षा प्राप्त स्त्री जिस समय भगवदाराधन मन्त्र जाप आदि में संलग्न हो,—उस समय स्त्री प्रसंग (मैथुन) करने वाले को वह पाप लगता है जिसके करने से पुरुष दूषित रक्त जन्य रोग (गर्मी, टी० बी० आदि) होता है । अतः उस पाप से छूटने के लिये उस पुरुष को दो प्राजापत्य व्रत करना चाहिये । इस श्लोक में "दीक्षिता स्त्री" लिखकर जोर दार शब्दों में स्त्री दीक्षा की पुष्टि की गई है । कुछ अन्यत्र के प्रमाण—

१३—तांत्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि । साध्वीनामधिकारोऽस्ति, शूद्राणां चैव सद्धियाम् ॥ (हरि भक्ति विलास १-६१) अर्थात्—तांत्रिक साधनाओं में और भगवन्मन्त्र दीक्षा में, साध्वी—पतिव्रत परायणा सधवा स्त्रियों और सद्बुद्धि वाले अर्थात् भगवत्प्रेमी शूद्रों का भी भगवन्मन्त्र लेने का अधिकार है ।

१४—अगस्तसंहितायां श्रीराममन्त्रमुद्दिश्च—ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान सत् शूद्रान्सस्त्रियोऽपिवा । विष्णुभक्तिरतान् साधून् दीक्षयेद्विधिना गुरुः ॥ भगवत् भक्ति में रत (श्रद्धा करने वाले) ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, सद्बुद्धि वाले शूद्रों और सधवा स्त्रियों एवं अनान्य सज्जनों (अन्त्य जादिकों) को भी गुरु विधि पूर्वक (पंच संस्कार युक्त) श्रीराम मन्त्र से दीक्षित करें । पुनश्च—

१५—शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः । स्त्रियः पतिब्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥ (अग० सं० ८।१५) पवित्रब्रत प्रवीण, धर्मनिष्ठ—और द्विज सेवा परायण शूद्रगण, पतिव्रता स्त्रियाँ एवं अन्यान्य प्रतिलोमज और अनुलोमज, चाण्डाल प्रभृति सभी श्री राम मन्त्र प्राप्ति के अधिकारी हैं ॥

१६—क्रमदीपकायां गोपालमन्त्रमुद्दिश्यः—सर्वेषु वर्णेषु तथाऽऽश्रमेषु, नारीषु—नानाह्वयजन्मभेषु । दाताफलानामभिवांछितान् हि, द्रावेग गोपालक मन्त्र एष ॥ सभी वर्णों के नानाकुलों जातियों में जन्म लेने वाले, तथा सभी आश्रमों में रहने वाले, पुरुषों एवं स्त्रियों को श्री गोपाल मन्त्र शीघ्र मनोवांछित फल प्रदात करता है ॥

१७—बृहद् गौतमीयेः—गृहस्था वनगाश्चैवयतयो ब्रह्मचारिणः । स्त्रियःशूद्रादयश्चैव सर्वे मन्त्राधिकारिणः ॥ अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थी, और विरक्त यति सभी आश्रमों में रहने वाले, सभी वर्ण के स्त्रियों एवं पुरुषों को भगवन्मन्त्र लेने का अधिकार है ॥ पुनः १८ बृद्धहारीत स्मृतौ—ब्राह्मणाः क्षत्रीयाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथैव । मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्तशरणायदि ॥ (३।६) चारों वर्णों एवं चारों

आश्रमों के सभी स्त्री और पुरुषगण यदि भगवत् शरणागति ग्रहण की इच्छा रखते हों, तो वे भी भगवन्मन्त्र प्राप्त करने के अधिकारी हैं ।।

१९—(पंचसंस्कार संग्रहोक्त) पाराशरस्मृतौ—प्रथमं तापसंस्कारस्तापसैर्मुनिभिः—स्मृतम् । सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तम । अर्थात् हे ! द्विज सत्तम सभी वर्ण तथा सभी आश्रम के स्त्री एवं पुरुषों को मुनितापस अर्थात् विरक्तों से ही पंचसंस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र लेना चाहिये ।।

२०—ब्रह्मरात्रप्रकरणे—विद्याधर ! मनुष्येषु वैश्या शूद्रा स्त्रियोऽन्त्यजाः । सर्वेऽधिकारिणोऽप्यत्र विष्णु भक्तो यथा नृपः ।। अर्थात् हे विद्याधर मनुष्यों में सभी वर्ण वाले, वैश्य, शूद्र, नृप—क्षत्रीय, अन्त्यज और स्त्रियाँ सभी इस विष्णु भक्ति श्री वैष्णव मन्त्र के अधिकारी हैं ।। श्रीरामसार संग्रहे—

स्त्रियश्च वार्षिकेकाले दीक्षयेद् विधिना गुरुः ।। ७१ ।। किसी भी वार्षिक उत्सव के समय (विरक्त) गुरु स्त्रियों को मन्त्र देवै ।। साधक प्रश्नोत्तर मालायाम् ।—

२२—यो भवति (पालयति) यासूतेयेन विद्योपदिश्यते । जेष्ठो भ्राता च भर्ता च पंचैते गुरवः स्मृतः ।। २३—मन्त्रेणान्तर्विशुद्धिश्च, पति सेवा सहायता । पत्युश्च सेवया मुक्तिरित्यर्थं मन्त्र सेवनात् । अर्थात् जो स्त्रियाँ भगवन्मन्त्र लेती हैं, उससे उन्हें पति सेवा में सहायता मिलती है । भगवन्मन्त्र युक्त पति की सेवा से स्त्री को मुक्ति प्राप्त होती । केवल पति सेवा से तो पतिलोक अर्थात् स्वर्ग तक की ही प्राप्त है । और भगवान् श्री हरि का मन्त्र जप करते हुये पति सेवा से भगवत् कृपा से भगवत् धाम में प्रभु की प्रियता प्राप्त होती है ।। पृ० ११—

२४—सभर्तृका वा विधवा विष्णुभक्तिं करोति या । समुद्धरति चात्मानं कुलमेकोत्तरं शतम् ।। (ब्रह्माण्ड पुराणे) सधवा या विधवा जो भी स्त्री श्रीविष्णु भगवान् की भक्ति करती है । वह अपनी आत्मा तथा अपने सौ पीढ़ी का उद्धार करती हैं । अस्तु सौभग्यवती तथा विधवा सभी देवियों को हरिभक्ति करनी चाहिये ।

२५—आपस्तम्वसूत्रे— ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते, तस्माद्राजन्यवैश्या अपि ब्राह्मणा इत्येवावेदयति ।। जो कोई भी वर्ण दीक्षा लेता है, वह ब्राह्मण हो जाता है । इसी से क्षत्रिय वैश्यों को भी दीक्षा लेने पर ब्राह्मण कह देना आवेदन (मुनादी) करता है । (साधक प्रश्नोत्तर माला के लेखक एवं प्रकाशक हैं पं० श्री रामहरिदास जी शास्त्री, शाहजहाँपुर वाटिका, रमणरेती बृन्दावन)

२६—मन्त्र संस्कार सिद्धयर्थं मन्त्रदीक्षा विधं तथा । उद्वाह समये स्त्रीणां पुंसां चैवोपनायने ।। (पराशर स्मृति उत्तर खण्ड अ० १—२२ द्विजाति पुरुषों को उपनयन

(यज्ञोपवीत संस्कार) के बाद एवं स्त्रियों को विवाह के समय या प्रथम ही पंच संस्कार विधिपूर्वक भगवन्मन्त्रदीक्षा प्राप्त करने से शीघ्रही सिद्धप्राप्त होती है ।।

२७— ब्रह्मक्षत्र विशः शूद्राः स्त्रियश्चान्तरजास्तथा । सर्व एव प्रपद्येन सर्वधातारमच्युतम् ।। न जाति भेदं न कुलं न लिगं न गुणक्रियाम् । न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते ।। भरद्वाज संहिता अ० १-१४-१५ ।।

सभीवर्ण एवं अन्त्यज तक के स्त्री पुरुष भगवन्मत्र ग्रहण करके भगवत् शरणागत हों (ऐसी शास्त्राज्ञा है) १४ ।। भगवन् मन्त्र लेने के लिये जाति भेद, कुल भेद स्त्री पुरुष लिंग भेद, पावनापावन देश भेद, काल-मास नक्षत्र, दिन तिथि आदि का भेद और बाल युवा बृद्ध अवस्था का भेद की अपेक्षा (विचार) नहीं करना चाहिये ।

२६—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रोनारी तथेतरः । चक्राद्यैरंकयेद् गात्रमात्मीयस्याखिलस्य च ।। (भारद्वाज संहिता अ० ३-५६ ।। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र इतर अन्त्यज स्त्री पुरुषों को भगवन्मन्त्र दीक्षा देने के पूर्व शंख चक्र धनुषबाणआदि भगवदायुधों से उसके अंग बाहु को अंकन करे ।

३०—तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद् द्विजः । सर्वाश्रमेषु बसतां स्त्रीणाँ श्रुतिनोदनात् ।। (बृद्ध हारीतस्मृति अ० २-३३) श्रुतिका संकेत [नोदना - प्रेरणा) तो ऐसी है कि सभी आश्रमों के द्विजाति स्त्री पुरुषों को भगवान् का धनुर्बाण चक्रादि तप्त आयुधों को धारण करना चाहिये ।। यदि भगवत् भक्ति करके कृतार्थ होना हो ।

प्र० १२ नं० ३१—गोमती तन्त्र प्रथम अध्याय में गौतमजी ने नारदजी से प्रार्थना की है कि—भगवन् ! कामदा मन्त्रा शूद्रास्त्र्याधिकारकः । येनसर्वफलावाप्तिः, सर्वेषां बन्धुरेव च ।। ६ ।। सर्ववर्णाधिकारश्च, नारीणां योग्य एव च । तं ब्रूहि भगवन्मन्त्रं, मम सर्वार्थसिद्धये । ७ । हे भगवन् ! जो मन्त्र सभी कामनाओं का पूर्ति करने वाला हो जिसमें स्त्री शूद्रादि का भी अधिकार हो, जिस मन्त्र से सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो जाती हो, जो सबका हितकारक हो ।। ६ ।। जिस मन्त्र में सभी वर्णों का अधिकार हो, और जो मन्त्र स्त्रियों के भी योग्य हो, मेरी सभी कामनाओं को पूर्ति के लिये, आप मुझे उस मन्त्र का उपदेश कीजिये ।७।।

३२—नारद पाँचरात्रीय जयाख्य संहिता के सोलवें पटल में नारदजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि—श्रोतु मिच्छामि भगवन् ! दीक्षा लक्षणमुत्तमम् । नौष्टिकानां तथा स्त्रीणां, शिशूनांभावितात्ममाम् ।।

हे भगवन् ! दीक्षा के उत्तम लक्षण सुनने की मेरी इच्छा है । जो ब्रह्म-

चारियों तथा स्त्रियों, बालकों एवं सभी भावुकों के लिये आवश्यक हों ॥ इस पर बड़े विस्तार से विधि बताकर तब भगवान् ने कहा कि—३३—अविरुद्धाँस्तथाऽक्लिष्टान्, स्त्रीं बालानां च नारद । स्त्रीणां विशेषतो दद्यात्, पतिभक्तिसमन्वितान् ॥ ना० पा० रा० ज० सं० प० १६-श्लोक ३३० ॥ हे नारदजी ! [यह श्रीराममन्त्र] शास्त्रानुकूल और अत्यन्त सरल है । स्त्रियों, बालकों को उपयोगी है, विशेषतः पतिव्रतास्त्रियों को अवश्य लेना चाहिये ॥ नोट—मन्त्र जापक स्त्री की सन्तान भगवत् कृपा से सुशील एवं भगवत् भक्ति परायण होगी ।

३४—पुरुषं वा स्त्रियं वापि दीक्षयेत् सूर्यमण्डले ॥ भविष्य पुराण ब्रह्माण्ड-खण्ड अ० १०६ श्लोक २२॥ दीक्षित स्त्री अथवा पुरुष सूर्यमण्डल मार्ग से परमधाम को प्राप्त होते हैं ।

३५—नास्ति येषां गुरुर्नृणां नारीणां वापि मन्त्रदः । न तेषां वदनं वीक्ष्यते, गतिश्चैषां न विद्यते ॥ शा० स० अ० २४—६७ ॥ जिन पुरुषों एवं स्त्रियों ने भगन्मन्त्र की दीक्षा न ली हो, उनका मुख नहीं देखना चाहिये । उनकी उत्तमगति नहीं होती है ।

३६—यद्यदीक्षारतास्तास्तु देयादीक्षातदा प्रभो (रुद्रयामल—२८-४८)

३७—स्त्रिया सहैव कर्तव्यं, गृहस्थस्य विधानतः । संस्कारपंचकं येन, भवेत् सा धर्मचारिणी ॥ (बृहद् ब्रह्म संहिता) गृहस्थ पुरुष को अपनी पत्नी के साथ ही-साथ पंचसंस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिये । इससे वह स्त्री धर्म-चारिणी होती है । इसलिये बुद्धिमान सज्जनों को उचित है, कि वह अपनी स्त्री को किसी योग्य महान पुरुष, विरक्त सदाचार परायण भगवत् भक्ति रसरंजित चित्तवाले संत से भगवन्मन्त्र की दीक्षा दिलादें । स्त्री को गुरु नहीं बनाना चाहिये, इस भारी भ्रम में भूले रहना उचित नहीं है । भगवन्मन्त्र बीज है जिज्ञासु स्त्री पुरुषों का हृदय सुन्दर भूमि है । श्रीगुरुदेव कृषक समान कान में मन्त्र सुना करके मन्त्ररूपी बीज बोते हैं तब सतसंग रूपी जल पाकर भाव रूपी अंकुर निकलता है, सदाचार ही खाद है उससे भावरूपी वृक्ष बढता है, जीवन में संयम नियम फूल फल हैं । और भगवान श्रीहरि के चरणों में प्रेम होना उसभाव रूपी पेंड़ के फलों का रस है । स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें युवा, वृद्ध, सभी के जीवन में रस की परमा आवश्यकता एवं माँग है । तब बिचारिये कि रस के अभाव में किसी का भी जीवन पूर्ण नहीं हो सकता है । तब बेचारी स्त्री भगवत् रस के बिना कृतार्थ कैसे होगी ॥ पृ० १३-१४ पुस्तक से लिखा गया है ।

१५—व्रतं कुरु महाभागे. त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । तस्माद्गृहाणगिरि, ! हरेर्मंत्रं सुदुर्लभम् ॥ (ब्रह्म वैवर्त पुराणगणपति खण्ड अ० ४ श्लोक ३१-३६) हे महाभागे तीनों लोकों में दुर्लभ व्रत करो ॥ ४।३१ ॥ इसलिये हे गिरिजे प्रथम अत्यन्त दुर्लभ भगवन् मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करो ॥ ३-३६ ॥ इसी बात को पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के अध्याय २५४ में श्री वशिष्ठ जी ने राजा दिलीप को कुछ विस्तार के साथ बताया है। देखिये रुद्र उवाच—

गुरुपदेश मात्रेण, पूजयित्वैव केशवम । प्राप्नोति वांच्छितं सर्वं नान्यथा भूधरात्मजे ॥ ७ ॥ हे गिरिजे ! जो गुरु के मन्त्रोपदेश मात्र से भगवत् पूजन करता है, वह समस्त मनोवांच्छित फलों को प्राप्त करता है। मेरा वाक्य अन्यथा नहीं है ॥७॥ वशिष्ठ जी ने बताया कि हे राजन्—एवमुक्ता तदा देवी, वामदेवान्तिकं नृप । जगाम् सहसा हृष्टा, विष्णुपूजन लालसा ॥ ८ ॥ समेत्य गुरुं तं देवी पूजयित्वा प्रणम्य च । विनीता प्रांजलिभूत्वा उवाच मुनि सत्तमम ॥ ९ ॥ शिव जी के ऐसा कहने पर देवी श्री पार्वती जी भगवत्पूजन की लालसा से प्रसन्नचित्त से तुरन्त श्री वामदेव महर्षि के निकट गईं ॥ ८ ॥ उन मुनि श्रेष्ट वामदेव जी को गुरु बनाने के लिये उनके समीप जाकर नम्रता पूर्वक प्रणाम पूजन किया, और हाथ जोड़कर बोलीं ॥ ९ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन, सम्यगाराधनं हरेः । करिष्यामि द्विज श्रेष्ठ, त्वमनुज्ञातु मर्हसि ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप की कृपा से मैं भगवान् श्री हरि का सविधि पूजन करना चाहती हूँ। इसलिये हे द्विज श्रेष्ठ ! आप मुझे आज्ञा (दीक्षा) दीजिये ॥ १० ॥ श्री वशिष्ठ जी बोले कि—इत्युक्ता तदादेव्या, वामदेवो महामुनिः । तस्यै मन्त्रवरंश्रेष्ठं, ददौ सविधिना गुरुः ॥ ११ ॥ देवी श्री पार्वती जी के ऐसा कहने पर तब महामुनि श्री वामदेव जी ने श्री पार्वती जी को विधि पूर्वक परम श्रेष्ठ भगवन्मन्त्र देकर उनके गुरु बने ॥ ११ ॥ भागवत स्कन्ध ४ अ० ३ श्लोक १३ में सती जी ने शिव जी की प्रार्थना की है कि—कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं, निशम्य देहः सुरवर्य नेगते । अनाहुता अप्यभियान्ति सौहृदं, भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम ॥ यहाँ पति गुरु और पिता इन तीनों के घर बिना बुलाये जाने को धर्म सम्मत कहती हैं। यदि स्त्रीको गुरु बनाना निषेध होता, तो गुरु के घर जाना कैसे कहतीं। श्री रामचरित मानस में इस श्लोक का अनुवाद है। यथा—जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु देहा । जाइय बिनबोले न सँदेहा ॥ बा० का० दो० ६२ पं० ५ पृ० ६- वाल्मीकीय रामायण में महाराज श्रीदशरथ जी के साथ श्री कौशल्या जी आदिक रानियों का दीक्षा लेने का स्पष्ट वर्णन है।—ततः गत्वा ताः पत्नी, नरेन्द्रो हृदयंगमाः । उवाच दीक्षां विशत, येयक्ष्ऽहं सुतकारणात् ॥ वा० रा० बा०

कां० सर्ग ८ श्लोक २४ ॥ वहाँ यज्ञस्थल में जाकर राजा श्री दशरथ जी ने अपनी तीनों रानियों से कहा कि—(अब श्री बशिष्ठ जी से) दीक्षा ग्रहण करो । मैं पुत्र के लिये यज्ञ करूँगा ॥ यज्ञवाटं गताः सर्वे, यथा शास्त्रं यथाविधिः । श्री माँश्च पत्नी भिराजा दीक्षामुपाविशत् ॥ वा० रा० वा० कां० १३ सर्ग ४० श्लोक ॥ सब कोई यज्ञमण्डप में गये । वहाँ जाकर राजा श्री दशरथ जी ने अपनी सभी (प्रधान तीनों) रानियों समेत (श्री बशिष्ठ से) दीक्षा ग्रहण की ॥ यह तो पति पत्नी की साथ साथ दीक्षा हुई । अब कुमारी कन्याओं के मन्त्र दीक्षा लेने का प्रमाण देखिये । श्री पार्वती जी ने बिवाह के पूर्व ही श्री नारद जी से शिवमन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी। शिव पुराण रुद्र संहिता पार्वती खण्ड अध्याय २१ में श्री पार्वनी जी ने श्री नारद जी से कहा कि—त्वंतु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो । रुद्रस्याराधनार्थाय मन्त्रं देहि मुने हि मे ॥ ३१ ॥ नहिं सिद्धयति क्रिया कापि, सर्वेषां सद्गुरुं विना । मयाश्रुता पुरा सत्या, श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३२ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः, पार्वत्या मुनिसत्तमः । पंचाक्षरं शम्भु मन्त्रं, विधिपूर्वमुपादिशः ॥ ३३ ॥ हे मुने ! आप सर्वज्ञ हैं । संसार का उपकार ही किया करते हैं अतः हे प्रभो ! श्री शंकर जी का आराधन करने के लिये, मुझे मन्त्र दीक्षा दीजिये ॥ ३१ ॥ सनातनी श्रुति कहती है कि—(श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ) सद्गुरु के बिना, किसी विद्या, (क्रिया) की सफलता नहीं होती । यह मैंने सुना है ॥ ३२ ॥ श्री पार्वती जी की ऐसी प्रार्थना सुनकर मुनिवर श्री नारद जी ने विधि पूर्वक श्री शिव जी का पंचाक्षर मन्त्रोपदेश किया ॥ ३३ ॥ पृथा (श्रीकुन्तीजी) जब कुमारी कन्या थीं, तभी श्री दुर्वासा जी ने उन्हें मन्त्र दिया था । देखिये महाभारत आदि पर्व अध्याय ११० श्लोक ६ ॥ तस्यै स ददौ मन्त्रमापद्धर्मान्व वेक्षया ॥ पुनः स्कन्द पुराण ब्रह्मोत्तर खण्ड अध्याय ३ के श्लोक एक तथा २० देखिये । तस्मात् सर्वप्रदो मन्त्रः, सोऽयं पंचाक्षर स्मृतः । स्त्रीभिः शूद्रैश्चै संकीर्णैर्धार्यते मुक्ति कांक्षिभिः ॥ ३-१-२० ॥ यह पंचाक्षर मन्त्र सब कुछ देने वाला है । इसलिये भुक्ति मुक्ति चाहने वाले द्विजातियों के अतिरिक्त संकीर्ण (वर्ण शंजर अन्त्यज) स्त्री और शूद्र आदि सभी को मन्त्र लेना चाहिये ॥ २० ॥

पृ० १७—अतः सद्गुरुमाश्रित्य, ग्राह्योऽयं मन्त्र नायकः । पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः, सद्यः सिद्धि प्रयच्छति ॥ २४ ॥ अतः श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ गुरु की शरण में जाकर मन्त्रराज प्राप्त करे । यदि शीघ्र ही सिद्धि चाहे तो श्री अयोध्या जी, जनकपुर, चित्रकूट, बृन्दावन, काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि पुण्य क्षेत्रों (पवित्र स्थानों) में जाकर विधि पूर्वक श्री मन्त्रराज का जप करै ॥ २४ ॥

इसी अध्याय में कथा है कि—पुराकाल में अर्थात् पुराने समय में मथुरा नरेश दाशार्ह का ब्याह काशी नरेश ने अपनी कन्या कलावती के साथ करदिया, राजा दाशार्ह ने रानी कालावती का अंग बलात् स्पर्श किया, तो वह तप्त लौह [गरम लोहे] के पिण्डवत् जलता हुआ मालूम पड़ा, तब राजा ने कारण पूछा कि—कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥४३॥

परम सुकुमार तुम्हारा शरीर अग्नि के समान गर्म क्यों हैं ॥ तब रानी कलावती ने बताया कि—राजन् ! ममपुरा बाल्ये, दुर्वासा मुनि पुङ्गवः शैवीं पंचाक्षरीं विद्यां, कारुण्येनोपदिष्टवान ॥४५॥ हे राजन् ! कई वर्ष पूर्व जब मैं छोटी बालिका थी, उस समय मेरे माता पिता के कहने पर, मुनिश्रेष्ठ श्रीदुर्वासाजी ने मुझे श्री शिवजी का पंचाक्षरी मन्त्र दिया था ॥४५॥ इसी गुरुमन्त्र के प्रभाव से पापी मुझे स्पर्श नहीं कर सकते हैं (और आप मद्यपान, पर स्त्रीगमन, वेश्या गमन, मांस भक्षण एवं मिथ्या भाषण आदि पापों से दूषित हैं। नित्य स्नान नहीं करते, ईश्वराराधन मन्त्र जप भी नहीं करते, तब मुझ कैसे छू सकते हैं। ऐसा सुनकर जब राजा ने रानी से ही मन्त्र दीक्षा देने को कहा तब रानी ने बताया कि—नाहं तवोपदेशं वै, कुर्यां मम गुरुर्भवान। उपातिष्ठ गुरुं राजन, गर्गं मन्त्र विदांवरम् ॥ ५०॥ इति संभाष माणौ तौ, दम्पती गर्ग सन्निधिम्। प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना, ववन्दाते कृतांजली ॥५१॥ गुरुवर्यमनुप्राप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥६९॥

हे राजन ! आप मेरे पति देव होने से गुरुजनों के समान पृज्य हैं। अतः मैं आपको मन्त्रोपदेश कैसे कर सकती हूँ। मेरे गुरुदेवजी श्रीदुर्वासाजो तो इस समय पता नहीं कि कहाँ बिचरण कर रहे हैं। अतः यहाँ राजधानी में ही निवास करने वाले, मन्त्र तत्त्व विशारदों में श्रेष्ठ, श्रीगर्गाचार्यजी के पास चलकर; आप दीक्षा ग्रहण कीजिये ॥ ५० ॥ इस प्रकार बिचार करके, दम्पति (राजारानी) दोनों श्रीगर्गाचार्य के पास जाकर कृताञ्जलि होकर चरणों में भेंट पूजा रखकर) उनके चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किये। ५१॥ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ गुरु से दीक्षा पाकर वे दम्पति (राजारानी) दोनों बहुत प्रसन्न हुये। ६९॥

अतः पति पत्नी में परस्पर एक दूसरे को मन्त्रदीक्षा नहीं देनी चाहिये। और स्त्रियों को पिता से भी मन्त्रदीक्षा नहीं लेनी चाहिए। यह शास्त्रीय विधान है, फिर भी कुछ हठवादी व्यक्ति हठकरके ऐसा कहते हैं कि—स्त्री का तो पति ही गुरु है। किन्तु शास्त्रों में पति अपनी पत्नी को मन्त्रदीक्षा दे; ऐसा विधान नहीं है। मन्त्रदाता तो पिता के समान पूज्य होजाता है। यदि पति ही पत्नी को मन्त्रदीक्षा देवे तो वह भी

उस स्त्री के पिता समान हो जायेगा, तब फिर स्त्री पुरुष का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा। मन्त्र देने के बाद यदि पति अपनी पत्नी से समागम करेगा तो पुत्री के साथ समागम करने का महान पापात्मा माना जायेगा। इसलिये पति अपनी पत्नी को स्वयं मन्त्र दीक्षा नहीं दे सकता। देखिये ब्र० वै० पु० ब्र० ख० अ० २४

पत्युर्मन्त्रं न गृह्णीयाद्वै विचक्षणः ।। ४३ ।। यदि वे गृहस्थाश्रम में रहते हों अर्थात विरक्त न हो गये हों, तब पति और पिता से मन्त्र दीक्षा नहीं लेना चाहिये। किन्तु यदि स्त्री के पिता एवं पति विरक्त होकर वन में रहकर भगवत्भजन करते हों, तो उनसे मन्त्र दीक्षा ली जा सकती है। क्यों कि उनके जागतिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। तब केवल जीव कल्याण मात्र की भावना ही शेष रहती है। अपनापन गल जाता है। और जब तक पति को काम बासना पूर्वक पत्नी से प्यार करना है, तब तक किसी भी प्रकार वह पत्नी का गुरु नहीं हो सकता है। एक बात का विशेष ध्यान रहे कि—श्री वशिष्ठ जी, पाराशर जी, आदि जब बाणप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट हो गये थे—तब उनके पुत्रों ने उनसे मन्त्र दीक्षा ली थी।

पृ० १८–[अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः] सधवा अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ तीर्थ व्रत, उपवास, दान आदि सभी कार्य एवं मन्त्र दीक्षा पति से आज्ञा माँग कर करें। और बुद्धिमान पुरुष को भी उचित है कि वह अपनी पत्नी को मंगल कामना की भावना से उसे अपनी सेवा करने के बाद भगवत् भजन पूजन करने की सहर्ष अनुमति प्रदान करे। यदि पत्नी भगवत् भक्ति करनी चाहती है, किन्तु पति मना करेगा तो पति को भी प्राइश्चित्त लगेगा। यह सर्वथा सत्य है कि श्री हरिभजनन किये बिना पति या पत्नी दोनों में से किसी को जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं मिलेगी। हाँ पति की सेवा से पति प्रसन्न रहेगा तो मरने पर स्वर्ग तक जा सकती है। पुण्यक्षीण के बाद पुनः संसार चक्र में आना पड़ेगा। विचार कीजिये कि पतिव्रत का पालन करना तपस्या है, तपस्या से मुक्ति प्राप्त होती है ऐसा शास्त्रीय प्रमाण नहीं है ।। तपस्या से तो ब्रह्मलोक तक का वैभव ही प्राप्त हो सकता है। भगवत प्राप्ति या मुक्ति तो ब्रह्म [भगवान् श्री हरि] की उपासना से ही होना संभव है। अन्यथा नहीं।

स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन, कर्त्तव्यं धर्मबर्द्धनम्। विधवाभिश्च कर्त्तव्यं, मोक्ष-सौख्याभिवृद्धये ।। स्कन्द पु० वैष्णव ख० कार्तिक माहात्म्य अ० ३२ श्लोक ५३ ।। सौभाग्यवती स्त्री को पति की आज्ञा से धर्म करने पर उसका फल कई गुना बढ़ जाता है। मोक्षसुख प्राप्त करने के लिये विधवा स्त्री को भी श्री हरि भजन करना चाहिये ।।

नोट—उपर्युक्त श्लोक में लिखा है कि पति की आज्ञा से पत्नी धर्म करेगी तो कई गुना फल बढ़ जायेगा। तब बुद्धिमान पति का परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी सेवा से अवकाश पाने पर अपनी पत्नी को सद्धर्म कर्म करने की सत शिक्षा दे, भगवत् भजन में लगावे, तभी पति पत्नी का कल्याण कर सकता है। अन्यथा संभव नहीं है।

मन्त्र महार्णव में देखिये—

यदि पूजाद्यशक्ता स्याद् द्रव्या भावेन सुन्दरि। केवलं जपमात्रेण पुरश्चर्या विधीयते ॥ नियमा पुरुषो ज्ञेयो न योषित सु कदाचन। न न्यासा योपितानां च न ध्यानं च पूजनम् ॥

द्रव्य के अभाव से विस्त्रित रूपेण पूजा और पुरश्चरण करने की शक्ति न हो, तो केवल भगवन्मन्त्र का जप ही से पुरश्चरण हो जाता है। अंगन्यास करन्यास, अक्षरन्यास आदि पूर्वक ध्यान पूजन का नियम केवल पुरुषों के लिये ही है स्त्रियों के लिये नहीं ॥ केवलं जपमात्रेण मन्त्रासिद्धर्तियोषिताम् ॥ केवल जपमात्र से ही मन्त्र स्त्रियों को सिद्धि देता है। अथवा केवल मन्त्र जप से ही स्त्रियों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥

दक्षिणपथ के बाष्कल ग्राम में रहने वाली, 'बन्दुला नामक पतिता ब्राह्मणी की कथा वर्णित है, कि जिसने गुरु दीक्षा लेकर अपना और अपने पति का उद्धार किया, उसकी कथा स्कन्ध पु० में विस्तार है ॥

पृ० १६ में—इत्थं सद्गुरुमाश्रित्य सा नारी प्राप्त सन्मतिः। दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं बपुः ॥ १ ॥ गुरु सुश्रूषणरता त्यक्तापत्य सुहृज्जनाः। गुरुपदिष्टे-योगेन शिवमेवमतोष यत् ॥ २ ॥ इस प्रकार सद्बुद्धि पाकर वह स्त्री बार बार शंकर जी के चिन्मय विग्रह का ध्यान करती हुई ॥ १ ॥ पुत्र परिवारादि सुहृज्जनो को छोड़ कर गुरु की सेवा में लग गई और गुरु जी के बताये योग्य (अनुष्ठान) से शिव जी को प्रसन्न कर लिया ॥ २ ॥ ब्रह्मवैवर्त पु० के चतुर्थ श्री कृष्ण जन्म खण्डान्तरगत नहुषोपाख्यान के इन्द्र दर्पभंग अध्याय ५६ में बर्णन है कि—नहुष के कारण उप-स्थित महाविपत्ति के समय में इन्द्राणीशची ने अपने गुरु की कृपा से निस्तार पाया। शोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता। तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मनिष्ठं च कृपानि-धिम् ॥ १३८ ॥ मन्त्राद्यु द्गारिणैव गुरुरित्युच्यते बुधैः। अन्यो वन्द्यो गुरु यमन्य-श्चारोपितो गुरुः ॥ १४६ ॥ अदीक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृनिर्नास्ति निश्चितम् ॥ १४८ ॥

॥ ॐ नमः श्री सद्गुरवे ॥

श्री गुरुअर्चन पद्धति

अज्ञान—निद्राशयति जीव के लिये सर्व प्रथम भगवती श्रुति का उद्बोध है कि उठो, जागो, सद्गुरु की प्राप्ति कर स्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। तदनन्तर श्रुत्यनुसार जीव श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास अत्यन्त दैन्य भावापन्न होकर जाता है एवं आत्म समर्पण कर अर्चा विग्रह की भाँति ब्रह्मतया षोडशोपचार पूजन करता है, जो आत्म-बोध का परम कारण होता है।

प्रस्तुत गुरु अर्चा पद्धति में गुरु अर्चा के मंत्र हैं जिनका सरल हिन्दी टीका कर सर्व सामान्य के लिये सुलभ कराने का तुच्छ प्रयास किया गया है।

ध्यान—सीताराम समारम्भां, रामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु – परम्पराम् ॥

अर्थः—(जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व के परम कारण) श्री सीताराम जी महाराज से प्रारम्भ होने वाली एवं जिसके मध्य में जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य हैं तथा जो हमारे सद्गुरुदेव पर्यन्त स्थित हैं, ऐसी श्रीगुरु-परम्परा को प्रणाम करता हूँ ॥१॥

आवहन मंत्र—आगच्छन्तु महाभागाः सीताराम परायणाः।
पूजां गृह्णन्तु मद्दत्तां: भगवत्प्रीति हेतवः ॥
नमोऽस्तुवोऽस्मदाचार्याः; इहागच्छत तिष्ठत।
निर्दिष्टे स्वस्थाने स्थित्वा गृह्णन्तु मम पूजनम् ॥

अर्थः—हे महाभाग ! आप सब श्री सीताराम जी महाराज के उपासक हैं एवं भगवत्प्रीति की प्राप्ति के परम कारण हैं, अर्थात् बिना आपकी कृपा के भगवत्प्रेम मिलना कठिन है, अतः मेरे द्वारा दी गई पूजा ग्रहण करें ॥२॥ हे हमारे आचार्य गण ! हम आपको नमस्कार करते हैं, आप यहाँ पधारें। अपने निर्दिष्ट स्थान (चौकी में बनाये गये प्रकोष्ठ) में स्थित होकर मेरी पूजा ग्रहण करें ॥३॥

आसन मंत्र—सुवर्ण रचितं दिव्यं दिव्यास्तरण शोभितम्।
आसनं हि मयादत्तं गृहाणाचार्य पुङ्गव ॥

अर्थः—हे आचार्य प्रवर ! स्वर्ण निर्मित एवं दिव्य अस्तरण (बिछावन) से सुशोभित, हमारे द्वारा दिया गया दिव्यासन आप ग्रहण करें ॥४॥

पाद्यसमर्पणमंत्र— इदं पाद्यं मयादत्तं दिव्यं सुप्रीत वाहकम्।
गृहीत्वा सुस्थितो भूत्वा पाद-प्रक्षालनं कुरु ॥

अर्थः--मेरे द्वारा दिये गये इस दिव्य एवं प्रीति वर्धक पाद्य को ग्रहण करके सुन्दर ढंग से विराज कर चरण प्रक्षालन करें ॥५॥

अर्घमंत्र—दिव्यौषधि रसोपेतं दिव्य सौरभ संयुतम् ।
तुलसी पुष्प दर्भाढ्यमर्घ्यम्मे प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--श्रेष्ठ औषधियों के रसों से यक्त एवं सुन्दर सुगन्ध से युक्त, जिसमें तुलसीदल, पुष्प एवं कुश मिला हुआ है, ऐसे मेरे अर्घ्य को आप ग्रहण करें ॥६॥

आचमनमंत्र—सुगंध वासितं दिव्यं निर्मलं सरयूदकम् ।
गृहाणाचमनं नाथ ! पार्षदैः सह सद्गुरो ॥

अर्थ--हे श्रेष्ठाचार्यदेव ! दिव्य गंध से सुवासित, निर्मल सरयू जल को ग्रहण कर अपने परिकरों के साथ आचमन करें ॥७॥

मधुपर्क मंत्र—नमो वै गुरुवर्याय तत्वज्ञान प्रदर्शिने ।
मधुपर्कं गृहाणेम प्रसन्नोभव शान्तिद ॥

अर्थः--हे शान्ति प्रद ! तत्वज्ञान का दर्शन कराने वाले एवं सद्गुरु आपको नमस्कार है । आप प्रसन्न होइये और इस मधुपर्क को ग्रहण करिये ॥८॥

पंचामृत स्नानमंत्र—पञ्चामृतं मयानीतं पयोदधि घृतं मधु ।
युतं शर्करया देव ! गृहाण मम सद्गुरो ॥

अर्थ--हे सद्गुरो ! हे देव ! दूध दही, घृत, मधु एवं शक्कर से युक्त मेरे द्वारा लाये गये पंचामृत को आप ग्रहण करिये ॥९॥

शुद्धोदक स्नानमंत्र—दिव्य तीर्थहृतै स्तोयैस्सर्वौषधि समन्वितैः ।
स्नापियामि च त्वां भक्त्या स्नानीय प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--दिव्य तीर्थों से लाये गये एवं सर्वौषधियों से युक्त जल से मैं आपको भक्ति पुर्वक स्नान कराता हूँ आप इस स्नानीय जल को ग्रहण करिए ॥१०॥

वस्त्र समर्पणमंत्र—संतप्त काञ्चन प्रख्यं पीताम्बरं वरं प्रभो ।
गृहाणेदं मयादत्तं गुरुवर्य नमोऽस्तुते ॥

अर्थः--तपाये गये स्वर्ण की तरह देदीप्यमान श्रेष्ट यह पीताम्बर जो मेरे द्वारा दिया गया है, हे प्रभो ! आप ग्रहण करिये। हे आचार्यवर ! आपको नमस्कार है ॥११॥

यज्ञोपवीत अर्पण मंत्र—यज्ञोपवीतं सौवर्णं मयादत्तं जगद्गुरो।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद करुणानिधे ॥

अर्थः--हे जगद्गुरो ! स्वर्ण तन्तुओं से निर्मित, मेरे द्वारा दिया गया यह यज्ञोपवीत, आप हमारे सम्मुख होकर ग्रहण करें - और हे करुणानिधान ! आप प्रसन्न होइये ॥१२॥

आभूषण समर्पण मंत्र—तेजसं रत्न संयुक्तं दिव्यालङ्करणं शुभम्।
महार्हञ्च मयादत्तं भूषणं प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--तेजस्तत्व से समुद्भूत, रत्नों से युक्त. अंगों को अलंकृत करनेवाले, शुभ, दिव्य एवं अत्यन्त कीमती आभूषण जो मेरे द्वारा दिया गया है, आप ग्रहण करें ॥१३॥

सुगन्ध समर्पण मंत्र—प्रधान देवनीयश्च सर्वमङ्गल कर्मणि।
गृह्यताञ्च दयासिन्धो गन्धोऽयं सुरभिप्रदः ॥

अर्थः--हे दयासिन्धो ! सभी मङ्गल कार्यों में जो प्रधान द्रव्य माना जाता है, ऐसा सुगन्ध से युक्त यह गन्ध ग्रहण करें ॥१४॥

चन्दन समर्पण मंत्र—मलयाचल सभूतं शीतमानन्द वर्धकम्।
काश्मीर घन साराढ्यं चन्दनं प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः—मलयाचल में उत्पन्न होनेवाला, शीतल एवं आनन्दवर्धक, तथा केशर कपूर से युक्त चन्दन ग्रहण करें ॥१५॥

उत्तरीयवस्त्र समर्पण मंत्र—नमः श्री गुरूवर्याय नमः मङ्गल मूर्तये।
उत्तरीय मिदं वस्त्रं गृहाण करुणानिधे ॥

अर्थः– मंगल मूर्ति श्री आचार्य प्रवर के लिये नमस्कार है। हे करुणा-निधान ! इस उत्तरीय वस्त्र को आप ग्रहण करें ॥१६॥

तुलसी समर्पण मंत्र—कोमलानि सुगन्धानि मञ्जरी संयुक्तानि च।
तुलस्या सुदलान्येव गृहाण भगवत्प्रिय ॥

अर्थः--हे भगवत्प्रिय ! कोमल एवं सुगन्धित मन्जरी युक्त तुलसीदलों को आप ग्रहण करें ॥१७॥

पुष्प माला समर्पण मंत्र—सौरभाणि सुमाल्यानि सुपुष्प रचितानि च ।
नाना विधानि पुष्पाणि गृह्यतां जगतां गुरो ॥

अर्थः—हे जगद्गुरो ! सुगन्धित एवं सुन्दर पुष्पों के द्वारा रचित मालायें एवं नाना प्रकार के पुष्पों को आप ग्रहण करें ॥१८॥

दूर्वा-पत्र-पुष्पांकुरादि समर्पण मन्त्र—

दूर्वादल समायुक्तं पत्रं पुष्पं सहांकुरम । यवं तिलं महाभाग ! गृह्यताम पार्षदैः सह ॥

अर्थः—हे महाभाग ! पत्र पुष्पांकुरादि के सहित दूर्वादल एवं तथा तिल को पार्षदों के साथ ग्रहण करें ॥१९॥

धूप समर्पण मंत्र—वनस्पति रसोत्पन्नं सुगंधाढ्यं मनोहरम ।
धूपं गृहाण ज्ञानीश ! प्रसन्नो भव शान्तये ॥

अर्थः--हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! बनौषधियों के रसों से निर्मित सुगन्धित एवं मनोहारी धूप को आप ग्रहण करें तथा हमारी शान्ति के लिये प्रसन्न होवें ॥२०॥

दीप समर्पण मन्त्र—घृतवर्ति समायुक्तं कर्पूरादि समन्वितम ।
दीपं गृहाण विज्ञेश ! मम सिद्धि प्रदोभव ॥

अर्थ--हे विज्ञों के नायक ! कपूर इत्यादि द्रव्यों एवं घृत की बाती से युक्त दीपकों आप ग्रहण करें तथा मेरी सिद्धियों को देने वाले होंवे ॥२१॥

नैवेद्य समर्पण मंत्र—पूप मोदक संयाय पयः पक्वादिकं वरम् ।
यथाशक्तिं मयादत्तं नैवेद्यं प्रति गृहयताम ॥

अर्थः--पूप (पूआ) लड्डू, हलुवा, दूध ऐवं श्रेष्ठ पकवानों को जो यथा शक्ति मेरे द्वारा दिये गये हैं, ऐसे भोग को आप ग्रहण करें ॥२२॥

जल समर्पण मन्त्र—शीतलं स्वादु शुद्धञ्च परातृप्तिकर जलम ।
समस्त जगतामीश ! प्रीत्यर्थं प्रति गृहयताम् ॥

अर्थः—हे समग्र विश्व के स्वामी ! शीतल, स्वादिष्ट, शुद्ध एवं अत्यन्त तृप्ति देने वाले जल को हमारी प्रीति रक्षण के लिये आप ग्रहण करें ॥२३॥

आचमन मंत्र—सर्वौषधिरसोपेतं सौरभं सरयूदकम् ।
आचम्यश्च मयादत्तं गृहाण करुणानिधे ॥

हे करुणानिधान ! सर्वौषधियों के रस से युक्त अतः सुगन्धित सरयू जल आचमन के लिये मेरे द्वारा दिया गया है अतः इसे आप ग्रहण करें ॥२४॥

फल समर्पण मंत्र—इदं फलं मयादत्तं स्थापितं पुरुतस्तव ।
गृहीत्वा देहि मे भक्ति भगवत्प्रीति कारिणीम् ॥

अर्थः--मेरे द्वारा दिया गया यह फल आपके सामने रखा है अतः आप इसे ग्रहण करके भगवान् की प्रीति प्रदान करने वाली भक्ति मुझे प्रदान करें ॥२५॥

ताम्बूल समर्पण मंत्र—ताम्बूल पूङ्ग संयुक्तं चूर्ण खदिर संयुतम् ।
लवङ्गादि युतं चैव भक्ति भाक् प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--हे भक्ति भाजन गुरुदेव ! सुपाड़ी, चूना, कत्था एवं लवङ्ग आदि मशालों से युक्त ताम्बूल ग्रहण करें ॥२६॥

नीराजन समर्पण मंत्र—कर्पूरवर्ति संयुक्तं गोघृतेन सुपूरितम् ।
नीराजनं गृहाणेदं कृपया भक्तवत्शल ! ॥

अर्थ--हे भक्तवत्सल ! गाय के घी से पूरित एवं कपूर की वत्तियों से युक्त इस नोजाञ्जन (आरती) को आप कृपा पूर्वक ग्रहण करें ॥२७॥

पुष्पांजलि मंत्र—मणि सौवर्ण्य माल्यैश्च युक्तं पुष्पाजलि प्रभो ।
संगृहाणास्मदाचार्य कृपया भक्तवत्शल ॥

अर्थः--हे भक्तवत्सल हमारे आचायदेव ! मणि एवं सोने की मालाओं से युक्त इस पुष्पाञ्जलि को आप कृपा करके ग्रहण करें ॥२८॥

श्री फल समर्पण मंत्र—श्री फलं स्वादु दिव्यश्च सुधाधिकतरं प्रियम् ।
सदक्षिणं गृहाणेदं प्रणतार्ति हरप्रभो ॥

हे प्रपन्न दुख भञ्जन प्रभो ! अमृत से भी अधिक प्रिय, स्वादिष्ट तथा दिव्य इस श्री फल (नारियल) को दक्षिणा के साथ आप ग्रहण करें ॥२९॥

प्रार्थना—अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अर्थः—अखण्ड मण्डल (गोलाकार) के आकार वाला एवं जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व जिस ब्रह्म की सत्ता से व्याप्त है, उस ब्रह्म के पाद-पद्मों का दर्शन जिनके द्वारा कर लिया गया है ऐसे श्री गुरुदेव जी को नमस्कार है ॥३०॥

भावाम्बुधौ सन्तत साश्रु मग्नं; लीला रसज्ञं रसिकावलम्बम् ।
सन्तेषु पूज्यं मृदु गौर मूर्तिं. वन्दे गुरुं तं परमं शरण्यम् ॥
संसारसिन्धौ पतितो ह्यगाधे, मोहान्ध पुर्णौं विषयातिशक्तः ।
कृपावलम्बं मम देहिनाथः हे गौर हे सुन्दर हे समर्थ ॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके; सहस्र शोयन्नमया व्यधायि ।
सोऽहं विपाकावसरे कृपालो; क्रन्दामि सम्प्रत्य गतिस्तवाग्रे ॥
न धर्मनिष्ठोऽस्मिन चात्मवेदी; न भक्तिमान्स्तव चरणारविन्दे ।
अकिञ्चनोऽनन्य गतिः शरयं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥
अभूतपुर्वं ममभाव किं वा सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् ।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां पराभवो नाथ न तेऽनुरूपम् ॥

अपराध क्षमापन मंत्र—आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम ।
पूजनं नैव जानामि त्वं गतिः जगतां गुरो ॥

अर्थ– हे जगद्गुरु ! मैं, न तो आवाहन करना जानता और न विसर्जन करना जानता एवं न पूजा करना ही जानता ही हूँ, एक मात्र आप ही मेरी गति हैं ॥३१॥

प्रदक्षिणा मंत्र—यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वानि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे ॥

अर्थः–जो कुछ भी पाप जन्म जन्मान्तर में मेरे द्वारा किये गये हैं वे सभी प्रदक्षिणा के पग-पग में नष्ट हो जावें ॥३२॥

ले०–मानस मधुकर, श्री अभिलाष प्रसाद त्रिपाठी एम०ए०बी०एड० व्याकरणशास्त्री

इस प्रकार श्री गुरु पूजन कर स्वस्थ चित्त से निवेदन करे कि हे श्री गुरुदेव जी आप हमें कृपा करके अर्थ पचक ज्ञान का उपदेश दीजिये । तब प्रसन्न हृदय से उदारता पूवक आचार्यगण इस अर्थ पंचक का उपदेश देते हैं । प्रेमीजन सावधान चित्त से रसास्वादन करें ॥

अर्थ पंचक–प्रथम–पर प्राप्य १

अर्चान्तर्यामी विभव, व्यूह परात्पर पाँच। प्राप्य सुवर्णे शास्त्र सब, मिलत बात सब साँच ॥१॥ पर व्यूह विभव अन्तर्यामी अर्चा ये ५ प्रकारसे परमात्मा प्राप्य कहा जाता है। दो०--तत्पदवाच्य परात्पर, रामचन्द्र सम्राट! नित्य बास साकेत में, लीला नाम विराट ॥२॥ प्राप्यता की सीमा परात्पर रूप श्री सीताराम जी सब अवतारों के राजाधिराज हैं। जो अपने नित्य श्री साकेत धाम में रहते हैं। आपकी लीला स्वरूप नाम से विराट प्रगट होते हैं॥ षट भग पूरण ब्रह्मनित उर प्रेरक निज तन्त्र। मधुर महा ऐश्वर्य पर, राम रमावै मन्त्र ॥३॥ श्री सीताराम जी ब्रह्म हैं। अर्थात् अणोरणीयान् महतो महीयान इस कठोपनिषद १-२-२० मन्त्र के अनुसार महतो महीयान तो आद्याशक्ति श्री सीता जी हैं। और अणोरणीयान उर प्रेरक रघुवंश विभूषण श्री राम जी हैं। अतः श्री सीताराम भगवान् हैं। पोपण भरण आधार शरण्य सर्वव्यापक कारुण्य ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य यश श्री उत्पत्ति प्रलय पालन गति अगति विद्या अविद्या धर्म अधर्म सत्य प्रकाश चैतन्य आनन्द धाम लीला शब्दस्पर्श रूप रस गंध दिव्य कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथाकर्त्तुम् सामर्थ्य मर्यादा अमर्यादा स्वतन्त्रता अनुराग वैराग्य प्राप्य प्रापक विभूति बन्धन मोक्षदाता शील सौहार्द वात्सल्य क्षमा कीर्ती भर्ता भोक्ता महेश्वर दृढ़ विरदावली सम्पन्न अभयदाता दृढ प्रतिज्ञ श्री राम जी स्वतन्त्र उर प्रेरक होते हुये भी तहामाधुर्य की सीमा भी आप ही हैं। अर्थात सब में रमना सबको रमाना यह आपका श्रीरामनाम महामन्त्र है। जिसे श्री शंकर जी जपते हैं। जिनसे अनन्त ईश्वर उत्पन्न होते हैं। ये प्राप्य हैं। अब उत्पन्न हुये ईश्वरों के नाम बताते है।

प्राप्यव्यूह २-वासुदेव शंकरषणरु प्रद्युम्न स्वनिरुद्ध। पाद विभूती चार यह व्यूह भेद श्रुति शुद्ध ॥४॥ श्री वासुदेव शंकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध ये चार पाद विभूति स्वरूप हैं। इन्हीं चारों को चतुर्व्यूह वेद शास्त्र बतलाते हैं।

प्राप्यविभव३-मीन कमठ वाराह नृहरि, ये अवतार महान। शक्त्या वेश प्रधानयुत, विभव भेद बहु जान ॥५॥ भगवान् के मत्स्य वाराह कमठ नरसिंहादि जितने भी अवतार हैं, जो कि शक्ति आवेशादि विविध अवतार हैं। उनको विभवावतार कहा जाता है।

निराकार पररूपको, तेजैश्वर्य महान। ज्ञान शक्ति बल बीज विभु, व्यापक जन हित मान ॥६॥ अन्तरयामी परमात्मा का तेज बल ऐश्वर्य ज्ञानशक्ति है। जो

जड़ चेतनात्मक जगत में उर प्रेरक की प्रेरणा से सन्धिनी, सन्दीपनी, आह्लादिनी शक्तियों को प्रेरणा करते हैं। वे परात्पर परमात्मा ही भाववश्य होकर तुरियावस्था में आकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं। उर प्रेरक होकर सन्धिनी शक्ति से जीवईश सम्बन्ध जोड़ने के लिये गुरु बनकर सम्बन्ध जोड़ते हैं। सन्दीपनीशक्ति को प्रेरणा करके भजन करने वालों को अनुभव देते हैं। आह्लादिनी शक्ति को प्रेरणा करके भक्तों को विचित्र ऐश्वर्य देते हैं।

अर्चाविग्रह प्राप्य ५:-दारु शैल मृण द्रव मनसि, वसन चित्र तनरूप। सालिग्राम प्रतक्ष प्रभु, भाव साध्य सुअनूप ॥७॥ भक्तोंके भावानुसार भगवान्‌के काष्ठ, पाषाण मिट्टी, अष्ट-धातु मानसी मूर्ति (भाव मय विग्रह) वस्त्रमूर्ति, चित्रपट या वालकों की शृङ्गारमयी लीला मूर्ति अर्थात् (भगवान् के झाँकी स्वरूपों) की उपासना करने पर भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन सुख का अनुभव देते हैं। और श्री सालिग्राम जी का रूप तो स्वयं भगवान् ही धारण किये हैं। इस प्रकार ये ५ रूप से परमात्मा का स्वरूप प्राप्य कहा जाता है। धाम रूप लीला सहित प्रभु के नाम अनेक। भक्त हृदय सौन्दर्य जस पाँच अवस्था टेक ॥८॥ अर्थात् भक्तों के भावानुसार भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम अनन्त हैं। परन्तु भक्तों के भावना की सुन्दरता से जाग्रत, स्वप्न सुसुप्ति, तुरिया इन चार अवस्थाओं मात्र में ही पता लगता है। वास्तव में भगवान् तो तुरियातीत अवस्था में ही नित्य रहते है। जिनका केवल शास्त्र से हो पता लगता है। तर्क का समा-वेश नहीं होता। अब द्वितीय प्रापक' की व्याख्या की जाती है— बद्ध मुमुक्षू मुक्त पुनि, नित्य और कैवल्य। पाँच भेद यह जीवके, नाम काम वैशल्य ॥१॥ वद्ध, मुमुक्षु, मुक्त, कैवल्य और नित्य ये पाँच प्रकार के जीव कहे जाते हैं। इन पांचों नाम भेदों में कार्यों की ही विशालता है। जो कार्य संकल्प से होते हैं।

प्रापकनित्य पार्षद १:—नित्य पार्षद अङ्ग सिय, पियगुन दिव्य स्वरूप। रुचि माधुर्य स्वरूप बहु, सम ऐश्वर्य अनूप ॥२॥ नित्य पार्षद श्री सीताराम जी के दिव्य गुणों के स्वरूप माने जाते है। यथा--राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णु स्वरूपवान्। वासुदेवो घनीभूतो तनु तेजो महांशिवः। (श्रीराम नवरत्न से) अर्थात् श्री रघुनाथ जी के दिव्य (भाग) गुण श्री महाविष्णु कहे जाते हैं। श्रीराम जी के शरीर की श्यामता गुण वासुदेव कहे जाते हैं। और श्री विग्रह के तेज गुण महांशम्भु कहे जाते हैं। जो कि ये तीनों श्री सीताराम जी की रुचि अनुसार महामाधुर्य लीलाओं में श्री सुभगा जी श्री विमला जी व श्री चारुशीला जी रूप होकर नित्य सेवा में रहते है।

तथा मर्यादिक चरित्रों में श्री भरत जी श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी रूप धारण करते हैं। इसी प्रकार प्रिया प्रीतम की रुचि अनुसार ऐश्वर्य में महाविष्णु वासुदेव महा-महाशम्भु रूप धारण कर त्रिपाद विभूति के ऐश्वर्य का प्रकाश करते में। इसी प्रकार सीताराम जी के और भी अनन्त दिव्यगुण अनन्त पार्षदों का रूप धारण करते हैं। ये सभी गुण सभी पार्षद श्री सीताराम जी की लीला और धाम के स्वरूप कहे जाते हैं। अतः परमात्मा का धर्म पार्षदों के रूप में परिणत होकर अनन्त लीलायें करते हैं। ये पार्षद हो भगवान् की रुचि पाकर जगत में ईश्वर बनकर जगत व्यापार करते है। परमात्मा तो कार्य कारण से परे भर्ता भोक्ता महेश्वर हैं ॥१॥

प्रापक कैवल्य २:-- नित्य सच्चिदानन्द में, सोया स्वप्न विचार। इन्द्री विषय विमोह तजि, ब्रह्मत्वहिं चितधार ॥३॥ निर्गुण निराकार चैतन्य स्वरूप आत्मा को सच्चिदानन्द ब्रह्म मानकर यदि ईन्द्रिय विषयों का विमोह सम्यक प्रकार (भलीभाँति) त्याग सका, तब तो प्रारब्ध निवृत्ति के पश्चात कैवल्य मोक्ष हो जायेगा। क्योंकि आत्मा प्रकृति के संग से प्राकृत और भगवत् संग से भगवान् के गुण पाकर तद्रूप हो जाता है। वास्तव में आत्मा में कोई गुण नहीं है। यह कैवल्य मोक्ष है।

प्रापक मुक्त ३--भोक्ता भोग्य स्वरूप चित, सिय पिय सेवा पाय। मन्त्रराज तत्त्वज्ञ हो, नित्य धाम को जाय ॥४॥ भक्त भगवान् के साथ भोक्ता भोग्य स्वरूप का गुरु-परम्परानुसार अनुसन्धान पाकर जब भजन में लग गया, तब वह मन्त्रराज तत्वज्ञ कहा जाता है। अतः सत्य संकल्पमय होकर उस अवस्था में परमात्मा के समान रूप वाला पार्षद हो जाता है। प्रारब्ध निवृत्ति के बाद भगवत् धाम नित्य सेवा में चला जाता है। उसको मुक्त कहते हैं।

मुमुक्षु प्रापक ४:--सारासार बिचार जग, द्वन्द सहत सत्संग। पंचक अर्थ अकार त्रय; नित अनुराग उमंग ॥५॥ सार और असार का विचार करके जो चेतन संसार में सुख दुख हानि लाभादि द्वन्दों को सहन करके सत्संग में मन लगाता है, वह अर्थ-पंचक अर्थात् प्राप्य परमातमा प्रापक चेतनात्मा, प्राप्तिफल, सेवा का उपाय, कृपास्वरूप श्री गुरुदेव जी का विरोधी अहंकार ममता राग द्वेषादि त्याग करके पाँच अर्थों को ठीक से जानकर श्री गुरु महाराज से पंच संस्कार प्राप्त करना तब आकारत्रय सम्पन्न होना अर्थात् अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व अनन्य रक्षकत्व को अनुकूल संकल्प द्वारा धारण करना यह मुमुक्षु का शुद्ध स्वरूप है ॥५॥

बद्धजीव प्रापक ५:—जगशरीर सुख सत्य सब, इन्द्रिय विषय प्रमाण। पुरुषारथ विपरीतता, काम मोह षट प्राण ॥६॥ संसारी शारीरिक सुख को सत्य मानकर इन्द्रिय जन्य विषयों से आगे बुद्धिका न जाना, काम क्रोध मद मात्सर्यमें ही परम पुरुषार्थी

बनना. पापी हो अथवा पुण्यात्मा हो यह बद्धजीव का स्वरूप है ॥६॥ जीव प्राण वायू विषय, चेतन नित्य विचार। सत्य सुसंकल्पहि बिचर, सो सौन्दर्य सुधार ॥७॥ आत्मा को परमात्मा का शरीर कहा जाता है, जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश एक होता हुआ भी दो है। धर्म भूत प्रकाश आत्मा को स्वरूपभूत प्रकाशक परमात्मा ने सत्य संकल्पानुसार अनिर्वचनीय माया को उत्पन्न करके शीशा का लाल पीला हरादि प्रकृति के संकल्पानुसार परिवर्तन होने के कारण आत्मा पाँच भेद वाला होगया है। अतः अब संकल्प में शुद्धता आने के लिये यह बुद्धि की सुन्दरता अर्थपंचक की शिक्षा प्रगट की गयी है इसे भगवत् कृपापात्र ही समझेंगे। यथा—स्वाति का बुन्द सीपो में पड़ता है, तो मोती बन जाता है। फिर पानी नहीं होता है। वैसे ही भगवत्कृपा से भगवान् को प्राप्त जीव (भक्त) भगवत् पार्षद होते हैं। यदि स्वांती का पानी पानी में गिरता है, तो जैसे पानी होता है, वैसे ही कैवल्य मोक्ष समझो। यथा—जे ज्ञान मान विमत्त तवभव हरणि भक्ति न आदरी। ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥ रा० च० मा० उ० कां० वेद स्तुति के। इस प्रमाण से कैवल्य मुक्ति के पश्चात् फिर किसी ब्रह्माण्ड में आत्मा का पतन होकर जन्म मरण सहना पड़ता है। और भगवत् रूप होकर भगवत् धाम में जाकर पार्षद हो जाते हैं। आत्मा ही स्वाति बुन्द है कृपारूप भगवत् धर्म सीपी है। अस्तु भगवत्धर्म रूपी सीपो के सम्पर्क से आत्मा रूपी स्वाति बुन्द का मोती होना है ॥७॥

तृतीय प्राप्तीफल का भेदः—आत्मा परमात्मा यगल, नित्य सच्चिदानन्द। क्या बिगड़ा क्या बना अब यह विचार सुखकन्द ॥१॥ जबकि आत्मा परमात्मा दोनों ही नित्य सच्चिदानन्द हैं। तो फिर अब क्या बिगड़ गया तथा अब क्या बनेगा, यह विचार परम सुख प्रद है। नित्य सेवा भक्तों की कीर्ति है।—भोग्य विधाता भोग प्रभु, सुख ऐश्वर्य महान। प्रेरक रुचि सब कार्य को, कर्ता पार्षद मान ॥२॥ सब आत्मायें भोग्य वस्तु हैं। परमात्मा भोक्ता है, और प्रेरक तथा सबको अपने समान सुखदाता हैं। परमात्मा की प्रेरणा से आत्मा ही परमात्माको समस्त दिव्य और प्राकृतिक लीलाओं के विधान कर्ता विधाता हैं। आत्मा परमातमा की रुचि से जगत के ईश्वर होकर अवतार भी लेते हैं। इस प्रकार से आत्मा को परमात्मा अपने समान सुख देते हैं। आत्मा का यही सुख अहंकार में बूड़ कर नष्ट होगया था। अब वही निर्गुण निराकार आत्मा, सगुण साकार परमात्मा के समान ऐश्वर्य मान होकर, परमात्मा की प्रेरणा से परमात्मा के लिये परमात्मा के निकट जाकर, परमात्मा का पार्षद होकर परमात्मा का अङ्ग बनता हैं। जैसे राजा का अङ्ग राज्य, सेना, कोष [खजाना] रानी और मन्त्री होते। इस प्रकार यह विधि बनेगी। इस विधि का नाम सामीप्य मुक्ति है। इस प्रकार परमात्मा भक्त वत्सल हैं ॥२॥

मोक्ष २:--निराकार निज ब्रह्मपन, विषय जीति यदि पाय। माया प्रभु की झूठि कह, सो कैवल्यहिं जाय ॥३॥ अर्थात् आत्मा तो निर्गुण निराकार और परमात्मा का अंश है। अतः सगुण सागर परमात्मा का शरीर होता हुआ भी, सत्य संकल्प होने के नाते यदि प्रभु की माया को झूठी कह कर भी विषयों को सम्यक् प्रकार जीत पाया, तो निर्गुण निराकार रूप में प्रवेश करके कैवल्य भाव को पा जाता है। परन्तु इस एक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मादि तो कहते हैं कि मुक्त हो गया है। पर वेद कहते हैं कि करोड़ों ब्रह्माण्डों में फिर कहीं गिर जाता है। अतः यह मोक्ष कुछ ही समय समय के लिये कहने मात्र का है ॥३॥

काम ३:--कोटिकाम प्रतिअंग लज, सो जाको पति होय। अर्थ धर्म कामादि सुख, वमन विचारत सोय ॥४॥ अर्थात अङ्ग अङ्ग प्रति लाजहि कोटि कोटि शत काम, ऐसे प्रभु श्री राम जी जिनके पति हों। उस अपने नित्यपति के अनुभवी भक्त के सामने कितना भी अर्थ धर्म काम का प्रभाव आ जावे तो भी वह भक्त लौकिक सभी सुख स्वाद तथा सौन्दर्यादि को उल्टी किया हुआ भोजन की भाँति त्याग देता है। जो रघुवीर श्री राम जी को हृदय में रक्खा है, वही जित काम होता हैं ॥४॥

धर्म ४:--शरणागति सब धर्म को, मूल अक्षय फल देत। जेहिवश रघुपति अभयकर, सन्त सुजानत हेत ॥५॥ अर्थात् जिसका जहाँ जन्म होता हैं, उसका धर्म भी वहीं से जन्मता हैं। शरीर का जन्म संसार से है। अतः लोकधर्म समान हैं। सोना, जागना, बैठना, उठना; खाना, पीना, शौचादिक क्रिया, रोग, दुख सुख सभी को होता हैं। आत्मा का जन्म परमात्मा से हैं, अतः सत सम्प्रदाय संयुक्त श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु हों, जब उनके शिष्यता द्वारा भगवति शरणागति से भगवत धर्म उत्पन्न हो। तो निर्गुण निराकार जो आत्मा हैं, वह सगुण साकार परमात्मा का रूप होकर परमात्मा का रूप होकर परधामको जाता हैं। यह विशेष धर्म अक्षय पुण्य उत्पन्न करता है। अतः प्रभु के ऐसे प्रपन्न भक्त के लिये भगवान् का अभय वरदान है। इस मर्म को गम्भीर सन्त जानते हैं ॥५॥

अर्थ ५:--मरन ठान धन पाय नर समुझत सुरपति आप। सोइ सम्पति प्रहलाद ध्रुव चरण परी बिन जाय ॥६॥ अर्थात् संसारी जीव धन सम्पत्ति ऐश्वर्य को अर्थ कहते हैं। जिस धन के लिये मृत्यु को भी स्वीकार करके अथक परिश्रम के पश्चात स्वल्प रूप में (थोड़ा सा) पाने के बाद अपने को इन्द्र से भी बड़ा मानने लगते हैं। परन्तु भगवान् के कृपापात्र जब ससार से मुख मोड़ कर भगवान् का भजन करते हैं। तब भक्त के बिना चाहे भगवत्कृपा से धन संपत्ति ऐश्वर्य सम्यक प्रकार प्रकार से भक्तों के चरणों में अपने आप आ पड़ता है। तथापि भक्त अपने को प्रभु

का दास ही मानते हैं ॥६॥ फल सौन्दर्य स्वरूप है, पिय प्यारी सुख हेत । कृपा साध्य गुरुदेव के, समुझत सब रस लेत ॥७॥ आत्मा का स्वरूप परमात्मा का भोजन है, इसका रहस्य श्री गुरुदेव कृपा से ही मिलता है ॥७॥

चौथा उपाय के ५ भेदः—गुरु अभिमान उपासना, भक्ति ज्ञान अरु कर्म । सत रजतम जस संग हो, तस समुझेगा मर्म ॥१॥ संग से ही सभी गुण होते हैं । सात्विक राजस तामस भेद वाले संगों से बुद्धि में उन संगों का भारी प्रभाव पड़ता है । १-आचार्याभिमान, २-प्रपति, ३-भक्ति । ये तीन भेद वाली उपासना तथा चौथा ज्ञान पाँचवा कर्मकाण्ड ये पाँच प्रकार के उपाय आत्मकल्यार्थ बताये जाते हैं । परन्तु इन पाँचों में भी तीन गुणों की विषमता से अनेक उपाय कहे जाते हैं । ये सभी उपाय क्रमशः भी सफल होते हैं । कभी कभी आकस्मिक एक से भी कार्य बन जाता है ॥१॥

१ आचार्याभिमानः—ईशअंश बहुकाल जिन, बिछुरत कीन्हों मेल । क्या देवैं तिन गुरुन को, समुझत तन मन फेल ॥२॥ परमात्मा का अंश यह जीवात्मा अनन्त-काल से परमात्मा को भूला हुआ था । अब श्री सीताराम जी की कृपा विग्रह श्री गुरुदेव जी ने भगवत् शरणागति धर्म देकर अपने परम प्राप्य उन परमात्मा से मिलने का अधिकार दिया (मार्ग प्रदर्शित किया) है । अतः इसके प्रत्युपकार रूप में श्री गुरू जी को आत्मा देकर भी उरिण नहीं हो सकता है । शरीर समेत सब सम्पत्ति दे देने पर भी कामधेनु के बदले गदही का देना जैसा ही है । अतः आत्मा अर्थात् प्रपन्न भक्त को आचार्यका रिणी मानकर आचार्य के आधीन रहे, तो इसे आचर्या-भिमान से ही परमात्मा वश में होते हैं । श्री हनुमान जी प्रमाण हैं । आजीवन अपने गुरुदेव सूर्य पुत्र सुग्रीव की सेवा किये ॥२॥

२ प्रपत्ति स्वरूप की उपासनाः--शेष भोग्य नित रक्ष्यता, निज परतन्त्र स्वरूप । करैं करावैं इष्ट मम, सर्वेश्वर सुख रूप ॥३॥ अनन्य शेषत्व अनन्य भोग्यत्व अनन्य रक्षकत्व का बोध हो । अर्थात मैं श्री सीताराम जी का अंश हूँ । एकमात्र वही मेरे स्वामी हैं । उन्हीं से हमारी सम्यक् प्रकार रक्षा होगी । वे समर्थ हैं । उनके अतिरिक्त मैं और किसी का भी नहीं हूँ । अन्य किसी से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । मैं श्री सीताराम जी का परतन्त्र हूँ । मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । मेरा बनने बिगड़ने का कुछ भार श्री सीताराम जी पर है । अन्य किसी से मेरा न तो कुछ बन सकता है, न बिग-ड़ेगा ही । मेरे रक्षक प्रभु श्री सीताराम जी सर्वेश्वर हैं । जो कृपामूर्ति सुख सागर एवं भक्तवत्सल हैं । मैं उन उदार शिरोमणि श्री सीताराम जी का परतन्त्र हूँ ॥३॥

३ भक्तिः—भक्त धर्म भगवान गुरु, सेवा सार बिचार । तन मन धन सब अर्पि कर, कृपा चाह अनुसार ॥४॥ अर्थात् सन्त, गुरु, धर्म एवं भगवान् श्रीहरि इन चारों की सेवा ही सारवस्तु है । ऐसा निश्चय करके अपना सर्वस्व में अर्पण

करके केवल कृपा की चाह (इच्छा) मन में राखे कि स्वामी कब मेरी सेवा स्वीकार करेंगे । यही भक्ती है ।।४।।

४ ज्ञान विज्ञानः—जड़ चेतन परितत्त्व लखि, चित चैतन्य सम्हार । कामादिक तजि शुद्ध मन, निज सम्बन्ध सुधार ।।५।। जड़ प्रकृति चेतन जीवात्मा तथा प्रेरक को यथार्थ जानकर जड़ता को त्याग कर प्रकृति को कामादिक विकारों से चित्त को हटा कर शुद्ध मन से आत्म परमात्म सम्बन्ध को सुधारना अर्थात स्वरूपाभिमान को प्राप्त करने की चेष्टा करना यह विज्ञान है । जड़ चेतन विभाग को समझना ज्ञान कहा जाता है । और आत्मा का ईश्वर से सम्बन्ध समझना विज्ञान कहा जाता है। केवल ज्ञान से कैवल्य मोक्ष होता है । और ज्ञान विज्ञान दोनों से भगवत्प्राप्ति होती है ।।५

५ कर्मः—योग यज्ञ व्रत ध्यान जप, तप तीरथ स्वाध्याय । अर्थ सुनिश्चित सोचिकर, तन मन दान सहाय ।।६।। तन मन धन जन का सहायता से होने वाले, किसी भी अर्थ की कल्पना करके, जो भी कर्म योग यज्ञादि किये जाते हैं । उन्हें कर्म कहा जाता है ।।६।। दो०—प्रेरक प्रभु सौन्दर्य जग, कठपुतली सब कोइ । चित इच्छा त्रय डोर मति, कर्म कहावै सोइ ।।७।। यद्यपि प्रभु प्रेरणा से ही सारा जगत कठपुतली की भाँति चलता है । तथापि चित शक्ति चेतन होने से इच्छायें विविध काम कराती हैं । अतः जीव को कर्म का बन्धन हो जाता है । यही कर्म है । यदि चेतन की इच्छा भगवान् की लीलाओं में विलीन हो जाये । और प्रभु के कैंकर्य को समझ कर भावमयी सेवा करने लग जाये, तो कर्म समाप्त हो जाये ।।७।।

पाँचवा विरोधो पाँचः—कर्मविरोधी समझ बिन, कृत्य सफल नहिं होइ । ताते भेद उपाय के, बिलग बिलग लख सोइ ।।१।। आचार्याभिमान–प्रपत्ति–भक्ति–ज्ञान–कर्म इन पाँचों उपायों के विरोधी कौन कौन हैं । इसको विना समझे कर्तव्य में विघ्न आ जाते हैं । अतः इन पाँचों विरोधियों को जान लेना परमावश्यक है ।।१।। आचार्याभिमान विरोधी–निज पर रूप विचार तजि, विरदावलि क्या काम । नीति अनीति सुरीति नहिं, प्रभु सकुचावैं वाम ।।२।। अपना स्वरूप क्या है । पर स्वरूप क्या है। यदि यह विचार नहीं हो, तब यह कहना कि प्रभु अपनाये हुये को नहीं त्यागते, तब आचार्य को भी अपनाये हुये जीवको त्यागना उचित नहीं है । आचार्यमें यह अवगुण देखना व्यर्थ है । यद्यपि यह प्रभु को विरदावली है कि अपनाये हुये को न त्यागना। तथापि विचार हीन को निर्पेक्षता आ जाती है तब वह कैसे समझेगा कि नीति क्या है अनीति क्या है । अतः आचार्याभिमान की रीति का पालन बिना किये प्रभु को संकोच में डालता है कि भक्त के अपनाये हुयेको भगवान अपनाते हैं । इस बात को न समझ कर टेढ़ी चाल चलता है । जिसका परिणाम–भयंकर होता है । अर्थात् अन्य उपायों को अपनाता है । यह भारी विपरीतता है । जो स्वरूप नाशक है ।।२

प्रपत्ति विरोधी--प्रेरक भर्ता राम तजि, बहुईश्वर मन लाग । अभय मिलत नाहिं जाप बहु; तबहुं न मूरख जाग ॥ अर्थात् अनन्त ईश्वरों को उत्पन्न करने वाले, सबके प्रेरक, भर्ता, भोक्ता प्रभु को त्याग कर, बहुत ईश्वरों में मन लगाता है ! तो भी अभय वरदान नहीं मिलता है । यद्यपि सकामता वश बहुत मन्त्रों का बहुत जप करता है । तथापि प्रभु को नहीं पाता है । तो भी मूर्खतावश जगता नहीं है ॥३॥

भक्ति विरोधीः--जग सकामता दैव वश, समुझै नहिं अज्ञान । हरि सेवा तजि विकल जग, निज स्वारथ लपटान ॥४॥ हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश ईश्वर के हाथ है ! मनुष्य अपनी प्रारब्धानुसार ही पाता है । तो भी अज्ञानता वश स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ जीव भगवान् की सेवा नहीं करता है । स्वार्थ वश कर्म बन्धन में पड़ता है ॥

ज्ञान विरोधीः--अहंकार कामादि षट, बुद्धि विकार समाज । निज स्वतन्त्रता सत्य गुनि त्यागत, नहिं ठगराज ॥५॥ शरीराभिमान काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य ये सब कुसमाज है, जो बुद्धि को आत्मज्ञान नहीं होने देता है । यद्यपि यह ज्ञान सभीको है कि यह कुसमाज ईश्वर की माया है । जीवात्मा परतन्त्र है । स्वतन्त्रता भ्रामक वस्तु है । तथापि स्वतन्त्रता को त्यागना नहीं चाहता है, ठगपन में मग्न रहता है ॥५

कर्म विरोधी—व्यापक, शक्ती ज्ञान वल, जन रुचि पालक राम । गुरुवानी विश्वास नहिं, संशय भज छल काम ॥६॥ यद्यपि सर्वज्ञ सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान भक्तवत्सल हैं । भक्त को उपासनादि कर्म करने में निर्भयता से लगे रहना चाहिये । परन्तु गुरु-वाणी में विश्वास न होने से अनेक सकामता वश चंचल हो जाता हैं ॥६॥ किंकर्तव्य विमूढ जग, इष्ट मिलन को चाह । ज्ञान भक्ति पुरुषार्थ लख, यह सौन्दर्य विचार ॥७॥ को न चहै जग जीवन लाहू । परन्तु क्या करें, इस प्रकार से सभी लोग मोह में पड़ जाते हैं । इसलिये यह लेख ज्ञान भक्ति पुरुषार्थ तीनों को दिखा देता हैं ॥७॥

अकारत्रय का विरोधीः--निज स्वतन्त्रता शेषहत, भोग्य विषय की आश । रक्ष्य अहंता प्रभु विमुख, कैसे हो प्रिय दास ॥८॥ अनन्य शेषत्व में परतन्त्रता हैं, अनन्य भोगत्वमें निष्कामता हैं, अनन्य रक्षकत्व में निर्भयता हैं । परन्तु परतन्त्रता, सेवकता, निर्भयता दुर्लभ वस्तु हैं । सभी चेतनों में स्वतन्त्रता स्वामिपन तथा भय समायी हुआ हैं । यही अकारत्रय का विरोधी हैं ॥८॥

लेखक—अनन्त श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर श्री चारुशीला बाग, श्री जानकीघाट-श्री अयोध्या जी-उ०प्र० ।

ऊपर अर्थ पंचक तथा अकारत्रय तत्त्वत्रय इत्यादिका विषय प्रतिपादन किया गया हैं । यदि कोई सज्जन कहें कि ये तो आपके बनाये हुये दोहे हैं । अर्थपंचक

और अकारत्रय की आवश्यकता है। इसमें कोई शास्त्रीय प्रमाण देना चाहिये। अस्तु अब शास्त्रीय प्रमाणों को पढ़िये। श्रध्येय श्री त्रिदण्डी स्वामी जी के द्वारा प्रकाशित वार्तामाला के पृष्ट ३५ से—

अर्थ पंचक तत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः। आकारत्रय सम्पन्ना महाभागवतास्मृताः॥ अर्थपंचक तत्त्व को जानता हो, पंचसंस्कारों से संस्कृत हो, अर्थात् श्री सद्गुरुदेवजी के द्वारा पंचसंस्कार प्राप्त किया हो। अकारत्रय से सम्पन्न हो, उसको महाभागवत जानना चाहिये। यह श्लोक पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तरखण्ड अ० १० श्लोक ६ का है। पुन.—तत्त्वत्रय मनुस्मृत्य चिदचित्परमात्मकम्। चित्तत्त्वमात्मनो भाव्यं ह्यचिदात्मोपकारकम्॥ वृ० ब्र० सं० प्र० पा० अ० १२ श्लोक ८॥ अर्थ—चित (जीवात्मा) अचित (प्रकृति) अन्तर्यामी अर्थात परमात्मा रूप से तत्त्वत्रय का स्मरण करता हुआ शरीर तत्त्व को आत्मा का उपकारक निश्चय करके, आत्मा के चैतन्य तत्त्व की भावना करे। और भी देखिये—तत्त्वत्रयात्मकं ज्ञानं रहस्यं धर्म उच्यते। यमलब्ध्वा-नरो नैति यत्पदं काल बर्जितम्॥ पा० ३ अ० ७ श्लोक ३। श्री ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे मुनियों! इस तत्त्वत्रयात्मक ज्ञान को गूढ रहस्य कहा जाता है। जिस धर्म को विना प्राप्त किये मनुष्य कालबर्जित दिव्य परात्पर धाम में नहीं जा सकता है। पुनः—चिद अचित्परमात्मेति तत्त्वत्रय विचिन्तनात्। दैवं पित्र्यं च कुर्वन्ति ज्ञान पूर्व निरन्तरम॥ पा० ४ अ० ५ श्लो० ३२। जड़ (माया) चेतन (जीव) परमात्मा इन तीन तत्वों का विचार करता हुआ, वैष्णव निरन्तर दिव्य ज्ञानपूर्वक दैनिक (नित्य) पित्रिक कर्मों को भी करता रहे। और भी पढ़िये कि—अकारत्रय सम्पन्नाः परमै-कान्तिनोमतः। धन्याः सुदुर्लभालोके नित्यं तेभ्यो नमोनमः॥ पा० १ अ० ७ श्लो० ८५। जो अकारत्रय सम्पन्न होते हैं। उन्हीं को परमैकान्तिक भक्त माना जाता है। ऐसे भक्त लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनको बारम्बार नमस्कार है। पुनः—प्रणवा-कारतां प्राप्य रेखाभिः ह्रितिश्रभिः सदा॥ पा० १ अ० १३ श्लो० ४२ पृ० ४५ से— प्रणव में अ-उ-म-इन तीन अक्षरों से अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व, अनन्य रक्षकत्व कहा गया है। इसी बात को पा० १ अ० १३ के श्लोक २०६ में कहा गया है कि— प्राप्यं भोग्यं रक्षकं च यदेकं श्रुति बोधितम्। अर्थात अनन्य शेषत्व, अनन्य भोग्यत्व अनन्य रक्षकत्व यह एक निश्चित मार्ग श्रुतियों के द्वारा कहा गया है। पुनः देखिये कि—

आधारत्वेन स्थितो विधातृत्वेन वा पुनः। शेषित्वेन चराजेन्द्र स च ऽऽत्मा मुक्ति-मिच्छताम्॥ पा० ३ अ० ६ श्लो० ३६ पृ० १२२। मोक्ष की चाहना करनेवाले भक्तों के द्वारा आराध्य जो परमात्मा भक्तों के हृदय में आधार रूप से रक्षक विधाता रूप

से भोग्यता और शेषित्व रूप से अंशी होकर भक्त की आत्मा है। और भी देखिये-
शास्त्रं विजानतां मध्ये कश्चिदेव नराधिप। प्रपन्नो जायते लोक अकारत्रय संयुतः॥
पा० ३ अ० ६ श्लो० ११२ पृ० १२५। शास्त्रोंको सम्यक् प्रकार जानने वाले विद्वानों
में से कोई एक विरला ही अकारत्रय सम्पन्न प्रपन्न लोक में उत्पन्न होता है। पुनः-
अनन्य शेषतां चैव तथाऽनन्य प्रयोजनम्। अनन्य साधनत्वां च देवो मह्यं प्रयच्छतु।
पा० ४ अ० ६ श्लो० ११५।—अकारत्रय सम्पन्न भक्त भगवान् से यह प्रार्थना करते
हैं कि हे प्रभो! आप हमको अनन्य शेषता अनन्य प्रयोजन और अनन्य साधन तत्व
को देवें। और भी देखो कि—यज्ञन्तु निखिलान्यागान्नाऽऽप्नोति परमं पदम्। न विद्या
हीयते राजन् विनाभक्ति जनार्दने॥ अकारत्रय सम्पन्ना यः भक्ति प्रोच्यते बुधैः। स्व-
रूप विस्मृते राजन्यो दोषः समपद्यत॥ पा० ४ अ० ७ श्लो० ८४-८५ पृ० १६२। भले
ही कोई सभी यज्ञों को विधिवत पूर्ण करले, और किसी भी विद्या की उसको कमी
न रहे अर्थात् सभी विद्यायों का ज्ञाता हो जाये। परन्तु भगवान् श्रीहरि की भक्ति
बिना किये भगवद्धाम को नहीं जा सकता है॥८४॥ अकारत्रय सम्पन्न भक्ति जो विद्वानों
के द्वारा कही जाती है। उस स्वरूप की विस्मृति होने पर जो दोष उत्पन्न होता है
वह दोष भगवत् चरण के आश्रित हुये बिना निवृत नहीं हो सकता है। यही बात
महाभारत शान्ति पर्व में मोक्ष धर्म पर्व अ० ३२० श्लो० २७-२८ में कही गयी है।

पंचसंस्कार

अर्थपंचक तथा अकारत्रय एवं तत्वत्रय की बात पाठक पढ़ चुके अब पंचसंस्कारों की
सांकेतिक चर्चा का रसास्वादन करिये।—जब कोई जिज्ञासु किसी महाभागवत के
निकट जाकर भगवत् शरणागति प्राप्त करने की आतुरता प्रगट करे। वे महापुरुष
उसे अधिकारी समझें तो उदारता पूर्वक पंच संस्कार प्रदान करें। यदि जिज्ञासु को
अधिकारी न समझें तो पंच संस्कार प्रदान नहीं करना चाहिये। अनाधिकारी को
दीक्षा देने से लाभ नहीं होता। अस्तु महापुरुषों को अधिकारी अनाधिकारी का
विचार अवश्य करना चाहिये। पंच संस्कारों में प्रथम ऊर्ध्वपुड्र तिलक है। द्वितीय
तुलसी की कण्ठी, तृतीय मन्त्र संस्कार-चतुर्थनाम संस्कार और पंचम भगवदायुधों
की छाप लगाना है। इन पंच संस्कारों का भी शास्त्रीय प्रमाण पाठक ध्यान से
पढ़ें॥—

पुण्ड्रं मुद्रा तथा नाम माला मन्त्रश्च पञ्चमः। अमाहि पञ्चसंस्कारः परमैकान्त
हेतवा॥ श्री रामपटल जगदीश प्रेस बम्बई से प्रकाशित गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० २१२।
अर्थ--ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, धनुषबाण शंखचक्रादि भगवदायुधों की छाप, श्री वैष्णवीय
परम्परागत नाम यथा--(श्री रामदास जी, श्री जानकीदास जी, श्री रामशरण)
इत्यादि) तुलसी की माला (कण्ठी) और श्री सीताराम मन्त्र, श्री गोपाल मन्त्र,

श्री मन्नारायण मंत्र इत्यादि· ये श्री वैष्णव पंचसंस्कार निश्चय करके परम एकान्त के हेत हैं अर्थात् इन पंचसंस्कारों को श्रद्धाभक्ति पूर्वक धारण करने वाला निश्चय ही भगवद्धाम को जाता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रमाण--ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदाशुभ्रं यो धत्ते नित्यमात्मवान्। तस्य प्रसादं कुरुते विष्णुर्लोकनमस्कृतः ॥ श्रीरामपटल, प्रपत्ति रहस्य पृ० २८०। अर्थात् जो संयमी पुरुष स्वच्छ (श्वेत) एवं उद्दोप्रमृतिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, उस पर भगवान् कृपा करते हैं। पुनः--धृतोर्ध्व पुण्ड्रश्चक्राद्यै रंकितो हरि लाञ्छनैः। मुद्रापुण्ड्राङ्कनादीनितामसानी विवर्जयेत् ॥ भरद्वाज संहिता परिशिष्ट अ० २ श्लो० ६६ गतिबोध पृ० ८। भगवान् श्री हरि के चिन्ह ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धनुर्बाण चक्रादिकों को धारण करें। किन्तु तामसी देवी देवताओं की मुद्रा या छाप न धारण करे। और देखिये--ऊर्ध्वपुण्ड्रमूर्द्ध रेखं ललाटे यस्य दृश्यते। चाण्डालोपि स शुद्धात्मा पूज्यएव न संशयः ॥ पद्मपुराण पातालखंड अ० ७६ श्लो० २२) अर्थ-जिसके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् खड़ी दो रेखायें दीखती हैं। यदि वह चाण्डाल भी हो तो उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। और वह पूजनीय है इसमें संशय नहीं करना चाहिये। वासुदेवोपनिषद पंक्ति २२ में लिखा हैं कि—ऊर्ध्वपदमवाप्नोति। अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करनेवाला ऊंचे पद यानी भगवद्धाम को प्राप्त होता है। गतिबोध पृ० ३८ ॥

यदि कोई सज्जन कहें कि ये बात तो ब्राह्मणों एवं सन्तों को अथवा पुरुषों के लिये ही है।

न्युनवर्ग वाले व्यक्ति या महिलाओंके लिये नहीं हैं। तो ध्यानसे पढ़िये कि--स्त्रियों वैश्यास्तथा शूद्रा म्लेच्छा याऽन्त्यज जाययः। ऊर्ध्वपुण्ड्र धरा सर्वे नमस्या देवता इव ॥ बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ श्लो० ५७ गतिबोध पृ० ३८। अर्थ--स्त्री हो, या वैश्य हो, वा शूद्र हो अथवा म्लेच्छ हो, या अन्त्यज (अछूत) हो। यदि ये सब भी ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण किये हों, तो देवता समान नमस्कार करे। पुनः—ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं दृष्ट्वा सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥७॥ यज्ञ दान तपश्चर्या जप होमादिक च यत। ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१०॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन ॥१७॥ तुया धृतोर्द्ध पुण्ड्राणि सर्वयज्ञ फलं लभेत ॥३३॥ एक पुण्ड्रं तु नारीणां शूद्राणां च विधीयते ॥५३॥ उपर्युक्त ७।१०।१७।३३।५२ नं० के श्लोक पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २२५ श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित से लिये गये हैं। मैंने गतिबोध के पृ० २९ से लिये हैं। मनुष्य के मस्तक में ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलक देख करके उसकी देह के सब पाप छूट जाते हैं ॥७॥ जो मनुष्य यज्ञ, तप, जप और नाद एवं होमादि कर्मोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर करते हैं। तो उनके कर्मोंका अनन्त

फल होता है ॥१०॥ उर्द्ध पुण्ड्र तिलक सबको करना चाहिये किसी को निषेद नहीं है ॥१७॥ जो कोई श्रद्धाभक्ति पूर्वक ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलक को धारण करते हैं, तो उनको सब यज्ञों का फल मिलता है ॥३३॥ स्त्री और शूद्रोंको केवल एक ही तिलक लगाना चाहिये। केवल मस्तक में इनकी यही विधि है ॥५२॥ और ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों को "द्वादशैतानि पुण्ड्राणि लिखेत्त्रिमन्यथाक्रमम् ॥ पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तर खंड अ० २ श्लो० ३।

नोटः--कुछ सज्जन यत्र तत्र ऐसा कहा करते हैं कि ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक नहीं लगाना चाहिये। वे सज्जन ध्यान से पढ़ें कि--यद्यपि ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सभी को लगाने का अधिकार है। तथापि ब्राह्मणको अनिवार्य रूपसे लगाना चाहिये। क्योंकि बाह्मण पृथ्वी के देवता माने जाते हैं। और देवताओं को सात्त्विक आहार विहार करते हुये सत्त्व प्रधान भगवान् श्री हरि की उपासना अनिवार्य रूपसे करनी चाहिये। भगवत् उपासना में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना अनिवार्य होगा। ब्राह्मणों को श्री हरि के अतिरिक्त किसी तामसी देवो देवताओं की उपासना करनेका अधिकार नहीं है। यदि बाह्मण अपना स्वाभाविक अधिकार अर्थात सर्वश्रेष्ठता का परित्याग करदे। उसे कौन रोकने जाता है। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि सात्त्विक प्रधान स्वभाव वालों को भगवान् श्री हरि की, राजसी स्वभाव वालों को ब्रह्मादि देवताओं की, और तामसी भूत प्रेतादिक तामसी देवी देवताओं की उपासना उपयुक्त हैं। ब्राह्मण के लिये तो शास्त्राज्ञा हैं कि--तस्मात्तु बाह्मणों नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु धारयेत्। पुण्ड्रस्यधारणादेव वैकुण्ठं यात्स सशयः॥ इस लिये बाह्मणों को उचित है कि नित्य ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को धारण करै। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करने से निश्चय ही बैकुन्ठ को जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। पाराशरीय धर्मशास्त्र उ० खं० अ० २ श्लो० २६। और ब्राह्मणोंको त्रिपुण्ड्र लगाना निषेध है। यथा--कपाल दारु भस्मास्थि शुक्ति पाषाण धारिणः। त्रिपुण्ड्र धारिणं विप्रं चाण्डालमिव संत्यजेत् ॥२१॥ अग्रदंशं च शंखे च लिङ्गशूलादि धारणम्। तिर्यक्पुण्ड्र धरं विप्रं राजाराष्ट्रात्प्रवासयेत् ॥२२॥ और भी--तिर्यक्पुण्ड्र धरो विप्रो यत्र तिष्ठति वै गृहे। तद्देशोऽपावन भूतः श्मशानसदृशो भवेत ॥२८॥ युक्त श्लोक पाराशरीय धर्मशास्त्र उ० खं० अ० ११ के हैं। मैंने गति-बोध के पृ० ५२ से लिखे हैं। अर्थ--यदि बाह्मण मनुष्य या पशुओं की खोपड़ी को धारण करता हो। अथवा हड्डी, सीप, पत्थर धारण करता हो, या त्रिपुण्ड्र धारण करता हो, तो उसको चाण्डालवत जानकर छोड़ दे उससे व्यवहार न करे ॥२१॥ और जो ब्राह्मण नोक वाले लोहे आदि की छड़ी को हड्डी के शंख को, शिवलिंग को, त्रिशूल आदि को और त्रिपुण्ड्र को धारण करता है, तो उसे राजा अपने राज से

निकाल दे ।।२२।। यदि त्रिपुण्ड्र तिलक को धारण करके ब्राह्मण किसी के घर चला जाय; तो वह घर श्मशान के सदृश्य अपवित्र हो जाता है ।।२३।। पुनः देखिये कि—त्रिर्यक्पुण्ड्र धरं बिप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति । पितरस्तस्य यान्तेव कालसूत्रं सुदारुणम् ।। बृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० ११ श्लो० २८३ । जो मनुष्य त्रिपुण्ड्र तिलक लगाये हुये ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन करवाता है, तो उसके पितृ कालसूत्र नामक कठिन नरक में जाकर पड़ते हैं। और--धृतोर्ध्वपुण्ड्र देहश्च पवित्र कर एव च । प्रविष्य मन्दिरं विष्णोः संमार्जन्या विशोधयेत् ।। बृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० ११ श्लो० ८ । अर्थ--प्रथम अपने शरीर में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर शरीर को पवित्र करके, तब भगवान के मन्दिर में प्रवेश करके मन्दिर या भगवत् पार्षदों को शुद्ध करना और भगवान् की पूजा करना चाहिये ।

नोटः--इस प्रसंग में शिवलिंग धारी ब्राह्मण की पूजा निषेध कही गई है । किन्तु भगवान शिव की निन्दा या तिरस्कार नहीं किया है । ब्राह्मण सात्त्विक प्रधान होने वाले और श्रीहरि भक्त होंने चाहिये । तथापि कुछ ब्राह्मण कहीं २ ऐसा कहते हैं कि--ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक नहीं लगाना चाहिये । यह तो शूद्रों का तिलक है अस्तु यह शास्त्रीय प्रमाण लिखा गया है कि ब्राह्मण को ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक निषेध नहीं है, त्रिपुन्ड्र निषेध है । भगवान श्रीहरि के मन्दिरों के पुजारी ब्राह्मणों को तो ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक अवश्य लगाना चाहिये । यद्यपि ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक मानव मात्र का परमोद्धारक हैं । देखिये कि—

ऊर्ध्वपुन्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः । चान्डालोपि विशुद्धात्मा विष्णु लोके महीयते ।। बृहद्वैष्णव पद्धति पत्र २४ गतिबोध पृ० ४१ से । ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक को यदि चान्डाल भी लगाये हो, तो वह विशुद्ध हो जाता है और देहावसान अर्थात् मरने के बाद भगवद्धाम को जाता है । अब कन्ठी विषयिक शास्त्रीय प्रमाणों को देखिये—

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कन्ठलग्ना द्विधाकृती । दद्यात्तां क्षणमात्रेऽपि शिष्यो नैव त्यज्येत्पुनः ।। सनतकुमार संहिता । अर्थ--श्री तुलसी जी की पतली सी कण्ठ में लगी हुई, दो लर वाली माला गुरु शिष्य को प्रदान करे । श्री गुरुदेव जी से प्राप्त कर शिष्य फिर कभी एक क्षण के लिये भी कण्ठी का त्याग न करे । त्यागने में महान दोष लगता है । और भी देखिये--कण्ठे माला धरोयस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत् । गानं कुर्यात्सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ।। पद्मपुराण उ० खं० अ० ८ श्लो० ७ और त्रिदण्डी जी द्वारा प्रकाशित वार्तामाला पृ० ५ से । अर्थात्—जो भक्त कण्ठ में श्री तुलसी जी की माला (अर्थात् युगल कन्ठी) धारण करते हैं । और

मुख से सर्वदा श्री सीताराम नाम का उच्चारण करते हैं। तथा भक्तिभाव पूर्वक श्री सीताराम जी के दिव्यगुण लीला यश का गान करते हैं, वे श्री वैष्णव कहे जाते हैं। नोट--पाठक ध्यान दें। कि पंच संस्कारों में तुलसी जी की कन्ठी का ही प्रमाण मिलता है। और परम्परा में भी कन्ठी ही प्रमाणित है। तथापि मध्यकालीन महापुरुषों ने भगवत्प्रेरणा से देश काल परिस्थिति का विचार करके तुलसी जी का हीरा का प्रचार किया है। अस्तु हीरा और कन्ठी दोनों ही तुलसी के बनने हैं, इसलिए एक ही हैं। अपनी परम्परा से प्राप्त कण्ठी या हीरा दोनों ही एक समझ कर धारण करना चाहिये। कण्ठी और हीरा में भेद की भावना करना उचित नहीं है। यद्यपि श्री वैष्णवीय शास्त्रों में तुलसी की माला का ही प्रमाण है। हीरा की बिलकुल चर्चा नहीं है। तथापि मानव को उचित है कि भगवत्कृपा से प्राप्त बुद्धि से काम ले। कण्ठी और हीरा जबकि एक ही तुलसी के बनते हैं तब हीरा और कण्ठी में कुछ भी भेद नहीं है दोनों एक हैं। इतने पर भी भेद मानना बुद्धि की दरिद्रता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। बात केवल इतनी ही है कि हीरा में एक ही दाना होता है, कण्ठी में सौ दो सौ दाना होते हैं। और कोई अन्तर नहीं है। वर्तमान समय में तुलसी की शुद्ध माला मिलना कठिन पड़ता है। हीरा तो अपने आप भी सुविधा पूर्वक सभी बनाकर पहन सकते हैं। बाजारू कण्ठी के पहरने से तो हीरा कहीं अधिक उत्तम है। एतदर्थ कण्ठी हीरा को एक ही मानना चाहिये।

तुलसी काष्ट संभूतां माला बहति यो नरः। तद्देहे पातकं नास्ति सत्यमेतन्मयोच्यते॥ पद्म पु० क्रियायोगसार खं० अ० २४ श्लो० २७ पृ० ११०३ कलकत्ता मन सुख राम मोर द्वारा प्रकाशित। अर्थ--जो मनुष्य तुलसी काष्ट से बनी हुई माला धारण करते (पहनते) हैं। उनके शरीर के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह हम सत्य सत्य कहते हैं। पुनः--तुलसी काष्ट संभूतां ये माला वहते द्विजः। अप्यऽशौचेप्यानाचारो मामेवैति न संशयः। स्कन्द पु० वैष्णव खं० मार्गशोर्ष मास माहात्म्य अ० ४ श्लो० २ में भगवान के वचन हैं। कि--तुलसी काष्ट (लकड़ी) से बनी हुई माला को द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य धारण करते हैं। वह किसी भी अनाचार या अशौच की विषम परिस्थिति में शरीर त्याग करें। वह मुझे प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं हैं। पुनः--तुलसी काष्ट मालां तु कण्ठस्थां बहते तु यः। अप्यशौचोप्यनाचारो भक्त्या याति हरेगृहम् ॥१०॥ तुलसी काष्ट मालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः। दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वाद्धूतोतं यथा दलम् ॥१८॥ तुलसी पत्र गलितं

यस्तोयं शिरसा वहेत् । सर्व तीर्थेषु स स्नातश्चांते याति हरेगृहम् ॥२७॥ पद्म पु० ब्रह्माण्ड खं० अ० २२ श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई की प्रकाशित । जो भक्त तुलसी काष्ट से बनी हुई माला को कण्ठ में धारण करता है, वह चाहे पवित्र हो अथवा अपवित्र हो, भगवान् के धाम को जाता है ॥१०॥ जिस प्रकार वायु (हवा) को देखते ही बादलोंके दल उड़ जाते हैं । इसी प्रकार तुलसी काष्ट माला को देखकर यमदूत भग जाते हैं ॥१८॥ तुलसी दल पड़े हुये जल से जो मनुष्य स्नान करता है, उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है । और शरीर त्यागने के पश्चात् भगवद्धाम को जाता है ॥२७॥ यह बाइसवाँ अध्याय पूरा देखना चाहिये ।

तुलसी काष्ठ निर्माण मालां गृह्णाति यो नरः । पदे पदेऽश्वमेधानां लभते निश्चितं फलम् ॥ इति वाचस्पत्यकोष (बृहत् संस्कृताभिधान) तुलसी शब्दान्तर गत क्रिया योग सार खं० पद्म पु० अर्थ--तुलसी काष्ट की माला बनाकर जो मनुष्य धारण करता है, उसको पग पग में अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है । यह निश्चय है । और भी—न धार्या सततं योहि श्री तुलसीद्वियष्टिका । तां त्यजन्यपुरुषो मूढ़ो भ्रष्ट संस्कार एव हि ॥ यस्य कण्ठे न लग्ना वै वैष्णवस्य च दुर्मते । तुलसी राजते सोऽथ नाममात्रेण वैष्णवः ॥ नारद पाञ्चरात्रे श्री महावाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लोक ६८–६९ । दो लरकी तुलसी की कंठी कंठ में सर्वदा धारण करना चाहिये । सद्गुरु से प्राप्त करके जो मूढ़ कंठी धारण नहीं करता वह संस्कार भ्रष्ट होता है यह निश्चय जानो ॥६८॥ जिस वैष्णव के कंठ में दो लर की कण्ठी नहीं लगी रहती है । वह दुर्मति नाम मात्र का वैष्णव है ॥६९॥ और जो मनुष्य सद्गुरु से प्राप्त करके कंठी का परित्याग करता है, उसके लिये कहा गया है कि—तस्यस्पृष्टमवन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित् । दूरं चाण्डालवत्याज्यो द्विज कर्म बहिष्कृतः ॥ बाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लो० ७० । अर्थ--उसके हाथ का दिया हुआ अन्न कभी नहीं खाना चाहिये । दूर से ही चाण्डालवत छोड़ दे. और वह द्विज वैष्णव कर्मों के करने का अधिकारी नहीं है । अस्तु श्री वैष्णवों को सद्गुरु से प्राप्त करने के बाद कभी भी कंठी का त्याग न करके सर्वदा पहिरना चाहिये ॥ गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० ७८–७९ ।

तुलसी संनिधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर। न तेषां नरकक्लेशः प्रयांति परमांगतिम् ॥ अगस्त संहिता अ० ६ श्लो० ४१ । अर्थ—हे मुनीश्वर ! जो तुलसी वृक्ष के निकट शरीर छोड़ता है । तो उसे नरक का क्लेश सहना नहीं पड़ता है । परमगति (मोक्ष) को अर्थात भगवद्धाम को प्राप्त करता है । और कहा गया है कि--यस्य स्यत्तुलसी पत्रं मुखे शिरसि कर्णयोः । मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ तस्यस्वामी न भास्करिः ॥८॥ प्राप्नोति मृत्युकाले यस्तोयं पातकवानपि । तुलसीपत्र गलितं

स्याति हरि सन्निधिम् ॥६॥ तुलसी मृतिका पुण्ड्रं यो मृत्यु समये बहेत् । स मुक्तः सकलैः पापैः परं गच्छति चक्रिणा ॥७॥ पद्म पु० क्रिया योगसार खं० अ० २५ श्लो० ६-७-८ बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । गतिबोध पृ० ८७ । अर्थ--मृत्युकाल में यदि तुलसी दल (पत्ता) या तुलसी मिश्रित जल मुख में छोड़ दिया जाये, तो पापात्मा भी निश्चय ही भगवद्धाम को प्राप्त होता है ॥६॥ तुलसी वृक्ष की जड़ में से मिट्टी लेकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाने वाला भक्त मुक्त हो जाता है । उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह भगवान् के निकट प्राप्त होता है ॥७॥ हे द्विज श्रेष्ट ! मरते समय जिसके मुख में शिर में या कान में तुलसी दल रक्खा हो, तो उसके स्वामी यमराज नहीं होते अर्थात उसके कर्माकर्म का निर्णय यमराज नहीं करते । वह भगवत्कृपा का अधिकारी होता है ॥८॥ कंठी धारण करने का निम्नलिखित श्लोक गरुड़ पुराण का है । कि—तुलसी काष्ट संभूते माले विष्णुजनप्रिये । बिभर्मि त्वा-महंकण्ठे कुरुमां राम वल्लभाम् ॥ अर्थात् हे तुलसी काष्टोद्भव माले ! हे वैष्णव भक्त प्रिये ! मैं आपको कंठ में धारण करता हूँ । आप हमें श्री राम जी का प्रिय दास बना देवें । श्री रामसार संग्रह पृ० ६१ । ले० श्री रामटहलदास जी दारागंज प्रयाग। अब भगवदायुधों के छाप की चर्चा की जाती है ।

* धनुपर्वाण चक्रादि की छाप का प्रमाण *

तिलक कंठी के पश्चात् भगवान् के आयुध धनुष बाण शंख चक्रादिकों की शीतल या तप्त छाप लगानी चाहिये । शीतल छाप लगाने से फिर नित्य ही लगाना चाहिये । और तप्त छाप तो संस्कार होते समय एक बार ही लगाने से फिर दोबारा लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

नोट--सन्त महात्माओं से निवेदन है कि शिष्य को पंचसंस्कार करते समय ही अपनी उपासना के अनुसार धनुषबाण अथवा शंखचक्रादि की छाप देना चाहिये। उस समय भगवदायुधों की छाप नहीं लगाने से चार संस्कार ही होते हैं । एक संस्कार की कमी रह जाती है । शिष्य बनाने वाले महानुभाव आयुधों को छाप लगाने में आलस्य करते हैं, यह भारी भूल है । बड़े बड़े मन्दिरों में पर्व अवसर पर एक ही दिन में सैकड़ों हजारों मनुष्यों का दीक्षा संस्कार होता है । समयाभाव के कारण उस समय छाप नहीं लग पाती, परन्तु दीक्षा देनेवाले महानुभावों को उचित है कि पुनः समय पाकर छाप अवश्य लगादें । यह उत्तरदायित्व गुरू जी का है । शिष्य को क्या पता कि हमें क्या करना चाहिये । यदि शिष्य को यह ज्ञान हो कि हमें क्या करना चाहिये क्या नहीं । तब तो फिर वह शिष्य ही क्यों बनेगा । गुरुवरण करने का एक तात्पर्य यही है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हो जाये । एक बात यह

भी है कि मध्यकालीन कुछ समय से यह परम्परा चल रही है कि छाप द्वारिका जी में जाकर ली जाये। यह परम्परा सर्वथा अनर्गल है। वैष्णवीय शास्त्रों में ऐसी आज्ञा नहीं है कि कंठी, तिलक, मन्त्र, नाम ये चार संस्कार गुरू जी करें। और एक छाप द्वारिका में हो। तीर्थ, धाम दर्शन की भावना से जाना तो अति उत्तम है। जाते हैं जाना चाहिये। किन्तु छाप तो अनिवार्य रूपसे गुरू जी को ही लगाना चाहिये। कितने शिष्यों के तो जीवन भर में न द्वारिका जाने का समय मिल पाता न छाप लग पाती है। यह भारी दोष गुरू बनाने वालों पर रहता है। प्रथम बात तो यही है कि एक बार में उतने ही व्यक्तियों का संस्कार किया जाये जितने का सविधान हो सके। यदि परिस्थिति बस अधिक व्यक्तियों का संस्कार करना हो पड़े तो उन्हें बतादे कि छाप बाद में अवश्य ले लेना भुलाना नहीं।

छाप अपने इष्ट रूप के आयुधों की ही लगानी चाहिये। सभी को यह अनिवार्य नहीं है कि सभी आयुधों की छाप लगावैं। क्योंकि भक्त को अपनी भावनानुसार ही भगवत्प्राप्ती होती है। सभी भक्तों को भगवान् एक ही रूप में नहीं अपनाते। तब सभी भक्त एक प्रकार की ही छाप धारण करें यह अनिवार्य नहीं रह जाता हैं। भगवान् श्री सीताराम जी के उपासक भक्तों को धनुष बाण तथा चन्द्रिका मुद्रिका इत्यादि की छाप अपनी श्री गुरु परम्परा के अनुसार शिष्य को भी देना चाहिये। अन्य भगवद्रूपों के उपासकों को अपने इष्ट रूप के आयुधों शंख चक्रादिकों की छाप लेना चाहिये। यद्यपि ये अनिवार्य या आवश्यक नहीं हैं कि सभी भक्त सभी आयुधों की छाप लगावें. तथापि बीच में ऐसी परम्परा कुछ दिन चल पड़ी थी कि सभी को सभी आयुधों की छाप लगानी चाहिये। यद्यपि यह बात सर्वथा सत्य है कि भगवान् एक ही हैं, अनेक नहीं। तथापि सत्यसंकल्प होने के कारण भक्तों की भावनानुसार अनेक रूप धारण किये हैं। वह सभी रूप नित्य हैं, उनका नाश नहीं होता। और भक्त को भावनानुसार ही भगवद्धाम में भगवत्प्राप्ति करता हैं, तो फिर भक्तको भावना के विपरीत व्यवहारों की परम्परायें माननीय कैसे होंगी। अस्तु दीक्षा संस्कार करने वालों को अपनी मान्यता के अनुसार ही भगवदायुधों की छाप लगानी चाहिये। अब छाप विषयिक शास्त्रीय प्रमाण पढ़िये।—प्रपत्ति रहस्य पृ० २८७ से। बाहुमूले धनुर्बाणेनाङ्कितो रामकिङ्करः। शीतलेनाथतप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ शीतलाच्छतगुणं प्रोक्तं तप्ते च परिधार्यते। अङ्किताः सर्वकालेषु चतुर्वर्णाश्रमदयः॥ चक्राच्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादि धारणम्। सर्वेषां रामभक्तानां राम मुद्राभिधारणम्॥ महाशंभु संहिता। अर्थ—बाहुमूल में धनुर्बाण से अंकित होकर जीव श्री राम जी का सेवक होता हैं। शीतल और तप्त दोनों प्रकार से लगाने (धारण करने)

से मुक्ति होती है। इसमें सन्देह नहीं है। शीतल की अपेक्षा तप्त धनुर्बाण धारण का अधिक महत्त्व है। चारों वर्ण और चारों आश्रमों में रहने वाले सभी श्री सीताराम भक्त स्त्री पुरुषों को सर्वदा इससे अङ्कित रहना चाहिये। चक्र से सौगुना फल धनुर्बाण धारण करने का होता है। अतः सभी श्री सीताराम भक्तों को इस श्री राम मुद्रा का धारण करना परमावश्यक है। पुनः देखिये--धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ ३९ मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद संहिता अध्याय २९। प्रपत्ति रहस्य पृ० २२९ तथा गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० २५ से लिया गया है।

अस्यार्थः--धन्वना, धनुषा-अङ्किता इतिशेषः अतः स्तीव्राः पटवः परब्रह्म-प्राप्ति-प्रति बन्धकीभूतषापनिरसने समर्था वय समदः कामादिभिरनुष्ठितान् संग्रामान जयेम। नन्विन्द्रियाणां विषयेमुख्ये कथं कामादि जयः-इत्याकांक्षायामुच्यते-धन्वना-धनुषा-करङ्कनप्रभावेणैव-गाः इन्द्रियाणि जयेम्। इन्द्रियजयेन च प्रसंख्यानाख्यावस्था लाभे धन्वना आजिं अजन्ति गच्छन्ति, परब्रह्मगन्तारो, अस्मिन्निति आजिः मार्गः त जयेम धनुरङ्कनंप्रसन्नेश्वरप्रदर्शितया सुषुम्नया नाड्या, वहिर्निष्क्रम्य अर्चिरादिमार्गेण परब्रह्म गच्छेम इत्यर्थः। यह व्याख्या स्वामी श्री भगवदाचार्य कृत है।

भाषार्थः--हम धनुष से गाय को जीते। धनुष से मार्ग को जीते। धनुष से तीव्र संग्राम को जीतें। धनुष शत्रु की कामना का बिनाश करता है। धनुष से सब प्रदेशों को जीतें। ग० वो उ० खं० पृ० २५। मैं धनुष से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करूँ। मैं धनुष से जीवन यात्रा को सदाचार सम्पन्न करके भगवद्धाम का मार्ग तय करूँ। और मैं धनुष से काम क्रोधादिक षट बिकारों को साधन रूपी संग्राम में जीतूँ। धनुष शत्रु की कामना नाश कर हमें विजय प्राप्त करावे। और मैं धनुष धारण करने के प्रभाव से सभी प्रदेशों (लोकों) में निर्भय होकर भ्रमण कर पर-ब्रह्म श्री राम जी के परात्पर धाम नित्य अयोध्या (साकेत) को प्राप्त करूँ। मैं धनुष की छाप लगाने के प्रभाव से परमेश्वर श्री राम जी की प्रसन्नता से प्रदर्शित सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्वगति को प्राप्तकर ब्रह्माण्ड भेदन कर शरीर से बाहर निकल कर अर्चिरादि मार्ग से परब्रह्म श्री सीताराम जी के निकट चला जाऊँ। स्वामी श्री भगवदाचार्य कृत व्याख्या के आधार पर लेखक का विचार। पुनः पंच सर्गीय महारामायण के सर्ग २ में--

तप्तेन बाँण धनुशांकित राम भक्तः ॥१०॥ यज्ञं च तीर्थ गमनं पितृदेव सर्वम्, कुर्वन्ति कर्म शुभकं श्रुतियो वदन्ति। ये नांकिता धनुशरैर्विफलं च सर्वम्, ये चांकिता

धनुः शरैश्च फलं सहस्रं ॥१७॥ चक्रांकते शतगुणं धनुषः शरस्य, येश्चांकितोपि स च रामजनाग्रगण्यः। सारूप्यमेव लभवे किलतत्क्षणे वै रामः प्रियः प्रियतरोनुदिनं च मह्यम ॥१८॥ ते वै प्रसन्न मानस समुदार बुध्या तपतं धनुः शरमिदं भुजयोः प्रकुर्यात्। पूजां पुनः प्रकुरुते विविधैश्च रत्नै, तस्मिन्क्षणे भवति जीवन एव मुक्तः ॥२१॥ बामे करे च धनुषा च शरेण सव्ये, पश्चांकितोहि मनुजो नरलोक धन्यः। तस्मै नमन्ति शीर्ष्ण दुहिणादि देवास्त, दर्शनेन मनुजा कलि कल्मषघ्न ॥२२॥ अर्थ—श्री सीताराम भक्त तप्त धनुष बाँण से अंकित होवें ॥१०॥ इस बात को वेद कहता है कि जिसके हाथ में धनुष बाण की छाप नहीं है। वह यदि यज्ञ तीर्थ अथवा पितृ देवतों का कर्म करता है। तथा और भी जो शुभ कर्म करता है वह सब निष्फल होते हैं। और धनुध बाँण की छाप लगाकर उक्त कर्म करता है, तो उन कर्मों का हजार गुना फल होता है ॥१७॥ शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! चक्र की छाप लगाने से जो फल होता है, उससे सौगुना फल धनुष बाँण की छाप लगाने वाले मनुष्य को होता है। और वह श्रीराम भक्तों में सर्वश्रेष्ठ है। धनुष बाँण की छाप लगते ही जीव उसी क्षण श्रीराम जी की सारूप्य मुक्ति का अधिकारी और श्री राम जी को प्रिय होता है, पुनः वह मुझे दिनों दिन अधिक प्रिय लगता है ॥१८॥ जो मनुष्य प्रसन्न मन से सम्यक् प्रकार उदार बुद्धि से अपनी भुजाओं में तप्त धनुष बाँण की छाप धारण करता है, तो वह उसी क्षण जीवनमुक्त हो जाता है, यह निश्चय जानो ॥२१ इस संसार में वह मनुष्य धन्य है, जो कि बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाँण की छाप से अंकित होते हैं। क्योंकि उनको देवता नत मस्तक होकर प्रणाम करते हैं। और उनके दर्शन से कलियुग के पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं ॥२२॥ पुनः आनन्द रामायण मनोहर कां० सर्ग ७ श्लोक १०६ में बताया गया है कि--

राममुद्रांकितं दृष्ट्वा नरं ते यम किंकराः। पलायंते दशदिशः सिहं दृष्ट्वा गजायथा ॥

अर्थ--श्री राममुद्रा से अंकित मनुष्य को देखकर यम के दूत उसी प्रकार दशो दिशाओं में भाग जाते हैं, कि जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं॥ इस सर्ग के १०१ और १०२ श्लोक भी द्रष्टव्य हैं ॥१०६॥ गतिबोध पृ० २७॥ राम-मुद्रास्ति यद्देहं तं पापं स्पृशते न हि। १२ आ० रा० मनो० कां० सर्ग ७ ॥ ग० बो० पृ० २७ ॥ जिसके शरीर में श्रीराम मुद्रा (धनुष बाँण की तप्त छाप) वर्तमान रहती है, उसे किसी प्रकार का पाप लगता ही नहीं है। नोट--इसका तात्पर्य न समझ कर कोई भक्त जान बूझ कर पाप रत न होंगे। कि धनुष बाँण की छाप लगाने वाले को पाप लगता ही नहीं है, तो चाहे जो करते रहें। भगवत् भक्त का स्वरूप ही है कि बाहर भीतर से निष्पाप रहना। जानकर कभी भी पापकर्म न करने वाला

ही भक्त होता है। जान जान कर पाप करने वाले की भक्त संज्ञा ही नहीं रहती, तब भगवान् को उससे आवश्यकता ही क्या है। अस्तु धनुष बांण की छाप लगा कर पापों से सावधान रहकर भजन करने पर ही भगवत्कृपा का अधिकारी होगा।

श्री तुलसी साहित्य भाष्यकार पं० श्री श्रीकान्त शरण जी महाराज कृत प्रपत्ति रहस्य पृ० २६१-२६२ से।

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्याः दन्तो गोभिः सन्नधा पतति प्रसूता।

यत्रा नरः संच बिच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसेन ॥ (यजु०२६।४८)

अर्थ- या=(जो) इषुः (बाण) सुपर्णम (सुन्दर को) वस्ते (धारण करता है) अस्याः (इस बाण के) दन्तः (फण) मृगः (शत्रुओं को ढूंढ़ ढूंढ़ कर मारने वाले हैं) या (जो) इषुः (बाण) गोभिः (वेद मन्त्रों से) सन्नधा (युक्त होकर) प्रसूता सती (अधिक बलवान होकर या भगवत् प्रेरित होकर) पतति (कामादि शत्रुओं को मारने के लिये बज्र के समान गिरता है) यत्रा (जिस बाण को धारण करने के लिये अथवा धारण करते ही) नरः (धर्मशील मनुष्य) सं (श्रद्धा के साथ) च [और] विन्द्रवंति [भगवद् भक्ति आदि शुभ प्रवृत्ति में अग्रसर बनते हैं) इषवः (बाण) अस्मभ्यम् (हमें) शर्म (कल्याण सुख] यंसन (देवैं)। अर्थात—श्री राम बाण धारण करने से मुमुक्षु कामादि शत्रुओं से बच कर धर्मशील बनता है। और फिर मोक्ष आदि कल्याण का पात्र होता है।

ऋजीते परि वृङ्गधिः नोऽस्मा भवतु नस्तनूः।

सोमो अधिब्रवितु नोऽदितिः शर्म यच्छुत ॥ (यजु० २६।४६]

अर्थ—ऋजीते [हे सरल मार्ग से चलने वाले वाण] नः (हमें) परिवृङ्गधि (पापादि निषिद्ध कर्मों से तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंसे बचाओ) नः हमारा] तनूः [शरीर) अश्मा [दृढ़] भवतु [हो] सोमः [सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी युक्त भगवान् श्री राम जी] नः [हमारी] अधिब्रवीत् [प्रशंसा करें] आदितिः [अविनाशी श्रीराम] नः [हमे] शर्म [मोक्ष सुख एवं श्रेष्ठ सुख] यच्छतु [देवैं] अर्थात् इस वाण को धारण करने से मुमुक्षु पापों से बचता हैं। इसमें श्रीराम भक्ति करने के योग्य शरीर दृढ़ बनाने की शक्ति है और इसको धारण करने से प्रभु श्री राम जी प्रसन्न होते हैं. तथा परम सुखकर अपनी शरण मे रखकर अन्त मे अपनी प्राप्ति रूपी मोक्ष सुख देते हैं।

चक्राङ्कित जाननां तु ताप मुद्रा अपेक्षिता। चापवाणाङ्कितानां तु चक्र चिन्हं विवर्जितम॥

चक्रादिक मुद्राओं की छाप लगाने के पश्चात् भी धनुप वाण की छाप लगने की अपेक्षा रहती है। परन्तु धनुष वाण की छाप लगने के वाद चक्रादिकों के चिन्हों का निषेध हैं। सनतकुमार सं० अ० ३४।श्लो० ५

अस्तु यह परम्परा ठीक नहीं है कि जो भी वैष्णव द्वारिका जी दर्शनार्थ जाये तो चक्र की छाप अवश्य लगवाये। हाँ यह तो ठीक है की जिसके शरीर में धनुषवाण की छाप न लगी हो, तो शंख चक्रकी छाप इच्छानुसार ली जा सकती है।] परन्तु यँह नियम सभी के लिए अनिवार्य नहीं है।

श्री नारद पञ्चरात्रान्तरगत वालल्मीकि संहिता में लिखा है कि— धन्वनेति जपन्मन्त्रं शारङ्गपाणिं च संस्मरन्। बाहोर्वामस्य मूले तु धनुषातापये-द्गुरूः॥ तथा सुपर्णमित्यादिमृजीत इति चादरात। जपन्दक्षिणमूले तु वाणाभ्यामं-कयेत्पुन:॥ प्रपत्ति रहस्य पृ० २६२ से २६३ तक॥

अर्थः— उपर्युक्त "धन्वना ... इस वेद मन्त्र का श्रद्धा समेत उच्चारण करके और शारङ्गपाणि भगवान् श्री राम का धनुषधारण किये हुये स्मरण करके सद्गुरु शिष्य के वामबाहु (वायें हाथ) के मूल अर्थात् जड़ में धनुष की तप्त—छाप लगावे। तथा "सुपर्ण...' और "ऋजीते ..." इन दोनों मन्त्रों का श्रद्धापूर्वक जप करते हुये गुरु शिष्य के दाहिने हाथ के मूल में वाण मुद्रा को अंकित करे (धनुष को एक और वाण को दो बार छापना चाहिये)॥ नोट— महानुभावों से निवेदन है कि यदि शिष्य कहे कि हम तप्त छाप नहीं लेंगे, तो भी शास्त्राज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिये यदि शिष्य अपनी हठरखना चाहे तो उसे वैष्णव दीक्षा ही न देना चाहियें। क्यों कि शिष्य को गुरु के निर्देश पर चलना शास्त्राज्ञा है, गुरु को अपने आधीन रखने का प्रमाण कहीं नहीं है। अस्तु दीक्षा देने वाले महानुभावों को शिष्यों की रुचि रखना आवश्यक नहीं है। शास्त्र विधि का पालन करना अनिवार्य है। जो व्यक्ति शिष्य वनने के पूर्व ही गुरु पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, वह भविष्य में क्या करेगा इसका विचार करके ही दीक्षा देना चाहिये। अन्यथा गुरु कहलाने वालों को पछताना पड़ेगा। जो लोग शिष्यों की रुचि कापालन करते हैं, वह शिष्य के सच्चे हितचिंतक नहीं हैं। सच्चा हितैशी वही गुरु है कि जो स्वयं भी शास्त्रानुसार चले और अपने शिष्य को भी शास्त्र सम्मत पथ पर चलावै॥ धनुष वाण की छाप लगाने के वाद पंचामृत सेस्नान करवा कर चन्दन तुलसी पुष्प चढ़ाकर धनुर्वाण की पूजा करे। फिर इस प्रकार कहे कि—

सुवर्ण रत्नाञ्चिमुज्वलं तं महाप्रभावैः परतः परम शरम्।
सदैव श्री राघव दक्षिणे करे प्रकाशमानं तमहं भजामि॥१॥
निरन्तरं राघव वामवाहौ विराजितं दिव्यतमं विचित्रम्।
यदंश सम्भूतमशेष सर्गं भजामि भक्त्या च धनुर्धुरीणम्॥२॥
विचित्र माणिक्य विभावितं वरं भजामि तूणीरमहं निरन्तरम्।

रघुत्तमस्यैक कटि प्रदेशे समुल्लसन्तं शरसंघ संयुतम् ॥३॥
निराकृताशेष सुदाम संभवं स्वकाशतश्चन्द्रमरीचि निर्जितम् ।
विपक्ष पक्ष क्षपिणं क्षितीश्वरं भजामि रामायुध खड्गमुत्तमम् ॥४॥
प्रपन्नतापार्ति हरं प्रसन्नं प्रभासमानं वपुषा परेश्वरम् ।
सदैव श्री राघव सन्निधानं भजामि श्री पावनमायुधालयम् ॥५॥
समस्त दुःखौघ विनाश हेतुं सुपश्चकं चायुध संस्तवं परम् ।
पठेद्य इच्छेदभयं सुखास्पदं तथैव रामस्य सुख प्रसादजम् ॥३॥

इति स्वामि श्री युगलानन्यशरण जी कृतं श्री रामायुध-पश्चकस्तवम् ॥ दीक्षा पद्धति पृ० ५४ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करके शिष्य को समझा देवे कि धनुर्वाण श्री रामायुधों में सर्व श्रैष्ठ हैं । "आयुधानामहं धनुः " भगवान् का श्री मुख वचन है । इसलिये अब इन्हें धारण कर तुम निष्पापहो गये, अतएव निर्भय पद को पाचु के, अब अन्य छाप लेने की आवश्यकता नहीं रही ॥ अमररामायण में लिखा है कि—चन्द्रिके द्वे च सीतायाः संस्कृती शुभे । धनुर्वाणौ तु रामस्य नाम मुद्रा तु पश्चमः ॥ सर्ग १ श्लो० १४२ ॥ अर्थ— श्री याज्ञवल्कि जीं ने श्री भरद्वाज जी से कहा कि—चन्द्रिका और मुद्रिका ये दो तो श्री सीता जी के शुभ संस्कार कहे जाते हैं । और धनुव एवं वाण श्री राम जी के संस्कार कहे जाते हैं । औरपाँचवें श्री सीताराम नामकी छाप लगाना ये पंचमुद्रा कहे जाते हैं । पुनः इन मुद्राओं को धारण करने की महिमा वताते हैं । चिन्हितो पश्चमुद्राभिः सर्वलोकेषु पूजितः । तेषां चिन्ह विनेवाय मात्मा पूतो न जायते ॥१४४॥ अर्थ—जो व्यक्ति इन पंचमुद्राओं से चिन्हित होता है, वह संपूर्ण लोकों में पूजित होता है । इन पंचमुद्राओं की छाप के विना आत्मा पूर्ण पवित्र नहीं होता है ॥ तप्ता वेतौ धनुर्वाणौ सीतायाः मुद्रिका तथा न तापये नाममुद्रां चन्द्रिकां नैव ताप तापयेत् ॥१४५॥ अर्थ—धनुष वाण और श्री सीता जी की मुद्रिका ये तो तपाकर लगाने चाहिये और नाम तथा चन्द्रिका को विना तपाये ही शीतल छाप लगावै ॥

राम क्षेत्रे मृदा तेद्वे धारये त्तिलकं यथा । पश्चभिश्चिन्हितो यो सौ राम भक्तेषु गीयते ॥१४५॥ अर्थ— श्री सीताराम जी के धाम (श्री मिथला- अवध, चित्रकुट) की मिट्टी से जिस प्रकार तिलक किया जाता है। उसी प्रकार इन पंचमुद्राओं से जो शीतल छाप लगाते है, वे श्री रामभक्त कहै जाते हैं ॥ प्रथम ॐ लगाकर फिर इन मुद्राओं के नाम में चतुर्थी और अन्त में नमः लगा देने से मुद्राओं के नाम ही मंत्र वन जाते हैं । इन्हीं मंत्रों से इन मुद्राओं का पूजन करे ॥१४६॥ षोड़सो प्रकार पूजन करके सत्शिष्य के शीतल और तप्त छाप संस्कार करे । फिर शिष्य से भी उसी प्रकार पूजन करवावै ॥१४७॥ फिर भगवान श्रीशंकर जी ने धनुर्वाण की स्तुति की ॥

रामब्रह्म राजपुत्र हस्तेऽजस्रं विराजितौ । सूर्यानन्त प्रभावन्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५० ॥ असुरगणां घातकौ च सुराणांभय नाशकौ ; निहितेभ्यो मोक्षदौ च धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५१ ॥ स्वचिन्ह बाहुमूलेभ्यः सीतारामांघ्रि भक्तिदौ । श्रीराम मुष्टि सौभाग्यौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५२ ॥ ध्यानानन्द करौ दिव्यौ योगीनांध्यान दुर्लभौ । नित्यं रामायुधाख्यौ तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५३ ॥ ममशूलाच्छक्ति शूलान्विष्णु चक्रात्परात्परौ । दिव्यन्तौं राममुष्ट्या श्री धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५४ ॥ श्रीराम वनिताभिश्च तद्विश्लेषे समर्चितौ । स्पृसन्तीनां मोद करौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥ १५३ ॥ असुरेभ्यो भीतकेभ्यः सुरेभ्यः शरणं प्रदौ । भूमिभार हरावेतौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम्॥१५७॥

इति धनुर्बाणाष्टकम् ॥

अर्थ--श्री पार्वती जी समेत श्री शिव जी प्रार्थना करते हैं कि--हे परात्परब्रह्म श्री रामचन्द्र जी के करकमल में विराजने वाले अनन्त सूर्यों के समान प्रभा वाले (प्रकाशयुक्त) धनुर्बाण जी हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५० ॥ हे असुरों के नाश करने वाले ! देवताओं के भय नाशक ! आपको धारण करने वाले को मोक्ष देने वाले, धनुर्बाण जी हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ १५१ ॥ जो आपके चिन्हों को अपने बाहुमूल में धारण करते हैं, उनको श्री सीताराम जी के चरणों की भक्ति देने वाले' श्री राम जी की मुट्ठी में रहने का सौभाग्य प्राप्त धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५२ ॥ भक्तों को ध्यान के दिव्य आनन्द देने वाले, षटकर्मक योगियों के ध्यान में जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, श्री राम जी के नित्य आयुध धनुर्बाणों को नमस्कार करता हूँ ॥ १५३ ॥ जो मेरे त्रिशूल से, शक्ति के शूल से, विष्णु के चक्र से, तथा सभी आयुधों से परात्पर हैं । और जो सभी ईश्वरों के भी महाकारण दिव्य सच्चिदानन्द मय विग्रहवान श्री राम जी के हाथ में रहने वाले, श्री धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५४ ॥ प्रियतम के वियोग में श्री राम जी की पत्नियों ने जिनका सम्यक् प्रकार पूजन किया ! स्पर्श करने पर महान आनन्दित हुईं, इस प्रकार प्रभावयुक्त श्री धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता हूँ । १५६ ॥ भयभीत हुये असुर देवतादि सबको शरण देने वाले, भूमि के भार को हरण करने वाले श्री

धनुर्बाण जी को मैं नमस्कार करता करता हूँ ॥ १५७ ॥ उसके बाद श्री शिव पार्वती जी ने श्री जानकी जी की चन्द्रिका और मुद्रिका की प्रार्थना की ॥

यस्याश्चांशेन रमोमा साबित्र्यादि शक्तयः । संभवन्ति सदाहं श्रीचन्द्रिका लक्रुतीं स्तुमः ॥ १५७ ॥ श्रीरामध्यानगम्यं च मुमुक्षुभ्यो गतिप्रदम् । सीताशिरोभूषण श्रीचन्द्रिकारव्यं नमाम्यहम् ॥ १५६ ॥ श्रीरामाक्षि भोगरूपं चन्द्रकोटि प्रभाधरम् । सीता शिरोभूषण श्री श्चन्द्रिकारव्यं नमाम्यहम् ॥ १३० ॥ समाप्ति का भूषणानां विना न्युनं करीतुया । ललाटिका परं ध्येया तां सीतालंकृति स्तुमः ॥ १६१ ॥ सीतारामयोर्यूगलोपासकानां ललाटको । तिलकेभ्राजमाणां तां चन्द्रिकारव्यां नमाम्यहम् ॥-१४२ ॥ स्वरस्मि मण्डले दिव्ये दीप्यन्ती तरलप्रभे । चन्द्रभानु तिरस्कृत्य तां सीतालंकृति स्तुमः ॥ १६३ ॥ यस्याश्चिन्हं भालमध्ये विधाय रामसीतयोः । भावुका रसिकत्वं हि यान्ति तांचन्द्रिकां स्तुमः ॥ १६४ ॥ यस्याश्चिन्हं भालदेशे विधायतिलके शुभे । भवेद्रामस्याति प्रियस्तां सीतालंकृतिं स्तुमः ॥ १६५ ॥ इति श्रीचन्द्रिकाष्टकम् ॥

अर्थ--जिनके अन्श से रमा (लक्ष्मी) उमा (पार्वती) और सावित्री आदि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । उन श्री सीता जी के अलंकार स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५८ ॥ श्री राम जी के ध्यान में निवास करने वाली, मुमुक्षुओं को गति देने वाली, श्री सीता जी के शिर का भूषणवस्वरूप श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५६ ॥ श्री राम जी के नेत्रों को सुख भोग देने वाली, करोड़ों चन्द्रमाओं के प्रकाश को धारण करने वाली, श्री चन्द्रिका नाम से प्रसिद्ध, श्री सीता जी के शिरभूषण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६० ॥ जिनके बिना सब भूषण न्युन प्रतीत होते हैं । सब भूषणों की अवधि, श्री सीता जी के मस्तक के भूषण (शृंगार) रूप में जिनका ध्यान होता है ऐसी श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६१ ॥ श्री सीताराम जी के युगल उपासकों के मस्तक में तिलक रूप से शोभित होने वाली, श्री चन्द्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६२ ॥ अत्यन्त शीतल प्रकाशमण्डल के बीच में स्वयं प्रकाशमान होने वाली, चन्द्र सूर्यों के

प्रकाश को तिरस्कार करने वाली, अर्थात् चन्द्र सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश-युक्त, श्री सीता जी के भूषण स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६४ ॥ जिनके चिन्ह को भालमध्य तिलक के बीच में धारण करने से श्री सीताराम जी के भावुक रसिकता को प्राप्त करते हैं। उन श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करत हूँ ॥१६४॥ जिनके चिन्ह को भालमध्य तिलक में धारण करने से भक्त श्री राम जी का अत्यन्त प्रिय होता है। इस प्रकार श्री सीता जी के भूषण शृंगार स्वरूपा श्री चन्द्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६५ ॥

सीताकरसरोजस्य दले किल विराजितम्। स्वङ्गुलीभूषणं तस्मान्मुद्रिका-रव्यां नमाम्यहम ॥ ॥ १६६ ॥ श्रीरामो योगिभिर्ध्येयः सोऽपिध्यायति यांसदा। सीतानामाङ्क संयुक्ता मुद्रिकां प्रणमाम्यहम् ॥ १६७ ॥ तेजो मण्डल सन्दर्भे भक्तानां हृदयेतमः। हारिणि प्रकुरू श्रेयो जानकी मुद्रिके हिमे ॥ १६८ ॥ कृपापात्रस्य जानक्या जनस्य मस्तकोपरि। वर्तिनीं सर्वलोकेष्वभयदां मुद्रिकां स्तुमः ॥ १६६ ॥ आदर्श वर्तुलाकारे कपोले श्याम सुन्दरे। स्फूरतीं राजपुत्रस्य दत्ते सीतोर्मिको स्तुमः ॥ १७० ॥ यस्या अंशोद्भवो माया जगदुत्पादितुं क्षमा। सीताङ्गुल्यार्मिका साने श्रेयो दिशतु सर्वदा ॥ १७१ ॥ अंगुष्टस्यापि तर्जन्यां मध्यमा या मनोहराम्। रामस्य राजपुत्रस्य जानक्या मुद्रिका स्तुमः ॥ १७२ ॥ कनिष्ठाया उर्मिकां चा नामिकायास्तथैव च। विभ्रन्तीं मण्डलं नौमिजानक्या करयोर्द्वयोः ॥ १७३ ॥ चन्द्रिका मुद्रिका बाण धनुषां च स्तवातिकम्। उमा-महेश्वरोक्तं स्त्रियो वा पुरुषा अपि ॥ १७४ ॥ पठन्ति नियमान्नित्यं सायं प्रातस्तु भक्तितः। सायुज्यं ते प्राप्नुवन्ति सीताया राघवस्य च ॥ १७५ ॥ इति श्री शंकर कृते श्री अमररामायणे सीताराम रत्नमञ्जूषायां पार्वती संस्कारो-नाम प्रथम सर्गः ॥

अर्थ—(श्री चन्द्रिका जी का अष्टक कहकर अब मुद्रिका जी का अष्टक कहते हैं।) श्री सीता जी के करकमल दल में विराजने वाली अंगुली भूषण स्वरूपा श्री मुद्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६६॥ सब योगियों से ध्येय जो श्री राम जी सर्वदा जिसको ध्यान करते हैं। श्री सीतानाम से अंकित ऐसी श्री मुद्रिका जी को मैं

प्रणाम करता हूँ ॥ १६७ ॥ अपने महान तेज से भक्तों के हृदय के अन्धकार को दूर करने वाली, हे श्री जानकी मुद्रिके आप मेरा कल्याण करें ॥ १६८ ॥ श्री सीता जी के परम कृपापात्र भक्तों के मस्तक पर रहने वाली और संपूर्ण लोकों को अभय देने वाली श्री मुद्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६६ ॥ शीशा के समान चमकने वाले श्याम सुन्दर राजकुमार श्री राम जी के कपोलों पर चमकनेवाली परम कुशला श्री सीता जी की मुद्रिका की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १७० ॥ जिनके अंश से उत्पन्न होकर माया जगत को उत्पन्न पालन प्रलय करने में कुशल होती है । ऐसी श्री सीता जी की अंगुली भूषण श्री मुद्रिका जी मेरे लिये सर्वदा कल्याण प्रद होवैं ॥१७१॥ श्री जानकी जी के अंगुष्ठ (अँगूठा) तर्जनी मध्यमा अंगुलियों में रहकर श्री राम जो के मन को चुरा लेने वाली, श्री मुद्रिका जी की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १७२ ॥ श्री जानकी जी के दोनों कर कमलों की कनिष्ठिका अनामिका अंगुलियों में रहकर प्रकाश का मण्डल बाँधने वाली, श्री मुद्रिका जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७३ ॥ श्री उमामहेश्वरजी की की हुई चन्द्रिका मुद्रिका धनुष बाण की स्तुति को जो स्त्री अथवा पुरुष ॥ १७४ ॥ सन्ध्या और प्रातः समय नित्य नियम से पाठ करते हैं । वे श्री सीताराम जी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ १७५ ॥ इस प्रकार से प्रार्थना करके चन्द्रिका मुद्रिका धनुषबाण की छाप देने के बाद श्री सीताराम जी का युगल मन्त्रराज प्रदान करे ।

नोट—यद्यपि पंच संस्कारों में ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक, कण्ठी धनुर्बाण चन्द्रिका मुद्रिका शंख चक्रादिक की छाप लगाने का शास्त्रीय प्रमाण है । तथापि यह अनिवार्य नहीं है कि सभी लोग सभी छाप लगावें । जो भक्त जिस संप्रदाय के अनुयायी हों, तदनुसार परम्परागत मान्यता के अनुकूल पंच संस्कार करें । यह बात अवश्य ही है कि श्री वैष्णवीय दीक्षा में पंच संस्कार अवश्य ही करना चाहिये ॥ अब चक्रादि के छाप के प्रमाण देखिये ।

अग्नि तप्तेन चक्रेण ब्राह्मणो बाहुमूलयोः ॥ ३३ ॥ होमाग्नि संतप्तं पवित्र लांछितो मूले च बाह्वो परमात्मनो हरेः । तारयित्वा भवसागरं महत्परंपदं याति परेश लोकम् ॥ ७२ ॥ अङ्कयेत्तप्तचक्राद्यै रात्मनो बाहुमूलयोः । कलत्रापत्य भृत्येषु पश्वादिषु च अङ्कयेत ॥ ७३ ॥ पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २५२ आनन्द प्रेस पूना से प्रकाशित ॥ पुनःतस्माचक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्विजः सर्वाश्रमेषु बसतां स्त्रीणां च श्रुति चोदनात् ॥ ३३ ॥ वृद्धहारीतस्मृति धर्मशास्त्र अ० २ ॥ ग० बो० पृ० १८-१६॥ युक्त श्लोक में ब्राह्मणों को तप्त चक्र की छाप का विधान और सभी वर्णों की स्त्रियों

को भी छाप लगाना कहा है । जिन्हें मुक्ति की कामना है । पुनः—आश्रमाणां चतुर्णां च स्त्रीणां च श्रुति चोदनात् । अंकयेच्छं खचक्राभ्यां विधानतः ॥ ४१ ॥ वृद्धहारी तस्मृति अ० ८ ॥ यदि कोई यह कहे कि यह छाप का विधान विरक्तों के लिये है गृहस्थों को छाप नहीं लेना चाहिये । तो कहते हैं कि—विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम एव च । तापादिना विमुक्तःस्यात्पातकैः कोटि जन्मजैः ॥ वृहद्ब्रह्म संहिता पाद १ अ० ५१ लो० ८ ॥ और-तप्तमुद्रांकितः कृत्वा मतं वैष्णवसंम्तम् । स्कन्दपुराण सह्याद्रिखण्ड उत्तर रहस्य अ० ७- श्लो० ५४ ॥

यद्यपि भगवान् श्री हरि जीव मात्र के परमोपास्य हैं तथापि ब्राह्मणों के तो एकमात्र देवता भगवान् ही हैं ! विचार कीजिये कि चारों वर्णों में ब्राह्मण ही श्रेष्ठ माने जाते हैं ऐसा क्यों, जब कि चारो वर्णों की सन्तानोपत्ति पालन इत्यादि सभी क्रियायें एवं शरीर के अंग समान हैं । भगवान् के सम्बन्ध से ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता है ध्यान दीजिये कि--शुद्ध सत्वमयो विष्णुः कल्याण गुण सागरः । नारायणों परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरि ॥ पद्मपुराण उ० ख० अ० २८२ श्लो० ६० ॥ ग० वो० पृ० २७ ॥ अर्थ--शुद्ध सात्विक वृत्तिवाले विष्णु भगवान कल्याण और गुण के सागर हैं । यही नारायण हैं यही परंब्रह्म हैं और प्रधानतया ब्राह्मणों के एकमात्र आराध्य देवता हैं । तथापि वर्तमान समय में ब्राह्मण भगवान् श्रीहरि को विस्मृत कर अन्य देवी देवताओं की उपासना करते हैं यह भारी भूल है यह नहीं सोचते कि इन देवताओं की आराधना से हमारा पतन हो रहा है । फिर देखिये कि--पूजनीयो हरि नित्यं ब्राह्मणानां विशेषतः । तस्मातु ब्राह्मणों नित्यं विधिवत् पूजयेद्धरिम ॥ २६ ॥ विष्णुचक्र विहीनंतु यः श्राद्धे भोजयिष्यति । व्यर्थं भवति तत्सर्वं निराशाः पितरोगताः ॥ ३७ ॥ हुताग्नि तप्त चक्रेण शरीरं यस्य चिन्हतम् । तस्य तीर्थानि यज्ञाश्च बसंतिनात्र संशयः ॥ ४१ ॥ पद्मपुराण उ० खं० अ० २५२ आनन्द प्रेस पूना से प्रकाशित ग० वो० पृ० २८-२६ ॥ युक्त २६ वें श्लो० में ब्राह्मणों को अनिवार्य रूप से विशेष विधिपूर्वक भगवान् श्री हरि की पूजा का विधान बताया है । और ३७ श्लोक में कहा गया कि श्राद्ध में यदि बिना चक्रांकित ब्राह्मण को भोजन कराया जाये तो, वह श्राद्धकर्म व्यर्थ हो जाता है । इससे निश्चय हो गया कि भगवदायुधों के चिन्हों से रहित ब्राह्मण को श्राद्ध भोजन पाने का अधिकार नहीं है । इससे यह निर्णय हुआ कि श्री वैष्णवीय दीक्षा के पंच संस्कार से संस्कृत ब्राह्मण को ही श्राद्ध भोजन का अधिकार है ॥

नोट--इतने पर भी स्मार्त ब्राह्मण श्राद्धकर्म करवाते समय कंठी तिलक का

निषेध बतलाकर यजमान की कंठी भी उतरवा देते हैं । जबकि उन्हें स्वयं श्राद्धकर्म में भाग लेने का भी अधिकार नहीं है । यह अनुचित है । वैष्णव भक्तों को भक्ष्य भक्षवादी या मद्य पीने वाले ब्राह्मण को अपना उपरोहित नहीं बनाना चाहिये । मद्य-पान करने वाले ब्राह्मण का करवाया हुआ श्राद्ध या तर्पण पित्रों को प्राप्त कैसे हो सकता है । क्यों कि उनका मुख स्वयं ही दक्षिण दिशा को है, तब उनका यजमान भी उत्तराभिमुखी (स्वर्गगामी) कैसे होगा । कोई कोई कर्मकाण्डी पंडित कहा करते हैं कि--तप्तछाप लगाये हुये व्यक्ति को कर्मकाण्ड करने का अधिकार नहीं है । क्यों कि अंग भंग हो गये हैं । वह श्रीमान ध्यान दें ।-

जिस प्रकार प्रधानतया द्विजातियों के षोड़स संस्कार स्मृति कारों ने माने हैं। उसी प्रकार श्री वैष्णवों के पंच संस्कार भी स्मृतिकारों ने अनिवार्य रूप से माने हैं। तब पंच संस्कारान्तर्गत भगवदायुधों की छाप लगने पर व्यक्ति अंग भंग किस प्रमाण से हो गया । यदि प्रमाण रहित तर्क से कहा जाये तो भी सिद्ध नहीं होगा कि भगवदायुधों की छाप लगाने वाला अंग भंग है । अब अंग भंग का शाब्दिक मोटा अर्थ है कि प्रकृति द्वारा निर्मित किसी भी अंग का भंग (छेदन) होना । तब विचार कीजिये कि प्राकृतिक अंग संपूर्ण किसके हैं, किसके भंग हो गये हैं । तब पता लगेगा कि संसार में सभी मनुष्य अंग भंग हैं । क्यों कि सभी के प्राकृतिक अंग किसी न किसी प्रकार भंग हो ही जाते हैं । हिन्दू समाज में सभी का कर्णवेध होता है अर्थात् कान को सूजी (सुई) से छेदा जाता है । प्रकृति निर्मित बाल कटवाये जाते हैं । नख भी छेदन किये जाते हैं । फोड़ा होने पर अथवा अन्यान्य रोगों में हाथ, पैर, पेट, आँख, सर्वांग का आप्रेशन आवश्यकतानुसार होता है । तब पं० जी यह नहीं कहते कि अंग भंग हो गया है । रसोई बनाते समय सभी माता बहिनों के हाथ कभी कभी जल जाते हैं । विदेशया तीर्थ यात्रा में पं० जी भी स्वयं ही भोजन बनाते होंगे, तो कभी कभी असावधानी से उनका हाथ भी जल जाता होगा । तब तो वह भी अंग भंग हो गये । अब कहिये जब कि अंग भंग यजमान श्राद्ध नहीं कर सकता है, तो फिर अंग भंग व्यक्ति, उपरोहित्य कर्म कराने का अधिकारी कैसे हो सकता है, अतएव भगवदायुधों की छाप लगाकर कर्मकाण्ड का अधिकार नहीं है यह कहना कोरा पागलपन है । वैष्णव भक्तों को उचित है कि पागलपन की बातों पर ध्यान न देकर सप्रेम भगवत्भजन करें ॥

एक बात का और भी ध्यान दीजिये । कि—

सूतके प्रेतकार्ये च तैलाभ्यंगे च भोजने । शयने तुलसीमालामधृत्वैव समाचरेत ॥

यह श्लोक बृहद्ब्रह्म सं० पा० ३ ग्र० ७ श्लोक ५२ है ।। अर्थ सूतक में प्रेत-कार्य (मुर्दा जलाने) में देह में तेल लगाने समय में भोजन में शयन में तुलसी की माला धारण न करै । तात्पर्यार्थ—इस श्लोक में नित्य पहरने उतारने वाली माला की चर्चा है कि सूतक, प्रेतकर्म, तेल मालिश, भोजन शयन में माला धारण न करे। किन्तु पंचसंस्कारों के अवसर पर सदगुरु से प्राप्त कण्ठी का निषेध नहीं है । शास्त्र प्रमाण है कि-सूतके नैवभवति स्पर्शदोषो न विद्यते ।। ६४ ।। और भी-वैष्णवस्य शरीरस्य न दाहः क्रियते यदि । न तेन दुर्गतिं गच्छेच्चक्रं तत्र प्रशास्ति हि ।। ६६ ।। (बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ ।।) अर्थ जिसके शरीर में भगवत् चक्र की छाप लग गई है उसे सूतक और अछूत स्पर्श दोष नहीं लगता है ।। ६४ ।। यदि वैष्णव के मृतक शरीर की दाह क्रिया न भी की जाय तो भी उसकी दुर्गति नहीं होती है । क्यों कि भगवदायुधों में श्रेष्ट चक्र की छाप लगी हुई है ।

नतेन दुर्गतिं गच्छेच्चक्रं तत्र प्रशस्ति हि । सर्प व्याघ्र विषा चौर वारि अग्नि विशूचिकाः चक्रांकितस्य नेच्छेन्ति दुर्गतिं यम किंकराः । श्मशाने मागधे-देशे म्लेच्छदेशेऽन्त्यजां गणे ।। ६७ ।।

(बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ ।।) यह निश्चय है कि जिसके शरीर में चक्रादिक भगवदायुधों की छाप लगी रहती है, वह प्रभु कृपा से अभय है । उसको बाघ, विष, चोर पानी में डूबने अग्नि में जलने हैजा से मरने का डर नहीं होता है ।। ६६ ।। भगवदायुधों की छाप लगा हुआ मनुष्य चाहे श्मशान में मरै या मगध देश में मरे या अछूतों के झुण्ड में मरे तो भी यमदूत उसको दुर्गति की इच्छा नहीं करते ।। इसलिये भगवद्भक्तों को किसी परिस्थिति में कंठी का त्याग नहीं कराना चाहिये । क्यों कि स्कन्दपुराण वैष्णव खंड मार्गशीर्ष माहात्म्य अ० १० के श्लो० ४० में लिखा है कि—

अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च । येषां पादोदक मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ।। पृष्ट ५५८ ।।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धा भक्तिपूर्वक नित्य भगवत् चरणामृत को शिरोधार्य कर पान करता है उसको सूतक (सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर) और किसी के-

मर जाने पर भी अशौच नहीं लगता है। अर्थात अपवित्र नहीं होते हैं। उस समय भी--न त्यजेन्ममकर्माणि सूतके मृतकेऽपि वा-अर्थात् उस अवस्था में भी भगवत्कर्मों का परित्याग नहीं करना चाहिये। मरना तथा जन्म लेना यह संसार का खेल है। अन्य देवी देवताओं का पूजन करना या कर्मकाण्ड भले ही निषेध है। किन्तु भगवान का पूजन या भजन करना कभी निषेध नहीं है। क्यों कि सभी अपवित्रताओं को पवित्र करने की सामर्थ तो भगवान् के नाम में ही है। मरतौ जासुनाम मुख आवा। अधमौ मुक्त होइ श्रुति गावा॥ अ० का० ३१ दो०) जिनके नाम की यह महिमा है कि-कि मरते समय में भी यदि जिसके मुख से नाम उच्चारण हो जाये तो वह मुक्त हो जाये यह वेद गाते हैं तब जो नित्य निरंतर प्रेमपूर्वक भगवन्नाम का जप एवं कीर्त्तन करता है, वह अपवित्र क्यों हो जायेगा। अथवा भगवान क्यों अपवित्र हो जायेंगे। अस्तु भगवद्भक्त को भजन स्मर्ण तथा कंठी तिलक मुद्रादि का त्याग कभी भी नहीं करना चाहिये। प्रसवकाल में प्रसूता देवी (महिला) को बारहवाँ न होने तक पुस्तक माला, भगवान की मूर्ति इत्यादि तथा अन्य व्यक्तियों को स्पर्श करना निषेध है। किन्तु गले में बँधी हुई कंठी का त्याग करने या भगवान के नाम का जपने का निषेध नहीं है। और पुरुष को तो पूर्ववत भजन पाठ करना चाहिये।

यदि कोई यह कहे कि सूतक में पाठ पूजन करना निषेध है तथापि भगवद्भक्तों को अपना नित्य नियम नहीं छोड़ना चाहिये। सूतक लगने में भोजन करना स्नान करना, सोना, तथा मलमूल त्याग करना इत्यादि अनेक अशुभ क्रियायें होती ही रहती हैं, जिनसे सूतक भी नहीं घटता और कुछ पुण्य भी नहीं बढ़ती। तब अपने नित्य नैमितिक कर्म क्यों छोड़े जायें, जिनसे सूतक का दोष भी नष्ट होने का शास्त्र प्रमाण है और भगवत्कृपा के भी साधन हैं. अस्तु सूतक या अशौच काल में भगवत्भजन स्मर्ण एवं पाठ पूजन बन्द न करके विशेष रूप में करना चाहिये। यदि भगवत्भजन स्मरण से सूतक तथा अशौच में लाभ नहीं होगा, तो शारीरिक सभी क्रियायें बन्द कर देना चाहिये। किन्तु यह बात किसी के बश की नहीं है। जब कि जागतिक सभी व्यवहार पूर्ववत होते रहते हैं तब भगवान् का भजन पूजन क्यों छोड़ा जाये॥ इसलिये सूतक या अशौचकाल में तथा कर्मकाण्ड करते समय किसी के कहने पर तुलसी की कण्ठी को त्याग नहीं किया जाये। महर्षियों के बचन हैं कि--तुलसी स्पर्शणेनैव सर्वपापं विनश्यति। तुलसी स्पर्शने नैव नश्यन्ति व्याधयो नृणाम्। (पद्मपुराण क्रियायोग सार खंड अ० २४ श्लोक २५ ग० वो० पृ० ६१) अर्थात् तुलसी जी

का स्मरण करते ही सब पाप नाश हो जाते हैं । और श्री तुलसी जी के छूने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं, निरोगी रहने की इच्छा वाले मनुष्य को तुलसी वृक्ष के निकट रहना चाहिये । अब सोचिये कि जिसके स्मरणमात्र से सभी पाप एवं दोष नष्ट हो जाते हैं, उसका किसी भी परिस्थिति में त्याग क्यों किया जाये । पुनः त्यागने का निषेध भी किया गया है । यथा--

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कंठलग्ना द्विधाकृती । दद्यातां क्षणमात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत्पुनः ॥ (सनतकुमार संहिता अ० ६ श्लोक १५(दीक्षापद्धति पृ० ६८) वैष्णवैः सततंधाया श्री तुलसी द्वियष्टिका । तां त्यजन्पुरुषो मूढ़ो भ्रष्ट संस्कार एव हि ॥

(वाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लोक ६८ ॥) अर्थ--पतले दाने की तुलसी की माला जो सर्वदा कण्ठ में लगी रहे, दोलर युक्त गुरु शिष्य को धारण करावे । सद्गुरु से प्राप्त करके उस माला (कंठी) को फिर शिष्य कभी एक क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करे ॥ यदि त्याग करता है, तो वह मूढ़ात्मा निश्चय ही संस्कार भ्रष्ट है । सत्पुरुषों को उससे व्यवहार नहीं करना चाहिये । उसे त्याग दे । इसलिये वैष्णव को दोलर युक्त तुलसी की कंठी सर्वदा पहिरना चाहिये ॥ मुर्दा जलाते समय मुर्दा जलाने वाले व्यक्ति को तो कंठी उतारने की कौन कहे, मुर्दा की दाह क्रिया में भी तुलसी काष्ट संयुक्त दाह संस्कार करने की अपार महिमा है । यथा--

तुलसी दारुणदाहो न तस्य पुनरावृत्तिः । यदेकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठ शतस्य हि ॥ ५ ॥ दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटि पाप युतस्य च । गङ्गाम्भसाभिषेकेण यान्ति पुण्यानि पुण्यताम् ॥ ६ ॥ तुलसी काष्ठ मिश्राणि यान्ति दारुणि पुण्यताम् । तुलसीकाष्ठ संमिश्रा यावत्प्रज्वलते चिता ॥ ७ ॥ दह्यन्ति तस्य पापानि कल्पकोटि कृतानि वै । दह्यमानं नरं दृष्ट्वा तुलसी काष्ठ वह्निना ॥८॥ नयन्ति तं विष्णुदूता न च वै यम किङ्करा । जन्मकोटि सहस्रैस्तु मुक्तोयाति जनार्दनम् ॥ ६ ॥

पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २५ वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । गतिबोध पृ० ८४ से ॥

अर्थ -यदि सौ लकड़ियों में एक भी तुलसीजी लकड़ी की है । ऐसे तुलसीयुक्त काष्ट

से दाह संस्कार होने पर मृतकात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ ५ ॥ दाह क्रिया के ही समय में अनेक पापों से मुक्त हो जाता है । और गंगाजल से स्नान व अभिषेक की पुण्य प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ तुलसी काष्ठ मिश्रित काष्ठ से दाह क्रिया करने पर पुण्य बढ़ती है । और तुलसी काष्ठ मिश्रित लकड़ी को चिता जब तक जलती रहती है ॥ ७ ॥ तब तक उस मृतात्मा के किये हुये करोड़ों कल्पों के पाप जलते रहते हैं । और देखने वाले व्यक्ति के भी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ उसको जमदूत स्पर्श भी नहीं करते । अनेकानेक जन्मों के पापों से मुक्त होकर भगवत्पार्षदों के साथ भगवान् के धाम जाता है ॥ ९ ॥ और इसी अध्याय के ३७ तथा ३८ श्लो० में लिखा है कि--

विनायस्तुलसीं कुर्यात्सन्ध्या कालेतु मार्जनम् ॥ ३७ ॥ तत्सर्वं राक्षसं हृतं नरकं च प्रयच्छति ॥ ३८ ॥

गतिबोध पृ० ८४ ॥ अर्थात् सन्ध्याकाल में व्यक्ति विना तुलसी के मार्जन करता है ॥ ३७ ॥ उस सब क्रिया कलाप को राक्षस अपहरण कर लेते हैं, वह नरक में जाता है ॥ ३८ ॥ इतनी महान महिमा वाली तुलसी जी की कंठी का किसी अवस्था में भी त्याग नहीं करना चाहिये ॥

जिन देवियों ने वैष्णवीय दीक्षा संस्कार प्राप्त नहीं किया, वह अपनी रुचि से जैसे चाहें वैसे रहें । किन्तु जिन माताओं बहिनों ने सद्गुरु से वैष्णवीय पंच संस्कार प्राप्त किया है, उन्हें प्रसूतिगृह में, अर्थात् सन्तान जन्म के समय भी और सन्तान होने के बाद भी कंठी का त्याग नहीं करना चाहिये । सन्तान पैदा होने में माता का शरीर अपवित्र होता है , किन्तु कंठी तो अपवित्रता को शुद्ध करने वाली है, तब तुलसी की कंठी का त्याग क्यों किया जाये । यदि किसी माता की प्रसवकाल में ही मृत्यु हो जाये तब यदि वह तुलसी की कंठी पहिरे है तो शास्त्र प्रमाणानुसार भगवत्कृपा की अधिकारिणी होगी । और कंठी खोलकर रख देने में तुलसी का त्याग का दोष लगेगा । यहां तक कि-पति की परलोक यात्रा के पश्चात् सती होते समय भी तुलसी माला का त्याग करना उचित नहीं है ॥ स्कन्दपुराण में लिखा गया है कि-

यज्ञोपवीत वद्धार्या कंठे तुलसीमालिका । नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥

अर्थात् यज्ञोपवी (जनेऊ) की भाँति श्री तुलसी जी की माला (कंठी) सर्वदा धारण करे । किसी भी समय त्याग न करे । क्योंकि तुलसी की माला (कंठी)

पहिरने वालों को अशौच का दोष नहीं लगता। वह (तुलसी जी) ब्रह्मरूपिणी हैं ॥ दीक्षापद्धति पृ० ७० ॥ और भी लिखा है कि—

यज्ञसूत्रं विना विप्राः वेद हीना क्रिया यथा । सत्यहीनं यथा वाक्यं माला हीना च वैष्णवाः ॥

दी० प० पृ० ७० ॥ सोचने विचारने योग्य यह बात है कि द्विजातिमात्र (ब्राह्मण क्षत्री वैश्य) यज्ञोपवीत (जनेऊ पहिर कर प्रेतकार्य, तेल मालिश, शयन, भोजन तथा मलमूत्र का त्याग एवं मैथुन क्रिया करते रहते हैं। क्या इन क्रियाओं में तथा सूतक में यज्ञोपवीत उतार कर रख दिया जाता है। यदि यज्ञोपवीत अशुद्ध नहीं हो जाता है तब महान अशुद्धता को परम शुद्ध करने वाली तुलसी माला (कंठी) को उतार कर रखने की आवश्यकता नहीं है। कुछ महानुभावों का कहना है कि—तुलसी पहिन कर स्नान करने में दोष लगता है, तुलसी का स्पर्श किया जल गंगाजल सदृश्य पवित्र होता है। अस्तु पैर में नहीं लगना चाहिये। वे सज्जन ध्यान दें ॥

यदि तुलसी से स्पर्शित जल गंगाजल सदृश्य होने के कारण पैर पर पड़ने में दोष लगता है। तब तो फिर गंगा जी में प्रवेश करने पर या स्नान करने पर महान दोष लगना चाहिये। क्यों कि गंगस्नान करने में तो गंगाजल सर्बांग में स्पर्श करता है। इसलिये ये कहना कि तुलसी से स्पर्श किया जल पैर में लगने से दोष होता है, उपयुक्त नहीं है ॥ दूसरी बात यह है कि-तुलसी से स्पर्शित जल से स्नान करना निषेध भी नहीं है। अपितु बिधि लिखी गई है ॥ कि--

कोटि ब्रह्माण्ड मध्येषु यानि तीर्थानि भूतले । तुलसीदलमाश्रित्यतान्येव निवसन्ति वै ॥ (पद्मपुराण क्रियायोगसार

खंड अ० २४ श्लोक १० श्री बैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित। गतिबोध पृ० ८७ ॥) अर्थ--अनेक ब्रह्माण्डों में पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं। वे सब तीर्थ तुलसीदल के आश्रित निवास करते हैं ॥ और लिखा है कि—

तुलसीपत्र गलितं यस्तोयं शिरसा वहेत् । सर्वतीर्थेषु स स्नातश्चांते याति हरेगृहम् ॥

(पद्मपुराण ब्रह्म खंड अ० २२ श्लो० २७ श्री बैंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित और गतिबोध पृ० ७१) अर्थ--तुलसीदल पड़े हुये जल से जो स्नान करता है। उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल होता है। और अन्त में (मरने के बाद)

भगवद्धाम जाता है। तब भी यह कहना कि तुलसी स्पर्श किया हुआ जल पैरों पर पड़ने से दोष होता है। केवल हठ बाद ही है॥ जगतगुरु श्री रामानुजाचार्य सम्प्रदाय के महाविभूति स्वरूप श्री त्रिदण्डी स्वामी जी ने वार्ता माला के पृ० ५ में—

कंठे माला धरोयस्तु मुखेराम सदोच्चरेत्। गानं कुर्या सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः॥

और पृ० ७ में—ये कण्ठ लगना तुलसी नलिनाक्षिमाला। इत्यादि कई प्रमाणिक श्लोकों को प्रकाशित करके यह प्रमाणित किया कि श्री वैष्णवों को कंठ लग्ना तुलसी की माला सर्वदा पहिरना चाहिये॥ अस्तु भगवत् शरणागत वैष्णव भक्तों को किसी भी परिस्थित में एक क्षण के लिये भी तुलसी की कंठी का त्याग नहीं करना चाहिये। नाम संस्कार—

आब्रह्म लोकाल्लोकानां यदैश्वर्यं नतद्ध्रुवम्। अथ नित्यं महत्साधु यद्दास्यं परमात्मनः॥

(भरद्वाज सं० परिशिष्ट अ० १ श्लो० ६८) अर्थ—ब्रह्मलोक से आदि लेकर जितने भी लोक हैं। उन सबका सुख नाशवान है। इसलिये श्रेष्ठ सन्तजन उस अखण्ड अविनासी परमात्मा के दास हो जाते हैं॥ पुनः—सोऽहं दासो भगवतो मम स्वामी जनार्दनः। एवं वृतिर्भवेदस्मिन्स धर्म परमोमतः॥ १६॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ८॥ अर्थ—जिसकी यह वृत्ति है कि मैं भगवान् का दास हूँ। वे ही मेरे स्वामी हैं, बस, इसी को परमधर्म कहते हैं॥ अनन्य शेषरूपा वै जीवास्तस्य जगतपते। दास्यं स्वरूपंसर्वेषमात्मानां सततं हरेः॥ ८१॥ भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते : स एव हि महापापी चाण्डालाः स्यान्न संशयः॥ ८२॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ६॥ अर्थ—संसार में जितने भी जीव हैं, वह जगत्पति श्री हरि के अनन्य शेष रूप (अर्थात् सभी जीव ब्रह्म के अंश) होने से सभी जीवात्मायें भगवान् के दास हैं॥ ८१॥ भगवान् का अंश होने पर भी जो यह कहता है कि मैं अन्य की शरण हूँ, उसे निश्चय ही महापापी और चाण्डाल जानो॥ गतिबोध पृ० ८७ से लगातार पृ ११३ तक अवश्य द्रष्टव्य है॥

भगवत्परिचर्यैव जीवानां फलमुच्यते। तद्विना किं शरीरेण यातनाऽस्य तु॥ ११२॥ यस्मिञ्शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः। तदेव निरयं प्रोक्तं सर्व दुःख फलं भवेत्॥ ११३॥ ब्रह्माद्याः सकलादेवा वशिष्ठाद्या महर्षयः। कांक्षन्तं परमंदास्यं विष्णोरेव यजन्तित॥ ११५॥ तस्माच्चतुर्थ्या मन्त्रस्य

प्रधानं दास्यमुच्यते। न दास्यवृत्तिर्जीवानां नाशहेतुः परस्य हि ॥ ११६ ॥

वृद्धहारीतस्मृति अ० ६ ॥ अर्थ—भगवान् श्री हरि के अर्चा विग्रह की सेवा टहल जीवों के लिये! उत्तम फल कहा जाता है। मनुष्यों का शरीर भगवत्कैंकर्य के विना यातना (दुख रूप) ही है यह निश्चय जानो ॥ ११२ ॥ जीवों ने मनुष्य शरीर पाकर भी यदि भगवान् श्री हरि का दासत्व स्वीकार नहीं किया। तो वह निश्चय ही नरक का भोक्ता होगा। और परमात्मा की दास्यता से रहित महान दुःख पायेगा ॥ ११३ ॥ ब्रह्मादिकों से लेकर जितने देवता और वशिष्ठादि जितने महर्षि हैं, वे सब भगवान् श्री हरि के दास होने की प्रबल इच्छा और नित्य पूजन करते हैं ॥ ११५ ॥ इसीलिये श्री राम मन्त्र श्री गोपाल मन्त्र श्रीमन्नारायण मन्त्र में चतुर्थी (आय) विभक्ति लगी हुई है, वह प्रधानतया भगवद्दास्यता का ही प्रबोध कराती है। जिन जीवों के मन में भगवान् के प्रति दासभाव की वृत्ति नहीं है. उसके परलोक नाश का प्रधान यही कारण है। अर्थात भगवद्दास्यता के विना संसार से मुक्ति एवं भगवद्धाम को प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥ दासत्वमपि दुर्लभम् ॥ अगस्त सं० अ० ३ श्लो० ३१ ॥ श्री राम जी का दास होना दुर्लभ है ॥

रामादि दासान्तमथो समुच्चरेत् ॥ ६२ श्री वैष्णवमताब्जभास्करः ॥ श्रीराम आदि और दास को अन्त में लगाने से रामदास हो जाता है। अस्तु गुरु अपने शिष्य का नाम श्री रामदास श्री जानकी दास श्री कृष्ण दास श्री नारायण दास श्री श्री नरसिंह दास इत्यादि भगवान् के नामों के अन्त में दास शब्द जोड़ कर रखें ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ३ श्लो० ४ में कहा गया है कि--नृसिंहराम कृष्णाद्यं दास नाम प्रकल्पयेत ॥ और भी-- नाम वैष्णव हेतुत्वं मुख्यामित्येलदुच्यते। योजयेन्नाम दासन्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ॥ पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तर खंड अ० २ श्लोक ४६ ॥ अर्थ--गुरु शिष्य के नाम को श्री वैष्णव अर्थात् भगवान् का नाम प्रथम और दास शब्द उसके बाद लगाकर धरे। यथा--रघुवीर दास राघव दास इत्यादि ॥ पुनः-- महापुरुष विद्यां च दासोऽहं मिति भावयेत्। दासोऽहं स्वामि सेवार्थं देहयात्रा विधानतः ॥ ४१ ॥ प्रवर्त्तयिष्ये सततं प्रीणातु पुरुषोत्तमः ॥ ४२ ॥ वृ० ब्रं० पा० ३ अ० ७ श्लो० ४१-४२ ॥ अर्थ--मैं महापुरुष का दास हूँ ऐसी भावना करे ॥ महापुरुष शब्द का संकेत परात्पर पुरुष के लिये है। यथा--

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं, तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्। भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धि पोतं, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ श्रीमद्भागवतएकादश स्कन्ध अ० ५ श्लोक ३३॥ पुनः- यस्यामलं नृपसदस्यु

यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् । तं नाकपालवसुपाल किरीट जुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणंप्रपद्ये ॥ ६-११-२१ और भी-त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं. धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयित-येप्सित मन्वधावद् वन्दे महापुरुते चरणारविन्दम् ॥ ११ ५।३३ ॥

अर्थ—सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाले, शरणागतों को पालन करने वाले, संसार सागर से पार उतारने के लिये जिनके श्री चरण कमल जहाजस्वरूप समस्त तीर्थों के मूलभूत, सभी को शरण देने वाले, परम शरण्य, सभी के पराभाव को नष्ट करके उत्कृष्टता प्रदान करने वाले, परात्पर ध्यान करने योग्य, शिव और ब्रह्मा जी से सर्वदा नमस्कृत, सेवा करने के भाव से मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ ॥११।५।३३॥ समस्त पापों का नाश करने वाले जिनके निर्मल यश को ऋषी लोग आज भी राजाओं की सभा में गायन किया करते हैं । चारों दिग्जों के शिर पर विराजने वाली संपूर्ण पृथ्वी के एकमात्र शासक हे रघुपते ! स्वर्ग निवासी इन्द्रादिक लोकपालों और समस्त भूमण्डल के भूपालों के शिर के मुकुटों से वन्दित श्री चरण कमलों की शरण में मैं प्राप्त हूँ ॥ ६।११।२१ ॥ परम धर्म निष्ठ पूज्य पिता श्रीदशरथ जी के बचन को पूर्ण करने के लिये देवताओं से भी अभिलषित दुस्त्यज (किसी भी प्रकार न त्यागने योग्य) श्री अवध की राज्य श्री को तृणवत् त्याग कर घोर वन में चले गये । वहाँ अपनी अभिन्न प्रियतमा श्री जानकी जी की इच्छापूर्ति के लिये मायामृग अर्थात् कपट रूप से मृग बने हुये मारीच के पीछे दौड़ने वाले महापुरुष श्रीराम जी के श्री चरणों को मैं वन्दना करता हूँ ॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रगट परावर नाथ । रघुकुलमणि ममस्वामि सोइ, कहि शिव नाये उ माथ ॥ रा० च० मा० बा० कां० ११६ दो० ॥ पुरुष प्रसिद्ध अर्थात् आदि पुरुष जिनको सभी जानते हैं । और अपना सेब्य आराध्य इष्टदेव मानकर उपासना करते हैं । प्रकाशनिधि-सूर्य चन्द्र, नक्षत्र अग्नि इत्यादि जिनके प्रकाश से प्रकाशित हैं । जो प्रत्यक्ष में परावर अर्थात् त्रिपाद विभूति में स्थित सच्चिदानन्दमय नित्य धाम और लीलामय यह एकपाद् विभूति इन दोनों के स्वतन्त्र शासक हैं । वही प्रभु रघुकुल में मणि सदृश्य प्रकाशमान भगवान् श्री राम जी मेरे स्वामी हैं । ऐसा कहकर श्री शिव जी ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ॥ सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥ अस्तु महापुरुष शब्द श्री राम जी में ही ऋषियों ने बहुमात्रा में प्रयोग किया है ॥ ४१ ॥ इस देह से मैं अपने स्वामी का दास हूँ। सर्वदा ऐसी भावना

करता हुआ पुरुषोत्तम (भगवान श्रीराम) को प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ और भी देखिये, श्री अवधवासियों का सिद्धान्त—

जेहि जेहि जोनि कर्मवश भ्रमहीं । तहँ तहँ ईश देउ यह हमहीं ॥ सेवक हम स्वामी सियनाहू होउ नात येहि ओर निबाहू ॥ अयो० कां० २४ दो० ॥ इन पंक्तियों में श्री अवधवासी भगवान् से यही मनाते हैं कि—श्री सीतानाथ हमारे स्वामी और हम जन्म जन्मान्तरों तक प्रभु के सेवक बने रहें । भले ही कर्म विवश होकर हमारा अनेक जोनियों में जन्म हो । तथापि श्री जानकी जीवन श्री राम जी से हमारा स्वामी सेवक के नाता का निर्वाह होता रहे ॥ और अध्यात्म रामायण किष्किन्धाकांड सर्ग ३ श्लोक ४५ में सुग्रीवजी कहते हैं कि-दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मण वच्चिरम् ॥ अर्थ—मैं आपका दास हूँ । लक्ष्मण जी के समान मैं सर्वदा आपके श्रीचरण कमलों की सेवा करता रहूँगा ॥ पुनः-पद्मपुराण उ० खं० अ० २५४ के श्लो० ३६ तथा ४७ में लिखा है कि--परस्य दासभूतस्य स्वातन्त्र्यं न हि विद्यते ॥ ३६ ॥ परमात्मा हरिर्दासः स्यामहं तस्य सर्वदा ॥ ४७ ॥ अर्थ-- मैं परमात्मा का दास भूत हूँ, और मैं किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हूँ । ३६ । मैं सर्वदा परमात्मा अर्थात् श्री हरि का दास हूँ ॥ ४७ ॥

यस्य दास्यैक निरता ब्रह्म रुद्रादयोऽमराः । तस्य दास्यं परित्यज्य किं वृथा जीविनेन मे ॥ वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ३ श्लोक २१ ॥ अर्थ—जिन भगवान् का दास ब्रह्मा शिव इन्द्रादिक देवता भी अपने को मानते हैं । उन भगवान् श्री हरि के दासपने को छोड़कर अन्य शरीरों की दासता करता रहा, इसलिये मेरा जीवन व्यर्थ हो गया ॥ फिर वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० ८ के श्लोक ५८ को देखिये--विनादास्यं हरेश्चान्यत्सर्वं निरय संनिभम् । संसारो निरयः प्रोक्तो यत्र नाऽऽचार्य सेवनम् ॥ अर्थ-विनाभगवद्दास हुये और सब नरक है जिसने गुरु सेवा नहीं की उसको यह संसार नरक जानो ॥ नोट- यह सर्वदा ध्यान रखना चाहिये कि- सन्त या साधु अनन्य भगवद्भक्तों को ही कहते हैं, अनेक देवी देवताओं या वर्णाश्रम के दासों को सन्त या साधु समझना भूल है । जो अनन्यता पूर्वक अपने को भगवान् श्री हरि का दास मानता है, वास्तव में साधु या सन्त उसी को मानना उचित है उसी के दर्शन स्पर्श सत्संग से विशेष लाभ होता है । यथा--

यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम । पाप संघं स्पर्शनाच्च किम हो साधु संगमः ॥ २० ॥ साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनः । कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ॥ २१ ॥ मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य

जगत्रये । यथावतारे कृष्णस्य गतो दुष्टविनिग्रहे ।। २२ ।।

(कालिका पुराण अंश ३ अ० १६ ।।) अर्थ--जिनकी पूजा करने से भगवान् श्री हरि पूजित होते हैं जिनका दर्शन करने से फिर जन्म नहीं होता, और जिनके दर्शन से पाप पुञ्ज का क्षय होता है, ऐसे साधुओं का समागम क्या ही उद्भुत है ।। २० ।। साधुओं का हृदय ही धर्म है, साधुओं का वाक्य ही सनातन देवता है. साधुओं के कर्म ही अकर्मक्षय होने के कारण हैं, अस्तु साधु स्वयं हरि का स्वरूप हैं ।। २१ ।। जिस प्रकार दुष्टों को दण्ड देने के लिये ही श्री कृष्णावतार में श्रीकृष्ण जी का शरीर नित्य है, अर्थात् अमायिक दिव्य है । उसी प्रकार इस त्रिलोकी में वैष्णव शरीर भी भौतिक पंचतत्त्वात्मक नहीं कहा जाता ।। २२ ।।

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं नवै विदुर्ऋषयोनापि देवाः न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ।। १६ ।। स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः । प्रह्लादो जनको भीष्मो वलिर्वैयासकिर्वयम् ।। २० ।। द्वादशै विजानी मोधर्मं भागवतं भटाः । गुह्यं विशुद्धं दुर्वोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ।।२१।।

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ३ ।।) अर्थ--साक्षात् भगवान् श्री हरि के कहे हुये इस वैष्णव धर्म के विषय में ऋषि देवता और प्रधान-प्रधान सिद्धगण भी कुछ नहीं जानते । तो फिर इस विशिष्ट धर्म के विषय में असुर मनुष्य और विद्याधर चारणादि तो जान ही कैसे सकते हैं ।। १६ ।। यमराज कहते हैं कि-हे दूतगण श्री ब्रह्मा जी, नारद जी, श्री शिव जी, सनत्कुमार जी, कपिलदेव जी. स्वयंभुव मनु श्री प्रह्लाद जी श्री जनक जी भीष्मपितामह जी, वलि, शुकदेव जी और हम ।। २०।। यह बारह उस परम गुह्य पवित्र और दुर्वोध (समझने में अत्यन्त कठिन) भागवत् धर्म (श्री वैष्णव धर्म) के विषय में कुछ जानते हैं । जिसके जान लेने से मनुष्य अमरपद (मोक्ष प्राप्त कर लेता हैं ।। २१ ।। मनुष्यों के मुख्य परम धर्म यथा—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसांधर्मः परः स्मृतः । भक्तियोगोभगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ।। २२ ।।

श्रीमद्भागवत स्कंध ६ अ० ३ ।।) अर्थ--इस लोक में भगवान् श्री हरि के नामोच्चारणादि के सहित किया हुआ भक्ति योग ही मनुष्यों का सब धर्मों से प्रधान धर्म माना गया है ।। और भगवद्भक्ति हीन ज्ञानियों की निन्दा की गई है, यथा-

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्ताम् । स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु वाङ्मनोभिः, ये प्रयासोऽजित जितोऽप्यसि

तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयः सृति भक्तिमुदस्यते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद्यतथा स्थूल तुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥

श्री मद्भागवत स्कंध १० अ० १४ ॥ गतिबोध पृ० ९६ से १०० तक ॥ अर्थ—हे नाथ ! जो लोग ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रयास करना छोड़कर अपने स्थान पर ही रहते हुये, सत्पुरुषों के मुख से निकली हुई आपकी कथा वार्ता को सुन कर मन वाणी और शरीर से उनका सत्कार करते हुये जीवन यात्रा करते हैं, हे अजित ! त्रिलोकी में वे आपको जीत लेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! और जो लोग कल्याण प्राप्ति की मार्ग रूपा आपकी भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान लाभ के लिये ही क्लेश उठाते हैं, उनके लिये केवल कष्ट ही शेष रहता है, और कुछ नहीं मिलता । जैसे चावल निकल जाने के बाद केवल भूसी कूटने वाले को श्रम के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लगता ॥ ४ ॥ पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी कहा कि— जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥ ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पयलागी ॥ .सुनु खगेश हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥ ते शठ महासिन्धु विन तरनी । पैरिपार चाहैं जड़ करनी ॥ रा० च० मा० उ० कां० ११५ दो० ॥ इन पंक्तियों के पूर्व श्री भुसुण्डीजी ने भक्ति की अपार महिमा बताकर कहा कि—भक्ति महारानी की ऐसी अपार महिमा को भी जानकर जो व्यक्ति श्री हरि भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान के लिये ही श्रम करता है, वह जड़ हैं, क्यों कि कामधेनु रूपी श्री हरिभक्ति को घर में छोड़कर दूध प्राप्ति के लिये अन्य देवी देवताओं की आराधना या अहं ब्रह्मास्मि के भ्रमवात में पड़ता है ॥ पुनः कहा कि हे पक्षिराज ! श्री हरि भक्ति को छोड़ कर जो मनुष्य अन्य उपायों से अर्थात् कर्म काण्ड, षटकर्म योग, .देवाराधना या अहं ब्रह्मास्मि के द्वारा सुख चाहते हैं, तो वे शठ हैं, क्यों कि संसार रूपी अपार समुद्र में जहाज या नौका के ही विना पैर कर पार होना चाहते हैं, अर्थात् सुदृढ़ नौका या जहाज सदृश्य भगवान् श्री हरि के चरणों का आश्रयण न करके अनेक साधनरूपी अपने पुरुषार्थ से मुक्त होना चाहते हैं ॥ वा० कां० की वन्दना में बताया गया है कि—"यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम् ॥" अर्थात् जिन श्री राम जी के श्री चरणकमल ही संसार सागर के पार होने के लिये एकमात्र जहाज सदृश्य हैं । अस्तु श्री हरि भक्ति बिना किये अन्य किसी भी ऊपाय से मुक्त होना असंभ है । उ० कां० वेदस्तुति

में वेदों ने कहा कि—जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी । ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥ अर्थात् जो ज्ञान के अभिमान में मतवाले होकर संसार चक्र से छुड़ाने वाली आपकी भक्ति का आदर नहीं करते हैं। वे साधनों के द्वारा देव दुर्लभ पद (कैवल्य मोक्ष) प्राप्त करके भी निश्चय रूप से पतन हो जाते हैं । हे हरी हम देखते रहते हैं । उसका प्रधान कारण यह है कि—जिमि थल विन जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोइ करै उपाई ॥ तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई । रहि न सकै हरि भगत विहाई ॥ अस विचारि हरिभगत सयाने । मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने ॥ उ० कां० ११६ दो० ॥ पुनः इसी दोहे में कहा गया है कि—

भजन करत विन जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥ भजन करने पर विना जतन या प्रयास किये ही जन्म मरन की जड़ अविद्या ही नाश हो जातीहै तब संसार चक्र अनायास सहज ही में मिट जाता है । उसका प्रकार वतलाते हैं कि-भोजन करिय तृप्ति हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ।। भोजन तो छुधा तृप्ति (भूख मिटाने) के लिये किया जाता है । परन्तु पेट में जाने पर वहीं जठराग्नि उसे पचा देती है । भोजन पाने बालों को पचाने का उपाय अलग से नहीं करना पड़ता । ठीक उसी प्रकार भगवद्भजन करने पर संसार चक्र स्वयमेव (अपने आप ही) छूट जाता है ।। तब यदि कोई यह कहे कि—"ऋतेंज्ञानान्मुक्तिः" इस श्रुति वाक्य की क्या दशा होगी । उसका समाधान यह है कि—जिस ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होना कहा गया है, वह भगवद्विषयिक ज्ञान है । शुष्क ज्ञान की चर्चा नहीं है ॥ पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ।। अन्धकार बरु रबिहिं नशावै । राम विमुख न जीव सुख पावै ।। हिम ते अनल प्रगट बरु होई । विमुख राम सुख लहै न कोई ।। वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल । विन हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ।। मसकहिं करइ बिरंचि प्रभु, अजहिं मशक ते हीन । अस विचारि तजि संशय रामहिं भजहिं प्रवीन ॥

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे । हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

रा० च० मा० उ० कां० १२२ दो० ।। अर्थ—मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ, यह निश्चय है कि जो मनुष्य भगवान् श्री हरि का भजन करता है, वह अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार हो जाता है । मेरे यह बचन झूठ नहीं हो सकते हैं ॥

दासोऽस्मीति च संध्याय चऽऽत्मानं परमेश्वरि । अभयं तस्य दास्यामि योमामेति निरन्तरम् ॥ १५ ॥ दासोऽस्मीति निजं रूपं स्मरन्मुच्येत बन्धनात् ॥ १६ ॥

वृ० ब्र० सं० पा० २ अ० ३ ॥ अर्थ—श्रीमन्नारायण कहते हैं कि हे लक्ष्मी जी ! जो जीव आत्मा में अनुसन्धान करके कहता है 'कि आपका दास हूँ । तो मैं उसे अभयता प्रदान कर देता हूँ । अर्थात् सर्वदा के लिये अपनी सेवा में रख लेता हूँ ॥ १५ ॥ जो कोई अपने स्वरूप को भगवान् का दास (शेष भूत) मान कर अपने को प्रभु का दास कहता है, तो वह भवबन्धन से अर्थात् जन्म मरन से मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥ पुनः—न कर्म बन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते । न दास्यं परमेशस्य बन्धनं परिकीर्तितम् ॥ ८७ ॥ सर्व बन्धभिनिर्मुक्ता हरिदासा निरामयाः ८८ ॥ वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० २ ॥ अर्थ—श्री वैष्णवों का कर्म बन्धन और जन्म नहीं होता, और ऐसा कहा जाता है कि—भगवान् के दास संसार के बन्धन में नहीं आते ॥८७॥ भगवद्दास सब पापों से छूट जाते हैं । इसीलिये संसारी सभी बन्धनों से मुक्त (छूटे हुये) रहते हैं ॥ ८८ ॥

[प्राप्यते वैष्णवो लोको विना दास्येन कुत्रचित् ॥ ११७ ॥

वृ० ब्र० सं० पा० ३ अ० २ ॥ भगवान् श्री हरि की दासता विना स्वीकार किये किसी भी साधन से भगवद्धाम नहीं जा सकता ॥ ॥ ११० ॥ और भी देखिये कि—त्वद्दास दास दासत्वं दासस्य देहि मे प्रभो । ११३ ॥ पद्म पु० ब्रह्म खं० अ० २२ वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित, अर्थ—हे प्रभो ! आप अपने दास के दास के दास का दासत्व मुझे दीजिये । पुनः—दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य ॥ ३४ ॥ श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड सर्ग ४२ ॥

उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनम् ॥ १८ ॥ हिंसादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञान कृतं च तत् । तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनाद्वैष्णवस्य च ॥ २१ ॥ संसार कर्दमालेप प्रक्षालन विशारदः । पावनाः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः ॥ २३ ॥

पद्म पु० उ० खं० अ० ११० श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित । अर्थ—किसी भी प्रकार के किये हुये उपपातक और महापातक भी श्री वैष्णवों के दर्शन से सब नाश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ ज्ञान वा अज्ञान से किये हुये जो हिंसादि पाप हैं, वह सब श्री वैष्णव के दर्शन से नष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥ संसाराशक्त काम क्रोध मोह लोभ ममता मद मात्सर्य रूपी कीचड़ में फसे हुये जीवों को प्रक्षालन (पवित्र)

करने में भगवद्भक्त परम कुशल होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ पुनः--बताया गया है कि--

वाहुभ्यां सागरं ततुं यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति। संसारसागरं तद्विष्णुभक्ति विना नरः ॥ ३० ॥ चक्षुर्विना यथा दीपं दृष्ट्वादर्पणमेव च। समीपस्था न पश्यन्ति यथा विष्णुं वहिर्मुखाः ॥ ५५ ॥ त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथं तमन्यमार्गे कथं रमेत्। भक्ति हीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः किं प्रयोजनम् ॥ ६८ ॥ श्वपचो भक्तियुक्तस्तुत्रिदशैरपि पूज्यते। स्वकरेकंकण वद्धा दर्पणैः किं प्रयोजनम् ॥ ६९ ॥

पद्म पु० उ० खं० १३१ श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित ॥ अर्थ-जिस प्रकार मूर्ख व्यक्ति अपने भुजाओं के वल से तैर कर पार करने की ईच्छा से समुद्र में कूदता है, परिणामतः वह डूब जाता है। उसी प्रकार भगवद्भक्ति के विना मनुष्य अन्य किसी साधन के द्वारा संसार सागर पार नहीं हो पाता ॥ ३० ॥ नेत्र हीन व्यक्ति को दीपक जलने पर भी अपने निकट का भी कुछ पदार्थ दिखाई नहीं देता, और साफ (स्वच्छ) शीशा में भी मुख नहीं दीखता, उसी प्रकार भगवद्भक्ति से विमुख जीवात्मा का कल्याण नहीं हो पाता है ॥ ५५ ॥ वैंकुण्ठनाथ भगवान् श्री हरि को त्याग कर अन्य मार्गों में--अर्थात् और साधनों को करने से भगवद्भक्ति रहित चारों वेदों के ज्ञाता और चारों वेदों के पाठ कर्ता को भी कुछ लाभ नहीं। अर्थात् भक्ति रहित चतुर्वेदाचार्य भी भगवान् का प्रिय नहीं हो पाता है ॥६८॥ और भगवद्भक्ति युक्त श्वपच भक्त भी सर्वत्र पूज्यनीय होता है। जिस प्रकार हाथ में बँधे हुये कंकण में देखने से शीशा की आवश्यकता नहीं होती । गति बोध पृ० १०१ ॥

नवेद यज्ञाध्ययनैर्न व्रतैश्चोपवासकैः। प्राप्यते वैष्णवं लोके विना दास्येन कुत्रचित् ॥ १ ॥ तस्माद्दास्यं हरेर्भक्त्या भजेतानन्य मानसः प्राप्नोति परमां सिद्धिं कर्मबन्ध विमोचनीम् ॥ २ ॥ वृहद् वैष्णव पद्धति पत्रा ॥ २५ ॥

अर्थ--न वेद से, न यज्ञ से, न अध्यन से, न व्रत से और न उपवास से श्री वैष्णव लोक प्राप्त होगा। जब कभी होगा तब श्री रामदास (भगवद्दास) बनने से होगा ॥ १ ॥ इसलिये मन से अनन्यता पूर्वक भगवान् श्री हरि के दास बन कर भगवद्भक्ति करने से ही कर्म बन्धनों से छुड़ाने वाली परम सिद्धि (मुक्ति) की प्राप्ति होगी ॥ २ ॥ अहं हरे तव पादैक मूल दासानु दासो भविताऽस्विभूयः ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ११ ॥ अर्थ--हे हरि! भवदीय (आपके) श्री चरणकमल

ही जिनको एकमात्र आश्रय का मूल हैं। ऐसे जो आपके दास हैं, उनके भी दासों का मैं दास हूँ॥ ग० बो० पृ० १०५-से १०८ तक॥

नोट—जो गुरु अपने शिष्य का जीव सन्वन्धी या जड़ माया सम्बन्धी वे ढंगे नाम रखते हैं, यह उनकी महान भूल है। वह नाम श्री वैष्णव सिद्धान्तानुसार निरर्थक हैं, और उन नामों से नाम संस्कार भी नहीं माना गया है। यथा-हंसदास नर्बदादास, छबीलादास, गुलाबदास कमलदास; लोटादास, फक्कड़दास, लक्कड़दास, दुर्गादास. देवीदास भवानीदास, वनखण्डीदास, पंचमदास, कालीदास, भोलादास, गणेशदास, शीतलदास, काशीदास, इत्यादि नाम नहीं रखना चाहिये। विशेष ध्यान देने वाली तो एक बात यह है कि--जन्मजात नाम का प्रथम अक्षर लेकर ही नाम करण किया जाये, सर्व अनर्थों की जड़ तो यही है. वैष्णवीय शास्त्रों में इसकी कोई चर्चा नहीं है, तथापि इस अनर्गल परम्परा को सभी मानते हैं. यह अनुचित है। पंचसंस्कारों में इस परम्परा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इसलिये प्रमाद भरी यह परम्परा कि घर वाले नाम का प्रथम (पहला) अक्षर नाम संस्कार में अवश्य हो रक्खा जाय बिलकुल गलत है। परम श्रध्येय पूज्य संतो से निवेदन है कि शास्त्रीय विधानानुसार ही भगवान् के नाम सम्बन्धी स्पष्ट या तात्पर्य वाचक नाम धरें। यथा—

श्री रामदास, श्री जानकीदास, श्री कृष्णदास, श्री नारायणदास, श्री लक्ष्मी दास, श्री जगदीशदास. श्री वासुदेवदास, श्री हरिदास, श्री माधवदास, श्री गोविन्द दास, श्री मधुसूदनदास, इत्यादि या तात्पर्य निकलने वाले नाम यथा—रघुनाथदास रघुवीरदास, रघुनन्दनदास! राघवदास, अवधेशकुमारदास गोपालदास, गिरिधरदास, रणछोरदास, व्रजमोहनदास, जानकीवल्लभदास इत्यादि नाम ही रखना चाहिये। कुछ परम्पराओं में भगवान् के नाम के बाद में शरण लगाकर नामकरन करने का विधान है। यथा--श्री रामशरण, श्री जानकीशरण श्री सीताशरण, श्री रघुवीरशरण, श्री रघुनन्दनशरण, श्री वैदेहीशरण, श्री वैदेहीवल्लभशरण, श्री वैदेहीकान्त शरण, श्री मैथिलीशरण, श्री रामसेवकशरण, श्री सीतारामशरण, श्री प्रियाप्रीतमशरण, इत्यादि नाम राखे जाते हैं। भगवत्‌शरण होने का प्रमाण शास्त्रों में भरा हुआ है। इसलिये दास या शरण यह दोनों ही शब्द अपनी परम्परानुसार मान्य हैं। किसी किसी परम्परा में भगवान् के नाम के अन्त में प्रसाद शब्द का प्रयोग किया जाता है। भगवत्प्रसाद प्राप्ति के लिये प्रसाद शब्द भी अति उत्तम है।

अस्तु नाम के अन्त में दास, शरण, प्रसाद शब्द अपनी परम्परानुसार

लगना चाहिये, परन्तु नाम में भगवान् का स्पष्ट नाम रखना चाहिये । कोई कोई सन्त अपने शिष्यों का नाम गरीबदास, घसीटनदास, कमलदास गुलाबदास, लोटा-दास, कमंडलदास, लक्कड़दास, पियारेदास, मौजीदास, इस प्रकार रखते हैं । यह सभी नाम व्यर्थ हैं. सोचिये तो सही कि जो भगबान् की शरण हो गया वह गरीब दास कहा जाये, यह ठोक नहीं है । हाँ गरीब निवाजदास भले ही ठीक है । इस लिये भगवान के नाम सम्बन्धी ही नाम रखना चाहिये । चाहे नाम अनर्गल भले ही क्यों न हो जाये, परन्तु घर वाले नाम का प्रथमाक्षर अवश्य ही रखना यह बुद्धि की दरिद्रता (शत्रुता) नहीं करनी चाहिये । । घर वाले सभो सम्बन्धों को व्यव-हारों को बदल कर भगवदानुकूल ही रखना वैष्णवों की वैष्णवता है । हाँ यदि घर-वाला ही नाम भगवान् के नामों में हो तो उसी में दास, शरण, प्रसाद लगा देना चाहिये । यथा—रामसहाय, रामकुमार, रामदुलारे, कृष्णदत्त, गोपालभट्ट, नरसिंह, नारायण इत्यादि तो इन नामों को बदलने की आवश्यकता नहीं है । यदि बदल भी दे तो भी अपनी उपासनानुसार ही नाम धरे ॥

ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि नाम भगवान् के नाम सम्बन्धी हों, साथ ही साथ अपनी उपासना का विचार भी न भुलाया जाय गुरु शिष्य को मन्त्र प्रदान करें उसी के अनुसार नाम भी धरें । यद्यपि भगवान् के अनेक नाम हैं सभी की अपार महिमा है, तथापि गुरु को उचित है कि मन्त्र के अनुसार ही नाम भी धरे । यथा—जिसे श्री सीताराम मन्त्र दिया जायें, उसका श्री सीताराम जी के नामों में से नाम धरे । जैसे सीतारामदास, रामदास, जानकीदास इत्यादि गोपाल मन्त्र देने बाले को कृष्णदास, गोपालदास, गोविन्ददास, इत्यादि नारायण मन्त्र वालों को श्रीमन्नारायणदास, कमलादास, इत्यादि । इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये । कि मन्त्रदाता स्वयं नित्य जिस मन्त्र का जप करता हो, शिष्य को भी वही मन्त्र देवे । तभी शिष्य का कल्याण होगा । और यदि अपने आप जपने वाले मन्त्र को न देकर शिष्य को अन्य (दूसरा) मन्त्र देता है, तो वह शिष्य को ठगता है । शिष्य के कल्याण की भावना नहीं है । जो व्यक्ति जिस मन्त्र का जापक है, उसको वही मन्त्र देने का अधिकार है । जप करने पर ही किसी में मन्त्र की शक्ति आती है । बिना जपे नहीं । यदि केवल मन्त्र से कल्याण होना संभव रहता, तो पुस्तकों में सभी मन्त्र लिखे ही हैं, उन्हीं में पढ़ लिये जायें । गुरुवरण करने की आवश्यकता ही नहीं रहती । परन्तु ऐसी बात नहीं है, गुरुवरण करने की परमावश्यकता है । किन्तु गुरू जी भी सत्यता के साथ न्याय पूर्वक शिष्य से सुहृता का व्यवहार करें॥

अब मन्त्र संस्कार की चर्चा की जाती है ॥

[मन्त्र संस्कार]

तिलक कंठी भगवदायुधों की छाप भगवद्दास सम्बन्धी नाम के पश्चात ही मन्त्र का संस्कार करना चाहिये । उपर्युक्त संस्कारों के बिना मन्त्र संस्कार करना निषेध है । यथा—

तस्मात्तापादि संस्कारास्सर्वमन्त्रेषु सत्तमोः । अध्यापयेत्ततः पश्चादन्यथा नरकं व्रजेत ॥ अकृत्वावैभवं मन्त्रं मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः । रौरवं नरकं याति यावदाभूत संप्लवम् ॥

दीक्षा पद्धति पृ० ७१ श्री अवधकिशोददास जी महाराज के द्वारा प्रकाशित ॥ अर्थ—भगवदायुधों की तप्त छाप, तिलक, कंठी, नाम के बाद ही आचार्य (गुरु) शिष्य को मन्त्रोपदेश करे । अन्यथा गुरु को ही रौरव नरक में जाना पड़ता है ।

नोट—वर्तमान समय में बुद्धिजीवी होने का दावा करनेवाले संकुचित बुद्धिवाले लोगों का कहना है कि-कंठी, तिलक, छाप, माला. इत्यादि ये तो बाह्याडम्बर है, अर्थात् दिखावा मात्र है, इसमें कोई तत्त्व नहीं है. जीव का कल्याण तो भगवत्मन्त्र से होगा, इसलिये कंठी तिलक छाप इत्यादि की भगवत्प्राप्ति में आवश्यकता नहीं है । भगवान् तो भाव प्रेम के भूखे हैं, वह तो घट घट की बात जानते हैं, बाहरी वेष बनाने से प्रसन्न नहीं होते । ऐसे अनेक बातों की कल्पना करके कंठी तिलक छापादि लेने से संकोच करते हैं । अपने को इस्टन्डर्डमैन अर्थात् उच्चविचार वाले न्युरिशर्चर (नवीन सोध करने वाले) व्यक्ति कंठी तिलक छाप माला धारण करने में इन्शल्ट (अपमान या वेइज्जत) समझते हैं ।परन्तु दिन भर झूठ बोलना किसी व्यक्ति को ठगना, रिश्वत् (घूँस) लेना; भक्षाभक्ष्य को खाना. स्वच्छन्द बिहार करना, क्लबों में मद्य पीकर कई स्त्री पुरुष एक साथ नाचना, पशुओं की भाँति अन्याय से धन कमाकर अपने शरीर एवं परिवार का पोषण करना, इत्यादि अनेक घृणित कर्मों को करने में संकोच न करके सभ्यता का अंग मानते हैं । तथा भगवान् के तिलक कंठी माला छाप को पाखण्ड और इनको धारणकर्त्ता को पाखण्डी मानते और कहते हैं; यह उनकी बुद्धि की दरिद्रता है । और कुछ नहीं ॥

कितने सज्जन तो महानुभावों से कहते हैं कि हमे यह बाहरी भुलावा में नहीं फसना है, हम तो समझदार व्यक्ति हैं । तिलक कंठी छाप लगाना; हम जैसे समजदारों को उचित नहीं है, हम भ्रम में तो अनपढ़ लोग फसते हैं, हम विज्ञ लोग

इस चक्कर में नहीं फसैंगे, हमे तो आप भगवान् का मन्त्र शिर्फ दीजिये हमारा कल्याण हो जायेगा। उसी प्रकार पैसा के लोभी व्यक्ति जिसे गुरुता का पता नहीं है, गुरु वनकर पुजाना खाना ऐश आराम करना प्रिय लोग तुरन्त मन्त्र दे देते हैं यह नहीं सोचते कि इस प्रकार अविधि से शिष्य के कल्याण की बात तो दूर रही, प्रथम अपने को तो नरक जाने से बचाओ। जब कि अविधि करने पर गुरु नरक जायेंगे तब शिष्य कहाँ जायेगा इसको बुद्धि जीवी लोग सोचें। अस्तु महानपुरुषों सद्गुरुओं से विनम्र निवेदन है कि कंठी तिलक छाप इत्यादि श्री वैष्णवीय संस्कारों को विना किये मन्त्र दीक्षा संस्कार नहीं करें॥

मन्त्रोयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः। फलदश्चैव सर्वेषां साधकानांन संशयः॥ २०॥

(पूर्वराम तापनीयोपनिषद्) अर्थ—श्री राम शब्द मन्त्र वाचक है. और श्री रामचन्द्र जी वाच्य हैं, राममन्त्र और मन्त्रार्थ मन्त्र के साधकों को मोक्षादिक सभी फलों को देने वाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं॥ २०॥ राममन्त्रार्थ विज्ञानी जीवनमुक्तो न संशयः॥ १६ रामरहस्योपनिषद अ० ५॥ गर्भ जन्म जरामरण संसार महद्भयात्संतारयतीति तस्मादुच्यते तारक मिति॥

७ (श्रीरामोत्तर तापन्युपनिषद्)

अर्थ—श्रीराममन्त्रार्थ को जानने वाला जीवन मुक्त है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ १६॥ गर्भ जन्म, बुढ़ापा तथा मरण देने वाले संसार से तार देने वाला होने के कारण श्रीराम मन्त्र तारक कहा जाता है। पुनः अद्वयतारकोपनिषद् पंक्ति ५ भी देखो॥

अखण्डैकरसानन्दस्तारकंब्रह्म वाचकः। रामायेति सु विज्ञेयः सत्यानन्द चिदात्मकः॥ २॥ नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम्। सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः॥ ३॥

(श्रीरामोत्तर तापनीयोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित) अर्थ-श्री याज्ञवल्क्य जी बोले कि हे भरद्वाज जी! श्रीराम मन्त्र में बीज (प्रथम) अक्षर है, उसको "स्वप्रकाशः"- स्वयं प्रकाशमान, परंज्योतिः स्वानुभूत्यै- अपने ही ज्ञान करके जानने वाला, कुचिन्मयाः- चितस्वरूप (चैतन्य रूप) श्री रामचन्द्र ही जानो॥ १॥ और रामायशब्द को अखण्ड एकरस, आनन्द, तारकब्रह्म, सत्यानन्द, और चैतन्य जानो॥ २॥ 'नमः' पद पूर्ण आनन्द देने का कारण है, ऐसा जानो, इस नमः पद से ही श्रीरामचन्द्रजी को सब देवता और मुमुक्षुजन नमस्कार करते हैं॥३॥

तात्पर्यार्थ—छय अक्षर वाला श्रीराम मन्त्र और श्री राम जी दोनों अभेद हैं। श्रीराम मन्त्र या नाम जपते समय मन्त्र के अर्थ का अनुसंधान करे और सब चिन्ताओं को छोड़ दे, तो वह इस दुख रूपी पापमय संसार से पार हो जायेंगे। श्री अग्रस्वामी जी कृत "रहस्यत्रय" के श्री राममन्त्रार्थ के अन्त में लिखा है कि—

रामइति वीजेनानन्यार्ह शेषत्वं, रामाय इत्यनेनानन्यार्ह भोग्यत्वं, नमः शब्दे नानन्योपाय्त्वमिति तात्पर्यार्थः ॥

अर्थ—श्रीराम के वीज से अनन्यार्ह शेषत्व, रामाय इस पद से अनन्यभोग्यत्व और नमः शब्द से अनन्य उपाय स्वरूप श्री राम जी प्रतिपादित हैं। अर्थात् श्रीराम मन्त्र का स्पष्ट अर्थ हुआ कि— मैं श्री राम जी का ही शेष (अंश) हूँ। श्री राम जी हमारे शेषी (अंशी) हैं। मैं अन्य किसी भी देवी देवता का शेष (अंश) नहीं हूँ, न कोई देवी देवता हमारा शेषी है। और श्री राम जी ही हमारे अनन्य भोक्ता और मैं श्री राम जी का ही अनन्य भोग्य हूँ, अन्य देवता न तो मेरे भोक्ता ही हैं न मैं उनका भोग्य ही हूँ। तथा श्री राम जी ही एकमात्र उपाय (रक्षक) हैं और मैं श्री राम जी का रक्ष्य हूँ। श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य देवी देवता न तो मेरे रक्षक हैं, न मैं उनका रक्ष्य ही हूँ। यही अकारत्रय है, श्री राम मन्त्र में विस्तार रूप से अकारत्रय समाहित है, जिसे गुरु द्वारा जाना जाता है। अस्तु गुरु वनने वाले महानुभावों से प्रार्थना है कि शिष्य को अकारत्रय का उपदेश अवश्य ही करदें। यह उत्तरदायित्व गुरु का ही है। इसे पूरा न करने पर गुरु को शिष्य के ठगने का दोष लगेगा और शिष्य भी अनन्यता को न समझने के कारण यत्र तत्र (जहाँ तहाँ) भटकता रहेगा ॥

क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव । ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ २५ ॥ त्वत्तोवा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥ २६ ॥ रामोत्तर तापनीयोपनिषद् ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी शिव जी से कहते हैं कि—हे शिव जी ! इस तुम्हारे काशी क्षेत्र में भक्ति पूर्वक षडक्षर राम मन्त्र से जो हमारी सेवा पूजा करेंगे। अर्थात् हमारे चर्चा विग्रह की पूजा करेंगे, तो उनको मैं ब्रह्म इत्यादि पापों से मुक्त कर दूंगा। पाप के निवारणार्थ तुम कोई शोक मत करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे द्वारा अथवा ब्रह्मा के द्वारा अथवा किसी आचार्य द्वारा काशी में या मगध में चाहे जहाँ पर जो कोई भी, राम मन्त्र से या राम नाम से जीवों को मुक्ति दे सकता है। जो

कोई षडक्षर राम मन्त्र प्राप्त करेंगे, तो वह जीवन में ही मन्त्र सिद्ध होंगे, और मरने पर मुक्त होकर हमको प्राप्त होंगे ॥ २६ ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण हरिपूजन कृन्नरः ॥६८॥ पद्म पु० क्रियायोग सार खंड अ० १५ वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई की ॥ षड़क्षर श्री राम मन्त्र से मनुष्य भगवान् का पूजन करे। ६८ ॥ आसन पाद्य अर्घ स्नान धूप दीप नैवेद्य आरती आदि में जो मन्त्र रूप में पौराणिक श्लोक बोले जाते हैं। उन श्लोकों को न बोल कर षड़क्षर श्रीराम मन्त्र को ही बोलता रहे। पूजा आरम्भ करते समय ही श्रीराम मन्त्र का जप करना आरम्भ करदे, और पूजन के अन्त तक जपता रहे। श्री राम पूजन के लिये श्रीराम षड़क्षर मन्त्र से बढकर अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है। यदि पुजारी को वैदिक अन्य मन्त्र याद हों, तो वह वैदिक अन्य मन्त्र भी बोल सकता है, परन्तु प्रधानता श्रीराममन्त्र की ही होनी चाहिये, श्रीरामचरित मानस में प्रभु ने स्वयं श्री शवरी जी से कहा है। कि—मन्त्रजाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥ अ० कां० दो० ३६ ॥ इसलिये श्री सीताराम पूजन में श्री सीताराम जी के षड़क्षर युगल मन्त्र द्वारा पूजन करना ही सर्वश्रेष्ट है।

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः। जानाति भगवान्शम्भुर्ज्व-लन्तपावक लोचनः ॥ ४ ॥ रामोऽन्तो वह्निपूर्वो नमोन्तः स्यात षडक्षरः। तारको मन्त्रराजोऽयं संसार विनिवर्तकः ॥ ५ ॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्या-नन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ ६ ॥ वृ० ब्र० सं० पा० २ अ० ७ ॥

अर्थ—श्रीमन्नारायण जी श्री लक्ष्मी जी से कहते हैं कि—श्रीराम षडक्षर मन्त्र-राज के माहातम को भली भाँति भगवान् शिव जानते हैं। जिनके नेत्र (आँख) जलती हुई अग्नि के समान हैं ॥ ४ ॥ राम "चतुर्थी विभक्ति एक बचन" (आय) के सहित अन्त में है। और अग्नि वीज आदि में है, फिर सबके अन्त में नमः शब्द है। यही षड़क्षर या तारक श्रीराम मन्त्रराज है, जो अपने आश्रितों को (जापकों को) संसार सागर से तारता है ॥ ५ ॥ तारक षडक्षर श्रीराम मन्त्रराज का स्वरूप राम-शब्द के पूर्व, अग्नि वीज और रामशब्द में आय तथा अन्त में नमः है। योगी लोग जिसमें रमते हैं, जो अनन्त है, सत्य है आनन्द स्वरूप है, चैतन्यात्मा है, यही दो वर्ण (अक्षर) रा और म का अर्थ होता हैं अर्थात् राम पूरे पद (शब्द) का यही अर्थ हुआ। और यही राम शब्द परब्रह्म कहा जाता है, अर्थात् राम शब्द ही परब्रह्म है। इसलिये मनुष्य अपने कल्याणार्थ श्रीराम नाम या श्रीराम षडक्षर मन्त्रराज को अवश्य ही जपे।

श्रीरामनामामृत मन्त्र बीजं संजीवनं चेन्मनसि प्रविष्टम् । हलाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥ आ० रा० म० का० सर्ग ७ का ६७ ॥

अर्थ--श्रीराम नाम रूपी अमृत वीज की संजीवनी यदि मन में बैठ गई तो हलाहल विष प्रलय की अग्नि और मृत्यु के मुख में भी घुस जाने पर भी कोई भय नहीं रहता ॥ ६७ ॥

जाप्यं तत्तारकाख्यं मनुवरमखिलैर्वन्हि बीजं तदादौ । रामोङे प्रत्यान्तो रसमित सुभदः स्वत्तरः स्यान्नमोऽन्तः ॥१०॥ (श्री वैष्णवमताब्जभास्कर)

अर्थ-सम्पूर्ण भगवत्मन्त्रों में श्रेष्ट, अग्नि बीज बिन्दु युक्त रा जिसके आदि में हो और राम शब्द के साथ चतुर्थी विभक्ति ङे एक बचन 'आय" अन्त में हो, और सबके अन्त में नमः हो, ऐसे रस अर्थात ६ अक्षर का मोक्ष देने वाला सुन्दर षडक्षर श्रीरामतारक मन्त्र मुमुक्षुओं के जपने योग्य है ॥१०॥ और भी देखिये कि--गति बोध उत्तरार्ध पृ०१२६॥

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रम्हगद्यते । सर्वैश्वर्यप्रदंनृणां सर्व काम फलं प्रदम् ॥२४॥ (वृद्धहारीतस्मृतिधर्मशास्त्र अ०६ ॥)

अर्थ-महाराज श्री दशरथ नन्दन भगवान श्री रामचन्द्रजी का ६ अक्षर वाला मंत्र है, उसे तारक मंत्र कहते हैं। यह षड़क्षर श्री राम मत्र मनुष्यों को जपने पर लौकिक तथा पार लौकिक वैभव देता और सभी मनोरथों को पूर्ण करता है। अर्थात लोक वैभव तथा मोक्ष (भगवद्धाम) देता है ॥

वृथा धर्मो वृथा कर्म वृथा जीवनमस्ति च । राममन्त्रविहीनस्य वेद विद्या विदोऽपिच ॥ (वाल्मीकि संहिता अ०१ श्लोक १५॥)

अर्थ-सद्गुरु से श्री राममंत्र प्राप्त किये विना धर्म, कर्म जीवन, वेद विद्या सब व्यर्थ हैं, इस लिये जीवन को सफल बनाने के लिये श्री राममंत्रराज अवश्य जपना चाहिये। अब यह बताया जाता है कि इस महा मंत्र का जपने का अधिकार किसे है।

ब्राह्मणः क्षत्तिया वैश्याः शूद्रश्चापिगुणान्विताः श्रद्धया परयायुक्तान्ते च तस्याधिकारिणः ॥१३॥ वाल्मीकि सं० अ०२॥ ग०बो०उ०खं०पृ०१३॥

अर्थ-इस राम मंत्र के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तथा और भी अनेक गुण वाले लोग हैं। परन्तु इनमें जो श्रद्धा से युक्त हैं वही परम अधिकारी हैं। पुनः देखिये-

ब्राह्मणाः क्षत्तिया वैश्या स्त्रियाः शूद्रास्तथेनराः । तस्याधिकारिणः सर्वे

ममभक्तास्तु ते यदि ॥ [पद्म पु० उ० खं० अ० २३३ का ३७ बम्बई ।]

अर्थ–भगवान् कहते हैं कि–क्षत्री, वैश्य, स्त्री शूद्र तथा अन्य भी जो न्यून वर्गों में जन्म लिये हैं । उनके हृदय में यदि मेरी भक्ति करने की भावना है, तो सभी वर्गों के सभी वर्ण और आश्रम वाले स्त्री पुरुषों को मेरा मन्त्र लेने का समानाधिकार है । गति वोध उ० खं० पृ० ११४ ॥

पतिव्रतानां स्वर्लोकइति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ १६ ॥ प्रपन्नामृत अ० ११८ ॥ पतिव्रता स्त्रियों को पतिसेवा से स्वर्गलोक मिलता है । और गर्भोपनिषद में लिखा है कि––पतिव्रता स्त्री साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में रहती है । पुनः जन्म होता है। वेदान्त शास्त्र का निर्णय है कि मोक्ष का साधन ज्ञान है वह ज्ञान गुरु कृपा से प्राप्त होता है अस्तु सभी मुमुक्षुओं को गुरु वरण करके आत्मा परमात्मा का स्वरूप विरोधी माया तथा ईश जीव के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करके भगवत् भक्ति परायण होकर अपना आत्म कल्याण करना चाहिये ॥ ग० वो० उ० पृ० १४५ ॥

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्येप्रतिलोमानु लोमजाः । लोकाश्चाण्डाल पर्यंतं सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥ १५ ॥ अगस्त सं० अ० ८ ॥

अर्थ—पतिव्रता स्त्री और भी लोम प्रतिलोम चाण्डाल आदि पर्यंत सभी जीव भगवद्दीक्षा लेने के अर्थात् गुरु वरण करके मन्त्र लेने के पूर्ण अधिकारी हैं ॥ १५ ॥

पतिव्रता महासाध्वी ममभक्ति रता सदा ॥ ७ ॥ स्कद पु० वैष्णव खं० मार्गशीर्ष मास माहात्म्य अ० ११ श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई की ॥

अर्थ––भगवान् कहते हैं कि––पतिव्रता महासाध्वी स्त्री को सदा मेरी भक्ति में रत रहना चाहिये । ७ । ग० वो० पृ० १४८ ॥ नोट- भगवान् की आज्ञानुसार पतिव्रता देवियों (स्त्रियों) को भगवत् भक्ति अवश्य ही करना चाहिये । भक्ति करने का ज्ञान गुरु कृपा से ही प्राप्त होगा । अस्तु पतिव्रता महिलाओं को अवश्यमेव गुरु वरण करके भगवत भजन करना चाहिये । यदि मन भगवान् की भक्ति भावना में लगा रहेगा तो पतिव्रत धर्म निरविघ्न पूर्ण होगा, अन्यथा न जाने कहाँ भटक जायेगी । वर्तमान समय में पश्चात् सभ्यता के अनुयायी मनुष्य अपनी बहू बेटियों को भगवत् भक्ति करने का पाठ न पढ़ाकर उसे पाखण्ड बताकर नवीन ढंग की शिक्षा देते हैं, उसी का दुष्परिणाम है कि बड़े नगरों (शहरों) की बालिकायें बहुमात्रा में चरित्र हीन हो जाती हैं । यदि उन्हें पतिव्रता धर्म की महिमा तथा भगवत् भक्ति का उपदेश बालजीवन में ही भली भाँति मिल जाये, तो चरित्र भ्रष्ट होने का दोष उत्पन्न

ही न हो । वन्धु वर्ग इस पर ध्यान न देकर केवल कालेजी शिक्षा के द्वारा ही नन्हीं मुन्नीं वहिनों को सती, अनुसुइया, एवं सावित्री के रूप में देखना चाहते हैं । यह भारी भूल है । वालिकाओं को पढ़ाया लिखाया जाये, यह तो उत्तम है, परन्तु साथ ही साथ उनके चरित्र का भी अध्यन गम्भीरता पूर्वक (निरीक्षण) करते रहना चाहिये । स्त्री या पुरुष वालक या वालिका कोई भी अपने मन को रोकने में समर्थ नहीं हैं । वही स्त्री पुरुष वालक वालिकायें अपने मन को रोक सकते हैं । जो धर्म परायण हैं । धर्म को जीवन मानते हैं । और अनन्य भाव से भगवत् भजन स्मरण कीर्तन पाठ पूजन करते हैं । इन सभी कार्यों को पाखण्ड बताकर धर्म निर्पेक्ष का डंका बजा कर रेडियो के गाने सुन कर पेपर (अखबार) पढ़कर सिनेमा देखकर उपन्यास को ही वेद का बाप मान कर स्वाध्याय करने वालों की तो यही गति होती रहेगी जो हो रही है । आज के विज्ञानी लोग मनोरंजन के द्वारा ही भक्ति मुक्ति और भगवान् को खरीदना चाहते हैं, यह भारी भूल है । मानव जीवष की सफलता तो श्री हरि भजन में ही है ।

अंशांशे रामनामश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि । बीज मोंकार सोहं च सूत्रै रुक्तमिति श्रुतिः ॥ २६ ॥ रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः ॥ ३४ ॥
[पंच सर्गीय महारामायण सर्ग ५]

अर्थ—शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि—सूत्र और वेद कहते कि—वीज ओंकार और सोहं यह तीनों श्रीराम नाम के अंश से सिद्ध होते हैं । २६ । जो ओं मोक्ष देता है वह श्रीराम नाम से उत्पन्न हुआ है ॥ २६ ॥

रामएव परब्रह्म रामएव परंतपः । रामएव परतत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥ ५ ॥ (श्री रामोपनिषद्)

अर्थ—निश्चय करके श्री राम जी ही परब्रह्म है, श्री राम जी ही परम तप और श्री राम जी ही परम तत्त्व हैं, अस्तु श्री राम जी ही तारक ब्रह्म (संसार सागर से मुक्त करने वाले) हैं ॥ इसलिये मानव मात्र को श्री राम जी का भजन करना चाहिये ।

॥ मन्त्र दीक्षा देने का समय, मास, तिथि, दिन, पक्ष, देश ॥

स्वगृहोक्त प्रकारेण तदेतद्विदधीतवै । ५ । मधुमासे भवे दुःखं माधवे रत्न संचयः । मरणं भवतिज्येष्ठे आषाढ़े वन्धुदर्शनम् ॥ ६ ॥ समृत्तिः श्रावणे नूनं भवेप् भाद्रपदेक्षयः । प्रजानामाश्विनेमासि सर्वतः शुद्धिमेवहि ॥ ७ ॥ ज्ञानं स्यातकार्तिके सौख्यं मार्गशीर्ये भवत्यपि । पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधा विवर्धनम् ॥ ८ ॥ फाल्गुने

च सामृद्धिः स्यान्मलमांसं विवर्जयेत् र बौ गुरौ सिते सोमे कर्तव्यं बुध शुक्रयोः ॥९॥ अश्वनी रेवती स्वाती विशाखा हस्तभेषु च पुण्यः शतभिषक्चैव श्रवणार्द्राधनिष्ठिका ॥१०॥ ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेवकुर्यान्मन्त्राभिषेचनम्। पूर्णिमा पंचमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ॥११॥ द्वादश्यामपि कर्तव्यं षष्ठ्यामपि विशेषतः। त्रयोदशी च नवमी प्रशस्ताः सर्व कामदाः ॥१२॥ पंचांगशुद्धिः दिवसे स्वोदये तिथि वारयोः। गुरु शुक्रोदये शुद्धः लग्ने द्वादर शोधिते ॥१३॥ चन्द्रतारानुकूले च शस्यते सर्व कर्म सु। सूर्य ग्रहणकालेतु नान्यदन्वेषणं भवेत् ॥१४॥ सूर्य ग्रहण कालेन समानो नास्तिकश्चन। तत्र यद्यत्कृतं सर्व अनन्त फलदं भवेत् ॥१५॥ न मास तिथि बारादि शोधनं सूर्यपर्वणि। तदातीष्ठं गृहीतं च तस्मिन्काले मुनीश्वर। १६॥ सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन बेगतः। अतस्तत्रैव रामस्थ मन्त्रतीर्थाभिषेचनम् ॥१७॥ अगस्त सं० अ० १७॥ पुण्यतीर्थे च गंगायां लोलार्के सूर्यपर्वणि। तस्मै मन्त्रवरं प्रदान्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥१५॥ अगस्त सं० अ० ७॥

अपने घरके कृत्यानुसार गुरु शिष्य को मन्त्र (दीक्षा) देवै। ५। चैतमास में दीक्षा मन्त्र लेने से दुख होता है। बैशाख में मन्त्र लेने से धन संग्रह होता है। जेठ में दीक्षा लेने से मरण होता है। अषाढ़ में (वन्धुओं) प्रेमियों से मिलन होता है। श्रावण में मन्त्र लेने पर धनादि व्यय होता है। भाद्रों में धनादि नाश हो जाता है। आश्विन में दीक्षा लेने पर परिवार वढ़ता है। और भी सब प्रकार की शुद्धि एवं मंगल होता है। किन्तु ध्यान रहे कि क्वार के कृष्ण पक्ष में न कर के शुक्ल पक्ष में ही विशेष लाभ कर है। कार्तिक में ज्ञान की वृद्धि (बढ़ती) होती है मार्गशीर्ष (अगहन) में सभी प्रकार के सुख होते हैं। पूस में दीक्षा लेने पर ज्ञान (बुद्धि) का नाश होता है। माघ में धारणा वाली बुद्धि होती है। अर्थात् ज्ञान का विकाश होता है। ८। फाल्गुन में सब प्रकार से धन की वृद्धि होती है। अधिक मास मलमास (पुरुषोत्तम मास) में दीक्षा लेवैं। सभी महीनों में शुक्ल पक्ष में ही मन्त्र लेना अधिक लाभकर होगा। यद्यपि चैत में दीक्षा लेने पर दुख होना कहा गया है। तथापि श्री रामजन्म के पर्व अवसर श्री रामनवमी को अनन्त फल होना अन्यत्र वताया है॥ यथा—चैत्र शुक्ल नवम्यां व कार्तिकी पूर्णिमा दिने। सीता जन्म दिने चापि विवाह दिवसे शुभे॥ राज्याभिषेक काले व श्री राम बिजये दिने। अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः॥ (सनतकुमार संहिता अ० ६ श्लोक २-३॥) अर्थ—चैत्र शुक्ल श्री रामनवमी कार्तिक पूर्णमासी बैशाख शुक्ल श्री जानकी नवमी और अगहन में शुक्ल पन्चमी श्री सीताराम व्याह, भगवान् श्री राम जी का राज्याभिषेक तथा श्री राम विजय अथवा बसंत पन्चमी

कार्तिक शुक्ला अक्षय नवमी वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया असाढ़ शुक्ल द्वितिया को रथयात्रा तथा असाढ़ पूर्णिमा (श्री गुरु पूर्णिमा) दीपावली होली रक्षा बन्धन अनन्त चतुर्दशी भादौं शुक्ल चतुर्दशी भादौं कृष्ण वावन द्वादशी श्री कृष्णजन्माष्टमी माघ कृष्ण सप्तमी को श्रीरामानन्द जयन्ती इत्यादि शुभअवसरों पर मंत्रदीक्षा लेने पर अधिक लाभ होताहै, दीक्षापद्धति पृ० २६ से ॥ गनि वो,पृ० २२६ से प्रत्येक महीनामें जो शुभ है उसके शुक्लपक्ष में रविवार गुरुवार सोमवार बुधवार शुक्रवार इन दिनों में दीक्षा (गुरु मन्त्र लेवै) ॥ ९ ॥ अश्विनी रेवती, स्वाती विशाखा. हस्त पुष्य, शत-भिषक् श्रवण आर्द्रा धनिष्ठा ॥ १० ॥ ज्येष्ठा उत्तरा इन नक्षत्रोंमेंगुरु शिष्य को मन्त्र देवै। पूर्णिमा पंचमी द्वितीया सप्तमी ॥ ११ ॥ एकादशी अष्टमी त्रयोदशी नवमी यह तिथियाँ श्रेष्ठ और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। अतएव गुरु शिष्य को इन तिथियों में मन्त्र देवे ॥ १२ ॥ गुरु पंचांग (पत्रा) से दिन तिथि नक्षत्रादि शोधे। गुरु और शुक्र के उदय में १२ लग्नों में जो लग्न शुद्ध हो उसे ही ले लेवं ॥ १३ ॥ और चन्द्रतारा जो सभी शुभ कर्मों में श्रेष्ठ होते हैं, उन्हें दीक्षा में ले। सूर्यग्रहण में दीक्षा (मन्त्र) लेना अति उत्तम होता है। सूर्यग्रहण काल में किसी भी दिन तिथि लगन नक्षत्र इत्यादि का विचार विना ही किये सत्शिष्य को मन्त्र देवैं ॥ १४ ॥ सूर्यग्रहण काल के समान और कोई भी समय शुभ नहीं है। क्यों कि इस काल में जो भी कर्म किये जाते हैं वह अनन्त फल को देते हैं। अतएव इस परम पावन समय में गुरु सिष्य को मन्त्र देवै ॥ १५ ॥ सूर्यग्रहण पर्वकाल में महीना तिथि दिन आदि का विचार न करके ही मन्त्र देवै। जो मन्त्र स्वयं अपने सद्गुरु से प्राप्त करके नित्य जपता हो वही मन्त्र दे; दूसरा नहीं। कोई कोई महानुभाव स्वयं तो श्री सीताराम मन्त्र जपते हैं। और गृहस्थ भक्तों को वासुदेव मन्त्र या और मन्त्र दे देते हैं। वह कहतेहैं कि श्री सीताराम मन्त्र तो विरक्तों को लेने का अधिकार है। किसी किसी प्रतिष्ठित गद्याचार्य पीठों में भी महान्त वर्ग ऐसा ही करते हैं। यह भारी भूल है। इसका अवश्य ही सुधार होना चाहिये। श्री वैष्णवीय किसी भी सम्प्रदायाचार्य ने अपने ग्रन्थों में नहीं लिखा है कि गृहस्थ वासुदेव या अन्य मन्त्र जपे विरक्त ही राम मन्त्र का अधिकारी है। सभी भगवत्कृपा चाहने वालों को समान ही अधिकार है। कुछ गृहस्थ पंडित ऐसा कहा करते हैं कि—कंठी तिलक छाप विरक्तों को धारण करना चाहिये ग्रहस्थों को आवश्यक नहीं। वे सज्जन विशेष ध्यान दें। कि गृहस्थ और विरक्त दोनों को पंच संस्कार प्राप्त करने का समानाधिकार है किसी को भी कम या अधिक नहीं।

विरक्तों को कोपीन कमण्डलादि विशेष हैं परन्तु कंठी तिलक तप्त छाप मन्त्र का स्त्री पुरुष गृहस्थ विरक्त सभी को समान ही अधिकार है। यथा—

विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकामएव च। तापादिना विमुक्तस्यात्पातकैः कोटिजन्मजै ॥ [बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ५ श्लोक ८ ॥]

अर्थ--गृहस्थ हो या बिरक्त हो सकामी हो या निष्कामी हो, जो भगवदायुधों की तप्त छाप को धारण करता है तो निश्चय ही उसके अनेक जन्मो के पाप नाश हो जाते हैं। और भी देखिये। - ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक को-स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रम्लेच्छा याऽन्त्यज जातयः ऊर्ध्वपुण्ड्धराः सर्वे नमस्या देवता इव ॥ इस श्लोक में स्त्री बैश्य शूद्र म्लेच्छ अन्त्यजन छूने योग्य, और सभी जाति के लोगों को ऊर्ध्वपुन्ड्र तिलक धारण करना बताया है ॥ बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ श्लोक ५७ ॥ इसी प्रकार तुलसी धारण अर्थात् कंठी पहरने का प्रमाण है। यथा— तुलसी काष्ठ संभूतां यो माला बहते द्विजः ॥ १ ॥ स्कन्ध पुराण बैष्णव खं० मार्गशीर्ष माहात्म्य अ० ४ ॥ तथा मन्त्र प्राप्ति में भी कहा गया है। कि- ब्राह्मणाः क्षत्रिया बैश्या स्त्रियः शूद्रास्तथेनराः तस्याधिकारिणः सर्वे मम भक्तास्तु ते यदि ॥ पद्म प० उ० खं० अ २२३ श्लोक २७॥ भगवान का बचन है कि-यदि मुझ में भक्ति (प्रीति) है तो ब्राह्मण क्षत्री बैश्य शूद्र स्त्री पुरुष सभी अधिकारी हैं। इस लिये गुरु शिष्य को वही मन्त्र दे जो स्वयं नित्य जपता हो। अन्यथा ठगपना माना जायेगा। श्री राम षडाक्षर मन्त्र के सभी स्त्री पुरुष गृहस्थ विरक्त चारो वर्ण आश्रम वाले समान अधिकारी हैं।

मन्त्र दीक्षा देने का बिधान

भगवान् की शरणागति प्राप्त करने की इच्छा से जब कोई जीव किसी महा पुरुष के निकट जाकर प्रार्थना करे, कि- हे दयामय मैं भवप्रवाह के चक्र में पड़कर अत्यन्त दुखी होगया हूं। आप कृपा करके मुझे भगवान को शरण में भेजकर अर्थात् मन्त्र दीक्षा देकर सन्मार्ग पर चलने का शुभ उपदेश देकर हमारे हृदय का अज्ञान दूर करके ज्ञानमय दिव्य प्रकाश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये तब सद्गुरु को चाहिये कि उस व्यक्ति को भली भांति समझा दे कि भगवत् शारणागति स्वीकार करके मन-माने ढंग से नहीं रहना होगा। श्रुति शास्त्र, संत एवं गुरु के संकेतानुसार ही जीवन बिताना पड़ेगा। जब वह सहर्ष स्वीकार करले, किसी भी प्रकार का संकोच न हो तो सुन्दर दिन, तिथि लग्न, नक्षत्र महीना और रितु का बिचार करके समय निश्चित करदे। दीक्षा (मन्त्र) लेने वाले व्यक्ति को चाहिये कि- एक दिन पूर्व से व्रत करे निश्चित समय पर यथाशक्ति सामिग्री गुरु पूजन एवं भगवत् पूजन के लिये लेकर सद्गुरुओं के आश्रम पर जाये। अथवा सद्गुरु को ही अपने स्थान (घर)पर बुलालावै, शिष्य होने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह तो अपना आत्मसमर्पण गुरू को करे। तब गुरू उस चेतन (जीव) को भगवान को अर्पण करे। मुमुक्षु साधक श्रद्धा प्रेम सहित भाव पूर्वक सद्गुरुका विधिवत पूजनकरे, गुरुको आसनदेकर बिठावे और चरणप्रक्षालन(धोकर)

चन्दन, फूल, माला, तुलसी, वस्त्र अर्पण करके धूप दीप नैवेद्य के बाद आरती करे। पुनः परिक्रमा करके यदि पुरुष हो तो प्रार्थना करके साष्टांग और यदि स्त्री हो तो पंचांग प्रणाम करके निवेदन करे कि कृपासागर अब मुझ पर कृपा करके श्रीवैष्णवीय पंचसंस्कार मुझे प्रदान कीजिये ॥

उस समय सद्गुरु भाव विभोर होकर सुन्दर मण्डप के अन्दर प्रतिष्ठित या मन्दिर में भगवान् के समक्ष् करुणा पूर्वक निवेदन करे कि—हे अनन्त करुणा वरुणालय प्रभो ! यह आपका अंशात्मा आपको भुलाकर आपकी वलवती माया के जाल में पड़ कर वहुत कष्ट पाया। अब हे कृपा सागर यह आपको शरण में आया है, आप कृपा करके इसकी ओर न देख कर, अपने स्वभाव के अनुसार इसे स्वीकार कर लीजिये, इसके किये हुये अनेक अपराधों को क्षमा करके, इसे अपने श्री चरणों की शरण में स्थान दीजिये। जैसे माता अवोध वालकों के अपराधों को अपराध न मान कर उस पर कोप नहीं करके अपना वात्सल्यमय प्यार प्रदान करती है। हे प्रभो ! आप पतित पावन; अधम उधारन दीनानाथ अशरणशरण, करुणा, कृपा, अनुग्रह• अनुकम्पा क्षमा, दया, वात्सल्य के सागर हैं आपका विरद है कि— सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्ये तद्व्रतं मम ॥ अर्थात् जो कोई भी जीव एक बार भी प्रपन्न होकर ऐसी याचना (प्रार्थना) करता है कि, हे प्रभो ! मैं आपका हूँ तो आप उसे सभी से अभयता प्रदान कर देते हैं। अभय पद का अर्थ है कि फिर कभी भय न हो। अर्थात उसके समस्त पापों को नष्ट करके अपना लेते हैं। शरीरांत होने पर अपने सच्चिदानन्दयम धाम की प्राप्ति करा देते हैं, जहाँ भय का स्वप्न भी नहीं हैं। अस्तु हे करुणानिधान आप इस अवोध को अपनी शरण में स्वीकार कीजिये। और शिष्य होने वाले को भी कहे कि वह इस प्रकार प्रार्थना करे कि—

श्रवण सुजस सुनिआयउँ; प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन शरन सुखद रघुवीर ॥ रा० च० मा० सु० कां० ४ ॥ दो० ॥ हे करुणा सागर प्रभो ! दीनानाथ दयाल। चरण शरण में राखि मोहिं, सब विधि करिय सम्हार ॥ क्षमा कृपा के रूप तुम भव निधि तारन हार। पाहि पाहि सीता रमण; आयो शरण तुम्हार ॥ जगजीवन जगनाथ हो; जगताधार परेश। त्राहि माम अशरण शरण सिय रघुवर सर्वेश ॥ प्रभु पद पद्म विसारि के, पायो दुःख अपार। अब हे परम उदार प्रभु आयो तुम्हारे द्वार ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके भगवान् को साष्टांग प्रणाम करके गुरु के संकेत से बैठ जाये । तब सद्गुरु उससे भगवान् का पूजन यथावकाश तुलसी, फूल, चन्दन धूप दीप नैवेद्य आरती इत्यादि करवाकर हवन करें । या अन्य किसी वेदज्ञ ब्राह्मण से करवावें । उसके बाद प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगावै, फिर तुलसी की कंठी दोलर की भगवान् को अर्पण करके गले में बाँधें । तब हवन की हुई अग्नि में भगवदायुध धनुर्बाण चक्रादि को तपा कर तप्प या शीतल छाप लगावें । जिस परम्परा में चन्द्रिका मुद्रिका तथा श्री सीताराम नाम की छाप लगती हो तो उसे भी लगादें । चन्द्रिका और श्री सीताराम नाम मुद्रा को शीतल लगाने की ही विधि है । मुद्रिका को तप्त लगावे । तब भगवान् के नामों में से अपनी उपासना के अनुकूल नाम को सोचकर उसमें दास शब्द लगा कर नामकरण करे । घर वाले नाम का प्रथम अक्षर रखने का शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, इसलिये पहले घर वाले नाम का प्रथम अक्षर रखना बिलकुल अनर्गल है । हाँ यह ठीक है कि यदि व्यक्ति का नाम घर में ही भगवान् के नामों में है, जैसे—रघुवीर प्रसाद जानकीनाथ, जगदीश, नारायण, गोपाल नरसिंह है, तव तो एक अक्षर ही क्या पूरा वही नाम ठीक है, उसी में दास वा शरण लगाकर नाम संस्कार करे । किन्तु चुन्नीलाल, घुरईलाल, इत्यादि अटपट नामों के प्रथम अक्षर लेने की विलकुल आवश्यकता नहीं है । विशेष उत्तम तो यही है कि पूरा नाम परिवर्तन कर दे माता वहिनों के नाम श्री जी के नाम सम्वन्धी होने चाहिये । उसके अन्त मैं सखी सहचरी दासी शब्द लगादे । यथा—श्री सीता सहचरी, श्री राम सखी, श्री रामप्रिया सहचरी, श्री जानकी दुलारी, श्री राम दुलारी, श्री सियाराम दुलारी ऐसे नाम धरे । यह ध्यान रहे कि—जो मातायें विहने भगवान् को अपने पिता भाव से स्मरण करती हों, उनके नाम में दुलारी और जो पुत्र भाव से मानती हों उनके नाम श्री कौशल्या वाई, श्री सुमित्रा देवी, श्री यशोदा वाई, इत्यादि और जो भगवान् को कान्त (पति) भाव से स्मरण करती हों उनके नामों में सखी या सहचरी शब्द लगाया जाये । या दासी शब्द लगावे, जानकी दासी, रामदासी इत्यादि । तव पाँचवाँ मन्त्र संस्कार को इस प्रकार करे । कि शिष्य—

तत्प्राङ्मुखोपविष्टस्यचोत्तराभिमुखो गुरुः । शनैः शनैः शुभेनर्णे त्रिवारं श्रावयेन्मनुः ॥ (नारदपञ्चरात्र)

उस विनयी पुर्वाभिमुखी अर्थात् पूर्व की ओर मुख करके बैठे हुये शिष्य को उत्तर की ओर मुख करके गुरुदेव दाहिने कान में धीरे धीरे शुद्ध स्पष्ट शब्दों में तीन वार मन्त्र सुनावें । कहीं १०८ वार भी लिखा है । दीक्षा पद्धति पृ० ७२ ॥

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा शतं जपेत् ॥ अष्टोतरं ततो मन्त्रं दद्या-दुदक पूर्वकम् । प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्यायाह मुनि पुङ्गव ॥ स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद्गुरुः । आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मिति विशेषतः ॥ कृत कृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत् । यच्च यावच्च यद्भक्त्या गुरवे हृष्ट-चेतनः ॥ (अगस्त सं० अ० १७ श्लो० ३८ से) पुनः वहीं पर दो श्लोक और भी २-३ के हैं ॥ यथा — उपासकस्तु शुद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् । सर्वावित्त वित्त कार्यैश्च भक्तिश्रद्धा समन्वितः ॥ यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदं मनुम् । स्वयमेव तथा चैवमिति कर्त्तव्यताक्रमः ॥

दीक्षा लेने के समय में शिस्य दोनों हाथों से सद्गुरु के चरण स्पर्श किये हो। और गुरु भगवान् का स्मरण करते हुये प्रसन्न मुख से शिष्य के मस्तक पर हाथ रख कर १०८ बार मन्त्रराज (श्री सीताराम मन्त्र) सुनावें । उस समय निकट बैठे हुये व्यक्ति प्रेम पूर्वक भगवान् का मंगलमय श्री सीताराम नाम या अपना प्रिय नाम का कीर्त्तन करते रहें । मन्त्र देते समय सद्गुरु ऐसी भावना करें कि—मेरे हृदय से ज्योतिर्मय (प्रकाश स्वरूप) ब्रह्म विद्या मेरे मुख से निकल कर शिष्य के कान के द्वारा हृदय में प्रवेश कर रही है । उसी प्रकार शिष्य भी भावना करे कि—सद्गुरु के मुख से प्रकाश स्वरूप ब्रह्म विद्या कान के द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश कर रही है । अपने को परम धन्य अर्थात् कृतार्थ समझे । शिष्य प्रसन्नतापूर्वक अपना सर्वस्व श्रीगुरु चरणों पर न्यौछावर कर दे । शुद्धात्मा शिष्य तन मन धन से सेवा करके गुरुदेव को प्रसन्न करे । जिससे प्रसन्न होकर शिष्य को स्वयं गुरुदेव मन्त्र प्रदान करें । मन्त्र देते समय गुरु अपने तथा शिष्य के मस्तक पर वस्त्र ढाँक लेते हैं ॥ पूर्वं दद्याद्गुरुस्तस्मै मूलमन्त्रं षडक्षरम् । ततश्च चरमं दद्यादुपदेश क्रमात्सदा ॥ अर्थ—प्रथम श्रीराम तारक षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश दे । तब द्वय मन्त्र पुनः चरमन्त्र एवं शरणागति मन्त्र का उपदेश देवे । श्री रामगायत्री श्री जानकी गायत्री श्री हनुमान जी का वैदिकमन्त्र तथा गुरु मन्त्र भी प्रदान करे । स्त्री पुरुष सभी को दाहिने कान में ही मन्त्र उपदेश करे । कितने लोग स्त्रियों को बायें कान में मन्त्र सुनाते हैं, यह ठीक नहीं है । क्यों कि पद्म पु० पाताल खं० अ० ८२ श्लो० १५ में लिखा है कि—ततो मन्त्रद्वयं तस्य दक्षकर्णे विनिर्दिशेत् । मन्त्रार्थश्च वेदत्तस्मै यथावदनु पूर्वशः ॥ और श्री रामतापनी उपनिषद् के उत्तरार्ध के २७ वें मन्त्र में भी लिखा है कि—मुमूर्षोः दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् । उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स पूतो भविता शिव ! इत्यादि दक्षिण

(दाहिने) कान में ही मन्त्र प्रदान करने का विधान मिलती है । स्त्रियों को बायें कान में मन्त्र देने का पृथक् विधान नहीं मिलता है । मन्त्र के पश्चात् मन्त्रार्थ और जीव ईश्वर के सम्बन्ध का ज्ञान भी शिष्य को करा देना चाहिये । समयाभाव में एक बर्ष के अन्दर सभी बातें सिखा देना चाहिये । क्यों कि लिखा है कि—
मन्त्रदाता न गुरुर्न च मन्त्रार्थवाचकः । मन्त्रमन्त्रार्थं यो दद्यात्सगुरुरित्यभिधीयते ॥
अर्थ—केवल मन्त्र सुना देने वाला गुरु नहीं और केवल मन्त्रार्थ बताने वाला भी पूर्ण रूपेण गुरु नहीं है । जो मन्त्र और मन्त्रार्थ, ध्यान, उपासना भगवत् सम्वन्धादि सम्पूर्ण रहस्यों का उपदेश देवे पूर्णतया गुरु वही है ॥

यदि किसी सज्जन के गुरुदेव का शरीर शीघ्र ही पूर्ण हो जाये (मृत्यु) हो जाये समयाभाव के कारण रहस्य न सीख पाने पर उसी सम्प्रदाय के मान्य सन्त जिनका स्वभाव व्यवहार उत्तम हो, समाज की तथा अपनी भी श्रद्धा हो, ऐसे चरित्रवान महानुभावों से गुरुभाव पूर्वक साम्प्रदायक रहस्य जान ले । फिर उनको गुरु तुल्य ही माने । मन्त्रों को इस क्रम से गुरु शिष्य को देवै ॥

सर्व प्रथम श्री सीताराम जी का युगल षडक्षर मन्त्रराज तदन्दर मन्त्रद्वय पश्चात् शरणागति मन्त्र चरममन्त्र श्री सीताराम जी की युगल गायत्री श्रीहनुमानजी का वैदिक मन्त्र श्री गुरु मन्त्र देवैं । पुनः समय पाकर शीघ्र ही अर्थ पंचक, तत्त्वत्रय अकारत्रय, रहस्यत्रय और ध्यान, उपासना का सम्वन्ध इतनी वस्तुयें गुरु शिष्य को देवैं । शिष्य को भी उचित है उपर्युक्त सभी बातें प्रार्थना करके सद्गुरु से शीघ्र समझकर भगवत भजन करके अपना कल्याण संपादन करे ॥

मन्त्रद्वय--श्री रामचन्द्र चरणौ शरणौ प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः चरम मन्त्र--सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम ॥ युगल गायत्री— ॐ श्री जनक नन्दिनै विद्महे श्रीराम वल्लभायै धीमहि तन्नो सीता प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री दाशरथाय विद्महे श्री सीता वल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात ॥ श्री सीताशरणं मम श्री रामः शरणं मम श्री हनुमान जी का वैदिक मन्त्र ॐ हं हनुमते नमः ॥ श्री गुरु मन्त्र-- ॐ गुं गुरवे नमः ॥ कितने महानुभाव केवल श्रीराम षडक्षर मन्त्र ही शिष्य को देते हैं ।। श्री जानकी जी का मन्त्र नहीं देते । परन्तु एक साथ ही दोनों मन्त्र देने का विधान है । यथा--देव्यास्तु पूर्वमेवोक्तं सह रामेण तद्भवेत् ॥ अगस्त सं० अ० ३ श्लो० २७ ॥ अर्थात्--श्री जानकी जी का मन्त्र श्री राम के साथ हो देना चाहिये । केवल श्री राम मन्त्र तो आधा ही है । श्री भरत लक्ष्मण, शत्रुहन जी के भी मन्त्र देकर श्री सीताराम मन्त्र के पूर्व ही जप

करना बता देना चाहिये ।। मन्त्रराज का करन्यास विनियोग जप विधि बताना चाहिये । शिष्य मन्त्र प्राप्त करने के बाद ६ हजार नित्य जपे । समयाभाव में ३ हजार या ६ सौ जपे । कम से कम एक माला तो अवश्य ही नित्य जपना चाहिये । मन्त्र लेकर जप न करना मंत्रका अपराध है । अस्तु भगवान् की कृपा चाहनेवालों को ६ हजार या १२ हजार अथवा और भी अधिक से अधिक जपना चाहिये ।। मन्त्र की महान महिमा है । यथा—मन्त्र परम लघु जासु वश विधि हरि हर सुर सर्व । महामत्त गजराज कहँ वशकर अंकुश खर्व ।। बा० कां० २५६ दो० ।।

नोट—ध्यान रहे कि ऊपर अगस्त सं० अ० १७ का दूसरा श्लोक लिखा गया है कि—उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् । स्वचित्त वित्त कायैश्च भक्ति श्रद्धा-समन्वितः ।। इसका भाव है कि श्रद्धावान उपासक प्रयत्न पूर्वक सद्गुरु को श्रद्धाभक्ति अपना तन मन धन अर्पण करके सेवा के द्वारा भली भाँति संतुष्ट (प्रसन्न) करे ।। परन्तु वर्तमान समय में सुनने को मिलता है कि—अमुक सन्त का अपनी शिष्या के साथ अवैधानिक (अनुचित) सम्बन्ध हो गया है । ऐसी भूल सन्त नहीं करते हैं ।। सन्तों के वेष बनाये हुये भोगलोलुपों की यह दुर्दशा है । आज भी गुरु दीक्षा देनेवाले संत वृंद सदाचरण सम्पन्न हैं । परन्तु अपवाद रूप में कहीं कोई पाखण्डी व्यक्ति संत समाज को कलंकित यदि करता है । तो जन समाज शासन के द्वारा उस व्यक्ति को दण्ड दिलाये । किन्तु ऐसी धारणा न बनाले कि सभी गुरु चरित्र हीन होते हैं । शास्त्र मर्य्यादानुसार शिष्य एवं शिष्या गुरु के पुत्र एवं पुत्री होते हैं । अभाग्य वश यदि किसी को गुरु रूप में पाखण्डी व्यक्ति मिल जाये, और वह यदि उक्त श्लोक का प्रमाण देकर अनुचित आचरण का संकेत करे तो उस शिष्या को गुरु की आज्ञा नहीं मानना चाहिये । आज्ञा मानना ही महान पाप होगा । यदि वह विषय लोलुप कहे कि—राखै गुरु जो कोप विधाता गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता ।। तो भी शिष्या को डरना नहीं चाहिये । हानि लाभ तो सद्गुरु के अप्रसन्न या प्रसन्न होने में है । जो पशुवत बुद्धि से व्यवहार करै वह गुरु नहीं गोरू (पशु) है । ऐसे गोरुओं की प्रस-न्नता या अप्रसन्नता में न तो लाभ होगा न हानि । विचारवान् शिष्या को चाहिये कि ऐसे विषय लोलुप गुरु का सम्पर्क छोड़ कर भगवत् कृपापात्र वीतराग विषय विमुख महान पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करके सत्संग का लाभ उठावे ।। कहीं कहीं ऐसा लिखा हुआ यदि किसीं पुस्तक में मिले कि—यदि गुरु कामी हों तो उन्हें भगवान् श्री कृष्ण रूप समझे । यह बात बहुत ही भ्रामक एवं महा अनर्थ की मूल है । ऐसी अनर्गल मान्यतायें ही समाज के पतन का प्रधान कारण हैं । अस्तु तन मन धन अर्पण

का तात्पर्य है कि तन मन धन को अपना न मान कर गुरु का माने। ऐसा करने से तन मन धन की आशक्ति और अभिमान नहीं होगा। शिष्य एवं शिष्या गुरु को भगवत्स्वरूप मान कर पिता के समान पूज्यभाव रख कर यथावकाश श्रद्धा प्रेम पूर्व शुद्ध हृदय से सेवा करें। और सद्‌गुरु वात्सल्य पूर्वक शिष्य एवं शिष्यायों को पुत्र और पुत्रिवत् मान कर दुलार करते हुये सत शिक्षा दें। विषय वासना में फसाना मायावी लोगों का काम है। गुरु तो समस्त विकारों से विमुख होकर भगवत्परायण होने वाली चर्चा (दिव्य ज्ञान) के द्वारा ही शिष्य का कल्याण करते हैं। यदि कोई विषयभिलाषी ऐसा पाठ पढ़ावे कि--गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं। उनकी सभी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये तभी कल्याण होगा, गुरु आज्ञा न मानने पर नरक जाना पड़ेगा। तो उस गोरू से कहना चाहिये कि- ब्रह्म को तो लिखा है कि- निरंजनं निष्प्रतिभं निरीहं निराश्रयं निष्कलमप्रपञ्चम्। नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरन्तरं राममहं भजामि ॥ श्रीरामस्तवराज स्तोत्र श्लोक ५५ ॥ अर्थात् ब्रह्म तो निविषय स्वरूप है, तब आप कौन से ब्रह्म हो जो कि विषय की प्रेरणा देते हो। कोटि प्रमाण देने पर भी विषय वार्ता की बात भी नहीं सुनना चाहिये। गुरु जी नाराज होकर हमें श्राप दे देंगे, ऐसा भय भी नहीं मानना चाहिये। विषयाभिलाषियों के श्राप और आशीर्वाद से न तो कुछ बनना है न विगड़ना है। सत्शिष्यों को उचित है कि वह सद्‌गुरु का चरणामृत और प्रसाद श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवन करें। जिसके प्रभाव से शिष्य के भी हृदय में सद्‌गुरु के सद्‌गुण सद् विचार भावनायें जाग्रत हो जायेंगी। गीता में उच्छिष्ट (किसी का जूठा) भोजन पाना निषेध कहा है। वह शब्द जन साधारण के साथ व्यवहार के लिये बताया है। सद्‌गुरु के प्रसाद का निषेध नहीं है।

यदि यही हठ मान ली जाये कि कोई भी व्यक्ति किसी का भी जूठा न खाये, तो पतिव्रताओं को बताया है कि पति को पवाकर पश्चात् पति का प्रसाद ग्रहण करे। इसलिये आत्म कल्याण इच्छुक शिष्यों को सद्‌गुरु का चरणाभृत तथा प्रसाद अवश्य पाना चाहिये। गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को दिव्य ज्ञान की शिक्षा देकर उनका आत्म कल्याण करें। शिष्यों का कर्तव्य है कि गुरु के शरीर की सेवा करके उसकी रक्षा करें। अब दीक्षा लेने वाले अधिकारी बताये जाते हैं।

ब्रह्म-क्षत्र-बिशः शूद्राः स्त्रियश्चैवान्त्यजास्तथा। सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम् ॥ बाल मूक जड़ान्धाश्च पङ्गवो बधिरास्तथा। सदाचार्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥ भरद्वाज सं० तथा दीक्षा पद्धति पृ० १६ ॥

अर्थ—ब्राह्मण क्षत्री बैश्य शूद्रों के सभी स्त्री पुरुष तथा अन्त्यज (न छूने योग्य जिनका जल पीना शास्त्र निषेध है) ये सभी भगवत् भक्ति पथ के पथिक (भगवत् शरणागत) हो सकते हैं । बालक या गूँगा जड़ स्वभाव एवं अन्धा लँगड़ा और बहिरा सदाचार सम्पन्न अथवा सदाचार विहीन इनमें से जो भी सद्गुरु से सविधि दीक्षा (मन्त्र) लेकर भगवान् का भजन करेगा तो निश्चय ही भगवत्कृपा से परम पद परम गति भगवद्धाम को प्राप्त होगा ॥ अस्तु भगवत् प्राप्ति हेतु दीक्षा लेने में कुल गोत्र क्रिया गुणों का विचार आवश्यक नहीं है । व्यक्ति श्रद्धा अश्रद्धा ही विचारणीय है ॥

वन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि । महा मोह तम पुंज; जासु वचन रविकर निकर ॥ इस सोरठा में सद्गुरु को कृपा सिन्धु नर रूप में स्वयं हरि कहा है, और गुरु बचनों को समूह सूर्य किरण बताया है जो महान् मोह रूपी अंधकार को नष्ट करके शिष्य के हृदय में दिव्य ज्ञानरूपी प्रकाश करके आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करवा देते हैं । "मोह सकल ब्याधिन कर मूला । तिन ते पुनि उपजहिं बहुशूला" (बा० ३ कां० १२१ दो०) अविद्या जनित अनेक कष्ठ मोह से ही उत्पन्न होते हैं । मोह मिटते ही अज्ञान दूर हो जाता है. तब ज्ञानोदय होना स्वाभाविक है । ज्ञान प्रकाश स्वरूप होने के कारण अन्तः करण में बँधी हुई ग्रन्थि को दिखा देता है, तब जीव भगवत्कृपा का अवलम्ब लेकर भजन करने पर अनायास ही जन्म मरन से मुक्त होकर प्रभु को प्राप्त हो जाता है । अन्य साधारण जीवों की कौन कहै भगवती श्री पार्वती जी को भी मोह होने पर महान् कष्ट उठाकर मरना पड़ा । पुनः कठिन तपस्या के बाद शिव जी की प्राप्ति हो पाई । अस्तु जन्म मरन के चक्र में डालने वाला मोह ही है । वह सद्गुरु कृपा से अनायास ही दूर हो जाता है । मोह अविद्या माया का विकार है, माया का पर्यायवाची नाम अजा है ।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोन्यः ॥ (श्वेता० ४।५) ॥

अर्थ—सत्त्व, रजस, तमस त्रिगुण धर्म वाली, अपने समान धर्मवाली त्रिविध सृष्टि की रचना करने वाली, अजा (उत्पत्ति-रहित) प्रकृति का कोई अज (अजन्मा) जीव जो अहंबुद्धि (आशक्त बुद्धि) से (अर्थात् आशक होकर) सेवन करता है, कोई अज (अजन्मा) जीव कुछ काल उसका भोग करके (मुमुक्षु एवं विद्वान होकर) उसे छोड़ देता है । इस श्रुति में माया को अजा और उसके सत, रज, तम त्रिगुण

एवं उनके शुक्ल लाल और काले बताये गये हैं। अजा शब्द माया तथा बकरी दोनों का द्योतक (वाचक) है। बकरियों में कुछ लाल कुछ श्वेत अधिकतर काली ही होती हैं। वैसे ही माया का सत्त्वगुण श्वेत रज लाल और तम काले रंग का कहा, विशेष कर माया तमोगुण प्रधान काले रंग की होती है। जैसे बकरी मैं मैं बोलती है वैसे ही माया की पहिचान भी 'मैं' की अपेक्षा से मोर' होता है। और फिर उस 'मैं' के प्रति विरोधी तैं' तथा 'मोर' के प्रति 'तोर' की सृष्टि होती है, इस प्रकार माया का पूर्ण रूप 'मैं' 'मोर' 'तैं' 'तोर' सम्पन्न हो जाता है। यथा—मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वश कीन्हें जीव निकाया॥ मा० रा० अ० कां० १५ दो०॥ गीता प्रेस कल्याण के उपनिषद् अंक में अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां……" इस श्रुति की व्याख्या पर निम्नलिखित नोट दिया है, जो इस प्रसंग का पोषक है। वह यह है कि—सांख्यमतावलम्बियों ने इस मन्त्र को सांख्य शास्त्र का वीज माना है। और इसी के आधार पर उक्त दर्शन को श्रुति सम्मत सिद्ध किया है। सांख्यकारिका के प्रसिद्ध टीकाकार तथा अन्य दर्शनो के व्याख्याता स्वनाम धन्य श्री वाचस्पति मिश्र ने अपने सांख्य कौमुदी नामक टीका के आरम्भ में इसी को कुछ परिवर्तन के साथ मंगलाचरण के रूप में उद्धृत करते हुये इसमें वर्णित प्रकृति की वन्दना की है। यहाँ काव्यमयी भाषा में प्रकृति को एक तिरंगी बकरी के रूप में चित्रित किया गया है। जो बद्धजीव रूप बकरे के संयोग से अपनी ही जैसी तिरंगी-त्रिगुणामयी संतान उत्पन्न करती है॥

और यह अजा (बकरी) रूपी माया पंच संस्कार धारण करने वाले गुरु देव से डरती है। सद्गुरु अपने शिष्यों की इन्हीं अपने अंग में धारण करने वाले पंच संस्कारों के द्वारा रक्षा करते हैं। माया के शब्द स्पर्श इत्यादि ही जीव को भव कूप में डालते हैं। यथा--पाँचइ पाँच परस रस शब्द गन्ध अरु रूप। इनकर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव कूप॥ वि० प० २०३॥ श्रीगुरुदेव जी इन पंचसंस्कारों से माया द्वारा किये उपद्रवों से इस प्रकार रक्षा करते हैं। कि-शब्द ग्रहण की इन्द्री-कान है. शब्द का विषय कान के द्वारा ही हृदय में प्रवेश करके विकार उत्पन्न करता है। इसीलिये उससे रक्षार्थ कान को शुद्ध करने के लिये कान में ही मन्त्र दिया जाता है। और उसकी कर्मेन्द्रिय वाक् (वाणी) से उत्पन्न मन्त्र का जप किया जाता है। स्पर्श विषय वाले वायुतत्त्व की कर्मेन्द्रिय हाथ है। उसके रक्षार्थ भगवदायुध धनुष बाण आदि की छाप (चिन्ह) हाथों के मूल बाहुओं पर दिये जाते हैं। रूप का केन्द्र स्थल ललाट (मस्तक) है। क्यों कि रूप देखने में प्रथम मस्तक पर ही दृष्टि जाती है। इसलिये उस से रक्षणार्थ मस्तक पर ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया

जाता है । सर्वांग में द्वादश तिलक किया जाता है । क्योंकि सर्वांग में रूप का ही विषय है । रस विषय ग्रहण करने की इन्द्रिय रसना (जीभ) है । उससे ही अनेक पदार्थों का स्वाद मिलता है । वह पदार्थ कण्ठ में होकर पेट में जाते हैं । इसलिये कण्ठ में तुलसी की माला (कंठी) बाँधी जाती है । नाम का सम्बन्ध पृथ्वी तत्त्व के निर्मित नाना शरीरों से रहताहै, व्यक्ति किसी का पुत्र किसी का पिता किसीका पति. मित्र इस रीति से पृथ्वी पर से सम्बन्धित रहता है । इस बन्धन से मुक्त होने के लिये भगवत्सम्बन्धी नाम-संस्कार किया जाता है । इससे जगत के नाना प्रकार के सम्बन्धी न रह कर भगवान् का दास या शरण कहा जाता है । यह पृथ्वी तत्त्व सम्बन्धी जगत बासना रूपी गन्ध विषय से रक्षा का उपाय है । इस प्रकार पंच संस्कारों द्वारा जीव पंच विषय से बच कर भगवत् भजन करके देहावसान होने पर भगवान् को प्राप्त होता है । इसलिये भगवत् प्राप्ति करने की इच्छा करने वाले सभी वर्णाश्रम के स्त्री पुरुषों को सद्गुरु से पंच संस्कार प्राप्त करके भगवत् भजन परायण होकर भगवत प्राप्ति करना चाहिये । उपर्युक्त विषय प्रपत्ति रहस्य के पृ० २६० से २६५ तक संक्षित रूप में लिया गया है ॥

भगवत् शरणागति की महिमा और शास्त्रीय प्रमाण--

यद्यपि शास्त्रों में महर्षियों ने कर्म ज्ञान उपासना अष्टांग योग इत्यादि अनेक साधनों के द्वारा जीव की संसार चक्र (जन्म मरण) से मुक्ति (छुटकारा) और भगवत् प्राप्ति बताई है । तथापि उन सभी साधनों की साधना करना दुर्धर्ष कार्य है और भगवान श्री हरि की शरणागति अत्यन्त ही सुगम मार्ग है । इस पथ में चलने पर किसी भी प्रकार का काँटा कुश या कंकड़ नहीं है, अर्थात् किसी भी प्रकार का विघ्न बाधा नहीं है । केवल एकमात्र अपने आराध्यदेव पर विश्वास करने भर की आवश्यकता है । शरणागत भक्त को सर्वदा दृढ़ता पूर्वक ऐसी भावना रखना चाहिये कि--हमारे प्राणाधार परम प्रियतम प्रभु सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्व समर्थ तथा भक्तवत्सल हैं । अपने आश्रितों की रक्षा करना उन करुणा वरुणालय का सहज स्वभाव है । वे उदार शिरोमणि सर्वज्ञ होने के कारण हमारी ग्रावश्यकताओं को विना निवेदन किये ही भली भाँति जानते हैं । सर्व व्यापक होने के कारण मेरी योग क्षेम अर्थात् आवश्यक अप्राप्य बस्तु की प्राप्ति करा देना एवं प्राप्त पदार्थों की रक्षा करना, इस कार्य को करने के लिये प्रभु को आना जाना नहीं पड़ेगा । सर्व समर्थ होने के कारण मेरे दोष दुर्गुण दुख अनेक जन्मों के अपराधों (पापों) को अनायास ही दूर करके अपनी कृपा दृष्टि के द्वारा भली भाँति मेरा सम्हार करेंगे । भक्तवत्सल होने कारण हमारे हृदयेश प्रभु हमें कभी दीन दुखी देख ही नहीं सकते हैं । जैसे माता अबोध शिशु का मुख मलीन देखकर चिंतित होकर बालक के मुख मलीनता

के कारण को दूर करने में अविलम्ब सचेष्ट होकर उसे प्रसन्न मुख देख कर ही सुख पाती हैं। उसी प्रकार हमारे जीवन धन सर्वस्व प्रभु सब प्रकार से हमें प्रसन्न करके ही सुख मानेगे। तभी आश्रितों का मन विश्वासपूर्वक भगवान् में लगा रहेगा, अन्यथा भटक जाना स्वाभाविक है। इसलिये कल्याण चाहने वाले सज्जनों को चाहिये कि अविलम्ब सद्गुरु के द्वारा भगवत् शरणागति स्वीकार करके भगवद्भजन करें। शरणागति शब्द का अर्थ देखिये ॥

शरणं गृहरक्षित्रोः (अमर कोष) तथा–उपायेगृहरक्षित्रोः शब्द शरणमित्य "यम्। वर्तते साम्प्रतं चैष उपायार्थैकवाचकः ॥

प्रपति रहस्य पृ० १ से (लक्ष्मी तन्त्र) उपाय, गृह और रक्षक ये शरण शब्द के अर्थ होते हैं। और भी पढ़िये कि—"गम्लृ–गतो पद–गताविति द्वयोरपि धात्वोरेकार्थकत्वाच्च। शरणागत शब्द प्रपन्नशब्दयोरेकार्थकत्वावगमात॥" (श्री हरिदास जी कृत रहस्यत्रय) अर्थात् 'गम्लृ गतौ और 'पदगतौ' इन दोनों धातुओं का एक अर्थ होने से शरणागत शब्द और प्रपन्न शब्द का एक ही अर्थ होता है। शरणागत शब्द के पर्याय शब्द और भी हैं, यथा—न्यास, आत्मसमर्पण, आत्मनिवेदन, और आत्मभरण एवं 'ऋ–गतौ' इस धातु से निष्पन्न, "भरण" शब्द आदि शरणागति के नाम हैं। तथा—प्रपन्न, शरणागत, भागवत, वैष्णव और आश्रित आदि शरणागत के पर्याय शब्द हैं। शरण का अर्थ घर भी होता है। अतः शरण–आगत शब्द का अर्थ—'अपने घर पर प्राप्त (आया)' एवं 'अपने वासस्थान पर प्राप्त'–यह होता है। यही अर्थ कपोत प्रसंग से सिद्ध होता है। यथा—"श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः। अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥" (बाल्मी० रा० ६।१८।२४) अर्थात् श्री राम जी ने कहा है कि—सुना जाता है कि एक वृक्ष पर एक कबूतर रहता था। उसके निवास स्थान उस वृक्ष के पास एक शरणागत उसका शत्रु रूप बहेलिया आया। उस कबूतर ने उस बहेलिया का विधिवत सत्कार किया था। और अपना मांस उसे भोजन करवाया। प्रपति रहस्य पृ० २ से

पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने भी घर के द्वार पर पड़ने को शरणागति के भाव पर कहा है। यथा—"द्वार हौं भोर को ही आज" (वि० प० २१६) "द्वार परो गुन गावौं" (वि० प० २२२) "ताते हौं बार–बार देव द्वार परि पुकार करत" (वि० प० १३४) तथा तुलसीदास निज भजन द्वार प्रभु दीजै रहन परो" (वि० प० ६१) इत्यादि॥ जब कि एक पक्षी भी शरणागत को अपना मांस खिला कर सत्कार कर सकता है, तब भगवान् श्री हरि की बात क्या कही जाये।

श्री राम जो की तो प्रतिज्ञा ही है कि—"सकृदेव प्रपनाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।।" (वाल्मी० ६।१८।३३) अर्थात् जो मेरी शरण में आकर एकबार भी ऐसी याचना करता है कि—मैं आपका हूँ। इस प्रकार की प्रार्थना करने वाले सभी प्राणियों की मैं सभी से अभय कर देता हूँ। वह मेरी प्रतिज्ञा है ।। अस्तु प्रभु की इस प्रतिज्ञा को जान समझ कर मानव मात्र को भगवत् शरणागति स्वीकार करनी चाहिये ।।

शरणागति के भेद--

जैसे ज्ञान में सात भूमिकायें हैं, योग के आठ अंग प्रसिद्ध हैं। और भक्ति में भी नवधा के नौ भेद एवं प्रेमा-परा आदि की संज्ञा वाले भेद होते हैं। वैसे ही इस शरणागति के भी छै भेद होते हैं। यथा—

आनुकूलस्य सङ्कल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ।। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ।।"

(नारद पञ्चरात्र) अर्थ—भगवान् की अनुकूलता के संकल्प करना, भगवान् के प्रतिकूला बढ़ाने वाले जो देश, काल, कर्म और स्वगाव आदि हैं, उनका तथा हिंसादिक दोषों को सर्वथा त्याग करना, भगवान् मुझ शरणागत की रक्षा अवश्य ही करेंगे, इस प्रकार का दृढ़ विश्वास धारण करना, अपनी रक्षा के लिये भगवान् को वरण करना, शरीर समेत आत्मा तथा शरीर सम्बन्धी पदार्थों को भगवान् के लिये समर्पण करना, और अपने में दीनता का अनुसंधान करना, ये छै भेद शरणागति के हैं।

१- अनुकूल सङ्कल्प--

नाम रूप लीला सुरति, धामवास सत्संग। स्वाति सलिल श्रीराम मन, चातक प्रीति अभंग ।। नाम रूप लीला धाम का निरन्तर अनुभव करने से हृदय की वृत्ति स्वामी श्री राम जी के अनुकूल हो जाती है। तब प्रभु के अनुकूल ही संकल्प होने लगते हैं। कीट भृंग न्याय से भगवान् के गुण रूप लीला का मनन करते करते भक्त का मन भगवान् का लीला केन्द्र बन जाता है ।। गोस्वामी जी ने कहा है कि—जानकी जीवन की वलि जैहौं। चितकहै राम सियापद परिहरि अव न कहूँ चलि जैहौं ।। (वि० प० १०४) इस पूरे पद में भगवान् की अनुकूलता का ही वर्णन है ।।

२- प्रातिकूलस्य वर्जनम्--

भगवत्शरणागति के वाधक सभी देश, काल' वस्तु एवं व्यक्तियों का सर्वथा त्याग कर देना, चाहे अपने कितने भी प्रिय क्यों न हों। श्री विभीषण जी ने रावण

को समझाया, जब उसने इनकी बात न मान कर अनादर किया तो श्री विभीषण जी ने ही लंका तथा संपूर्ण परिवार का मोह त्याग कर भगवान् श्री राम जी की शरणागति प्राप्त की ॥ गोस्वामी जी ने भी कहा है कि—जाके प्रिय न राम वैदेही। तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बन्धु भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो कन्त वृज वनितन मै मुद मंगलकारी ॥ (वि० प० १७४) जरौ जो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितुभाय। सन्मुख होत जो रामपद, करै न सहस सहाय ॥ रा० च० मां० अयो० कां० १८५ ॥ और सुन्दर कां० के ३८ वें दोहे में श्री विभीषण जी ने रावण से कहा कि—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ । सब परिहरि रघुवीरहिं, भजहु भजहिं जेहि सन्त ॥

३- रक्षिष्यतीति विश्वासः—

हमारे आराध्यदेव श्री राम जी ने बड़े बड़े आर्त अनाथों की रक्षा की है। अतः मेरी भी रक्षा अश्वय ही करेंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना शरणागति का तीसरा भेद है। लंकापति, कपिराज, गज, द्रोपदि, ध्रुव, प्रहलाद। रक्षा करि इन सबनि की, प्रभु दीन्हों अहलाद ॥

४- गोप्तृत्व वरणम्—

यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ तथा सर्वान्तरयामी हैं, तथापि उन परम प्रभु का यह नियम है कि—जब शरणागत व्यक्ति प्रभु से अपनी रक्षार्थ प्रार्थना करे कि—हे नाथ ! मैं असमर्थ दास हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। मुझे अमुक दुख है, आप कृपा करके इस दुख से मेरा उद्धार कीजिये। यथा—

संसारसागरान्नाथौ, पुत्र-मित्र-गृहाकुलात् । गोप्तारौ मे दयासिन्धू, प्रपन्न भयभंजनम् ॥ इत्यनेन विषय वैराग्यमुक्तम्, संसारसागरात्गोप्तारावित्यनेन गोप्तत्ववरणेन संसारान्मुक्तिर्याचिता; प्रपन्न भयभंजनावित्यनेनाभयप्रदानत्वं ज्ञापितम् ॥ (रहस्यत्रय श्री हरिदास भाष्य)

इसमें "संसार सागर से पार होने के लिये और विषयों से उत्तम वैराग्य प्रदान करने के लिये तथा अभय प्रदानत्व एवं मुक्ति के लिये स्पष्ट निवेदन है। श्री गोस्वामी जी ने भी कहा है, यथा—"दास तुलसी सदय हृदय रघुवंश मनि, पाहि कहे काहि कीन्हों न तारन-तरन।" (गी० सु० ४३) पुनः- तेउ सुनि शरण सामुहे आये। सकृत प्रणाम किये अपनाये ॥ रा० रा० अयो० कां० २९९ नो० ॥ और शरणगये प्रभु काहु न त्यागा। विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥ श्रीविभीषण शरणागति

के समस प्रभु ने स्वयं भी कहा है कि—कोटि विप्रबध लागै जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥ सु० कां० ४४ दो० ॥ प्रभु के इन बचनों पर दृढ़ विश्वास करके कि कृपासागर प्रभु हमारी रक्षा अवश्य ही करेंगे, शरणागति स्वीकार कराने की प्रार्थना करनी चाहिये ॥

५– आत्म-निक्षेप––

अपने परम सुहृद सर्व समर्थ स्वामी श्री राम जी को अपना शरीर एवं इसके सम्बन्ध की सम्पत्ति का अर्पण करना पाँचवीं शरणागति है । यथा—'ममनाथ ! यदस्ति योऽस्म्हं सकलं तद्धि तथैव माधवः ! । नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथवा किन्तु समर्पयामिते ! ॥" (आलमन्दार स्तोत्र ५६) अर्थात् हे माधव ! जो कुछ मेरा कहा जाता है, और जो कुछ मैं हूँ. वह सब तो आपका ही है, मैं दृढ बुद्धि से आपका ही नियत [निश्चित] धन हूँ फिर और मैं आपको क्या सौपूँ । "योऽहं ममास्ति यत्किंचिदिहलोके परत्र च । सत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥" नारद पांचरात्र ॥ अर्थ—जो मैं हूँ, तथा इसलोक और परलोक में जो कुछ मेरा है, उन सबका मैं आपके श्रीचरणों में समर्पण करता हूँ, और जागतिक सभी सम्बन्धों से भगवान् को ही अपना सम्बन्धी मानकर शरीर रखना भी आत्म-समर्पण है, यथा—पिता त्वं माता त्वं दयिततनस्त्वं प्रिय-सुहृत्त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरसि गतिश्चासि जगताम । त्वदीयस्त्व द्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं, प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तथैवास्मि हि भरः"॥ [आलमन्दार स्तोत्र ६३] अर्थात् हे करुणानिधान ! आपही जगत के पिता माता, स्त्री, पुत्र, प्रिय मित्र, प्रिय सुहृद् गुरु और आश्रय हैं । मैं भी आपका ही सेवक कुटुम्ब आश्रित और शरणागत हूँ । ऐसा होने से मैं आपके द्वारा पोष्य हूँ । यथा:–गुरुपितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पति आहू ॥ जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतिति निगम निजगाई ॥ मेरे सबै एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तर यामी ॥ रा० च० मा० अयो० कां० ७२ दो० ॥

६– कार्पण्य—

पाँचवी शरणागति में जो आत्म समर्पण किया गया है, उस पर यह भाव न आ जाये कि- मैंने प्रभु को कुछ विशेष बस्तु दी है, इसलिये अभिमान न होने के लिये ही कार्पण्यता का प्रयोजन है, कि- इस दीन हीन सभी गुण रहित मलीन शरीर को समर्पण कर इसका उद्धार चाहता हूँ । कृपया इसको स्वीकार कीजिये । यथा––

"अहमस्म्यपराधानामालस्त्यक्तसाधनः । अगतिश्च ततो नाथौ भवन्त मेव

मे गतिः ॥ "अहमस्म्यपराधानामालय इत्यनेन शरणागतेः स्वरूपमुक्तम् । तदुक्तमभियुक्तैः- स्वापराधोक्ति पूर्वं यत्स्वात्मसात्त्वस्य प्रार्थनम् । स्वरूपं शरणापत्तिरित्युक्तं सात्वतैः खलु" ॥ (रहस्यत्रय श्री हरिदास भाष्यम्)

अर्थ—हे श्री सीताराम जी ! मैं साधन रहित और पापों का स्थान हूँ। इससे गति शून्य हूँ । आप दोनों ही हमारी गति हों अर्थात् मुझे आश्रय दें । मैं अपराधों का स्थान हूँ । इस बचन से शरणागति का स्वरूप कहा गया है । तत्त्वज्ञ पुरुषों ने इसी को शरणागति कहा है । अपने अपराधों को कह कर आत्म समर्पण करना और "मुझे अपने आधीन कीजिये" ऐसी प्रार्थना को शरणागति का स्वरूप कहा जाता है । श्री बिभीषण जी ने शरण आते समय कहा था कि-नाथ दशानन कर मैं भ्राता । निश्चर वंश जनम सुर त्राता ॥ सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहिं तम पर नेहा ॥ श्रवण सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर । त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुवीर ॥ तब—'दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज विशाल गहि हृदय लगावा ॥ (सुं० कां० ४५-४६) और श्री गोस्वामी जी ने भी वि० प० ६५-६६ तथा १५० पद में अपनी कार्पण्यता कही है । अन्यान्य महात्पुरुषों ने भी कहा है कि—"अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे । अगतिं शरणागतं हरे ! कृपया केवलमात्मसात्कुरु" ॥ (आलमन्दर स्तोत्र ५१) अर्थ—मैं हजारों अपराधों का स्थान हूँ, और भयंकर भव सागर के उदर में पड़ा हूँ । अतः हे हरे ! मुझ आश्रय रहित शरणागत को केवल अपनी कृपा से अपनाइये ॥ शरणागति के छै भेदों का संकेत किया गया है । विशेष जिज्ञासुओं को श्री वैष्णव मताब्जभास्कर और प्रपत्तिरहस्य गतिबोध दीक्षा पद्धति इत्यादि पुस्तकें देखना चाहिये ॥

प्रपत्ति में पुरुषकारत्व--श्री राम जी के हृदय में कृपा गुण का उद्दीपन कर जीवों के दोष क्षमा कराकर प्रभु श्री राम जी से उनका सम्बन्ध दृढ करने से श्रीजानकी जी पुरुषकार स्वरूप कही जाती हैं । श्री राम जी में उपायत्व और श्री जानकी जी में पुरुषकारत्व (घटकत्व) असाधारण गुण हैं । नोट- जीवों पर वात्सल्याधिक्य से श्री जानकी जी पुरुषकारत्व करती हैं । और फिर श्री राम जी के साथ उपायोपेय भी रहती हैं । आचार्यवर जगतगुरु अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी ने लिखा है कि--

"सर्वाधीशेश्वरप्राप्तिर्हेतुस्तत्राभिधीयते । सीतापुरुषकारार्थं श्रीत्यनेन पदेन तु ॥ मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते ॥" (वै० म० भास्कर)

अर्थ--मन्त्रद्वय के प्रथम वाक्य मैं स्थित श्री पद से समस्त पदार्थों के स्वामी भगवान् श्री राम जी की प्राप्ति के कारण रूपी, पुरुषकार-प्रयोजन वाली श्री सीता जीका वर्णन किया गया है। श्रीमत् इसपदमें श्रीपद के आगे जो मतुप् प्रत्ययका मत्' पद है, उससे पुरुषकाररूपी श्री सीता जी का उससे आगे "रामचन्द्र" पद वाच्य स्वामी श्री राम जी से नित्य सम्बन्ध कहा गया है। ऐसा ही अन्यत्र भी प्रमाण है। यथा--"अनन्या राघवेणा हं भास्करेण प्रभा यथा" (वाल्मी० ५।२१।१५) ये श्री जानकी जी के वचन हैं। इसी प्रकार श्री राम जी ने भी कहा है कि--"अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा" (वा० रा० ।) उक्त दोनों श्लोकों में परस्पर श्री सीताराम जी का अखण्ड एकरस नित्य सम्बन्ध कहा गया है । श्री जानकी जी के पुरुषकारत्व (घटयितृत्व) की रीति का अभियुक्तों ने इस प्रकार वर्णन किया है। यथा--'पत्येव त्वत्प्रेयान जननि परिपूर्णागसि जने हित श्रोतो वृत्या भवति च कदा-चित्कलुषधीः । किमे तन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितैरुपायै विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः" । (श्री गुणरत्नकोष श्री भट्टार्य स्वामी कृत) अर्थ--हे माता ! परिपूर्ण पापी (महान पापी) जीव के विषय में हित करने की वृत्ति से पिता के समान आपके स्वामी जब कभी कुपित होते हैं । उस समय आप 'यह क्या हुआ" इस जगत में अपराध रहित कौन !' एवमादि उचित उपायों से जीव के अपराधों को प्रभु के चित्त से भुलाकर इसे अपनाती हैं। इस कारण से आप हम लोगों की माता होती हैं॥ अपना ही अपराध करने वाले जयन्त की शरणागति के प्रसंग में कहा गया है कि--

"पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसंतदा । तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥ प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम् । त्राहि त्राहीत भर्त्तारमुवाच दयया विभुम् ॥ तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः । ररक्ष रामो गुणवान्वायसं दययैक्षत" ॥ पद्मपुराण

अर्थ--श्री जानकी जी ने आगे पड़े हुये काक (जयन्त) के शिर को श्री राम जी के चरणों में लगा दिया । और प्राणों से भयभीत कौए को देख कर दया करके अपने स्वामी से कहा कि--इसकी रक्षा कीजिये । तब कृपा निधान परम प्रभु श्री राम जी ने उस कौए को अपने हाथ से उठाकर दया दृष्टि की वृष्टि से रक्षा की। यद्यपि जयन्त ने श्री जानकी जी का ही अपराध किया था, उसी कारण श्री राम जी ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भी कर दिया था । तथापि श्री जानकी जी ने अपने

स्वामी को समझाकर उसकी रक्षा करवाई है। श्री जानकी जी को अनुकूल करने के लिये किसी साधन की भी आवश्यकता नहीं है। माता को अपनी सन्तान पर स्वाभाविक दया होती है। वैसे ही श्री जानकी जी भी अहेतुकी दया करके सभी जीवों की रक्षा करने वाली हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने मुमुक्षु के प्रति दो क्रियायें रख दी हैं। कि—"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रजः।" सभी उपायों को त्याग करना और उनकी शरण होना। इन दो क्रियायों को मुमुक्ष करे, तब उनकी कृपा उस पर होगी। श्रीराम जी की प्रतिज्ञा में भी "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते"। इसके अनुसार दीन होकर मैं आपका हूँ, ऐसा कहे यह एक क्रिया रख दी गई है। परन्तु श्री जानकी जी ने किसी भी क्रिया की अपेक्षा नहीं राखी है। लंका में जब राक्षसियों ने अपने कुकृत्य से डर कर यह निश्चित किया कि—"प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा। अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥" अर्थ—श्री जानकी जी तो केवल प्रणाम एवं नम्रता से ही प्रसन्न हो जाती हैं। और ये ही राक्षसियों की महान् भय से रक्षा कर सकती हैं। वहाँ उन राक्षसियों के विना प्रणाम या प्रार्थना किये ही श्री जानकी जी ने कह दिया कि——"भवेवं शरणं तु वः॥" (वाल्मी० रा० ५ २७।३६,३७) अर्थात् मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी। फिर रावण बध के पश्चात् जब श्रीराम विजय का समाचार सुना कर श्री जानकी जी को प्रसन्न जानकर श्री हनुमान जी ने यह निवेदन किया कि—इन राक्षसियों ने आपको नाना प्रकार जे वहुत दुख दिया है। अतएव मैं इनका चित्रवध करूँगा। इस पर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को समझाते हुये कहा कि—" न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयोरक्षितव्यस्तु संतश्चारित्र भूषणः॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥" (वा० रा० ६।११३।४२,४३) अर्थ—पापियों के पापों की ओर धर्मात्मा पुरुष ध्यान नहीं देते, इस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये। क्यों कि सच्चरित्र ही सन्तों का भूषण है, पापी हो, पुण्यात्मा हो और चाहे वह वध करने के योग्य क्यों न हो, सज्जनों को उस पर दया ही करनी चाहिये। क्यों कि ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो। श्री जानकी जी के इस निर्हेतु वात्सल्य स्वभाव पर मुग्ध होकर श्री भट्टार्य स्वामी ने कहा कि—

"मातर्मैथिली ! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया। रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्यगोष्ठी कृता॥ काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः। सानः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी"॥ (श्री गुण रत्न कोष)

हे माता ! हे मैथिली जी ! तात्कालिक अपराध करने वाली राक्षसियों की श्रीहनुमानजी से रक्षा करने वाली आपकी कृपा ने "मैं आपकी शरण हूँ" ऐसा वचन कहकर प्रणाम करने वाले शरणागत जयन्त और विभीषण की रक्षा करने वाले श्रीरामजी की कृपा को अत्यन्त लघु सिद्ध कर दिया। वह आपकी निर्हेतुकी कृपा अत्यन्त पापी हम जैसे आश्रितों को सुखी करे। अपना ही घोर अपराधी जयन्त की रक्षा श्रीरामजी से और महान् दुखदाई—राक्षसियों की रक्षा श्रीहनुमानजी से करवाई है। जब इनके लिये भी आपके हृदय में इतनी दया थी, जो कि तुरन्त वध कर देने योग्य थे। तब और प्राणियों के प्रति तो कहना ही क्या है ! अतः श्रीजानकी जी की कृपा अत्यन्त सुलभ है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीजानकीजी को पुरुषकारत्व के लिए वरण किया है। यथा—कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मेरिऔसुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ॥ हे माँ मैं तो—दीन, सबअंगहीन, छीन, मलीन; अघी अघाइ। नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासो दास कहाइ॥ बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दशा जनाइ। सुनतरामकृपालु के मेरी विगरियौं बनि जाइ। जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ। तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुण गण गाइ॥ (वि० प० ४१) और ४२ पद भी द्रष्टव्य है॥ और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में प्रथम श्रीलक्ष्मणजी की शरणागति है, उन्होंने श्रीजानकीजी के पुरुषकारत्व का मर्म प्रगट किया है। यथा—स भ्रातुश्चरणौ गाढ़ं निपीड्य रघुनन्दनः 'सीतामुवाचातिशयां राघवं च महाव्रतम्॥" (बा० रा० २। ३१-२) अर्थात् श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के दोनों चरणों कों बड़े जोर से कसकर पकड़लिथा और अत्यन्त यशस्वनी श्रीसीताजी तथा महाव्रतधारी श्रीरामजी से कहा। यहां "सातामुवाचातिशयाम्" इस पद को प्रथम देकर महर्षि ने प्रगट कर दिया है कि अनन्त जीवों को भगवत्सन्मुख कराके यश प्राप्त किये हुईं श्रीसीताजी से कहा। उन्हें अपनी प्रपत्ति [शरणगति] में पुरुषकार रूप में वरण किया उनकी सहायता प्राप्त करके तब 'राघवं च महाव्रतम्। इस पद के अनुसार श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीरामजी की शरणागति की है॥

नोट—शरणागत चेतन भगवत्परतन्त्र है। यदि भूल से अपने को स्वतन्त्र मान ले, और शरणागति के विपरीत अन्य देवान्तरों या साधनों के उपायान्तरों के फल की भावना हो जाये तो शरणागति खण्डित हो जाती है। उसके प्रायश्चित रूप में भी पुनः भगवत्शरणागति ही करे। अन्य उपायों से शरणागति की स्वीकृति नहीं होती है। केवल पश्चात्ताप पूर्वक अपनी भूल मानकर भगवत्शरणागति की ही याचना करे। एक बात का और भी ध्यान रखना अनिवार्य है, वह यह कि—

संसार से मुक्ति एकमात्र भगवत्शरणागति स्वीकार करने पर ही होती है। किसी भी देवी या देवता की शरणागति होने से मुक्ति का लाभ होना असम्भव है। हां लोक वैभव प्रतिष्ठा यश, कीर्ति या स्वर्ग का साम्राज्य तक मिल सकता है मुक्ति नहीं। अस्तु मुक्ति की कामना वाले साधकों को भगवत्शरणागति ही करनी चाहिए। यद्यपि सनातनधर्म में देवी, दुर्गा, गणेश, सूर्य, शिव ब्रह्मा इन्द्रादि अनेक देवताओं की पूजा शास्त्र सम्मत होती आरही है। होनी भी चाहिए। जिसको लोक वैभव ही चाहिये शारीरिक सुखस्वाद की ही आवश्यकता है, वह भगवतआराधन न भी करके देवाराधन ही करे तो भी सभी मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं। किन्तु देवाराधन के द्वारा मुक्ति प्राप्ति करने का स्वप्न देखना केवल भ्रम मात्र है। और भगवान् श्रीहरिका भजन करने पर लोक वैभव तथा शरीरान्त होने पर भगवद्धाम की प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्र प्रमाण है। यथा—"श्रीरामरामेति ये जना जपन्ति च सर्वदा। तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ (श्रीराम स्तवराज स्तोत्र श्लोक ६) इसलिए जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिए एकमात्र भगवत्शरणागति ही उपयुक्त है ॥

ध्यान रहे कि भगवत्मन्त्र व्यापक होते हैं, अन्य देवी देवताओं के मन्त्र व्यापक नहीं होते। क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्वत्र व्यापक हैं। व्यापक मन्त्र ही मुक्ति प्रद होते हैं, देवी देवताओं के अव्यापक मन्त्रों से मुक्ति का लाम नहीं होपाता। अस्तु शरणागति तो भगवान् श्रीहरि की ही उभय वैभव प्रदाता है। अन्य की नहीं ॥ देवता तो जीव हैं, जीव को मुक्ति प्रदान का अधिकार नहीं है। चेतनों को संसार चक्र से मुक्त करना ब्रह्म का कार्य है, देवताओं का नहीं। यथा—

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इहचाख्यापकानान्तुमध्ये । ऽतिश्रेष्ठों व्यापकः स श्रुति मुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः ॥ नित्यानामाश्रयोऽयं परित उरुशुभो राममन्त्र प्रधानः । प्रायश्च प्रापकोऽपि प्रचुरतर गुण ज्ञान शक्त्यादि कानाम् ॥ (श्रीवैष्णव मताब्ज भास्करः ११)

अर्थ—मन्त्र दो प्रकार के होते है। व्यापक और अव्यापक। भगवत् (ब्रह्म) के मन्त्र व्यापक और देवी देवताओं के मन्त्र अव्यापक होते हैं। क्योंकि ईश्वर ही सर्व व्यापक है। देवता नहीं। अव्यापक मन्त्र प्रवृत्तात्मक और व्यापक मन्त्र निवृत्तात्मक हैं। सर्व विश्वात्मकं विष्णु सर्वलोकैक कारणम्। ३४ (नारदीय पुराण

पूर्वखण्ड अ० ३७) और "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । गीता अ० १८ का ६१॥" पुनः—"सर्वभूतस्थितो यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । गीता अ० ६ का ३१" विशेष जानना हो तो बलिदान निषेध पुस्तक के पृ० ६ पंक्ति १२ से और देवी बलि पाखण्ड पृ० ४८-४९ देखिए । जीव का उद्धार जीव के मन्त्र जपने से न होगा । भगवत्मन्त्र जप से कल्याण होगा । राम ब्रह्म व्यापक जगजाना । परमानन्द परेश पुराना ॥ मा० रा० बां० कां० ११६ दो० ॥ और बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ॥ और भी—जासुनाम सुमिरत एकबारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥ अयो० का० १०१ दो० ॥ व्यापक मन्त्रों का भी व्यापक वेद एवं मुनि सम्मत श्रेष्टजनों से गृहीत नित्य और प्रचुर तर गुण ज्ञान एवं शक्त्यादिका आश्रय एवं प्रापक परम शुभ सभी व्यापक मन्त्रों से प्रधान जो षडाक्षर श्रीराम मन्त्र है, यह आचार्य (गुरु) से प्राप्त करने योग्य है । भगवत्मन्त्र गौण और प्रधान दो प्रकार के होते हैं। भगवान के २४ अवतार हैं, उनमें श्रीरामजी श्रीकृष्ण दो अवतारों के ही मन्त्र प्रधान हैं। अन्य गौण हैं । यद्यपि प्रभु के सभी नाम व मन्त्रों में जीव को उद्धार करने की पूर्ण शक्ति निहित-समाविष्ट है, तथापि-रामसकल नामन ते अधिका । होहु नाथ अघ खग गन बधिका ॥ राका रजनी भक्ति तव राम नाम सोइ सोम । अपर नाम उडगन विमल बसहु भगत उर व्योम ॥ अ० कां० ४२ दो० ॥ अर्थात् परशुराम नरसिंह कच्छ मच्छ बाराहादि अवतारों के मन्त्रों के प्रचार की प्रथा नहीं हैं, इन्हें गौण माना गया है । इसलिये मुमुक्षु को श्रीराम, कृष्ण नारायण मन्त्र लेकर भजन करके कल्याण पथारूढ़ होना चाहिये ॥

सभी भगवत् मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र ही सर्व श्रेष्ठ है, यथा—सर्वेषामेव मन्त्राणाँ राममन्त्रः परः स्मृतः ॥२२॥ बाल्मीकि सं० अ० ५ ॥ गति बोध पृ० २ ५ ॥ षडाक्षर श्रीराम मन्त्र को मन्त्र कहा जाता है । अगस्त संहिता अ० १९-श्लो० ३-४ में कहा गया है कि—षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघ निवारणः ॥३ और-मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥४॥ यद्यपि दुर्गा, सूर्य, शिव, गणेश इन सभी की उपासना भी की जाती है । करनी चाहिये भी । इन सब की उपासना करने पर भी रोग व्याधि दुख दूर होते हैं, और अनेक प्रकार का वरिष्ठ वैभव भी प्राप्त होता है तथापि मुक्ति की कामना वालों को एकमात्र भगवत् शरणागति ही करनी चाहिये । क्योंकि सभी देवी देवताओं को भगवान् की कृपा से ही सामर्थ प्राप्त हुई है । सारा संसार जानता है—कि श्रीशिवजी भगवान् श्रीरामजी के उपासक परम प्रिय भक्त हैं । श्रीरामनाम के बल से काशी में मरने वाले जीवों को मुक्ति प्रदान करते हैं ।

यथा—जासु नाम बल शंकर काशी । देत सबहिं समगति अविनासी ॥ अ० कां० १० दो० ॥ श्री शिव जी ने स्वयं ही कहा है कि—काशी मरत जंतु अवलोकी । जासुनाम बलकरौं विशोकी ॥ सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुवर सब उर अन्तर यामी ॥ बा० कां० ११६ ॥ गणेश जी भी—महिमा जासु जान गण राऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥ श्री राम नाम की कृपा से ही प्रथम पूज्यनीय हुये हैं । उ० कां० ६१ वे दोहा में बताया है कि—रामकामसत कोटि सुभगतन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥ और—मरुत कोटि सत विपुल बल रविसत कोटि प्रकाश । शशि सत कोटि सुशीतल शमन सकल भव पाश ॥ ६१ ॥ अब विचार कीजिये कि सबसे श्रेष्ठ परमाराध्य कौन है । तब कहना ही पड़ेगा कि भगवान् श्री हरि ही सर्वाराध्य और सर्व शरण्य हैं । अस्तु जीव मात्र को भगवान् श्री सीताराम जी के शरणापन्न होकर ही परम शान्ति मिलना संभव है । देवी देवताओं की उपासना से नहीं । भगवान् श्री सीताराम जी कीउपासना बहुत प्रकार से होती है, उनमें से कुछ विधि ये हैं । थया-मणि विग्रह अथवा अष्टधातु निर्मित भगवत मूर्ति की वैदिक विधि से प्रतिष्ठा करके उन मूर्तियों को साक्षात् भगवान् के भाव से सेवा पूजा की जाती है । कुछ भक्त ब्राह्मणों के सुन्दर सुशील बालकों को श्री सीताराम जी के स्वरूप में शृंगार करके सविधि प्रतिष्ठित करके भगवत् भाव से उपासना करते हैं । कुछ भक्त सालिग्राम की मूर्ति का पूजन करते हैं कोई कोई भक्त श्री सीताराम जी के चित्र में ही भावना पूर्वक उपासना करते हैं । कुछ भक्त मानसी भावना के द्वारा ही उपासना करते हैं । वे प्रत्यक्ष में तो कुछ भी करते नहीं दीखते, किन्तु उनके भावमें भगवान् अपने पार्षदों समेत अहर्निशि अनेक ललित लीलायें करते ही रहते हैं । इसको अष्टयाम सेवा कहा जाता है । अष्टयाम सेवा सद्गुरु कृपा से ही प्राप्त होती है । वास्तव में जब तक साधक का मन भगवान् की अष्टयाम सेवामें नहीं लगता है, तब तक मंत्र या नामजप-काल में मन संसार में घूमता ही रहता है । किन्तु भगवान् की सेवा करने वाले भक्त के मन को इतना अधिक रस प्राप्त होता है कि उसे उतना रस संसार में अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता, तब हार मान कर शान्त रहता है, व्यर्थ चिंतवन नहीं करता है । ऐसीं महान निधि श्री गुरु कृपा से ही मिलती है, अस्तु किंचित रूप में गुरु महिमा का विचार कर लिया जाये ॥

गुरु शुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयम् ॥ ३८ (देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० ३)

अर्थ—गुरु सेवा का पुण्य यह है कि वह अक्षय गति (मोक्ष) पाता है ॥ और—"आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः" ॥ ३० ॥ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० ७ ॥ आचार्य

(गुरु) ब्रह्म की मूर्ति है । "गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टि भोजनम् । गुरोर्मूर्तेः सदाध्यानं गुरोर्मन्त्रं सदा जपेत्" ॥ ५ ॥ वृहद्वैष्णव पद्धति पत्र ६ । सर्वदा गुरु का चरणामृत पीना चाहिये । गुरु के भोजन पा चुकने के वाद गुरुके पाये हुये पदार्थों में बचा हुआ प्रसाद पावै, गुरु की मूर्ति का सदा ध्यान करे । और गुरु का दिया हुआ मन्त्र नित्य नियम से जपना चाहिये ॥ पुनः—

ये चाश्नन्ति गुरुत्सृष्ट भावेन भक्तितः सदा । ते तु वाह्यान्तरः पूतास्तरन्ति भवसागरम् ॥ १३ ॥ श्री गुरोर्भुक्त शेषं तु प्रथमं यो भुनक्ति वै । पश्चाद्धरि प्रसादं च महापुण्यं प्रजायते ॥ १६ ॥ अमर रामायण सर्ग ५३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ति भाव से सदा गुरु का पाया शेष प्रसाद पाते हैं । वे वाहर भीतर पवित्र होकर भवसागर को तर जाते हैं ॥ १३ ॥ जो भक्त प्रथम गुरु का पाया हुआ शेष प्रसाद पाता है, और पश्चात् भगवत् प्रसाद पाता है, वह महा-पुण्य (मोक्ष फल) को प्राप्त करता है । "आचार्य प्रसादस्य च सर्वसिद्धि हेतुत्वं ॥ १ ॥ 'चतुश्श्लोकी' स्तोत्र रत्नञ्च (आलवंदार स्तोत्र) श्लोक ११ के भाष्यान्तर-गत वोधायनीय पुराण सार समुच्चय का बचन ॥ आचार्य अर्थात् गुरु का प्रसाद पाना सर्व सिद्धियों का कारण है । (आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः । शंखस्मृति अ० १ श्लो० ७ ॥ और-पिता त्वाचार्य उच्चते । वशिष्ठ स्मृति अ० २-पंक्ति ३) वराहोपनिषद् अ० २ के श्लो० ७६ में लिखा है कि—दुर्लभो विषयात्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम् । दुर्लभा सहजा वस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ अर्थ—श्री गुरु कृपा के विना यह तीन वस्तुयें दुर्लभ हैं । विषय त्याग-तत्त्वज्ञान-और सहजावस्था । तत्वदर्शन के पर्यायवाची, तत्व-ज्ञान' आत्मज्ञान, इनका आधार तत्वयत्र-प्रकृति (माया) जीव और ब्रह्म के स्वरूप को जानना ॥ तुलसीदास हरि गुरु करुणा विन विमल विवेक न होई । विन विवेक संसार घोरनिंधि पार न पावै कोई ॥ (वि० प० ११५) गति वो० पृ० २३४ से २३७ तक । ध्यान दीजिये कि—वृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे । अविद्याग्रस्त हृदयः कथं तारयितुं क्षमः ॥ ४३ ॥ रोग ग्रस्तो यथा वैद्यः पर रोग चिकित्सकः । तथा गुरुर्मुमुक्षुर्में गृहस्थोऽयं विडम्वनः ॥ ४४ ॥ देवी भागवत स्कन्ध १ अ० १४ ॥ अर्थ—श्री शुकदेव जी कहते हैं कि—हमको बृहस्पति गुरु प्राप्त हुये हैं, वह गृहरूपी सागर में मग्न रहते हैं । अविद्या से ग्रस्त हृदय होने के कारण कैसे तार सकते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे रोग ग्रस्त वैद्य दूसरे कि रोग की चिकित्सा नहीं कर सकता है, वैसे ही गृहस्थ गुरु मुमुक्षु को संसार सागर से कैसे तारेगा । इसलिये गृहस्थ गुरु बनाना विडम्वना मात्र है ॥ ४४ ॥ ग० वो० पृ० २४४ ॥ गुरुष्वीश्वर भावनः । ३२ । श्रीमद्भागवत

स्कन्ध ७ अ० ४ । गुरु में ईश्वर भावना दृष्टि राखै ॥ ३२ ॥ नास्तितीर्थं गुरु समं बन्धच्छेद करं द्विजः । ५० । पद्म पु० भूमि खं० अ० १२३ आनन्द आश्रम प्रेस पूना से प्रकाशित । अर्थ—हे ब्राह्मण ! गुरु के समान कोई भी तीर्थ नहीं है क्यों कि गुरु भवबन्धन को काट देते हैं । तीर्थों में स्नान करने पर पुण्य तो होती है, परन्तु भव बन्धन नहीं मिट सकता है । ग० वो० पृ० २४६ ॥ गुरुदेव वन्धुर्गुरुरेव परागतिः । अनादि माया संसारद्यस्तारयति दुस्तरात् ॥ १७ ॥ प्रपन्नामृत अ० ११८ ॥ अर्थ—गुरु ही परमगति हैं । क्योंकि अत्यन्त दुस्तर अनादि मायारचित संसार से जो तार देते हैं । श्री मद्भा० स्कन्ध ६ अ० ७ श्लोक २४ में बताया है कि—गुरो प्रसाद मासाद्य न किंचिद्दुर्लभम् ॥ अर्थात् सद्गुरु की प्रसन्नता से मनुष्यों कोकुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ पुनः स्कन्ध ११ अ० १७ के श्लो० २७ में कहा है कि—आशार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्य बुद्धयाऽसूयेत सर्व देव मयो गुरुः ॥ अर्थ—श्री कृष्ण जी ने ऊध्व से कहा कि—आचार्य (गुरु) को मेरा स्वरूप जानकर सेवा करे । और कभी आज्ञा का उलंघन न करे । कभी भी गुरु में मनुष्य बुद्धि न करे, क्यों कि संपूर्ण देवता गुरु में बसते हैं । नोट—शिष्यों को गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये । किन्तु गुरुजनों को भी उचित है कि—शिष्य की बृत्ति के अनुसार विचार कर आज्ञा देवैं । तभी शास्त्रीय आज्ञा का पालन शिष्य कर पायेगा, अन्यथा विना विचारे आज्ञा देने पर शिष्य की वृत्ति के विपरीत पड़ने पर वह पालन कर ही कैसे पायेगा । तव गुरु के मन में मेरी आज्ञा नहीं मानता है ऐसा दुख होगा, और शिष्य का भी धर्म नष्ट होगा । वर्तमान परिस्थिति में देखा जाता है कि—कोई नवीन शिष्य वनता है, उस समय वह तो संसार से अकुलाकर आया है, इसलिये अनाशक्त होकर भजन करना चाहता है, गुरुजन स्थानीय व्यवस्था करने में लगाने की चेष्टा करते हैं, परिणाम होता है कि—वह आज्ञा का पालन नहीं कर पाता है तब गुरु लोग उसे भला बुरा कहते हैं, आलसी या मन मुखी वताते हैं । यह ठीक नहीं है, जिसकी वृत्ति शान शौकत में लगती हो, उसे स्थानीय भार वहन की व्यवस्था का व्ववस्थापक वनाना तो ठीक है किन्तु जो शिष्य ब्यवहार से अरुचि रखता हो ऐसे व्यक्ति को व्यवहार में प्रवृत्त होने वाली आज्ञा देना गुरु स्वरूप के अनुकूल नहीं है । पुनः श्री मद्भा० स्कन्ध ११ अ० १७ के २६ वे श्लोक में कहा है कि—शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् । यानशय्या सनस्थानैर्नाति दूरेकृतांजलि : ॥ अर्थ—जैसे न्युनवर्ग के लोग सावधानी पूर्वक अपने स्वामी की सेवा करते हैं । उसी प्रकार सचेत होकर गुरु की सभी सेवा करे । उनकी सवारी, विछौना, आसन स्थान से न बहुत दूर रहे न वहुत निकट रहे ।

सर्वदा हाथ जोड़ कर विनम्र स्वभाव से बात करे । नोट—इस श्लोक में कहा गया है कि गुरु की सभी सेवा करे । आजकल सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति की वृत्ति बिगड़ गई है । वह अपने किसी लघु वयसक शिष्य एवं शिष्या के साथ विषया वृत्ति परायण हो गया है । यद्यपि यह बात अपवाद स्वरूप है. गुरुओं की प्रतिष्ठा मिटाने के लिये जनता में अश्रद्धा करने के लिये भगवत विमुखों के द्वारा यत्र तत्र फैलाई जाती है तथापि इस विषय में विचारना यह है कि-गुरु शिष्य का सम्बन्ध परम पावन एवं भगवत्प्राप्ति के लिये ही है । उसमें ऐसी दुर्गन्ध की स्वप्न में भी आवश्यकता नहीं है । फिरभी कलिकाल की लीलाहै जो भी हो जाय वही थोड़ा है। अस्तु पाठकों से निवेदन है कि—सभी सेवा का तात्पर्य यह नहीं है कि गुरु के साथ विषय की भावना की जाये । गुरु के सत्संग से तो विषय से विमुक्त होने वाली युक्ति सीखनी है । तब उनके साथ विषय की भावना के लिये कोई स्थान ही नहीं है । यदि गुरु की वृत्ति बिगड़ गई हो और अपनी शिष्या को अपने साथ रमण की चर्चा करे संकेत से जनावे, तो उस शिष्या का परम कर्तव्य है कि वह उस समय गुरु के सामने से हट जाये, ऐसा भय न माने कि गुरु आज्ञा न मानेगे तो हमारा धर्म नष्ट हो जायेगा । सुना जाता है कि कुछ महिलायें तो अरुचि रखते हुये भी धर्म संकट में पडकर गुरु की रुचि का पालन करतीं हैं । ऐसा करना उचित नहीं है, विषय वासना की रुचि का पालन करने में ही गुरु शिष्य दोनों का धर्म नष्ट होगा। न मानने में धर्म ही होगा अधर्म नहीं । अस्तु बहिनों को चाहिये कि ऐसे व्यक्ति से गुरु शिष्यता का सम्बन्ध ही न जोड़े, जो चरित्र हीन हो, यदि भूल से सम्बन्ध स्थापित हो गया हो, और यह सत्य रूप में जान लिया हो कि गुरु का मेरे प्रति अनुचित भाव है । वह उस गुरु से निसंकोच सम्बन्ध विच्छेद कर दे । उनसे कुछ भी व्यवहार न करे । अन्य किसी योग्य महान पुरुष के सत्संग से लाभ उठावे । किन्तु ऐसा कार्य विचार कर करे । किसी के वह कहने (फुसलाने) से गुरु का परित्याग न कर दे । इस पर यदि कोई ऐसा कहे कि- गुरु भी शिष्या के साथ विषय की भावना यदि करने लगे हैं, तो फिर स्त्री किसी को गुरु ही न बनावे, तो यह आपत्ति न आयेगी यह भी उचित नहीं है । क्यों कि कभी कभी सुनने को मिलता है कि अमुक गाँव या नगर में अमुक व्यक्ति अपनी लड़की के साथ कहीं बहिन के साथ कहीं चाची मामी भाभी इत्यादि के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है। तब तो उस देश की बहिन बेटियों को उचित है कि अपने पिता एवं भाइयोंसे भी व्यवहार न करें । नहीं उनका धर्म नष्ट हो जायेगा । तब भी सृष्टि का व्यवहार सुचारु रूप से नहीं चल सकता है । इसी

प्रकार सभी गुरु विषयी नहीं होते हैं। हजार दो हजार में यदि एक ऐसा पतित हो भी तो उसकी कुछ भी गिनती नहीं है। अच्छे और खराब व्यक्ति सभी देश एवं सभी समाजों में हैं। इसलिये किसी एक व्यक्ति के अपराध पर समस्त समाज को पाखण्डी या बिषई मानना भारी भूल है। इसलिये कहावत प्रसिद्ध है कि—पानी पीजै छान के-गुरु कीजै जान के ।। यह तो सर्वथा सत्य है कि—सद्गुरु की कृपा विना आत्मा एवं परमात्मा का ज्ञान नहीं हो पाता है उस ज्ञान के विना कर्तव्य अकर्तव्य का बोध नहीं हो पाता, तब संसार चक्र से मुक्ति कैसे होगी। अस्तु मानव मात्र को भगवत् भजन निष्ठ विषय विमुख परम विरक्त सद्गुरु की कृपा से भक्ति भाव समझ करके भगवत् भजन करना ही परम श्रेयकर है। गति वोध पृ० २४७ ।।

तैजसानि गुरवे दद्यात्। १। स्वगुरोपदेशतः ।। ३५ ।। कठरुद्रोपनिषद् ।। गुरुभक्तिं सदाकुर्याच्छ्रेयसेभूयसे नरः ३० ।। गुरुरेव हरि साक्षात् ।। ३१ ।। ब्रह्मविद्योपनिषद् ।। सकृत् ज्ञानेन मुक्तिः स्यात्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरूः ।। ४३ ।। तेज बिन्दूपनिषद् ।। गुरावीश्वर बुद्धिश्च तदाज्ञा परिपालनम् । स्वेशस्य तज्जनानां च सेवनं मायया विना ।। ४३ ।। श्री हनुमत्संहिता अ० ६ ।।

अर्थ—मनुष्य को तेज गुरु ही देता है। १ ।। उपदेश अपना ही गुरु देता है, जिसे साधक गुरु मानता है, उसके वचनों में श्रद्ध विश्वास होने के कारण अपने ही गुरु का उपदेश अधिकतर लाभ करता है ।। ३५ ।। मनुष्य अपने कल्याण एवं वृद्धि के लिये सर्वदा गुरु की भक्ति (सेवा) करे—गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान ।। अ० कां० ३० दो० ।। गुरु साक्षात् भगवान् श्री हरि के स्वरूप हैं। ३१ ।। किसी भी प्रकार एक बार भी आत्मा परमात्मा का ज्ञान होने पर मुक्ति होती है, और जो गुरु की शरण होकर सर्वदा सत्संग में आत्मतत्व एवं परमात्म तत्व का ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं, वह सहज में ही मुक्त हो जाते हैं ।। ४३ ।। शिष्य गुरु में ईश्वर बुद्धि राखै, उनकी आज्ञा का पालन करै। और निष्कपट भाव से सपरिवार सेवा करे। पुनः—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्माता गुरुः पिता । गुरुर्बन्धुर्गुरुर्मित्रं गुरुरेव सुखप्रदः ।। ४५।। अर्थ—गुरु ब्रह्मा के समान शिष्य के हृदय में मन्त्र देकर भक्ति की सृष्टि करते हैं। गुरु ही विष्णु रूप से सत्संग रूपी सम्वल देकर भरण पोषण करते हैं। और गुरु ही माता के समान वात्सल्य पूर्वक शिष्य को भगवान् से परिचय कराते हैं, कि ये प्रभु ही आपके अपने हैं। जैसे माता अवोध वालक को सिखाती है कि ये आपके पिता हैं। उसी प्रकार गुरु शिष्य का भगवान् से सम्बन्ध कराते हैं। गुरु ही मित्र के समान सच्ची विमर्श की वात वताते हैं कि इसमें आपको लाभ और उस कार्य में हानि होगी,

अस्तु ऐसा ही करो, वैसा कार्य न करो । इस असारसंसार में सत प्रेरणा करके भगवत् पथ पर चलाकर गुरु ही एकमात्र अक्षय सुख (अखण्ड सुख) देनेवाले हैं ।। वाल्मीकि सं० अ० ६ का ४५ वां श्लोक का अर्थ हुआ ।। इसी अध्याय के ४७-४८ श्लोक देखिए ।

रुष्टेसु सर्वदेवेषु रक्षतीहरमापतिः क्रुद्धे रमापती भव गुरुरक्षां करोतिह ।।४७।। कोऽपि रक्षाकरो नास्ति गुरौ संरुष्टतांगते । ततः सर्व प्रयत्नेन प्रसाद्यो गुरुरञ्जसा ।।४८।। नारद पांचरात्रान्तर्गत वा० सं० अ० ६।।

अर्थ—यदि सब देवता अप्रसन्न हो जायें, तो भगवान श्रीहरि रक्षा करसकते हैं । और यदि किसी विशेष अपराध होजाने पर भगवान श्रीहरि भी रूठ जायें, तो गुरु रक्षा कर सकते हैं कारण यह है कि गुरु भगवान् के भक्त हैं, भक्तों की प्रार्थना भगवान् टालने में असमर्थ हैं ।।४७।। और यदि गुरु रूठ जायें, तो कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है । नोट- फिर से पाठक सावधान हो जायें । गुरु का अप्रसन्न होना अनिष्ट का मूल है, तथापि गुरु की प्रसन्नता के लिये आवश्यकर्तव्य ही करना चाहिये । अनावश्यक या अनुचित अकर्तव्य करणीय नहीं हैं । किन सेवा कार्यों के द्वारा गुरु शिष्य का सम्बन्ध पवित्र एवं विशुद्ध बना रहे । वही आज्ञा माननीय हैं । जिन आज्ञों के पालन में गुरु शिष्य दोनों का स्वरूप नष्ट होने या लोकापवाद की सम्भावना हो, वैसी आज्ञा न तो गुरु को देना चाहिए और न शिष्य को मानना ही चाहिये ।।गतिबोध पृ० ४७-४८।। से पुनः—नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसो-पशेन च । तुष्येयं सर्व भूतात्मा गुरु शुश्रूषयाथा ।।३४।। श्रीमद्भा० स्कंध १० अ०८०।। अर्थ—श्रीकृष्णजी श्रीसुदामाजी से कहते हैं कि—मैं सब प्राणियों की आत्मा मैं जैसा गुरु सेवा से प्रसन्न होता हूँ । ऐसा ब्रह्मचर्य पालन, यज्ञ करने, गृहस्थाश्रम; वान-प्रस्थ और सन्यास धर्मों से प्रसन्न नहीं होता ।।४१ वां श्लोक भी द्रष्टव्य है ।।३४।। इसी अध्याय का ४३।। "गुरोरनुग्रहेणैन पुमान्पूर्णः प्रशान्त"।।४३।। अर्थात श्रीगुरु की कृपा से ही मनुष्य भगवत्तत्व का बोध प्राप्त करके पूर्णमनोरथ होकर परमशान्ति (मोक्ष) पाता है ।। और भी देखिए कि—"कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्वाक्यं प्लववद्-दृढम् । अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्" योनशिखोपनिषद् अ० ६ मंत्र ५८।। अनेक वासनाओं के अभ्यास से जकड़ा हुआ जीव इस संसार सागर में अर्थात् बारम्बार जन्म मरन के चक्र में पड़ा है इस कठिन दुख से पार होने के लिये गुरु वाक्य रूपी नौका है, उसके खेने वाले गुरु हैं । इसके अतिरिक्त अन्य उपाय से मुक्त होना सम्भव नहीं है । अतएव सभी को गुरु वरण करके अपना कर्तव्या-

कर्तव्य का और आत्मा परमात्मा का बोध प्राप्त कर भगवत् भक्ति करके मानवता का लाभ उठाना चाहिए ॥ग० बो० पृ० २५०॥

गुरुः साक्षादादि नारायणः पुरुषः ॥ त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् अ० ८ पंक्ति ७१॥ श्रीगुरुदेव साक्षात् आदिनारायण पुरुष के स्वरूप हैं। गुरो त्वमेव देवस्त्वं त्वमेव परमागतिः। त्वमेव परमोधर्मस्त्वमेव परमं तपः ॥ वृद्धहारीतस्मृति अ० ४ श्लोक १८॥ तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥६। नारदीय पु० पू० खं० अ० ३४॥ श्रीगुरुः सर्वकारण भूताशक्तिः ।२॥ भावनोपनिषद् पंक्ति २॥ यदा मुक्तिर्नसन्देहो यदि तुष्टः स्वयं गुरुः ॥२६॥ योगशिखोपनिषद् अ० ६॥ गुरु शुश्रूषयां भक्त्या ॥३०॥ भाग० स्कध ७ अ० ७॥ प्रक्षाल्य चरणौ पात्रे प्राणपात्योपयुज्य च। नित्यं विधिवदर्घ्याद्यै राष्ट्रतोऽभ्यर्चयेद् गुरुम् ॥८६॥ योऽसौ मन्त्रवरं प्रादात्संसारोच्छेद साधनम्। प्रतीच्छेद् गुरुवर्यस्य तस्योच्छिष्टं सु पावनम् ॥६३॥ भरद्वाज सं० अ० ३ ॥ ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ २६॥ प्रपन्नामृत अ० ४२॥ सर्वतीर्थावगाहस्य च प्राप्नोति फलंनरः। गुरोः पादोदकं पीत्वा शेष शिरसिधारयेत् ॥१८॥ गुरुगीता॥

अर्थ– शिष्य गुरु से इसप्रकार प्रार्थना करे कि—हे गुरुदेव ! आप ही हमारे सर्वस्व देवता या ईश्वर हो, आप ही हमारी परमगति हो, आप ही हमारे परमधर्म हैं, और आपही हमारे परम तप हैं ॥१८॥ गुरु के समान कोई तत्त्व नहीं है, और भगवान केशव के समान कोई देवता नहीं है ॥३६॥ गुरु सब कारणों की शक्ति हैं ॥२॥ यदि किसी शिष्य पर उसकी सेवा विनम्रता देखकर उसके विना प्रार्थना किये प्रसन्न हो जायें, तो उस शिष्य की मुक्ति होने में कोई सन्देह नहीं है। इसलिए शिष्यों को गुरु की भावपूर्वक प्रेम से सेवा करना चाहिए ॥२६॥ भगवद्भक्त गुरु सेवा करे। अथवा गुरु की सेवा करने से ही भक्त होता है ॥३०॥ शिष्य को अपने गुरु के पाँव (चरण) किसी थाली इत्यादि पात्र (वर्तन) में धोना चाहिए। पुनः साष्टांग दण्डवत प्रणाम करे और नित्यनियम से विधिपूर्वक अर्घपाद्यादि देकर पूजन करे ॥ ८६॥ नोट—गुरु के चरण पृथ्वी पर धोने से चरणामृत पैर के नीचे पड़ेगा। यह अनुचित है। अस्तु श्रीगुरु के चरणों को पात्र में ही धोना चाहिये ॥ जो गुरु शिष्य को संसार नाशक अर्थात आवागमन को मिटाने वाल, मोक्ष देने वाले श्रेष्ठ मन्त्र रत्न देते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुरुदेव का प्रसाद अन्न (गुरु के पाने के बाद बचा हुआ शेष भोजन) पाने से मनुष्य पवित्र होता है, और भगवान् में भक्ति बढ़ती है।

इसलिये शिष्यों को निसंकोच भाव से गुरु का प्रसाद पाना चाहिये ॥ ६३ ॥ गुरु की मूर्ति ध्यान का मूल है । गुरुदेव के चरण पूजा के मूल हैं । गुरुदेव का वाक्य ही मन्त्रका मूल है। और श्री गुरु कृपा ही मोक्ष का मूल है ॥ २६ ॥ संसार में जितने सब तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने से मनुष्य को जो भी फल मिलता है । वही फल श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रेम से गुरु चरणामृत पीने और मस्तक पर चढ़ाने से होता है ॥ १८ ॥ गति वो० पृ० २५१ से २५४ तक ॥ भवंतीह दरिद्रास्ते पुत्र दार विवर्जिताः । नरकाश्चैव देहान्ते त्रियक्षुप्रभवन्ति ते ॥ २३ ॥ ये गुर्वज्ञां कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः । न तेषां नरकक्लेश निस्तारो मुनिसत्तम ॥ २४ ॥ अगस्त सं० अ० ८ ॥ अर्थ हे मुनि श्रेष्ठ ! जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं, वह पापी हैं और सब मनुष्यों में नीच हैं । वह जीते ही में स्त्री पुत्र से हीन होकर दरिद्री हो जाते हैं। और देहान्त होने पर नरक में जाकर नाना प्रकार के दुख भोगते हैं पुनः जब कभी संसार में जन्म होता है, तो त्रियकयोनि में रहते हैं। २३-२४ ॥ गुरु से द्रोह करने पर अगस्त सं० अ० ८ श्लोक २७ में लिखा है कि—शूकरत्वं भवत्येव तेषां जन्मशतेष्वपि । ये गुरुद्रोहिणो मूढ़ाः सततं पाप कारिणः ॥ २७ ॥ अर्थ—जो शिष्य गुरु से द्रोह करते हैं, वे मरकर नरक जाते हैं, नरक से निकलने पर सौ जन्मों तक शूकर की देह पाते हैं। इसी के प्रथम वाले श्लोक में नरक जाने की चर्चा है ॥

"उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्ट मुच्छिष्टोपहतं च" ॥ १७ ॥ वशिष्ठ स्मृति अ० १४ ॥ अर्थ—गुरु के अतिरिक्त दूसरे का उच्छिष्ट (जूठा) भोजन और अपना भी खाया हुआ उच्छिष्ट पुनः न खावे । पुनः गौतम स्मृति अ० २ के श्लोक में लिखा है कि—नोउच्छिष्टाशन स्नपन प्रसाधन पादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि ॥ अर्थ—गुरु के भोजन करने के बाद गुरु का पाया हुआ प्रसाद पाना, गुरु को स्नान कराना, वस्त्रादि से शृंगार करना, पैर धोना उबटन लगाना. चरणों का स्पर्श करना शिष्य का धर्म है ॥ वेदाभ्यास तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः । अहिंसा गुरु सेवा च निःश्रेयस करं परम् ॥ ८३ ॥ मनुस्मृति अ० १२ ॥ अर्थ—वेद पठन पाठन का अभ्यास १-तपस्या २-ज्ञान ३-कर्मइन्द्रि और ज्ञान इन्द्रिय का संयम ४-अहिंसा ५-गुरु सेवा ६-ये बातें निश्चय ही कल्याण करेंगी ॥ "एकाक्षर प्रदातारं ये गुरुं नाभिनन्दति । तस्य श्रुतं तथा ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ३६ ॥ शाठ्यायनीयोपनिषद्" ॥ अर्थ—एक भी अक्षर देने वाले को जो गुरु नहीं मानता है, उसका शास्त्र पढ़ना वा ज्ञान ऐसे समाप्त हो जाता है, जैसे कि छेद वाले घड़े का पानी निकल जाता है ॥ तब सोचा जाये कि जो गुरु भगवान् का मन्त्र देता है, उपासना रहस्या भजन की विधि बताता है, उसे गुरु न मानना अथवा उसका अनादर-तिरस्कार करने में क्या होगा । अस्तु संसार

से मुक्ति और भगवत्प्राप्ति के इच्छुकों को कुतर्क लज्जा संकोच त्याग कर भगवत् भजननिष्ट विरक्त महत्पुरुषों से पंच संस्कार पूर्वक भगवत् मन्त्र की दीक्षा अविलम्ब लेकर भजन कर जीवन का फल प्राप्त करना चाहिये ।

❋ स्त्री और गुरु ❋

[कल्याण वर्ष ४३ अंक ७ पृ० १०५० द्वितीय कालम पंक्ति १३ से २६ तक जुलाई १६६६ ई०] स्त्री किसी पर पुरुष को अपना गुरु न बनावे । सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्श न करे । उसके लिये तो पति ही सब कुछ है । यथा—पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिगुरुः । प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः [वा० रा० ७।४८।१७] अर्थात् स्त्री के लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु है तथा पति ही गुरु है, अतएव प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिये ॥ पुनः—भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्म तीथ व्रतानि च । तस्माद् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ [स्कन्ध पु० काशी खण्ड ४।४८] पति ही देवता, पति ही गुरु तथा धर्म, तीर्थ और ब्रत भी पति ही है । इसलिये सब कुछ त्याग कर स्त्री को एक पति की ही भली भाँति पूजा सेवा करनी चाहिये ॥ और—पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् (शतपथ) एकमात्र पति ही स्त्री का गुरु है ॥

उपर्युक्त शब्दों की समीक्षा—परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण जी कहते हैं कि—गति—'भर्ता' 'प्रभुः' साक्षी—निवासः शरणं सुहृत् ॥ (गीता ६।१८) ॥ मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पाप योनयः । 'स्त्री' वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ (गीता ६।३२) अर्थात् हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पापयोनि वाले भी जो कोई होवे, वे भी मेरे शरण होकर परमगति को (ही) प्राप्त होते हैं ॥ पुनः गोपियाँ भगवान् श्री कृष्ण से कहती हैं—"कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन् । नित्य प्रिये पति सुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ श्री मद्भागवत् १०।२६।३३ ॥ अर्थात् तत्त्वज्ञानी महत्पुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं । क्यों कि आप सभी की आत्मा हो । आप सर्वदा एकरस नित्य सभी के परम प्रिय हैं । अस्तु आपको पाकर परमदुखद पतिपुत्रादि से क्या प्रयोजन है ॥ श्री तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—जाके प्रिय न राम वैदेही । तजिये ताहि कोटि बैरीसम यद्यपि परम सनेही ॥ अन्य साधारण प्रेमियों की कौन कहे, भगवद्भक्ति के वाधक सभी प्रेमी त्याज्य हैं । जब कि—तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बन्धु भरत महतारी । बलिगुरु तज्यो कन्तबृज बनितन भय जगमंगलकारी ॥ यद्यपि माता पिता का त्याग करने पर पुत्र को, तथा भाई को विपत्ति के समय में त्यागनेपर भाई को, पति की आज्ञाका त्याग करने पर पत्नी को और सर्वपूज्यों

के भी पूज्य गुरु की आज्ञा न मानने पर महानपाप लगता है। तथापि भगवत्-विमुख होने पर भक्त सभी को त्यागकर भगवान् की भक्ति करके कल्याण का ही नहीं परमकल्याण का अधिकारी होता है ॥ वेद ऋषि भी कहते हैं कि—

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र 'सत्पतिं नरस्त्वां' काष्ठास्वर्वतः ॥ सामवेद ८०

श्रीरामचरितमानस में भगवान के बचन हैं कि—सन्तचरणपंकज अतिप्रेमा। मनक्रमबचन भजनदृढ़नेमा॥ और—गुरुपितुमातुबन्धु पतिदेवा। सबमोहिंकहंजानै दृढ़-सेवा॥ इत्यादि बचनों से स्पष्ट है कि—एक परमात्मा ही सच्चेपति हैं। बल्कि वह पतियों का भी पति है—यथा—"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम। पति-पतीनां' परमं परस्ताद् बिदाम देवं भुवनेशमीड्यम॥ (श्वेतश्वतरोपनिषद्) इस प्रकार स्त्रियों के लिए ईश्वर की उपासना पुरुषों के समान ही अनिवार्य है। बल्कि पति यदि ईश्वर की उपासना का विरोध करे तो उनकी आज्ञा व उनको भी त्याग कर परमात्मा की उपासना करके अपना कल्याण करे। कल्याण पत्रिका में प्रकाशित उपर्युक्त प्रसंगका समुचित उत्तर देने के पूर्व वह सिद्ध करदेना आवश्यक है कि—स्त्रियों को दीक्षालेना भी अत्यावश्यक हैं। वेद के ऋषियों ने आरम्भ में ही दीक्षा लेकर तपस्या की ऐसा वेदमन्त्र से ही सिद्ध है॥ यथा—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मैदेवा उपसंनमन्तु ॥ (अथर्ववेद १९ ।

वेद के ऋषिगण केवल पुरुष ही नहीं थे। घोषा विश्वावारा, अपाला, सुलभा, मैत्रेयी आदि अनेक स्त्रियाँ भी वेद के ऋषिकाएं थी। अतएव उनको भी दीक्षा लेना उपर्युक्त मन्त्र से सिद्ध है। यम स्मृति के अनुसार कन्याओं का उपनयन संस्कार भी होता था। देव रमणियों को यज्ञ में बुलाया जाता था। (ऋ० १।२।९-१०) इला पौरोहित्य कराती थी, वह धर्मोपदेशिका भी थी। (ऋ० १।३।११) इस प्रकार स्त्रियों को दीक्षा लेना, वेद मन्त्रों का दर्शन करना, धर्मोपदेश करना आदि बातें वेदों से ही सिद्ध हैं अतएव वेद बिरुद्ध कोई भी मत नहीं माना जा सकता। अब कल्याण में प्रकाशित बातों को धारावाहिक समीक्षा सुनें।

वहाँ सबसे पहले कहा गया है कि—किसी भी पर पुरुष को अपना गुरु नहीं बनावै। सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्शन करै। उसके लिये तो पति ही सब कुछ है। यहाँ पुरुष शब्द किसका बाचक है। व्यक्ति या पति (Husbend) का। पति का पुरुष शब्द यदि पति का वाचक है तो 'पर पुरुष' का अर्थ होगा 'दूसरे का पति'

और तब इसका तात्पर्य होगा कि जो दूसरे का पति है अर्थात् स्त्रीवान् वा गृहस्थ है उसको गुरु नहीं बनावैं। इस अर्थ को माना जा सकता है। परन्तु यदि पुरुष शब्द व्यक्ति का बाचक माना जाय और पति से व्यावर्त किया जाय तो पर पुरुष का अर्थ होगा अपनी आत्मा व अपने को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति जिसमें उसका पति भी सामिल है। तब उसका तात्पर्य होगा कि अपने आत्मा को छोड़कर किसी भी अन्य व्यक्ति को गुरु न बनावै अर्थात् अपना गुरु अपने ही हैं वा बने। परन्तु इसमें आत्माश्रय(Pefion Prencipal) का दोष आता है। यदि उपर्युक्त इन दो अर्थों को छोड़कर किसी पर पर पुरुष को अपना गुरु न बनावे' का अर्थ यह माने कि किसी दूसरे व्यक्ति वा पति को गुरु न बनाकर अपने पति को ही गुरु बनावें। तो भी सर्वप्रथम तो स्त्रियों के लिए गुरु बनाने की आवश्यकता अनिवार्य सिद्ध होती ही है, भेद सिर्फ इतना ही है कि यहाँ दूसरे को नहीं केवल अपने पति को ही गुरु बनाने का विधान है। अब यहाँ इस प्रसंग में' गुरु शब्द का प्रयोग किया गया है। पहले इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। गुरु का अर्थ विद्यादाता, मन्त्रदाता, श्रेष्ठजनभारी, देर से पचने वाला आदि होता है। अतः यहाँ लेखक ने किस अर्थ में गुरु शब्द का प्रयोग किया है। भारी, देर से पचने वाला आदि अन्य अर्थों में तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि इन अर्थों के साथ इस प्रसंग वा वाक्य की संगति बैठती ही नहीं है। यदि गुरु शब्द का अर्थ यहाँ श्रेष्ठजन माने तो वह भी संगति पूर्ण नहीं होता। क्योंकि पिता पितामह, चाचा, राजा श्वसुर आदि अन्य श्रेष्ठजन स्त्रियों के भी हैं। तब निश्चित रूप से 'गुरु' शब्द यहाँ मन्त्रदाता व दीक्षा गुरु के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अतः यदि उपर्युक्त कथन में अपने पति को दीक्षा गुरु बनाने की बात माने, तो इसमें बहुत सा दोष उत्पन्न होता है। पति को दीक्षा गुरु बनाने पर सर्वप्रथम गुरु शिष्य का सम्बन्ध और कर्तव्य का पालन नहीं हो सकता। पुनः पति पत्नी का संयोग आगम्यागमन का पाप होगा। अतएव पति को दीक्षा गुरु कभी भी नहीं बनाया जा सकता, यहाँ यह जो कहा गया है कि सन्त महात्मा का भी चरण स्पर्श न करे' वह भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है और श्रीरामचरितमानस में कथित सदाचारों के विरुद्ध है। कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्ह पग धूरी॥ पूजे गुरु पद कमल बहोरी। कीन्हि विनय उर प्रीति न थोरी॥ बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीश। पुनि-पुनि बदत गुरु चरण देत अशीष मुनीश (बालकाण्ड ३५२)। सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु आनुसरेहू॥ (बालकाण्ड ३३४)

इत्यादि रामायण विरोधी उपर्युक्त कथन माननीय नहीं हो सकता। यह कहना भी महान भूल है—कि 'उसके लिये सब कुछ पति ही है' क्या पति ही उसका पिता है। क्या पति ही उसका ईश्वर है। क्या पति ही उसकी माता है। यदि नहीं तो उपर्युक्त कथन भ्रामक और गलत है। यदि हां कहेंगे तो पिता पुत्री का सम्बन्ध नहीं निभ सकता और बिना ईश्वर की उपासना किये पति (जीव) की उपासना से मुक्ति नहीं मिल सकती क्योंकि जीव को कहीं उपास्य नहीं माना गया है। अतएव पति न तो पिता हो सकता और न ईश्वर ही। अतः यह कहना कि पति ही उसके लिये सब कुछ है' बिल्कुल गलत और अनर्थ का उत्पादक है। पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धु पतिर्गुरुः। प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥ में देवता शब्द पूज्यता का वाचक है और 'गुरु' शब्द श्रेष्ठजन का वाचक है। स्त्रियों के लिए पति आदरणीय है, पतिही उसका यः निष्ठति स बान्धवा के अनुसार संकटकाल में सच्चा सहायक है पति उसका श्रेष्ठजन है, वह प्राण से भी प्रिय है। इसलिये पति की सेवा विशेष रूप से करनी चाहिये' । यही उक्तश्लोक का अर्थ और तात्पर्य है। न कि पति ही भाई देवता और दीक्षागुरु। क्योंकि ऐसा अर्थ मानने पर भाई बहन गुरु शिष्या का पवित्र सम्बन्ध स्थापित नहीं रहता। भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्म तीर्थ व्रतानि च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥

इस श्लोक का भी अर्थ यह कदापि नहीं है कि स्त्रियों को धर्म, तीर्थ व्रत, देवाराधन और गुरु नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णुः गुरुरेव महेश्वरः गुरु साक्षात् परब्रह्म कहने पर भी गुरु से भिन्न परमात्मा की उपासना का निषेध नहीं है उसी प्रकार उपर्युक्त स्तुतिवाक्य—भर्ता देवो, से भी देव, गुरुधर्म तीर्थ और व्रत का उनके लिये निषेध नहीं होता। हरतालिक वट सावित्री आदि व्रत तो केवल स्त्रियों के लिये ही हैं। उस व्रत में देव पूजन भी होता है। 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' इस स्तुति वाक्य से भी स्त्रियों के लिये गुरु करना और सन्त पद धूरी लेने का निषेध नहीं होता बेद और शास्त्रों में अनेक स्त्रियों के तपस्या करने. वेद पढ़ने धर्मोपदेश करने मन्त्र लेने, गुरु करने आदि के दृष्टान्त मिलते हैं। अतः यह कहना अल्पज्ञता है कि स्त्रियों को गुरु नहीं बनाना चाहिए। माता पार्वती ने भी नारद जी को गुरु माना है—

नारद वचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरहु नहिं डरऊँ॥ गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥ जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीशा। सुनतिउं सिख' तुम्हारि धरि शीशा॥ तजउं न नारद कर उपदेशू।

आपु कहहिं सत बार महेशू ।। इससे सिद्ध है कि स्त्रियों के लिए भी गुरु उतना ही आवश्यक है जितना कि पुरुष के लिये । कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री का पति ही गुरु है । कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियों के लिये पति की सेवा ही ईश्वर की उपासना है, अतएव स्त्रियों को पति सेवा छोड़कर तीर्थ, व्रत, धर्म, ईश्वरोपासना आदि नहीं करनी चाहिये । इस प्रकार स्त्री के सम्बन्ध में भिन्न-२ विचार प्रकट किये जाते हैं ।

परन्तु विचार करने पर ये सभी धारणायें भ्रान्त और गलत सिद्ध होती हैं । विवाह के पावन सूत्र द्वारा स्त्री और पुरुष एक साथ सम्बन्धित होते हैं । उस विवाह में स्त्री सात प्रतिज्ञायें करती हैं, जिसमें कहीं भी यह नहीं कहती है कि आप हमारे ईश्वर होंगे वा हैं वा आप ही हमारे गुरु हैं वा होंगे । इसी प्रकार यह भी नहीं कहती है कि आपकी सेवा के सिवा मेरा कोई धर्म कर्म, व्रत, यज्ञ आदि नहीं है । वरन् वह स्पष्ट कहती है कि—तीर्थ व्रतोद्यापन यज्ञ दानं, मया सहत्वं यदि कुन्तु कुर्याः । बामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद् वाक्यं प्रथमं कुमारी । हव्यप्रदानैरमराान्पितृश्चं, कव्यप्रदानै र्यदि पूजयेथा । वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं, जगाद्कन्या वचनं द्वितीयम् ।। कुटुम्ब रक्षा भरणं यदित्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च । वमांगमायामि तदा त्वदीयं, जगाद् कन्या बचनं तृतीयम ।। आयव्ययौ धान्य धनादिकानां, पृष्टवा निवेशं च गृहे निदध्याः । वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद् कन्या बचनं चतुर्थम् ।। देवालयाराम तडाग कूप, वापीर्विदध्या यदि पूजयेथा । वामाँगमायामि तदात्वदीयं जगाद् कन्या वचनं च पञ्चमम ।। दशान्तरेवा स्वपुरान्तरेवा, यदा विदध्या क्रय विक्रयौत्वम । बामांगमायामि तदा त्वदीयं, जगाद् कन्या वचनं च षष्ठम ।। न सेवनीया पर पारकीया, त्वया भवोद भाविनिकामिनीति । वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद् कन्या वचनं च सप्तम ।।

अर्थात् तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान, हव्यदान द्वारादेवाराधन । कव्यदान द्वारा पितृ पूजन, कुटुम्ब पालन, पशु पालन; आयव्यय की व्यवस्था देवालय, मन्दिर, वाग तड़ाग-कूप, वापी आदि निर्माण स्वदेश और परदेश में क्रय विक्रय आदि जो-जो तुम करोगे सब में मैं वामांगनी बनी रहूँगी । इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्रियों का अधिकार समान है और तीर्थ व्रतादि जितना पुरुषों के लिये आवश्यक है उतना स्त्रियों के लिये भी । बल्कि बिना स्त्री के पुरुष तीर्थादि कोई भी कार्य अलग नहीं कर सकता । सर्वदा स्त्री प्रतिज्ञा के अनुसार उसके साथ ही रहेगी यह भी कहा गया है— एक चक्रो रथो यद्वदेक पक्षो यथा खगः अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्व कर्मसु ।। जिस प्रकार एक पहिये का रथ नहीं चल सकता एक पंख का पक्षी नहीं उड़ सकती । उसी प्रकार स्त्री को छोड़कर अकेला पुरुष कोई भी कर्म करने में अयोग्य है ।

इस तरह यह भली भाँति सिद्ध है कि न तो पति परमात्मा है और न गुरु। वह स्त्री का पूरक अङ्ग है। स्त्री और पुरुष के कर्तव्य में कोई भेद नहीं है, दोनोंको अधिकार है, दोनों का कर्तव्य भी। जिस तीर्थ, व्रत, धर्म आदि पुरुष के लिये आवश्यकता है उसी प्रकार स्त्री के लिये भी। यदि स्त्री अलग तीर्थ व्रत नहीं कर सकती है तो उसी प्रकार पुरुष भी अलग नहीं कर सकता है। राम जी को भी सोने की श्रीसीताजी बनानी पड़ीथीं। अतः यदि पुरुष केलिये गुरु आवश्यकहै तो स्त्रियोंके लिये भी उतना ही आवश्यक है। इसी प्रकार पति परमात्मा नहीं है। परमात्मा पति का भी पति है 'पतिः पतीनां' (श्वेताश्वरोपनिषद्) है और वह परम पति है। वल्कि परमात्मा ही सच्चा पति है। मीरा ने भी स्पष्ट कहा हैं—'ऐसे वर को क्या वरो, जो जन्मे और मरि जाये। बर वरिये इक साँवरो, तेरो चुड़लो अमर हो जाये।। वेद मे—तमाशीनं जगतस्त स्युषः पतिं, धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। (शु० प० २५।२८) भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् (शु० प० १३।४) दिव्योगन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक, एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। तंत्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव, नमस्ते अस्तु दिविते सधस्थम्।। (अथर्व० २।२।१) त्वा वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववर्तः।। (साम० ८०६)। परमात्मा को सत्पति कहा गया है। श्री मद्भागवत् में लिखा है—नृदेहमाद्यं सुलभं सु दुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्। मयाऽनुकूलेन नमस्तेरितं, पुमान् भवाब्धि न तरेत स आत्महा।। (श्री मद्भा० ११।२०।१७)

अर्थ—देवदुर्लभ मानव शरीर भगवत्कृपा से मुलभ (प्राप्त) हो गया। इस जीवन नौका के सद्गुरु कर्णधार (खेने वाले केवट) हैं। भगवान् की अनुकूलता (प्रसन्नता) ही अनुकूल वायु है। इस शरीर को पाकर भी संसार सागर से पार न हो पाया वह अपनी आत्मा का हनन करता है।।

नयनन्हि सन्त दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा।। ते सिर कटु तुम्वरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला।। अस निज हृदय विचार, तजु संसय भजु राम पद। सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रमतम रबिकर वचन मम।।

जव पार्वती जी को भी भगवान् राम जी की उपासना करने का आदेश शंकर जी देते रहते हैं तव साधारण स्त्रियाँ विना भगवान् की उपासना के भवसागर कैसे तर सकती हैं। पुनः पार्वती जी को हरि और गुरु के चरण कमल नमन करने का उपदेश भी है। जिससे स्त्रियों के लिये भी गुरु की आवश्यकता सिद्ध होती है। मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं।। गुरुबिन भव निधि तरै न कोई। जौं विरंचि शंकर सम होई।। करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ

करि पावा ॥ सद्गुरु बैद्द वचन विश्वासा । संजम यह न विषय कै आसा ॥ कुछ लोग यह कहते हैं कि स्त्री को साधु सन्त अथवा गुरु का चरण नहीं छना चाहिये । परन्तु यह बात भी भ्राम्य है । मनु जी ने लिखा है—विप्रोष्य पादग्रहण मन्वहं चाभिवादिनम् । गुरु दारेषु कुर्वीत सतांधर्म मनुस्मरन् ॥ (२।२१७) शिष्य सज्जनों के धर्म को स्मरण करता हुआ गुरु पत्नियों का चरण स्पर्श करे, और उन्हें प्रणाम करे। आचार्ये तु खलुप्रेतै गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद् वृति माचरेत्।

आचार्य के मरजाने के बाद गुणवान गुरु पुत्र में, गुरु पत्नि में अथवा गुरु के सपिण्ड लोगों में गुरु के समान व्यवहार करे । इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जब शिष्य का गुरु पत्नी का चरण स्पर्श करना विहितवा उचित है तथा धर्म है तो शिष्या को भी गुरु का चरण स्पर्श करना भी विहित और धर्म ही है । श्री रामचरिनमानस में लिखा है—सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरण सेवक नर नारी ॥ इससे भी सिद्ध है कि गुरु के चरण का स्पर्श करना नारी के लिए निसिद्ध नहीं वरन प्रशस्त है। विना सद्गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती—सद्गुरु वैद वचन विश्वाश। । संजम यह न विषय कै आशा ॥ रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥ नवमहुं एकहु जिनके होई । नारि पुरुषसचराचर कोई ॥ सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥ जप, तप, ब्रत, दम, संजम नेमा । गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ॥

मनु ने मन्त्रदाता को पिता कहा है—"पिता भवति मन्त्रदः" एवं पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ (मनु० २।१५३) स्त्रियों के लिये जीवपति आदर और सेवा के योग्य है परन्तु वह न तो उसके लिये परमात्मा है और न परमात्मा से विशेष अथवा परमात्मा के समान ही । पति की आज्ञा के विरुद्ध भी परमात्मा की उपासना करना उसके लिये आवश्यक है । ब्रह्मसूत्र के अध्याय १ पाद दो, सूत्र १–८ (सर्वत्र प्रसिद्धयाधिकरण) में सिद्ध किया गया है कि सर्वत्र उपास्य परमात्मा ही है जीव, कहीं भी नहीं। अतः पति परमात्मा के रूप में उपास्य नहीं हो सकता । स्त्रियों और पुरुषों के लिये ईश्वर की उपासना दीक्षा, मन्त्र आदि समान रूपसे आवश्यक है—समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित मेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रयेवः, समानेन वोहविषो जुहोमि । (ऋ० १०।१९१।३) । मनु जी ने लिखा है—"अहिंसा गुरु सेवा च निःश्रेयसकर पदम् ॥ (मनु २२।८३)

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों के लिये भी यज्ञ, तप, दान आदि सभी वैदिक कर्म

विहित है। इस प्रकार वाल्मिकि रामायरा में भगवान् राम शवरी से कहते हैं—

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः। कच्चिते नियतः कोपः आहारश्च तपोधने ।। कच्चिते नियमः प्राप्ताः कच्चिते मनसः सुखम्। कच्चिते गुरु शुश्रुषा सफला चारु भाविरिण ॥ ले०—बृजकिशोर साही—श्री लक्षमरणकिला श्री अयोध्या जी से प्रकाशित श्री अवध सन्देश पत्रिका का तेरहवें वर्ष सन् १६७० के श्री गुरु महिमा विशेषांङ्क के पृ० ११७ से १२३ तक सभारग्रहीत ॥

आजपति शब्द परही विचारकर लिया जाये। पति शब्दका मोटा अर्थहै कि पत्नी के लोक और परलोक की सम्यक प्रकार रक्षा करे। लोक की रक्षा तो अन्न, वस्त्र, आभूषरणादि सुख सुविधायें प्रदान करने एवं अन्य पुरुषों से रक्षरण मात्र से हो जाती है। परन्तु परलोक की रक्षा का पति के पास क्या साधन है। शरीरान्त होने के पश्चात् पति बेचारा स्वयं भी स्वक्रृत कर्माकर्म के अनुसार स्वर्ग या नरक चला जायेगा, तब वह अपनी पत्नीकी रक्षा कैसे करेगा। मानलें कि यदि पति धर्म परायरण है, तव तो वह स्वर्ग जायेगा, वहाँ जाने पर पति परायरणा पत्नी की रक्षा करेगा किन्तु पत्नी तो पति परायरणा और पति दुराचारी, परदारारत, पाखण्डी, कपटी हिंसक, छली अन्यायी है, तो वह मरकर निश्चय ही नरक जायेगा। तव कहिये वह श्रीमान पति देवता अपनी पत्नी की रक्षा कैसे करेंगे। परलोक की रक्षा का एकमात्र साधन भग-भान् श्री हरि का भजन ही है, सो बेचारी पत्नी कर ही नहीं सकती, क्यों कि हरि भजन पति को अच्छा नहीं लगता, यदि पति की विना रुचि के पत्नी भजन पूजन करेगी, तो पतिदेव अप्रसन्न हो जायेंगे, पतिकी अप्रसन्नता से पत्नी नरक चली जायेगी। तव स्त्री के उद्धार का तीन दिन के पति वनने वालों के पास कुछ भी उपाय नहीं है। अब तो ि्रयों के कल्यारण का मार्ग सर्वथा वन्द हो गया। सामयिक प्रतिकूल परिस्थिति के काररण पतिव्रत समुचित रूप से पालन होना कठिन है। भगवान् का भजन करना पाप है, तब स्त्री का आत्मकल्यारण पति कैसे कर सकते हैं। अर्थात् नहीं कर सकते हैं।

अव वास्तविक तथ्य पर आ जाइये। आज जो जीव, जिस स्त्री का पति है। इस जन्म के पूर्व नहीं था। और दूसरे जन्म में फिर यही पति होगा, यह भी अनि-वार्य नहीं है। तव स्त्री पुरुष का पति पत्नी का सम्बन्ध पूर्वक्रृत कर्माधीन केवल इसी जन्म में इसी शरीर का है। भूत भविष्य से कुछ भी सम्वन्ध नहीं है। सोचिये कि पत्नी पति सेवा परायरण है तो मरकर स्वर्ग जायेगी। और उसके पति यदि व्य-भिचारी, भ्रष्टाचारी, हिंसक एवं पाप करते हैं, तब मरने पर नरक जायेंगे या नहीं।

अवश्य ही नरक जाना पडेगा अब विचार कीजिये कि वह दूसरे का पति कैसे हो सकता है। जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता: वह पत्नी की रक्षा कैसे करेगा। अस्तु नारी समाज के साथ यह भारी अन्याय है, कि वह भगवान् का भजन करके आत्म कल्याण करने में भी स्वतन्त्र नहीं रहे।

जैसे श्री सद्गुरु को भगवत् स्वरूप मानने की आज्ञा शास्त्र देता है, उसी प्रकार स्त्री को भी पति को भगवान् का रूप मानने का विधान है। किन्तु यह दोनों विधान इसी लिये हैं कि शिष्य गुरु को पत्नी पति को भगवत् स्वरूप मानकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवा करके आज्ञा के अन्दर रहकर भगवत् कृपा का अनुभव करें। यदि जीवनभर सेवा करनेके बादभी शिष्य एवं पत्नी भगवत् कृपाका अनुभव न कर पायें। तो गुरु एवं पति से शिष्य और पत्नी को क्या लाभ हुआ है। यह तो सर्वथा त्रिकाल सत्य है ही, कि सभी जीवों के प्राप्य और भोक्ता एकमात्र परमात्मा ही हैं। किसी भी जीव का प्राप्य एवं भोक्ता कोई भी जीव नहीं है। और न कोई जीव किसी भी जीवका प्रापक या भोग्य ही है। तब सोचियेकि, स्त्री शरीर में जो आत्मा है, क्या वह पुरुष शरीर वाले आत्मा का भोग्य या प्रापक है। यदि नहीं है तब यह हठ क्यों कि स्त्री को पति की आज्ञा के विना भगवान् के भजन का भी अधिकार नहीं है। यदि भजन करने का अधिकार है, तो फिर पति की परतन्त्रता क्यों। मनुस्मृति में यह तो प्रमाण है कि पत्नी पति की विना आज्ञा व्रत, उपवास, तीर्थ, दान आदि न करे। केवल पति की सेवा करने से ही स्वर्ग को प्राप्त होती है। किन्तु यह प्रमाण तो नहीं है कि भगवान के भजन में भी पति की परतन्त्रा है। यह तो सर्वथा सत्य वात है कि यदि पति पूर्वजन्म का पापात्मा है, तो अपनी स्त्री को भजन करने की अनुमति कभी भी नहीं देगा, न स्वयं ही भजन करेगा। तव धर्म के ठेकेदार वनने वाले बुद्धिजीवी कहलाने वाले सज्जन वतावें कि उस स्त्री का कल्याण कैसे होगा। यदि कोई यह कहे कि पति सेवा से कल्याण हो जायेगा। ऐसा नहीं हो सकता, क्यों कि जिस पति की सेवा करने पर पत्नी को आत्म कल्याण की प्राप्ति बताई जाती है। वह पति देवता ही पापरत होने के कारण नीच योनियों में भटकते हुये नरक की शुभ यात्रा करते हैं तव उनकी सेवा करनेवाली स्त्री को मुक्ति मिल जाये, इतनी सस्ती मुक्ति नहीं है। मुक्ति की प्राप्ति तो एकमात्र भगवान् श्रीहरि की उपासना से ही होगी। जो पति को व्यर्थ लगती है। क्यों कि यदि पत्नी का मन भगवान् में लग जायेगा तो पति देवता के मनोरंजन में संकोच (कमी हो जायेगा। अस्तु ऐसाकौन बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो अपनीपत्नीके कल्याण की भावना करके भगवत् भजन में लगाकर अपने शारीरिक सुख स्वाद में वाधा डाले।। ऐसे स्वार्थी पतियों की कृपा से स्त्रियों का आत्म कल्याण नहीं हो सकता है।

पृष्ठ ६८ का शेष

मन्त्रोविद्या गुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथापतिः । प्रतिजन्मनिबन्धेन सर्वेषामुपरिस्थितः॥ १५६॥ पितागुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः । गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रति-जन्मनि ॥ १६० ॥ शोक सागर में डूबती हुई भयभीत शची ब्रह्मनिष्ठ कृपालु गुरु की स्तुति करने लगी ॥१३८॥ मन्त्र देने मात्रसे गुरु होते हैं, ऐसा पंडितगण कहते हैं ॥ माता पिता अन्य गुरुओं से मन्त्र प्रदाता गुरु अधिक वन्दनीय हैं ॥ १४६ ॥ यह निश्चित है कि अदीक्षित पुरुष का उद्धार कभी भी नहीं होता । और उसकी गणना मूर्खों में होती है ॥ १४८ ॥ मन्त्रदाता गुरु, विद्या दाता गुरु और इष्टदेवता में निष्ठा पूर्व जन्म के अनुसार मिलती है । जैसे कि पूर्व जन्म के कर्मानुसार बने हुये संस्कार से ही पति या पत्नी की प्राप्ति होती है ॥ १५६ ॥ पितारूपी गुरु- जिस जन्म में जन्म देते हैं, उसी जन्म में वन्दीय होते हैं । माता आदि अन्य गुरुजनों की भी यही दशा है । परन्तु भग-वन्ममन्त्रदाता गुरु तो प्रत्येक जन्म में वन्दनीय हैं ॥ १६० ॥

पृ० २०—श्री शबरी जी के गुरु श्री मतंग जी थे, श्री शबरी जी ने गुरु सेवा की थी, वे मन्त्र जप करती थीं, इसकी पुष्टि तो श्री रामचरित मानस में श्री राम जी के वाक्यों के ही उदाहरण हैं । जो कि श्री राम जी ने शबरी जी से कहा था । नवधा भक्ति वर्णन करते हुये श्री राम जी ने श्री शबरी जी से कहा कि—गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान । और मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥ पुनः—सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे । वक्ताओं ने भी कहा कि— शबरी देखि राम गृह आये । गुरु के वचन समुझि जिय भाये ॥ रा० च० मा० अ० का० दो० ३४ की पक्ति सात तक ॥ श्री नारद जी ने दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप की रानी श्री प्रह्लाद जी की माता कयाधू को मन्त्र दीक्षा दी थी । (महाभारत देखिये) नारद जी ने राजा श्वास की रानी को मन्त्र दीक्षा दी थी । [विश्राम सागर] नारद जी ने पं० कृष्ण-दत्त शर्मा की पत्नी श्रीमती सुन्दरी देवी को मन्त्र दीक्षा दी थी । [विश्राम सागर] महाराष्ट्र के वरकरी सम्प्रदाय का इतिहास साक्षी है कि श्री ज्ञानेश्वर की छोटी बहिन श्री मुक्ताबाई ने श्री निवृत्तिनाथ से दीक्षा ली थी । जगतगुरु भगवान आदि श्रीशंक-राचार्य जी ने मीमांसक शिरोमणि श्री मन्डन मिश्र की विदुषी पत्नी को दीक्षा दी थी (शंकर दिग्विजय)

– जगतगुरु भगवान श्री रामानन्दाचार्य जी महाराज ने गागरौनगढ़ाधीश श्री पीपा जी की महारानी श्री सीतासहचरी जी को मन्त्र दीक्षा दी थी (श्री रामानन्द-दिग्विजय) एवं श्री भक्तमाल ॥ और उक्त आचार्य श्री ने ही श्री सुरसुरानन्दार्य जी की धर्म पत्नी श्रीमती सुरसुर देवी को मन्त्र दीक्षा दी थी । [श्री भक्तमाल तथा महाभागवत

चरित) चित्तौड़ गढ़ाधीश्वरी श्रीमती झाली रानी और चित्तौड़ेश की पुत्र बधू महाराणाप्रताप सिंह जी के पिता महाराणा उदयसिंह की अनुज बधू विश्व विख्यात श्री गिरिधरगोपाल जी की परम प्रिया श्री मीराबाई ने महात्मा श्री रैदास जी से मन्त्र दीक्षा ली थी (भक्तमाल) प्रमाण के लिये आज भी चित्तौड़ के श्री मीरा मन्दिर में श्री रैदास जी की छत्री और चरणपादुका उपस्थित है ।

ओरछाधीश श्री मधुकरशाह जी की महारानी श्रीमती गणेशदेई जी और आमेर की रानी श्रीमती रत्नावती जी का मन्त्र दीक्षा लेना भक्तमाल में ही प्रसिद्ध है । श्री सहजोबाई, दयाबाई और रानी सुन्दरि कुअँरि आदि की दीक्षा इतिहास प्रसिद्ध है । स्त्री को मन्त्र दीक्षा लेना अनिवार्य है । इस बिषय में प्रमाणों की कमी नहीं है । प्रस्तुत पुस्तक में सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारों युगों में स्त्रियों ने मन्त्र दीक्षा ली है, इसका पुष्ट प्रमाण है । क्यों कि सभी प्रमाण आर्षग्रन्थों के हैं। इसलिये पाठकों को उचित है कि—वह अपनी पत्नी का यदि कल्याण चाहते हैं तो भ्रम तथा कुतर्क को त्यागकर किसी योग्य महान पुरुष से अवश्यमेव दीक्षित करवा देवें । आस्तिक व्यक्ति को तो आर्षमहर्षियों के दो चार प्रमाण ही पर्याप्त होते हैं । फिर इस पुस्तक में तो २४ दो दर्जन पुष्ट प्रमाण हैं, आवश्यकता पड़ने पर और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं ।

जिन लोगों ने शातातप स्मृति के नाम से कल्पित श्लोक लिखा है, उन्होंने बिरक्त साधुओं के सभी परमाचार्यों की महान निन्दा की है । शैवाचार्य - आदि श्री शंकराचार्य, तथा श्री वैष्णवाचार्य, श्री रामानन्दाचार्य जी, श्री माधवाचार्य जी, श्री निम्बार्काचार्य जी, श्री वल्लभाचार्य जी, श्री विष्णुस्वामी जी, श्री गौरांगदेव जी, श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी इत्यादि सभी आचार्यगणों को, प्रकारान्तर से ब्रह्महत्या का अपराधी सिद्ध किया है । यद्यपि वे आचार्यगण तो अपराधी नहीं हैं । परन्तु नियमानुसार किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने वाला आरोपक ही उस अपराध का दण्डभागी बनना चाहिये । जब कि वैदिक श्रुति कहती है कि—स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम । (मु॑० बं० १-२-१२) क्या यह श्रुति पुरुषों के लिये ही है इस में स्त्रियों को निषेध तो नहीं कहा गया । उक्त श्रुति में स्त्री पुरुष का भेद रखकर गुरु के पास जाना नहीं बताया है । अस्तु यह वेद वाक्य सभी कल्याण चाहने वालों के लिये है । चाहे स्त्री हो या पुरुष हो । अस्तु अब पाठक खूब समझ गये होंगेकि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र स्त्री पुरुष सभीको गुरुवरण करके श्री सीताराम भजन करना चाहिये माता बहिनों को इस भूल में नहीं

रहना चाहिये कि पति ही भगवान् हैं । इनकी सेवा से ही संसार से मुक्ति मिल जायेगी । पति सेवा के फल स्वरूप स्वर्ग (देव लोक) तक ही प्राप्त होना है । भगवान् की प्राप्ति या मुक्ति तो एकमात्र भगवत् भजन से ही होगी ॥ अन्यथा रा० च० मा० उ० कां० दो० १२२ देखो । अंधकार वरु रविहिं नसावै । परन्तु–रामविमुख न जीव सुख पावै ॥ वारि मथे घृत होइ वरु सिकता ते वरु तेल । विन हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ॥ श्री भुसुंडी जी ने कहा कि—विनिश्चतं वदामि ते न अन्यथा वचांसिमें । हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते ॥ अर्थात् यह सर्वथा निश्चित है कि जो जीव भगवान् श्री हरि का भजन करते हैं, वह अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार हो जायेंगे । इसमें सन्देह नहीं है । और भगवान् श्री सीताराम जी का विना भजन किये कोई जीव कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता ॥ लेखक—

श्रीसीतारामनाम महिमामाधुरी

अनन्त श्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज द्वारा संग्रहीत श्रीसीताराम नाम प्रताप प्रकाश नामक ग्रन्थ के पृ० ७७ से उद्धृत विषय

श्री जानकी विनोद विलासे

सीतारामात्मकं ध्यानं सीतारामात्मकार्चनम् । सीतारामात्मकं नामजपं परात्परम् ॥ १ ॥ सीताविना भजेद्रामं सीतारामं विना भजेत् । कल्पकोटिसहस्रैस्तु लभते न प्रसन्नताम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्री सीताराम जी का एक साथ ध्यान करना, तथा श्री सीताराम जी का एक साथ पूजन करना, और श्री सीताराम जी का एक साथ नाम जपना परम श्रेष्ठ साधन है । दोनों में से एक का ध्यान, पूजन, नाम जपना सामान्य है । कुछ भी न करने वालों की अपेक्षा तो वहुत ही अच्छा है । परन्तु केवल श्री सीता जी या केवल श्री राम जी का ध्यान, पूजन, नाम जपने से से पूर्णतया लाभ नहीं होने पाता । क्यों कि श्री सीताराम जी परम अभिन्न एकही तत्त्व हैं । उनमें विभाजन (वटवारा) करने की आवश्यकता नहीं है । श्री सीता जी और श्री राम जी दोनों मिलकर पूर्णब्रह्म संज्ञा होती है । इसलिए प्रातः स्मरणीय गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री रा० च० मा० की ना० व० के पूर्व ही लिखा है कि—गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । वन्दौं सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥ वा०

का० दो० १८ ॥ अस्तु श्री युगल सरकार की परम कृपा चाहने वाले रसानुभूति के इच्छुकों को श्रीसीतारामजी में से एक एक का ध्यान, पूजन, नाम जप अधिक उपयोगी नहीं होगा। वैसे महिमा की दृष्टिकोण से तो पूरे एक नाम की कौन कहे नाम भास से ही पाप ताप नाश हो जाते हैं। केवल रेफ मात्र से ही भुक्ति मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती हैं। तथापि भक्ति रसानुभव की दृष्टि से उपासकों को श्री सीताराम जी का एक साथ ध्यान पूजन स्मरण करना अधिक लाभकर है। भावात्मिका भक्तिके बिभिन्न प्रकारके भावुक स्वरुचि प्रधान विभिन्न प्रकार की भावना करतेहैं। करना भी चाहिये, यथा,—वात्सल्य भावापन्न भक्त केवल श्री रामलाल जी का ही ध्यान करते हैं। और श्री मैथिली वात्सल्य विभोर भक्त श्री जानकी जी के ही वालरूप का ध्यान करते हैं। फिर भी यह विषमता नहीं है। मान्यथा में एक्यता का ही अनुसन्धान रहता है। इसलिये श्री सीतानाम या श्री राम नाम जप की अपेक्षा श्री सीतारामनाम का जप करना अधिक श्रेयकर होगा ॥ १ ॥ श्री सीता जी के बिना श्री राम भजन करता है। हेय समझकर श्री सीता जी का तिरस्कार करता है। अथवा श्री राम जी को हेय मान कर तिरस्कार करके केवल श्री सीता जी का ही भजन करता है। तो ऐसा करनेवाले दोनों प्रकार के व्यक्तियों में से किसी को भी अनन्त कल्पों तक भजन करने पर भी न तो श्री सीता जी की प्रसन्नता और न श्री राम जी की प्रसन्नता प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि श्री सीताराम जी अभेदात्मा हैं। उनमें भेद बुद्धि न करके ऐक्यता का अनुसन्धान करते हुये एक साथ ही श्री सीताराम जी के नाम, रूप, लीला, धाम, गुणों की उपासना करनी चाहिये। तथापि स्वरुचि प्रधानता के कारण दोनों को अभिन्न मानते हुये, दोनों में सद्भाव रखकर किसी भी एक के नाम रूप, लीला, धाम, यश, गुणों की उपासना की जा सकती है। कुछ भी दोष नहीं होगा। दोष की कल्पना तव होगी जब एकके प्रति श्रद्धा और दूसरे के प्रति अश्रद्धा करेगा। यह स्वाभाविक वात है कि अपने प्रिय का स्मरण करने वाले पर सभी को प्रसन्नता होती है। तद्नुसार श्री सीता नाम का जप करने वाले पर श्री राम जी प्रसन्न होते हैं कि—यह हमारी प्राणप्रियाजू का नाम जपता है। और श्रीरामनामजापक पर श्री सीता जी प्रसन्न होती हैं कि यह हमारे परम प्रियतम जू का नाम जप रहा है। और श्री सीताराम नाम जापक पर एक ही साथ श्री सीताराम जी की प्रसन्नता होती है। इसलिये उपासकों को एक नाम की अपेक्षा श्री सीता एवं श्रीराम दोनों ही नाम एक साथ जपना अधिक श्रेयकर होगा। यद्यपि दोनों नामों के एक एक अक्षर में जीव को भक्ति मुक्ति देने की परम सामर्थ समाहित है।

स रामो न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते। सीता नैव भवेत् सा हि यत्र रामो न विद्यते ॥ ३ ॥ सीतारामं विना नैव रामः सीतां विना नहि। श्रीसीता-रामयोरेष सम्बन्धः शाश्वतो मतः ॥ ४ ॥

वह श्री राम जी नहीं हैं, जहाँ श्री सीता जी न हों । और जहाँ श्री राम जी नहीं हैं, वह श्री सीता जी भी नहीं हैं । तात्पर्य यह है कि श्री सीताराम जी सर्वदा परम अभिन्न हैं। श्री सीता जी के बिना श्री राम जी की शोभा नहीं है। तथाहि श्री राम जी के बिना श्री सीता जी की शोभा नहीं है । श्री सीताराम जी की परस्पर में दोनों से ही दोनों की परम शोभा है । दूसरी बात यह भी है कि श्री राम जी सूर्य और श्री सीता जी प्रभा सदृश्य होने के कारण भी एक दूसरे से पृथक हो ही नहीं सकते। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण श्री अयोध्या काण्ड में श्री सीता जी ने हो स्वयं कहा है कि—अनन्या राघवेणाहं भाष्करेण यथा प्रभा ॥ वा० रा० सु० का० सर्ग० २१ श्लोक १५ ॥

अर्थात् मैं राघव की इस प्रकार अनन्य हूँ कि जिस प्रकार सूर्य से किरण फिर श्रीराम च० मा० अयो० का० में भी लिखा है कि-प्रभाजाय कहँ भानु बिहाई। कहँ चान्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥ इतने पर भी यदि कोई अपनी हठ से श्री सीता जी और श्री राम जी में भेद बुद्धि करेगा तो उसे किसी भी प्रकार सम्मिलित पूर्ण पर-मानन्द का लाभ नहीं हो पायेगा । अस्तु श्री सीताराम जी में अभेद बुद्धि रख कर भजन करना ही उत्तम है ॥ ३ ॥ श्री सीता जी के बिना श्री राम नहीं। और श्री राम जी के बिना श्री सीता जी नहीं हैं। श्री सीताराम जी का पारस्परिक एकरस सम्बन्ध है। कभी भी विच्छेद नहीं होता है । इसलिये प्रेमी भावुकों को भी श्री सीताराम जी का एक साथ भजन, पूजन, स्मरण, कीर्तन आदि करना चाहिये ॥ ४॥

॥ श्री जानकी रत्नमाणिक्ये ॥ श्री सीतारामनाम प्रताप प्रकाश पृ० ७८ ॥

सीताविनाये सखि कोटिकल्पसमास्तु रामं जनकात्मजासु। ध्यायन्ति निद्याश्रयभागिनस्ते रामप्रसादाद्विमुखाः भवन्ति ॥ ५ ॥ रामस्तु वश्यो भवतीह सीताप्रोच्चारणाद् ये तु जपन्ति सीताम्। भूत्वानुगामी भजते जनस्तान् ब्रह्मे-शशक्रार्चितराजपुत्रः ॥ ६ ॥

श्री सीतानाम बिना यदि कोई करोड़ों कल्पों तक श्री राम नाम कहे, तो भी

श्री राम जी प्रसन्न न हों। अपितु श्री सीता नाम को त्याग करने के कारण केवल श्रम, निन्दा एवं विमुखता का ही भागी बनता है। क्यों कि श्री सीता जी श्री राम जी की परमाह्लादिनी अभिन्न शक्ति और प्राणाधिक प्रिय हैं। अस्तु तिरस्कार पूर्वक हेय समझ कर श्री सीता नाम का त्याग करनेवाले पर श्री राम जी प्रसन्न कैसे हों। क्यों कि श्री जानकीस्तवराज में स्वयं श्री राम जी ने भगवान् श्री शंकर जी से कहा है कि—"तिष्ठामि न क्षणं शम्भो ! जीवनं परमं मम" अर्थात् हे शंकर जी मैं श्री जानकी के विना, एक क्षण भी सुख पूर्वक नहीं रह सकता। क्यों कि वह मेरी परम जीवन हैं। इसलिये श्री सीता नाम के प्रति अभाव अश्रद्धा करके केवल श्री रामनाम जापक पर श्री राम जी के हृदय में उत्साह पूर्वक वात्सल्य की बाढ़ नहीं आती। तथापि श्री राम नाम के प्रभाव से संसार सागर से पार तो हो ही जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ इसलिये श्री राम जी की कृपा और प्रसन्नता के इच्छकों को श्री सीता-राम नाम जपना ही अधिक श्रेयकर है। क्यों कि अहलाद तत्त्व तो श्री सीता जी ही हैं, उनके अभाव में श्री राम जी ही अह्लादित न होंगे, तब केवल श्री राम नाम जापक को कैसे अह्लाद प्राप्त होगा। हाँ यदि श्री सीता नाम में भी श्रद्धा भाव रख कर केवल श्रीराम नाम जप किया जाये, तो सर्वज्ञ प्रभु रीझ सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। तथापि प्रेमाभक्ति रसानुभव की कामना वाले भक्तोंको तो श्रीसीतारामनाम ही जपना चाहिये ॥५॥ केवल सी अक्षर उच्चारणमात्र से ही श्री राम जी वश हो जाते हैं। और यदि कोई प्रेम पूर्वक श्री सीतानाम का जप करे, तो श्री राम जी उमके पीछे पीछे फिरते हैं। इस प्रकार श्री सीता जी में श्री राम जी का प्रेम है, वैसे तो श्री राम जी सभी देवताओं से तथा देवेन्द्र, ब्रह्मा, शंकरादिकों से भी पूज्यनीय हैं, चराचर जगत श्री राम जी का अर्चन करता है। इसी प्रकार श्री राम जी के नाम को श्रवण करके श्री सीता जी को परमानन्द प्राप्त होता है, इसलिये केवल श्रीसीता नाम जपना भी पूर्ण लाभकर नहीं है, अस्तु श्री सीताराम जी की कृपा चाहने वालों को श्री सीताराम नाम जपना ही सर्वोत्तम है। वैसे संसार सागर से पार तो किसी भी नाम का आश्रयण करने पर होने में सन्देह नहीं है। तथापि सम्यक् प्रकार रसा-नुभव प्रद श्री सीताराम नाम ही है ॥६॥ ब्रह्मरामायणे श्रीराम वाक्यं श्री जानकीं प्रति पृ० ९६ से

श्री सीतारामनामनस्तु सदैक्यं नास्ति संशयम। इति ज्ञात्वा जपेद्यस्तु स धन्यो भाविनां वरः॥ ७ ॥ एकं शास्त्रं गीयते यत्र सीता कर्माण्येकंपूज्यते यत्र सीता। एका लोके देवता चापि सीता मन्त्रश्चैको ऽप्यस्तिसीतेति नाम ॥ ८ ॥

श्री सीताराम नाम दोनों एक हैं, इसमें भेद नहीं । जो ऐसा जानते हैं वही भावकों में श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ वही प्रधान शास्त्र है, जिसमें श्री सीता जी का नाम तत्त्व प्रकाशित हो । और श्रीसीताजी की पूजा करना जीव मात्र का मुख्य कर्म है । निश्चय ही लोक में श्री सीता जी ही सर्वोपरि देवता हैं । तथा श्री सीतानाम ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है ॥ ८ ॥

ज्ञानं सीतानाम तुल्यं न किञ्चित्, ध्यानं सीता नाम तुल्यं न किञ्चित् ।
भक्तिः सीतानाम तुल्यं न काचित्, तत्त्वं सीता नाम तुल्यं न किञ्चित् ॥ ९ ॥
नान्यः पन्था विद्यते चात्मलब्धौ, नान्यो भावो विद्यते चापि लोके ।
नान्यद् ज्ञानं विद्यते चापि वेदेष्वेवं सीतानाम मात्रं विहाय ॥ १० ॥

श्री सीतानाम के समान न कोई ज्ञान है, और न श्री सीतानाम के समान कोई ध्यान ही है, श्री सीतानाम के समान कोई भक्ति भी नहीं है, तथा श्री सीता नाम के समान कोई तत्त्व भी नहीं है । श्रद्धा प्रेम पूर्वक जो व्यक्ति श्री सीतानाम का जप करता है, तो निश्चय ही जानो कि उसको सभी प्रकार का उत्तम ज्ञान है । और उसका ध्यान भी श्रेष्ठ है, तथा सर्वाङ्ग पूर्ण भक्ति भी उसमें है । और उसने वेद के तत्त्वों को ठीक से समझा है । यदि वेद शास्त्रों का ज्ञान, ध्यान, भक्ति, सभी तत्त्वों को पाकर भी श्री सीतानाम में प्रेम न हुआ तो इनकी विशेष महिमा नहीं है ॥ ९ ॥ आत्मलाभ अर्थात आत्मसाक्षात करने के लिये तथा परमात्मा का दर्शन करने के लिये श्री सीतानाम को छोड़ कर न तो कोई ऐसा सुलभ और सुगम मार्ग है न ऐसा कोई भाव ही है और वेदों में ऐसा कोई सुगम ज्ञान भी नहीं है । अस्तु बुद्धिमानों को सर्वदा श्री सीतानाम जपना चाहिये ॥ १० ॥

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जन् । स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ पद्म० पु० चतुर्थखण्ड एक सप्ततितमोऽध्यायः ॥ और स्कन्ध पु० तृतीयखण्ड चतुर्विंशोऽध्यायः श्लोक ३९ से ५३ तक ॥ विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिद्धति । तासांमन्त्रो रामनामध्येयः कोट्याधिको भवेत् ॥ ३९ ॥ रामेति द्वयक्षर जपः सर्वपापनोदकः । गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्त्तनात् ॥ ४० ॥ इहनिर्वृत्ति मायाति प्रान्तेहरिगणो भवेत् । रामेति द्वय-

त्तरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशतोधिकः ॥ ४१ ॥ सर्वासां प्रकृतीनां च कथितः पापनाशकः । चातुर्मास्येऽथ सम्प्राप्ते सोप्यनन्त फलप्रदः ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्ति तत्परैः । देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥ ४३ ॥ न रामाधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले । रामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥४४॥ ये च दोषा बिघ्नकरा मृतका विग्रहाश्रये । रामनाम्नैव विलयंयान्ति नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । अन्तरात्मा स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥ ४६ ॥ रामेति मन्त्रराजोऽयं भय व्याधि विधूषकः । रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थ साधकः ॥ ४७ ॥ सर्वतीर्थ फलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः । रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥ ४८ ॥ द्वयक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्य करो भुवि । देवाअपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥ ४९ ॥ तस्मात्वमपि देवेशि रामनाम सदावद । रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्व किल्बिषैः ॥ ५० ॥ सहस्र नामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते । चतुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम ॥ ५१ ॥ हीनजाति प्रजातानां मुहृद्दह्याति पातकम् ॥ ५२ ॥ रामोह्य विश्वमिदं समग्रं स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मना । पुनाति जन्मान्तर पातकानि स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाच्च दग्ध्वा ॥ ५३ ॥ पुनः पद्मपु० एकसप्तति तमोऽध्यायः उत्तरखण्डे ३३३ श्लोकः द्रष्टव्यः ॥ राम रामेति रामेति रमे राम मनोरमे । सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

अर्थ—श्री ब्रह्मा जी ने नारद जी से कहा कि—हे वत्स ! बारबार राम ऐसा जपने से चाण्डाल भी पवित्रात्मा हो जाता है । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३१॥ ब्राह्मणों की भक्ति करने से अनेक प्रकार के दान देने से भगवान् विष्णु के ध्यान करने से जो सिद्धि प्राप्त होती है, उससे भी करोड़गुणा फलप्रद सभी का परमध्येय मन्त्र श्री रामनाम है ॥ ३९ ॥ राम + इति = राम ऐसा यह दो अक्षर वाला मन्त्र का जप सब पापों को नाश करने वाला है । इस रामनाम को चलते, बैठते, अथवा सोते हुये भी जो मनुष्य कीर्त्तन (जप स्मरण) करता है ॥ ४० ॥ तो वह त्रिगुणमयि मायारचित इस संसार सागर से मोक्ष (पार होकर) प्राप्तकर भगवद्धाम में श्रीराम जी का पार्षद हो जाता है । यह दो अक्षर वाला श्रीराम मन्त्र सौ करोड़ (अनन्त)

मन्त्रों से अधिक महत्त्व वाला है ॥ ४१ ॥ मैंने यह समस्त प्राकृतिक जनों के लिये पापनाश करने का उपाय कहा है। चातुर्मास (वर्षाकाल) में इसका जप करने से अनन्त फल होता है ॥ ४२ ॥ परम पवित्र चातुर्मास के समय में भगवद्भक्ति में तत्पर भक्तोंको इस श्रीरामनाम का जप अवश्य ही करना चाहिये। देवताओं का फल स्वर्ग पुण्यक्षीण होने पर जैसे नष्ट हो जाता है, क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति ॥ ॥ गीता ॥ उसी प्रकार श्री रामनाम जापक का यमलोक जाना बन्द हो जाता है ॥ ॥ ४३ ॥ इस जगत में श्री रामनाम से अधिक कुछ भी पढ़ने योग्य नहीं है। अर्थात् वेद पुराण शास्त्र इतिहास काव्य छन्द व्याकरण जोतिष न्याय मीमांसा इत्यादि सब कुछ पढ़ने पर भी श्री रामनाम जप बिना किये, विद्या का वास्तविक फल भगवत्प्राप्ति होना असम्भव है। और कुछभी न पढ़नेवाला व्यक्ति यदि श्री रामनामका जप श्रद्धा भक्ति से हो तो निश्चय ही संसार से मुक्त होकर अनायास भगवत्प्राप्ति हो जायेगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि पढ़ना लिखना नहीं चाहिये। विद्या पढ़ने से श्रीरामनाम की महिमा का ज्ञान होता है। तब श्री रामनाम में अभिरुचि जाग्रत होकर साधक को श्री राम परायण बना देती है। श्री रामनाम जपनेवाले पर यमराज का शासन नहीं होता हो। उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार भगवत्पार्षद करते हैं ॥ ४४ ॥ विघ्न करने वाले जितने दोष और मृतक विग्रह (मरे हुये व्यक्ति) हैं वे सब श्री रामनाम में ही विलीन हो जाते हैं। इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह है कि समस्त जगत श्री रामनाम से उत्पन्न होकर पुनः कालान्तर में श्री रामनाम में ही विलीन हो जाता है ॥ ४५ ॥ अन्तरआत्मा स्वरूप से जो जड़चेतनात्मक सभी प्राणियों में रमण करता है, उसको राम कहते हैं ॥ ४६ ॥ राम यह दो अक्षरवाला मन्त्रराज समस्त भय व्याधियों को नाश करने वाला अर्थात् मृत्यु का महानभय और बारम्बार जन्म लेनेवाली महान व्याधि को नष्ट करके श्री रामकिंकर (श्रीरामपार्षद) बना देता है। श्री रामनाम का स्मरण युद्धस्थल में विजय और सभी कार्यों को सिद्ध करनेवाला है ॥ ४७ ॥ श्रीरामचन्द्रइति श्रीराम इति अर्थात् बारम्बार श्री रामनाम का उच्चारण करने से सब तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है। श्री रामनाम ब्राह्मणों के भी सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है ॥४८॥ दो अक्षर वाला राम यह मन्त्रराज भूमण्डल में सबके सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला है। समस्तगुणों की खानि श्री रामनाम का कीर्त्तन देवता भी करते हैं ॥४९॥ शंकर जी ने कहा, इसलिये देवेशि (हे पार्वति) तुम भी सर्वदा श्री रामनाम का कीर्त्तन किया करो। जो श्री रामनाम का जप करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो

हो जाता है ॥ ५० ॥ भगवान् के हजार नाम जपने का पुण्य श्री रामनाम एकबार कहने से हो जाता है । यद्यपि श्री रामनाम सर्वदा सर्व फल प्रद है, तथापि चातुर्मास में अन्य समय की अपेक्षा दशगुणा पुण्यप्रद है ॥ ५१ ॥ न्युनवर्ग के व्यक्ति से भी महान से महान पाप हो जाने पर श्री रामनाम जपने पर सभी पाप जल जाते हैं ॥ ५२ ॥ अपने तेज से इस समस्त संसार को व्याप्त करने वाले श्री राम जी, अपने आश्रित भक्तों के अनेक जन्मों के स्थूल सूक्ष्म (छोटे बड़े) सभी पापों को क्षणभर में जलाकर पवित्र कर देते हैं ॥ ५३ ॥ भूतमनभावन भगवान् श्री शिव जी ने श्री पार्वती जी से कहा कि—हे मनोरमे पार्वति ! अपने अन्तरात्मा में श्री राम जी के साथ में रमण करते हुये, श्री रामनाम का जप स्मरण कीर्त्तन करने से हे सुमुखि ! भगवान् के हजार नामों के समान महत्त्व होता है । अर्थात् श्री राम जी में मनचित लगाकर श्री रामनाम का जप स्मरण कीर्त्तन करना सर्वश्रेष्ठ साधन है ॥ ३३३ ॥ उपर्युक्त श्लोकों में २१ और ३३३ नं० के श्लोक पद्म पु० उ० ख० ६ अ० ७१ के मनसुखराम मोर कलकत्ता वालों के द्वारा प्रकाशित पुस्तक के पृ० २४४ तथा पृ० के हैं । और ३६ से ५३ तक के श्लोक भी मनसुखराम द्वारा प्रकाशित स्कन्द पुराण तृतीय खं० अ० २४ के पृ० ५३६ के हैं ॥ अब वाराहपुराण में भगवान् शंकर जी श्री पार्वती जी से कहते हैं कि—

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो।हारामेण हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पन्स्तनु त्यक्तवान् । तीर्णोगोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावादहो किं चित्रं यदि रामनाम रसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥ ७६ ॥ और नरसिंह पुराण में श्री प्रहलाद जी ने अपने पिता से कहा है कि-रामनामजपतां कुतोभयं सर्वतापशमनैकभेषजम् । पश्यतात ममगात्र संगतः पावकोऽपिसलिलायतेऽधुना ॥११॥ और स्कन्दपु० काशीखण्ड में श्री शिववाक्य हैं कि-पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् । जल्पन्जल्पन्प्रकृति विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटतिजटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥ और पुलह संहिता में कहा है कि—सावित्री ब्रह्मणासार्द्धं लक्ष्मीनारायणेन च । शम्भुना रामरामेति पार्वति जपति स्फुटम् ॥ उपर्युक्त चारो श्लोक श्री सीतारामनाम प्रताप प्रकाश ग्रन्थ के क्रमशः पृष्ट नं० २०, २३, ४२ एवं ४६ से उद्धृत किये गये हैं ।

अर्थ—वाराहपुराण में बताया है कि—एक महापापी म्लेच्छ बैल का व्यापार करते हुये किसी वन में रुक गया। वह शरीर से बहुत ही जर्जर और रोगी था। रात्रि में शौचक्रिया करने गया, प्रारब्धवश सूकर (सूकर) के बच्चे ने उसे धक्का देकर ढकेल दिया। वह पुकारकर ऐसा कहते हुये गिर पड़ा कि हमें हराम ने मारा हराम ने मारा और तुरन्त मर गया। उसके हराम शब्द में राम शब्द निकला, जिस रामनाम के प्रभाव से उसके समस्त पाप नष्ट हो गये, और वह गोखुर के समान अनायास संसार सागर से पार हो गया। तब जो श्री रामनाम जपके परम रसिक हैं वह यदि श्रीराम धाम को प्राप्त हो जायें तो क्या आश्चर्य है ॥ १७६ ॥ नरसिंह पुराण में श्री प्रह्लाद जी ने हिरण्यकश्यप से कहा है कि—श्री रामनाम जपनेवाले को कहीं भी भय नहीं है क्यों कि श्रीरामनाम सभी तापों को शमन करने की औषधि [दवाई] है। आप प्रत्यक्ष ही देखिये कि इतनी प्रचंड अग्नि भी मेरे शरीर का स्पर्श पाते ही शीतल हो गई है ॥ ११ ॥ काशीखण्ड में लिखा है कि—भगवान् श्री शंकर जी जटामुकुट धारण करके काशी की गलियों में घूमते हुये ऐसा कहते हैं कि—हे नगरनिवासियों ! आप सब कानरूपी दोनों से श्री रामनामरूपी परमपीयूष [परम अमृत] पान करो। और मन में परम तारक श्री रामनाम परंब्रह्म का ध्यान करो ॥ २५७ ॥ पुलह संहिता में बताता गया है कि—सावित्री जी के साथ ब्रह्मा जी लक्ष्मी जी के साथ भगवान् नारायण और पार्वती जी के साथ भगवान् शंकर जी नित्य श्री रामनाम का जप करते हैं। इन्हीं श्लोकों के अनुरूप पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने कबितावली में लिखा है कि-आँधरो अधमजड़ जाँजरो जरा जवन शूकरकेशावक ढका ढकेल्यो मग में। गिरो हियेहहरि हराम हो हराम हन्यो, हाय ! हाय ! करत परीगो कालफग में ॥ तुलसी विशोक ह्वै त्रिलोकपति लोकगयो, नामकेप्रताप बातविदित है जग में। सोई रामनाम जो सनेह सों जपतजन, ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं ॥ पद नं० ७६ ॥ श्रीराम च० मा० में बताया है कि—जासुनामबल शंकर काशी। देतसबहिं समगति अविनासी ॥ श्री शंकर जी ने स्वयं भी कहा है कि—काशीमरत जन्तुअबलोकी। जासुनामबल करौं विशोकी ॥ सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अन्तरयामी ॥ जिन प्रभु के नाम के सादर जपकी तो महिमा कह ही कौन सकता है। जब कि—बिबसहुं जासुनाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघदहहीं ॥ सादर सुमिरन जो नर करहीं। भववारिधि गोपद इव तरहीं ॥ बा० का० ११९ दो० ॥ पुनः पंचसर्गीय श्रीमन्महारामायणान्तरगत पृ० ७५ से ८१ तक श्लोक ३४ से ३७ तक में लिखाहै कि—

रामनाम्नःसमुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः । रूपंतत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः ॥ ३४ ॥ अकारः प्रणवेसत्त्व मुकारश्च रजोगुणः । तमोहलमकारस्स्यात् त्रयोऽहंङ्कारसुद्भवः ॥ ३५ ॥ प्रिये भगवतोरूपे त्रिविधो जायतेऽपि च । विष्णुर्विधिर्हरश्चैव त्रयोगुण विधारिणः ॥ ३६ ॥ चराचरसमुत्पन्नो गुणत्रयविभागतः । अतः प्रिये रमुक्रीडा रामनाम्नैव वर्तते ॥ ३७ ॥

अर्थ मोक्षफल रूप को देनेवाला जो प्रणव (ओंकार) है वह श्रीरामनाम से उत्पन्न हुआ है । और वेदतत्त्व के अधिकारी लोग इस श्रीरामशब्द को तत्त्वमसि का भी कारण मानते हैं । अर्थात् तत्त्वमसि शब्द भी श्री रामनाम से सिद्ध होता है ॥ ३४ ॥ अव श्री रामनाम से उत्पन्न महातत्त्व प्रणव के तीनों वर्णों को त्रिगुणमय दिखाते हैं यथा—प्रकृति का कार्य महातत्त्व त्रिविध अहंकारमय है । सो प्रणव के प्रथमवर्ण अकार सत्त्वगुणमयहै, द्वितीयवर्ण उकार रजोगुणमय है, तृतीय हलमकार प्रणव के तमोगुणमय है । जैसे प्रकृति कार्य महत्तत्त्व से सात्त्विक राजस तामस त्रिविध अहंकार उत्पन्न होता है । वैसे ही श्री रामनाम का कार्य प्रणव वर्णत्रयगुणमय है ॥ ३५ ॥ श्री शिव जो ने कहा कि हे प्रिये पार्वति ! षडैश्वर सम्पन्न भगवान् श्री राम जी के रूप से ब्रह्मा विष्णु महेश तीन रूप जायमान (उत्पन्न) होते हैं । यथा—ब्रह्मा का रूप रजोगुणमय है, विष्णुरूप सत्त्वगुणमय और श्री शिव जी का तमोगुण रूप है । यथा—शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंश ते नाना ॥ रा० च० मा० बा० कां० १४४ दो० ३६ ॥ हेप्रिये पार्वति ! जड़चेतनमिश्रित ब्रह्माण्ड सत रज तम इन गुणत्रय के विभाग से उत्पन्न हुआ है ! अतएव रमुक्रीड़ा धातु से श्री रामनाम का ही सर्वत्र रमनत्त्व सिद्ध है ॥ ३७ ॥ पृ० ८१ में ३६-४० को देखिये । यथा—

इत्यादयो महामन्त्रा वर्तते सप्तकोटयः । आत्मातेषां च सर्वेषां रामनाम्ना प्रकाशते ॥ ३६ ॥ नारायणादि नामानि कीर्तितानि वहून्यपि । सम्यग्भगवतस्तेषु रामनाम प्रकाशकः ॥ ४० ॥ और पृ० ८५ में नारायणो रकारः स्यादकारोनिर्गुणात्मकः । मकारोभक्तिरूपः स्यान्महाह्लादाभिधायिनि ॥ ५१ ॥ पृ० ८६ में—वेदसारं महावाक्यं मत्तत्त्वमसिकथ्यते । रामनाम्नश्च सत्सर्वं रमुक्री-

ह्यप्रवर्त्तते ॥ ५६ ॥ पृ० ८८ में-रकारोऽनलबीजंस्याद् ये सर्वे वाडवादयः । कृत्वा मनोमलंसर्वं भस्मकर्मं शुभाशुभम् ॥ ६२ अकारोभानुबीजं स्याद् वेदशा-स्त्रप्रकाशकः । नाशयत्येव सद्दीप्त्या विद्यतेहृदयेतमः ॥ ६३ ॥ मकारं चन्द्रबीजं च सदम्बुपरिपूरणम् । त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्व करोति च ॥ ६४ ॥ पृ० ८६ ॥ रकारो हेतु वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते । अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्ति हेतुकः ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रणव आदि सात करोड़ महामन्त्र हैं । उन सबकी आत्म स्वरूप और उन सबका परम प्रकाशक श्रीरामनाम है ॥ ३६ ॥ भगवान् के नारायण आदि बहुत से नामों का कथन किया गया है । किन्तु उन सम्पूर्ण नामों का प्रकाशक श्री रामनाम है ॥ ४० ॥ श्रीराम शब्द में जो रेफ है, वह नारायण रूप को अभिधान करता है । और मध्यवर्त्ती आकारनिर्गुण ब्रह्म के स्वरूप है, और परम आह्लाद देने वाली भक्ति का स्वरूप मकार है ॥ ५१ ॥ वेदकासार स्वरूप तत्त्वमसि महावाक्य कहा जाता है, वह महावाक्य श्री रामनाम में गतार्थ है । अर्थात श्री रामनाम से सिद्ध होता है । अतएव रमु यह धातु क्रीड़ार्थ में वर्तता है ॥ ५६ ॥ बड़वाग्नि, जठ-राग्नि आदिक जितनी भी अग्नि जगत में हैं । उन सबका कारण रेफ है । अग्नि वीज रेफ जापक के सम्पूर्ण मनोमल और शुभाशुभ कर्म को जलाकर भस्मसात कर देता है ॥ ६२ ॥ अकार सूर्य का कारण और वेदशास्त्र का प्रकाशक है । और भानु-वीज अकार अपने प्रकाश से जापक भक्त के मन में प्रविष्ट अविद्य से उत्पन्न अज्ञान अन्धकार को नाश करता है ॥ ६३ ॥ अमृत से पपिपूर्ण चन्द्रबीज मकार जापक भक्तों के, दैविक. ।भौतिक, अध्यात्मिक तीनों तापों को नष्ट करके शीतलता प्रदान करता है ॥ अर्थात् जीव के स्वरूपगत जो दिव्य अष्टगुण हैं, उनको प्रगट करता है ॥ ६४ ॥ तीनों गुणों के त्याग को वैराग्य कहा जाता है । उस वैराग्य का कारण श्रीराम शब्द गतरेफ है । और ज्ञान का कारण अकार है । और भक्ति का कारण मकार को जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

रकारो योगिनांध्येयो गच्छन्ति परमं पदम् । अकारो ज्ञानिनां ध्येयस्ते सर्वे मोक्षरूपिणः ॥ ६६ ॥ पूर्णनाम मुदादासाध्यायन्त्यचल मानसा ।प्राप्नुवन्ति

परांभक्ति श्रीरामस्य समीपताम् ॥ ७० ॥ अन्तर्जपन्ति ये नाम जीवनमुक्ता-भवन्तिते । तेषां न जायते भक्तिर्न च राम समीपकः ॥ ७१ ॥ जिह्वयाप्यन्तरे-णैव रामनाम जपन्तिये तेषां चैव पराभक्तिर्नित्यंराम समीपकाः ॥ ७२ ॥ योगिनो भक्ताः सुकर्म निरताश्च ये । रामनाम्नि रताः रमुक्रीडात एव वै ॥ ७३ ॥कवीनां च यथानन्तो भक्तानामञ्जनांसुतः । शक्तीनां यथा सीता रामो भगवता मपि ॥ ७६ ॥ कोटि ज्ञानैश्च बिज्ञानं कोटिध्यानं समाधिभिः । सत्यं बदामि तेस्तुल्यं रामनाम प्रबर्त्तते ॥ १०४ ॥ सर्वेन्द्रिय जितो भूत्वा पूतोबह्यान्तरस्तथा । इत्थंनाम जपेनित्यं रामरूपोभवेन्नरः ॥ १०७ ।

उपर्युक्त श्लोक ३४ से १०७ तक श्रीमन्महारामायण में उमामहेश्वरसंवादमें ५२ सर्ग के हैं ॥ अर्थ—श्री रामशब्द में जो रेफ हे, सो योगियों के ध्यान का लक्ष्य है। जिस लक्ष्य में मनको एकाग्र करके भगवद्धाम को जाते हैं। और आकार ज्ञानियों का ध्येय है। जिस ध्येय के प्रभाव से वे सब ज्ञानी जीवनमुक्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ दासरस निष्ठ महात्माबृन्द आनन्द के सहित अचलमनसे पूर्ण रामनाम को ध्यान करते हैं। अतएव उन दासभाव निष्ठों को श्रीराम समीप कारिणी पराभक्ति प्राप्ति होती है ॥ ७० ॥ जो व्यक्ति वैखरी परा पश्यन्ति आदि वाणी का अवलम्व न लेकर अन्तरनिष्ठ होकर श्री रामनाम जपते हैं । सो जीवनमुक्ति को प्राप्त होते हैं, किन्तु उनको श्रीराम समीप कारिणी पराभक्ति नहीं मिलती है ॥ ७१ ॥ हृदय में अनुराग सहित जिह्वा से श्री रामनाम जपने वालों को नित्य भगवत् समीपता प्रदान करने-वाली पराभक्ति प्राप्त होती है ॥ ७२ ॥ योगी, ज्ञानी, भक्ततथा कर्मकाण्डी यह चारों साधक श्री रामनाम रत रहते हैं। अतएव रामनाम से निष्पन्न रमुक्रीडा कहा जाता है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार सभी कवियों में भगवान् शेष जी और भक्तों में श्री हनुमान जी शक्तियों में श्री सीता जी और अवतारों के वीच में भगवान् श्री राम जी प्रधान हैं। उसी प्रकार सभी मन्त्रों में श्री रामनाम प्रधान है ॥ ७६ ॥ तीर्थ, दान, योग, व्रत, यज्ञ, जप, तप और अनेक प्रकार का ज्ञान समाधि सहित विज्ञान इन सबके कोटान कोटि सदृश श्री रामनाम है, शिव जी कहते हैं कि मैं यह सत्य कहता हूँ ॥ सव इन्द्रियों को जीतकर भीतर बाहर से शुद्ध होते हुये जो नित्य श्री रामनाम को जपते हैं, वे श्री राम जी की सारूप्य मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ १०७ ॥ श्री हनुमान्ना-टक का प्रथम श्लोक है कि—

कल्याणानांनिधानं कलिमलमथनं पावनंपावनानां; पाथेयंयन्मुमुक्षोस्सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनंसज्जानानां, बीजंधर्मद्रुमस्य प्रभवतुभवतां भूतयेरामनाम ॥ १ ॥

अर्थ—श्री रामनाम समस्त कल्याणों का दिव्य निवास स्थान है । अर्थात् श्री रामनाम जपने से सभी प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं । ज्ञान वैराग्य आदि सभी साधन अपने साध्य समेत श्री रामनाम से ही प्राप्त होते हैं । और कलियुग के सभी पाप ताप को नाश कनने वाले हैं । पुनः श्री गंगादिक पावन तीर्थों को भी परमपावन करनेवाले हैं । और मुक्तिस्वरूप परमधाम (भगवद्धाम) प्राप्त करने की इच्छा करनेवालों को शीघ्र ही भभवद्धाम प्राप्तिके लिये परमपुष्ट मार्गव्यय हैं । श्रीवाल्मीक जी इत्यादि कवि और सभी प्रवक्ताओं के श्रेष्ठ बचनों को एकमात्र विश्राम देनेवाले विशदस्थान श्री रामनाम ही हैं । और श्री रामनाम सज्जनों के परमजीवन है । पुनः श्री रामनाम सामान्य एवं विशेष समस्त धर्मो के वीज हैं । सादर सप्रेम श्री रामनाम जप करने से निश्चय ही श्री राम जी की प्राप्ति होती है ॥ स्वामी श्री रामनारायणदास जी शास्त्री द्वारा प्रकाशित श्री रामनाम महिमा नामक पुस्तक के संग्रहीत प्रमाण ॥ पृ० ६ से प्रारम्भ ॥

ततोऽसौ लब्धतारुण्यः शुकोगणिकयातदा । रामेति सततंनाम पाठ्यते सुन्दराक्षरम् ॥ रामनामपरंब्रह्म सर्वदेवाधिकं महत् । समस्तपातकध्वंसि स शुकास्तु सदापठन् ॥ रामोचारणमात्रेण तयोश्च शुकवेश्ययोः । विनष्टमभवत्पापं सवमेव सुदारुणम् ॥ (पद्मपुराणे क्रिया योगसारखण्डे अ० १५ श्लोक २७-३०) पृ० ११ में—मधुरमधुरमेतन्मंगलं मगलानां । सकलनिगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम् । सकृदपि परिगीतं श्रद्धयाहेलया वा भृगुवर ! नरमात्र तारयेद् रामनाम॥ (बृहद्नारदीयपुराणे प्रभासखण्डे) पृ० १४ से—ब्रह्माविष्णुमहेशाद्याः यस्यांशाल्लोक साधकः । तमादि देवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ (स्कन्दपुराणे) पृ० १५—रामेति द्वयक्षरं मन्त्रं मरणे यदिसंस्मरेत् । नरो न लिप्यतेपापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ (बृहद्ब्रह्मसंहितायाम्) पृ० २५—नाम्ना सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत्फलं भवेत् । तत्फलं लभतेनूनं रामोच्चाणमात्रतः ॥ [ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड अ० १११ के श्लोक १८-२१]

अर्थ—गणिका के द्वारा वह तोता तारुण्यता को प्राप्त हुआ। निरन्तर सुन्दर अक्षर श्री रामनाम पढ़ने लगा। रामनाम ब्रह्म है, सम्पूर्ण देवों से अधिक प्रभावशाली है। इसका रटन करने मात्रसे उन दोनों शुक और वेश्या के संपूर्ण दारुण पाप नष्ट हो गये। १८॥ यह मधुर मधुर श्री रामनाम संपूर्ण मंगलों को देनेवाला, अमंगलों का नाशक, मकान के स्तम्भ सदृश्य वेदों का रामनाम स्तम्भ है। सत्‌चित् आनन्द स्वरूप का जो दर्शन है, वही भक्तिरूप उत्तम फल है। भृगुवर! जो कोई श्रद्धा से अथवा अश्रद्धा से एकबार भी श्री रामनाम का उच्चारण करता है। वह मनुष्यमात्र को भवसागर से पार कर देता है॥ ३१॥ ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सम्पूर्ण लोक साधक (उत्पन्न) हुये हैं, उन परमविशुद्ध आदिदेव श्री राम जी को मैं भजता हूँ॥ ४१॥ यदि मनुष्य मरते समय श्रीराम दो अक्षर का स्मरण करता है, तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जैसे कमल का पत्ता पानी से अलग रहता है॥ ॥ ४५॥ हजारों दिव्यनामों के स्मरण करने से जो फल मिलता है, निश्चय ही 'रामशब्द' के उच्चारण मात्र से वही फल प्राप्त होता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होई श्रुतिगावा॥ अर० कां० ३१ दो०॥ वारकराम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥ अयो० कां० २१७॥ नामलेत भवसिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मनमाहीं॥ अन्य साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या? श्री रामनाम के ही प्रभाव से शंकर जी स्वयं अविनासी पद पाये और काशी में मरने वालों को मुक्ति देते हैं॥ नाम प्रसाद शम्भु अविनासी। साज असंगल मंगलरासी॥ वा० कां० नाम वन्दना २६ दो०॥ जासुनाम बल शंकर काशी। देत सबहिं समगति अविनासी॥ किष्किन्धा कां० १० दो०॥

—:※:—

॥ श्रीसीताशरणंमम श्रीरामः शरणंमम ॥

श्रीसीताराम रूपमाधुरी

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा

ले०—सुरेन्द्रकुमार "शिष्य" एम० ए० एम० एड 'साहित्यरत्न"

रामस्य नाम रूपं च लीलाधाम परात्परम् ।

एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥

वशिष्ट संहिता के इस निरूपण के अनुसार भगवान् श्री सीताराम जी के नाम रूप लीला धाम चारों सच्चिदानन्दमय हैं । इन चारों में से किसी एक का भी आश्रय ग्रहण करनेवाला जीवात्मा आनन्दसाम्राज्य का अधिष्ठाता (अधिकारी) बन जाता है । इन चारों का आश्रयण कर्ता तो श्रीरामजीका स्वरूप ही हो जाता है । इतना अवश्य ही हो सकता है कि नाम लीला और धाम का प्रभाव असुर स्वभाव वाले प्राणियों पर तत्काल दृष्टिगोचर न होकर कालान्तर में अपना प्रभाव प्रगट करे । किन्तु रूप में कुछ ऐसी विशेष जादू है कि वह क्षणमात्र का भी विलम्ब न करके तत्काल ही द्रष्टा के शिर पर चढ़कर सर्वथा अपने विवश करके अपनी कीर्ति के निर्मलगीत गवाने लगता है । रूपके ऐसे चमत्कारिक प्रभाव ने ही नाम लीला धाम को अछूता नहीं रहने दिया । उन तीनों पर अपने स्वरूप की छाप छोड़ दी । ज्ञानगम्य वेदान्तवेद्य योगीन्द्रमानसविहारी परम प्रभु के महिमामण्डित नामों की शृंखला में "चितचोर" नाम उनके अखिलब्रह्माण्ड के नायकत्व को विडम्बना सी करता प्रतीत होता है । पर वह रूपकाभूप "विश्वविलोचनचोर" बनकर ही शोभायमान होता है । तो भक्त उसे "चौराग्रगण्य पुरुषं नमामि" कहकर सम्बोधित क्यों न करें ? रूपके बिना लीला की कल्पना ही अनुमान से परे की बात है । प्रत्युत् रूपके प्रतिष्ठित होते ही उसी क्षण कुछ न कुछ लीला अनायास ही प्रारम्भ हो जाती है । और धाम तो रूपके भूप के साथ ही साथ सर्वत्र रहता है । यथा—"अवध तहाँ जहँ राम निवासू" । तात्पर्य यह है कि रूपने नाम लीला धाम तीनों पर अपना प्रभाव जमा लिया है । यह सुनकर कोई 'ज्ञानमानविमत्त" बोल उठा कि जहाँ तक रूपकी कल्पना है, वह सब माया संवलित उपाधिमात्र है । परमतत्त्व नहीं हो सकता । किन्तु बात ऐसी नहीं है । वास्तविकता यह है कि भगवद्विग्रह में देही देह विभाग नहीं होता है । अर्थात् शरीर और आत्मा की भिन्नता का भेद नहीं रहता है । जैसे सभी जीवात्माओं के प्रारब्धमय शरीर पंचतत्वों से निर्मितहोने के कारण शरीर

शरीर जड़ और नाशवान तथा आत्मा उससे भिन्न सच्चिदानन्द परमात्मा का अंश है। परन्तु भगवान् के मंगलमय विग्रह और आत्मा की भिन्नता न होकर एकत्व ही रहता है। श्रीरा० च० मा० अयो० कां० १२७ दो० में महर्षि श्री वाल्मीकि जी ने श्री राम जी से कहा है कि—"चिदानन्दमय देह तुम्हारी।" किन्तु इस रहस्य को सर्वसामान्य लोग नहीं जानते। "विगतविकार जान अधिकारी।" भगवान् का विग्रह दिव्य सच्चिदानन्दमय है। इस बात को वही विशेष अधिकारी भक्त जानते हैं। भगवत्कृपा से जिनका मन सर्वथा निर्विकार होकर अहर्निश भगवत्पादारविन्द मकरन्द रस का रसास्वादन करता रहता है। किन्तु जो व्यक्ति विद्या को पढ़कर पाण्डित्याभिमान में चूर होकर शास्त्राध्यन करता है, अथवा ज्ञान के अभिमान से विमत्त हो जाता है, उसे तो नित्य सच्चिदानन्दमय राम भानुकुल केतु का मंगलमय विग्रह भी प्राकृतिक ही दीखता है, और दीखेगा। भगवद्विग्रह यथावत् देखने के लिये सद्गुरु के द्वारा भावनामय दिव्यचक्षुओं की प्राप्ति की परमावश्यकता है। श्रीवाल्मीकि जी श्री रामनाम जपके प्रभाव से सर्वथा निर्विकार होकर भगवतत्त्ववेत्ता हो गये थे। इसलिये उन ने कहा कि-"रामसरूप तुम्हार, बचनअगोचर बुद्धिपर। अविगत अकथ अपार, नेतिनेति नित निगमकह॥ अयो० का० १२६ दो०॥ अतः उस सौन्दर्यसागर परमरसाम्बुनिधि मंगलमय रूप का दर्शन ही षट्दर्शनों के अध्यन का परम फल है। यदि प्रभु का विग्रह मायिक है ऐसी धारणा बन गई तो पण्डित और मूर्ख में समानता ही है, कुछ भी अन्तर नहीं है।

मानव के मानवता की सफलता तभी है, जब कि इन चर्मचक्षुओं से भली भाँति उस परमरूप सागर में अवगाहन करे। हमारी आँखें उस परमतत्त्व को देखने के लिये ही व्याकुल हैं, जिसे देखने के बाद फिर और कुछभी देखना न रह जाये। वह तत्त्व क्या और कैसा है ? जब इस बात का बिचार करते हैं तो सर्वप्रथम यही तर्क उपस्थिति होती है कि जिसने नेत्रों को देखने की शक्ति दी है, उसी तत्त्व को देखने हेतु ही नेत्र अकुला रहे होंगे। नेत्रों के गोलक में श्यामपुतली में ही तो देखने की शक्ति निहित है। तो अंशभूता पुतली का जो पूर्ण स्वरूप सर्वाङ्ग नख ते शिख तक नीलाभ ज्योतिर्मय होगा, वही तो नेत्रों के दर्शन का विषय होगा। इसीतथ्य का उद्घोषक कविसंदेश देने लगा कि—"कोटिभानु जो उदय हों, तबहुं उज्यार न होय। तनिक श्यामकी श्यामता, जौं दृगपरी न होय"॥ अतएव वह लोकोत्तर लावण्यधाम अपने रूप के जाल में फँसाकर जीवमात्र को अनुरागी बनाने हेतु "श्री दशरथअजिर विहारी" बनकर प्रतिष्ठित हुआ। तभी तो बालकरूप को ही जिस किसी ने देखा,

वह ठगा सा रह गया, सर्वदा के लिये उसी का हो गया । कवित्तरामायण में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लिखा है कि—"अवधेश के द्वारेसकारे गई, सुतगोद में भूपति लै निकसे । अवलोकिहौं सोचविमोचन को, ठगिसी रहि जो न ठगे धिकसे। पद १—महा कवि पुकारने लगे कि—अरे मुमुक्षुजनों ! आओ । इस रूपासव का पान करने वाले उन्मत्त भ्रमर बनकर भी तो देखो । तुम्हें इसीक्षण जीवन का चरम फल प्राप्त हो जायेगा । इससे आगे भी क्या कोई साध्य होता है ? नहीं । "प्राण प्राणके जीव के जिव सुखके सुखराम" तो यही हैं । इन्हें छोड़कर भटकना मृगतृष्णा मात्र है । पुनः-अरविन्द सो आनन रूपमरन्द, अनन्दित लोचन भृंग पिये । मन मो न बस्यौ अस बालक जौं, तुलसी जगमें फल कौन जिये ॥ पद २ ॥ ये तो धूलधूसरित वेष में भी कोटि कोटि अनङ्ग की रूपमाधुरी को लज्जित करने वाले हैं ? अति सुन्दर शोभित धूरिभरे, छबिभूरि अनंग की दूरि धरैं । क्यों न हो इनके सौन्दर्यकी तुलना करने के लिये सरस्वती ने तीनों लोकों और चौदहों भुवनों नवों खण्डों और इक्कीश ब्रह्माण्डों को छानडाला । परन्तु असफलता ही हाथ लगी । इनका सौन्दर्य तो अनुपमेय है न ? तुलसी तेहि औसर लावनता, दश चारि नौ तीन इकीश सबै । मतिभारति पंगुभई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न फबै ॥ पद ७ ॥ अस्तु सुन्दरता की चर्मावधि श्री राघवेन्द्र की रूपमाधुरी समस्त जगत के चराचर प्राणिवर्ग को निहाल कर देनेवाली है । नर हो या नारी बाल हो या ,वृद्ध जिसने भी एकवार देखा, वह देखता ही रह गया, ठगा सा रह गया, आपा भूलकर विमुग्ध होगया ।

करतलबाणधनुष अतिसोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिनवीथिन विहरें सब भाई । थकितहोहिं सब लोग लोगाई ॥

वा० कां० २ ४ दो० ॥ तनक हँसिहेरे री राजकुमार । बुधिबौराय हिरायजातजग रहत न देह सम्हार ॥ दूरहिं ते जाकेतन हेरत, मदनभयो जरिछार । सो त्रिपुरारि भिखारि वेषधरि, अलख जगाई द्वार ॥ सपनेहुं निकट जाति नहिं जाके माया मोह विकार । सो भुसुण्डि शिशुचरित विलोकत; फँसे प्रेम के जार ॥ सुनतवोल विनमोल विकानी शारद सी हुशियार । 'रामसहाय' जाय सोइ जाने, अवध नगर का बजार ॥ यह रूप माधुरी अपना रूपजाल डालकर किसे बेसुध नहीं बना देती । ऐसी ही अभिव्यक्ति श्री मिथिलापुरी निवासिनी महिलाओं की मंगलमय मंजुल वाणी द्वारा व्यक्त हुई है। उन सबों की अनुभूति है कि—कोई भी शरीरधारी इस रूपमाधुरी को देखकर विमुग्ध हुये विना नहीं रह सकता है । यदिकोई निर्जीव हृदयहीन या दृष्टिहीन हो, तो उसकी चर्चा हम नहीं चलाते । परसजीव प्राणिवर्ग के लिये हमारा कथन अकाट्य है ॥

कहहु सखी अस को तनधारी । जो न मोह यहरूप निहारी ॥ बा० कां० २२१ दो०॥ इतने दावे के साथ तथ्यपूर्ण सिद्धान्त निरूपण वे निराधार ही नहीं कर बैठी थीं । प्रत्युत् उनकी वाणी ठोस प्रमाण के आधार पर स्फुटित हुई थी । उन्होंने नामरूपात्मक जगत को मिथ्या माननेवाले, । ज्ञानियोंमें शिरोमणि देहाभिमानशून्य योगिराज श्री विदेह जी महाराज की गति को प्रत्यक्ष ही तो देखा सुना है । उन्हें अपने महाराज की महिमा का यथार्थ बोध है कि—

जासुज्ञानरबि भवनिशि नाशा । बचन किरन मुनिकमल बिकाशा ॥

अयो० कां० २७७ दो० ॥ वे सब जानती थीं, कि हमारे राजर्षि को किसी भी इन्द्रिय का विषय अपनी ओर आकर्षित करनेमें समर्थ नहीं है । क्यों कि—जे विरंचि निरलेप उपाये । पद्मपत्र जिमि जग जल जाये ॥ अयो० कां० ३१७ दो० ॥ ऐसे जीवनमुक्त श्री विदेहराज इसमधुर मनोहर मूर्ति को देखकर आपा खो बैठे थे । ज्ञान निष्ठा से च्युत हो गये । ब्रह्मानन्द न जाने कब उनके हृदय से निकलकर श्रीरामरूप परमानन्दसागर में विलीन हो गया था । नेत्रों की टकटकी सी लगी हुई थी । सहज विरागीमन विबश होकर अनुरागी बन गया था । उनका हृदय कहता था कि यह सौन्दर्य कभी मिथ्या हो ही नहीं सकता । यही तो परम सत्य है । तथापि (फिरभी) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का बिवेक अपनी दुर्दशा से उबरने की सतत चेष्टा कर रहा था । उस समय उनके मनमें कैसा ऊहापूहा चल रहा था । बहुत समय बीतने पर बड़े साहस के साथ धैर्य धारण करते हुये, विश्वामित्र जी को प्रणाम करके प्रेम-विह्वल वाणी से पूछा कि—

कहहुनाथ सुन्दर दोउ बालक । मुनिकुलतिलक कि नृप कुलपालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहिगावा । उभय बेषधरि की सोइ आवा ॥
सहज विरागरूप मनमोरा । थकित होत जिमि चन्दचकोरा ॥
ताते प्रभु पूछौं सतिभाऊ । कहहुनाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इनहिंविलोकत अति अनुरागा । बरबश ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ॥

बा० कां० २१६ दो०—इस परमानन्द की तुलना में वह ब्रह्मानन्द पासंगभर भी तो नहीं उतरता । सोई सुखलवलेश, जिनवारक सपनेहुं लहेउ । ते नहिं गनहिं खगेश, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति ॥ अस्तु अब तो समस्त विदेहनगर में इस रूपमाधुरी का डंकाबजगया है । यद्यपि जनकपुरी सौन्दर्य की ही नगरी थी, और वहाँ के निवासी-

नगर नारिनर रूप निधाना । सुघर सुधर्म सुशील सुजाना ॥ जिन्हहिं देखि सबसुर नरनारी । भये नखत जनु विधु उजियारी ॥ वा० कां० ३१४ दो० ॥ इसप्रकार वर्णित किये गये हैं । यहाँ तक कि वहाँ श्वपच किरात धर्मव्याधादि भी ब्रह्मपरायण परमहंस स्थिति में प्राप्त थे । ऐसे सभी जीवनमुक्त नरनारी इस सौन्दर्य माधुर्य रस के प्रमत्त भ्रमर बन गये । धाये कामधाम सब त्यागी । मनहुं रंक निधि लूटनलागी ॥ निरखि सहज सुन्दर दोउभाई । होहिंसुखी लोचनफल पाई ॥ वा० कां० २२० दो० ॥ उस समय मिथिला के बालकबृन्द अपने मनोभव "किशोर" कवि की वाणी में इसप्रकार व्यक्त करते हैं कि—

मिथिलापुरबासी हम बालक विरागी; जगरूप कै न रागी तिन्हैं बागी बनायेदेत । चित्तकीप्रतीति हमें सततरही है मित्र; परमविचित्र चित्र ताहु के दिखायेदेत ॥ ब्रह्मज्ञानियों का गढ़ परमपुरी में आज; रूपकेअगारे देखो आगी लगाये देत । श्यामगौर रूपकी "किशोर" मंजुमूरति ये; सारे ब्रह्मज्ञान की सफेदी ही मिटाये देत ॥

बालकों की दशा तो लुब्धभ्रमर जैसी है ही । अबोधशिशु भी किसी न किसी बहाने उनका स्पर्श पा लेना चाहतेहैं । बालकबृन्द देखि अतिशोभा । लगे संग लोचन मन लोभा ॥ सब शिशु यहिमिस प्रेमवश परसि मनोहरगात । तनपुलकहिं अतिहरष हिय; देखि देखि दोउभ्रात ॥ वा० कां० २२४ दो० ॥ अब युक्तियों की दशापर दृष्टि-पात कीजिये । युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं रामरूप अनुरागीं ॥ वस्तुतः सभी युवतियों का हृदय अनुराग रंग में रँग गया है । इस विश्वविमोहन सौन्दर्य के अंग अंग में कोटिकाम की कमनीयता को मात करनेवाली रूपमाधुरी को देखकर सभी वलिहारी हो रही हैं । उन्होंने ऐसा अलौकिक सौन्दर्य इसके पूर्व कभी कहीं देखा सुना भी तो नहीं है । अतः उनकी वाणी सहज ही स्फुरित होने लगी ॥ यथा—

कहहिंपरस्पर बचन सप्रीती । सखिइन कोटिकाम छविजीती ॥ सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । शोभा असि वहुँ सुनियत नाहीं ॥ वा० कां० २२० दो० ॥

किसी सखी ने पूछही तो लिया कि— 'आली देवगणों की शोभा जो शास्त्रों में वर्णित है तथा ब्रह्मा विष्णु महेश त्रयदेवों के रूप की पुराणों में बहुत प्रसंशा की

गई है। उस विषय में तुम्हारे क्या बिचार हैं ? तब तो उस भोली सखी को वह प्रवीणासखी सौन्दर्य बोधका पाठ पढ़ाते हुये समझाने लगी। कि "अरीवावरी? अपने मानवसमाज में कहीं कोई चारहाथ एवं चार या पाँच मुखों वाला व्यक्ति सुन्दर कहलाता है क्या ? यहाँ तो किसी के एक अँगुली भी अधिक हो जाये, तो वह छंगा व्यक्ति समाज में अशोभित माना जाता है। अस्तु इस सुन्दरता के सागर राजकुमारों की तुलना में वे देव अथवा त्रयदेव कोई भी टिकते नहीं हैं। क्यों कि—विष्णु चारि-भुज विधि मुखचारी। विकट वेष मुखपंच पुरारी ॥ अपरदेव अस कोउ न आही। यह छबिसखी पटतरिय जाही ॥२२०॥ इस रूपमोहनी की जादू से मोहित होकर एक सखी तो अपने महाराज श्री विदेह जी के विवेक पर ही शंकित होकर कहने लगी कि—"अरी सखियों ! अपने महाराज श्री को लोग भले ही ज्ञान शिरोमणि कहते हों। किन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें तो हमारे बरावर भी बुद्धि नहीं है। यदि उनमें कुछ भी समझ होती, तो क्या इस लावण्य महोदधि श्यामले राज-कुमार को अपनी श्री किशोरी जी अर्पण न कर देते ?, भला क्या इस शुभ कार्य में भी विलम्ब करना चाहिये ? मुझे तो उनमें अविवेक् का ही दर्शन हो रहा है। फिर उसने कह ही तो दिया कि—

सखि परन्तु पन राव न तजई। विधि बश हठि अविवेकहिं भजहीं ॥२२॰ दो०

ऐसा विचार केवल एक ही सखी के मन में उठा हो, सो बात नहीं है। जनकपुर के सभी नरनारी इसी विचारधारा में निमग्न थे। भले ही वे सब अपने विचार प्रगटरूप में व्यक्त न कर पाते थे। परन्तु उन सबको श्री विदेहराज दुराग्रही, हठी प्रतीत होते थे। अतएव महाराज की जड़ता को दूर करने के लिये मन ही मन विधाता से प्रार्थना कर रहे थे।

रामरूप अरु सियछबि देखें। नरनारिन परिहरी निमेषें ॥ सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। विधि सन विनय करहिं मन माहीं ॥ हरुविधि वेगि जनक जड़ताई। मति हमार असि देहि सोहाई ॥ विन बिचार पन तजिनर नाहू। सोयराम कर करै बिबाहू ॥ जग भल कहै भाव सब काहू। हठकीन्हें अंतहुँ उर दाहू ॥ यहि लालसा मगन सब लोगू। वर साँवरो जानकी जोगू ॥ ॥ २४६ ॥

केवल सामान्य प्रजावर्ग पर ही श्रीरामरूप के मोहनी मन्त्र का जादू चला हो,

ऐसी बात नहीं । राजर्षि की प्रियतमा अम्बा श्री सुनयना जी को भी लग रहा था कि-महाराज श्री की-बुद्धि पर पाला पड़ गया है । अन्त में उनको भी कहना ही पड़ा कि-भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि गति कछुजात न जानी ॥ २५६ दो० ॥ उधर श्री मिथिलेशराज किशोरी जू भी अपने पिताजी के भंयकर हठ से क्षुब्ध हो रही थीं । तथा अनुभव करने लगी थीं कि पिता जी को लाभ हानि का सामान्य ज्ञान तक नहीं रह गया है । अहहतात दारुण हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥ सचिव सभय सिख देई न कोई । बुधसमाज बड़ अनुचित होई ॥ २५८ दो० ॥ मानबहृदय से अनभिज्ञ कोरा तार्किक यह कह सकता है कि-अपने पिता जी के विषय में ऐसा सोचना उचित प्रतीत नहीं होता, परन्तु श्रीरामरूप माधुरी का जादू ही ऐसा है कि-जो उचित अनुचित का विवेक नहीं रहने देता है । अस्तु श्री जनकनन्दिनी जू तो अपनी "निर्जनिधि" को देखकर कब की बावली सी हो चुकी थीं । यथा-देखिरूप लोचन अकुलाने । हरषे जनु निजनिधि पहिचाने ॥ थकेनयन रघुपति छविदेखें । पलकनि हूँ परिहरीं निमेषे ॥ अधिकसनेह देहभइ भोरी । शरदशशिहिं जनु चितव चकोरी ॥ दो० २३२ ॥ इस दशा में "जित देखौं तित राम मई" सृष्टि का दर्शन होने लगता है क्यों कि नेत्र इन्हें देखलेने के बाद फिर और कुछ देखना ही नहीं चाहते हैं । भले जगत को देखने का बहाना किया जावे परन्तु यथार्थतः सर्वत्र इन्हीं का दर्शन होने लगता है । यथा—

देखन मिस मृग विहँग तरु फिरइ वहोरि वहोरि । निरखि निरखि रघुवीर छवि वाढ़ै प्रीति न थोरि ॥ वा० कां० दो० २३४

ऐसी स्थिति में परमात्मा अपनीशक्ति को वरण करनेके लिये लालायित होता है । तभी वह स्वयं भी भवचाप भंजन करके वरबेष (दूलहरूप) धारी बनता है । एक तो वैसे ही उसका स्वरूप अप्रतिम था । जब वह वर (दूलह) बना, तबतो उसके सौन्दर्य सुधासागर का पान करने के लिये, देवलोक में हलचल मच गई । देवगणों ने इसरूप का निरीक्षण करने हेतु पाँच पंच नियुक्त किये, वे थे ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र और देवसेनापति स्वामी कार्तिक जी । अनुपमेय सुन्दर लोकोत्तर लावण्य पर दृष्टि पड़ते ही भगवान् शंकर अपार आनन्दाम्बुनिधि में निमग्न हो गये । उनका मनमयूर नृत्य करने लगा । रोम रोम फरकने लगा । नेत्र रसविभोर हो गये । रामरूप नखशिखसुभग वारहिंवारनिहारि । पुलकगात लोचनसजल उमासमेतपुरारि॥३३५दो०

भगवान् शंकर जी का तीसरा नेत्र संहारक होने के कारण उसे वे प्रायः बन्द ही रखते हैं। उसका प्रयोग यदा कदा ही करने के लिये उन्हें विवश होना पड़ता है। परन्तु आज उन्हें अपने पाँचमुखों के दश नेत्रों से तृप्ति न हो रही थी। उनके तीसरे नेत्र श्री राम जी के दूलह रूप सौन्दर्य माधुर्यार्णव में गोते लगाने के लिये आतुर हो रहे थे। अस्तु पाँचों मुखों के तीसरे नेत्र खुले विना नहीं रह सके। अधिकांश लोगों को शंका थी कि अब प्रलयाग्नि निकलेगी क्या ?

किन्तु यह देखकर सभी विस्मय विमुग्ध रह गये कि—उन प्रलयंकर नेत्रों से आज अग्नि बर्षा तो नहीं (प्रभु प्रेमाश्रुओं की) जल वर्षा हो रही है। पन्द्रहों नेत्र झरने की भाँति झर झर बरस रहे हैं। अग्नि से ही जल की उत्पत्ति वेद वर्णित है॥ यह तथ्य सभी को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो गया। उस समय शंकर जी इतते आत्मविभोर थे कि उन्हें विकटवेष कहे जाने की चिंता नहीं रह गई थी। "विकठ वेष मुखपंच पुरारी" कहा जावे तो कहा जावे। उन्हें अपने पन्द्रहोंनेत्र आज अत्यन्त प्रिय लग रहे हैं॥

शकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अतिप्रिय लागे॥ ३१७ दो०॥

अन्य सभी की अपेक्षा भगवान् विष्णु अधिक सौन्दर्यमूर्ति हैं, इसीलिये श्री जी सर्वदा रीझकर उन्हीं के चरणों की दासी वनी रहती हैं। जिनके मोहनीरूप को देख कर कामारि कहलानेवाले भगवान् शंकर भी कामातुर हो गये थे किन्तु आज वही परम शोभाधाम किसी अलौकिक सौन्दर्य सिन्धु में डूबे जा रहे थे। उन दम्पति पर भी श्रीराम रूपमाधुरी का जादू बिना चले न रहा। "हरि हितसहित राम जवजोहे। रमासमेत रमापति मोहे॥" बूढ़ेबाबा चतुरानन ही कहाँ पीछे रहते ? स्वेतदाढ़ी से उनको बृद्धावास्था प्रकट हो रही थी। बड़े ही पश्चाताप के साथ वह सोच रहे थे कि—सृष्टिनिर्माण में मुझसे भारी भूल हो गई। मैंने विपुलनेत्रवाले वहुत जीवधारी वनाये, किन्तु अपने शरीर में अधिक नेत्र न बना पाया। आज यदि मेरे शरीर में वहुत नेत्र होते तो मुझे न जाने कितना आनन्दलाभ होता। परन्तु अब क्या करूँ ? विवश हूँ। "निरखि रामछवि विधि हरषाने। आठैनयन जानि पछिताने" ॥ ३१७ दो०॥ इन बूढ़ेबावा की अपेक्षा स्वामी कार्तिक जी का आनन्द डेढ़गुना उमढ़ रहा था क्यों कि उनके बारह नेत्र थे। "सुरसेनप उर वहुत उछाहू। विधिसेडेवढ़लोचन-लाहू" ॥ ३१७ दो०॥ देवेन्द्र के दुराचार के प्रतीक सहस्रनेत्र आज के पूर्व भले ही निन्दनीय रहे हों। किन्तु श्री राम जी के दूलहरूप ने उन्हें आज महत्त्वपूर्ण वना दिया। उनके वे सहस्र नेत्र आज परम प्रशंसनीय हो गये थे। आज तो देवेन्द्र ही

सबकी स्पृहा के पात्र बन गये थे ॥

रामहिं चितव सुरेशसुजाना । गौतमश्राप परमहित माना ॥
देवसकल सुरपतिहिं सिहाहीं । आज पुरन्दरसम कोउनाहीं ॥ ३१७ दो० ॥

देवसमाज अपने पंचोंकी इस रूपाशक्त दशाको देखकर सबके सब दूलहरूप-माधुरीरस का पान करके परमानन्दाबुनिधि में निमग्न हो गये ॥ "मुदित देवगन रामहिं देखी ।" क्यों न हो ? इस वरबेषधारी रूपकेभूप को स्वयं सौन्दर्यका देवता कामदेव अपनी पीठपर चढ़ाकर नृत्य कर रहा है । तो उसे देखकर किसकामन वश में रहेगा, पागल न बन जायेगा ? आगे देखिये—जब वह रूपकाभूप दूलह बनकर मण्डप में प्रतिष्ठित हो गया । तब "रामचन्द्र मुखचन्द्रछवि लोचन चारु चकोर । करतपान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर ॥ ३२१ ॥ सभी देखने वाले आतम-विभोरहोकर एकटक रूपमाधुरी का पानकर रहेथे । श्रीमिथिलानिवासी तो श्रीकिशोरी जू के प्रगट होनेके कारण प्रेमकी मूर्ती थे । और देवता तो स्वाभाविक रूपाशक्त होते हैं । अब कुछ क्रूरस्वभाव तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ड से उपराम चित्तवाले मुनिजनों की दशा देखिये । प्रथम तो श्री विश्वामित्र जी की दशा देखिये कि—"पुनि चरणनि मेले सुतचारी । रामदेखि मुनि देहविसारी ॥ भयेमगन देखत मुखशोभा । जनुचकोर पूरन शशिलोभा" ॥ बा० कां० २०७ दो० ॥ श्रीरामजी को देखकर शरीर की स्मृति न रही । मुख की मंगलमय मंजुल माधुरी देखकर एकटक देखते ही रह गये ॥

पुनः—दण्डकारण्य की यात्रा समय मार्ग में अनेक मुनियों के चित्तको चुराते हुये, परमानन्दसागर में डुबाते हुये. दण्डकारण्य में प्राप्त हुये । वहाँ बन में रहनेवाले सर्वथा निर्विकारात्मा आत्मरमण महर्षियों की दशा देखिये । अगस्त जी के आश्रम में—'मुनिसमूह में बैठे सन्मुख सबकी ओर । शरद इन्दुतन चितवत मानहुं निकर चकोर" ॥ आरण्य कां० १२ दो० ॥ अनेकमुनि जन चकोरवत एकटक रूपमाधुरी पान कर रहे हैं ॥ पुन;—देखि रामसुखपंकज मुनिवर लोचन भृंग । सादर पानकरत अतिधन्य जन्म सरभंग ॥ आ० कां० ७ दों० ॥ श्री सरभंग जी के नेत्र रूपी भ्रमर श्री राम मुखकमलछवि रस का अवाध पान कर रहे हैं ।

यहां—भगवत गुणदर्पण पृष्ट ४४ से इस श्लोक को लिया है— और

"पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिस्तत्र भोक्तु-मैच्छत्सुविग्रहम् पद्मपु० ॥ मानस सिद्धान्त पृ० ४४ से

अर्थ—पूर्व समय में जब श्री राम जी दण्डकवन में पधारे, वहाँ के निवासी

सभो महर्षियों ने जब श्री राम जी की मंगलमयि मंजुल मधुर रूप मूर्ति का दर्शन किया तब उनके हृदय की दशा का परिवर्तन हो गया। वह सबके सब अपने हृदय में भावना करने लगे कि—यदि मैं इन श्री राम जी की नायिका बन जाऊँ। और यह मुझे नायक रूप में प्राप्त हो जायें तो, हम इनके सर्वांग के स्पर्श का भलीभाँति अनुभवकर सकतेहैं॥ "रूपौदार्यगुणैंपुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् वाल्मी. अ० ॥" अर्थात् भगवान् श्री राम जी अपने रूप के उदारगुण द्वारा पुरुषों के भी नेत्र और चित्त को अपहरण करने वाले हैं॥ और श्रीकृष्णोपनिषद की प्रथम श्रुति इसबात को बहुत ही संक्षेप किन्तु सुस्पष्ट रूपसे बताती है कि—"हरिः ॐ श्री महाविष्णुं सच्चिदानन्द-लक्षणम् रामचन्द्रं दृष्टवा सर्वाङ्ग सुन्दरं मुनयो बनवासिनौविस्मिताबभूवः" ॥ १॥ और वा० रा० अ० कां० सर्ग १ के १३ वें श्लोक को देखिये॥ "रूप संहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्। ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य बनवासिनः" ॥ अर्थात् श्री राम जी के रूप का गठाव श्री एवं सुकुमारतामय सुन्दर वेष को देखकर सभी बनवासी आश्चर्य चकित हो गये॥

तब महिलाओं के आकर्षण होने में कुछ भी बड़ी बात नहीं है, क्यों कि वह तो स्वाभाविक ही रूप की दासी होती हैं॥ जब कि—अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डम्॥ तपस्या करते करते सर्वथा विशुद्धात्मा निर्विकार चित्त वाले महर्षियों के हृदय की दशा नवीन कामिनियों जैसा हो गई। तब साधारण प्राणियों की तो बात ही क्या कही जाय॥ निवृत्तमार्गियों के परमाचार्य समदर्शी परमहंस श्री सनत्कुमारादि महर्षिगण सर्वदा ब्रह्मानन्दमें लीन रहनेवाले थे। उनकी स्थिति देखिये ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखतबालक बहुकालीना॥ रूपधरे जनु चारिउ वेदा। समदर्शी मुनि विगत बिभेदा॥ आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥ ऐसे सत्संग परायण मुनियों ने दण्डक वन में महर्षि श्री अगस्त जी से श्रीराम कथा में श्रीराम रूप से ओत प्रोत महत्त्वपूर्ण जो चर्चा सुनी थी। उन्हें लगा कि भला हमलोग भी स्वयं अनुभव करें कि क्या श्रीरामरूप का सचमुच ऐसा प्रभाव है कि—आत्मदर्शी मुनियों का भी योग और वैराग्य छूट जाता है। अस्तु वे चारों भाई दण्डकारण्य से सीधे श्री अवध को ही चले आये। भगवान् श्रीराम जी अमराई में विराजमान थे। महर्षिगण जब श्री राम जी के सामने आये, और श्रीराम जी को देखा। तब गोस्वामी जी ने लिखा कि—

मुनि रघुपति छवि अतुलविलोकी। भयेमगन मनसकेनरोकी॥

श्यामलगात सरोरुहलोचन । सुन्दरता मन्दिर भवमोचन ॥
एकटकरहे निमेष न लावहिं । प्रभुकरजोरे शीश नवावहिं ॥
तिनकैदशा देखिरघुवीरा । श्रवत नयनजल पुलकशरीरा ॥
उ० कां० ३३ दो० ॥

जब कि परमज्ञानी एवं योगिराजों की मुनियों की ऐसी स्थिति होजाती हैतो तब भगवद्भक्ति निमग्नचित्तवाले मुनियों के विषयमें विशेष कुछभी कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है । उनकी स्थिति तो सर्वदा इस प्रकारकी रहती है कि—'लोचन चातक जिन कररािखे । रहहिं दरश-जलधर अभिलाषे । निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी । रूपविन्दुजल होहिं सुखारी ॥ अयो० का० १२८ दो० ॥ अस्तु श्रीराम रूप के चातक भक्त भगवान् के ही अन्य रूपों की ओर आँख उठाकर देखना नहीं चाहते हैं। उनका तो प्राण श्रीराम रूप ही है । उससे विलग होने पर वे छटपटाने लगते हैं । श्री सुतीक्ष्ण जी को प्रभु ने जगाया, जब समाधि से उपरामचित्त नहीं हुये तब प्रभुने एकलीला की वह यह कि—भूपरूप तबरामदुरावा । हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ॥ मुनिअकुलाय उठातब कैसे । विकलहीन मनि फनिवर जैसे ॥ आ० कां० १० दो० ॥ तात्पर्य यह है कि वे तो श्रीरामरूपमाधुरी जल के मीन थे । इसलिये उससे अलग (विछोह) होनेपर विकलता होना स्वाभाविक ही था । अब आप रौद्ररस के अवतार हो कहे जानेवाले, परमक्रोधावेष में भरे हुये, शिवधनुष तोड़नेवाले को मारने का संकल्प लेकर ही आनेवाले परशुराम जी की विचित्र दशा को देखिये ॥

"रामहिं चितय रहे भरिलोचन । रूपअपार मार मदमोचन" ॥
बा० कां० २६९ दो० ॥

"दृग दिवान जेहि आदरहि मन तेहि हाथ विकाय" का सिद्धान्त ही है । अतः हृदय में प्रेमरस की सृष्टि होने लगी । वह बहुत ही आश्चर्यपूर्वक सोच रहेथे, कि—"मोरे हृदय कृपा कस काऊ" ॥ भगवान् के अन्य अवतारोंपर जीवोंका मोहित होना ही पाया जाता है । भगवान के अवतारों का नहीं । परन्तु श्रीरामरूप पर परशुराम जी का मुग्ध होना समग्र अध्यात्म शास्त्रों में एक अप्रतिम (अनुपम) उदाहरण है । परशुराम जी की वाणी ही श्रीराम रूपमाधुरी की स्तुति करती हुई पुष्ट प्रमाण है कि—सेवक सुखद सुभग सबअंगा । जय शरीर छबि कोटि अनंगा ॥ करौं काह मुखएक प्रशंसा । जय महेश मन मानस हंसा ॥ २८५ दो० ॥

तपस्वी मुनियोंपर रूपमाधुरी का प्रभाव अवलोकन करलेने के अनन्तर अब

सामान्य ग्रामीण नागरिकों की ओर चलें । श्रीअवध मिथिलावासी नागरिकोंका रूप रसपान करना प्रथम ही कहा गया है । वास्तविक रूप से उन्होंने श्री युगलसरकार के लोकोत्तर लावण्य का रसास्वादन किया है । जिनकी अनुपमेयता की दोहाई सरस्वती, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, शेष, गणेश, चिरंजीवीलोमश एवं कागभुसुण्डि देते हैं। परम पारखी देवर्षिनारद, भगवान् लक्ष्मीनारायण एवं सुजान श्री हनुमानजी का भी यही निर्णय है कि—अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों में प्रकाशमान रूपकी अलौकिक जोड़ी श्री सीताराम जी की ही है ।

बानी विधि गौरी हर शेषहूँ गनेशकही । सहीभरी लोमश भुसुण्डिबहुबारिषो ।
चारिदशभुवन निहारि नरनारि सब; नारद सों परदा न नारद सो पारिखो ।
तिनकहीजगमें जगमगति जोरीएक, दूजो को कहैया सुनैया चष चारिखो ।
रमा रमारमन सुजान हनुमानकही, सीय सी न तीय न पुरुष राम सारिखो ॥

कवितावली पद नं० १६] श्रीअवध मिथिला के सभ्य सुसंस्कृत नागरिकों के पश्चात् अर्द्धसभ्य ग्रामीणों द्वारा श्रीराम रूपमाधुरी के दर्शन के समय की मनोभावनाओं की झाँकी देखिये—ये लोग भले ही चाहे मस्तिष्क के धनी न भी माने जायें । किन्तु इनके हृदय की गम्भीरता की थाह कौन पा सकता है । श्री अयोध्या एवं मिथिलावासियों के तो श्री राम जी अपने सम्बन्धी भी थे । परन्तु इन ग्रामीणों ने अपरिचित राजकुमारों के प्रति (साथ) जैसा अनुपमेय प्रेममय व्यवहार किया वह रूपमाधुरी के जादू से ही उद्भूत था । वे तो प्रथम दर्शन के समय से ही चित्रशाला के चित्रों की भाँति स्तब्ध रह गये थे । "तुलसी विलोकि के तिलोक के विलकतीनि, रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं" ॥ इन ग्रामीण महिलाओंके बिचार से राजारानी बज्रहृदय, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य महामूर्ख जैसे प्रतीत होने लगे थे । जिन्होंने आँखों में रखने योग्य मूर्तियों को बनवास दिया, वे सब सोचती थीं कि—हमे आश्चर्य तो इसबात का लगरहा है कि इनका दर्शन क्षणमात्र पानेके पश्चात् इनसे बियोग होते समय जब हमारे प्राण निकल से जारहेहैं, तो इनके प्रिय परिवार और परिजन पुरजन कैसे जीते होंगे ? ॥

"रानी मैं जानी अयानीमहा, पविपाहन हूंते कठोर हियो है । किन्तु-
राजहु काजअकाज न जान्यों; कह्यो तियको जिनकानकियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये; बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखि राखिवे जोग; इन्हें किमि कै बनवास दियो है ॥

[कबितावली पद नं० २०] वे उनके पीछे पीछे चलकर उसीस्थानपर पहुँचना चाहतीहैं जहाँ वे रात्रिमें विश्राम करेंगे। यद्यपि यह सुनिश्चित है कि अपरिचित परपुरुष के पीछे पीछे चल देने पर उनकी लोक में निन्दा होगी लोग उपहास करेंगे। किन्तु उन्हें इसकी चिन्ता ही कहाँ है ? इन मनोहर मूर्तियों के दर्शन से जो सुख मिलेगा, उसकी तुलना में सांसारिक उपहास परिहास को सहज में सहन किया जा सकेगा ॥

"धरिधीरकहैं चलु देखिय जाय; जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहै जगपोच न सोचकछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं ॥
सुखपाइहैंकान सुनेबतियाँ, कल आपस में कछु पै कहिहैं।
"तुलसी" अतिप्रेम लगीं पलकें, पुलकीं लखि रामहिये महि हैं ॥

[कबितावली पद नं० २३] जनजन की यही दशा है। जिसने उन्हें एकबार भी देखलिया, वह फिर सर्वदा के लिये उन्हीं का हो गया। उसका तन जहाँ भी रहा हो मन तो उन्हीं मनमोहन के साथ चला गया। रा० च० मा० अयो० कां० की झाँकी देखिये। " ग्रामनिकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरश नारिनर धाई ॥ होहिं सनाथ जनमफलपाई। फिरहिं दुखितमन संगपठाई ॥ १०६ दो० ॥ "जिन देखे सखी सतभायहुं ते, तुलसी तिनतौ मन फेरि न पाये" ॥ कबितावली २४ पद इन ग्रामीणों की समर्पणबृत्ति एवं सेवाभावना की झलक देखने के लिये श्रीरामचरितमानस का यह प्रसंग अत्यन्त पठनीय है। अयो० कां० दो० नं० ११४ संपूर्ण तथा दो० नं० १५ में एकटक सब सौहैं तक।

सीतालखन सहित रघुराई। ग्रामनिकट जब निकहिं जाई। सुनि सबबालवृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृहकाज विसारी ॥ राम लखन सिय रूपनिहारी। पाय नयनफल होहिं सुखारी ॥ सजल विलोचन पुलकशरीरा। सब भय मगन देखि दोउबीरा ॥ वरनि न जाय दशा तिनकेरी। लहि जनु रंकन सुरमनि ढेरी ॥ एक न एक बोलि सिखदेहीं। लोचन लाहुलेहु छन एहीं ॥ रामहिदेखि एक अनुरागे। चितवत चलेजाहिं सँगलागे ॥ एक नयन मग छवि उरआनी। होहिं शिथिल तन मन वर बानी ॥ एकदेखि बटछाहँ भलि; डासि मृदुलतृन

पातकाहहिं गवांइअ छिनकश्रम, नवनव अबहिं कि प्रात॥ ११४॥ एक कलश भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी॥ सुनि प्रियबचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुशील विशेषी॥ जानी श्रमित सीय मनमाहीं घरिक बिलम्ब कीन बटछाहीं॥ मुदित नारिनर देखहिं शोभा। रूपअनूप नयन मन लोभा॥ एकटक सबसोहैं चहुँओरा। रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरा॥ ११५ दो०

अहा कैसा अद्भुत समर्पणभाव, इन्होंने तो अपना मन, चित्त बुद्धि अन्तःकरण सभी कुछ समर्पण करदिया है। पुनः दो० नं० ११६ में—

रामलखन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं चितमन मति लाई।

थके नारिनर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥

भले ही इन ग्रामीणों ने शास्त्रीय ज्ञान न प्राप्तकिया हो, तथापि अपनी सहज बुद्धिके आधार पर कितना स्पष्ट निर्णय देते हैं कि—ये ब्रह्मा जी की सृष्टि से परे कोई परमतत्त्व हैं। विधाता इनके समकक्ष (समान) दूसरी आकृति आजतक नहीं बनापाया, अतः इन्हें बन में छिपाकर स्वयं निन्दा से बचना चाहता है। दो० नं० १२० में देखिये कि—

एक कहहिं ये सहज सोहाये। आप प्रगटभय विधि न बनाये॥ क्योंकि

जहँ लगि वेदकही विधि करनी। श्रवन नयन मनगोचर बरनी॥

देखहुखोजि भुवन दशचारी। कहँ असपुरुष कहाँ असनारी॥

इनहिं देखि विधिमन अनुरागा। पटतरजोग बनावन लागा॥

कीन बहुतश्रम ऐक न आये। तेहि इरषा बनआनि दुराये॥

एककहहिं हमबहुत न जानहिं। आपहिं परमधन्य करि मानहिं॥

ते पुनिपुन्य पुंज हम लेखे। जिन देखहिं देखिहैं जिन देखे॥

अहह इनके हृयद में कितनो कोमल भावनायें तरंगित हो रही हैं। जो इन सुकुमार मूर्तियों के चरणों के भूमि से स्पर्श होनेमात्र से संकुचित हुई जारही हैं। उन्हें लगता है कि हम इन्हें अपने नेत्रों में बसालेतीं, तो फिर इन्हें इस कठोर भूमि पर चलना तो नहीं पड़ता॥

परसत मृदुलचरण अरुणारे। सकुचत महि जिमि हृदय हमारे॥

जौं मांगा पाइअ बिधिपाहीं । ए रखिअहिं सखि आँखिन माहीं ॥
जे नरनारि न अवसर आये । तिन सियराम न देखन पाये ॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई । अबलगि गये कहाँलगि माई ॥
समरथ धाय बिलोकहिं जाई । प्रमुदितफिरहिं जनमफल पाई ॥
॥ १२१ दो० ॥

अब सभ्य नागरिकों की संस्कृति (सभ्यता) से सर्वथा कोशों दूर रहनेवाले निपट गँवार बन्य पशुवत् जीवन यापन करनेवाले, केवल लूटना मारना ही जिनका एकमात्र व्यवसाय (व्यापार) रहा है, उनलोक किरातों की भावना को देखें। सच्चा जादू तो वही है कि शिरपर चढ़कर बोलता है। अतः श्री राम जी की रूप-माधुरी ने उन कोल किरातों के जीवन में परिवर्तन कर दिया। उसे उन्हीं के शब्दों में देखिये। वह कहते हैं कि—

हम जड़जीव जीवगनघाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पापकरत निशिबासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धर्मबुद्धि कस काऊ । यह रघुनन्दन दरश प्रभाऊ ॥
जबते प्रभुपद पदुम दिहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥२५१ दो०

इसके पूर्व श्रीरामजी जब चित्रकूट पहुंचे। तब गोस्वामी जी ने लिखा। कि—

यह सुधि कोल किरातन पाई । हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥
कन्दमूल फल भरि भरि दोना । चले रंकजनु लूटन सोना ॥
तिन महँ जिन देखे दोउ भ्राता । अपर तिनहिं पूछहिं मगजाता ॥
कहत सुनत रघुवीर निकाई । आय सबनि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहार भेंट धरि आगे । प्रभुहिं बिलोकहिं अतिअनुरागे ॥
चित्रलिखे जनु जहँ जहँ ठाढ़े । पुलकशरीर नयनजल बाढ़े ॥
रामसनेह मगन सबजाने । कहि प्रियबचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहिं जोहारि बहोरी बहोरी । बचन बिनीत कहहिं करजोरी ॥

अब हम नाथ सनाथ सब भये देखि प्रभु पाय ।
भागहमारे आगमन राउर कोशलराय ॥ १३५ दो० ॥

लगातार १३६ तथा १३७ दो० में—विदा किये शिरनाय सिधाये । प्रभुगुन कहत सुनत घर आये ।। तक इनके प्रेम की झलक है । इन कोल किरातों ने तो श्रीराम दर्शन से अपने को सपरिवार धन्य माना ही है । अब यह देखिये कि बनके पशु एवं पक्षियों पर श्री रामरूपमाधुरी का कैसा प्रभाव पड़ा ।। "फिरत अहेह राम-छबि देखी । होहिं मुदित मृगबृन्द विशेषी ।। इन बन पशुओं का चित्र गोस्वामी जी ने कवितावली में बहुत ही सुन्दर ढंग से खींचा है । वहाँ पर दिखाया गया कि वे मृग स्पष्ट देख रहे हैं कि-कोई शिकारी हमारे प्राण लेने के लिये आ रहा है धनुष पर बाण संधान किये है । हमे मार ही देना चाहता हैं । तथापि इस शिकारी के रूप की मोहनी ने हमें पहले ही घायल कर दिया है । अब इनको निहारते रहने के अतिरिक्त हमे चैन ही कहाँ है ? प्यारे प्राण लेता है तो ले ले, परन्तु अपने रूप-माधुरी की एक झलक जी भरकर देख लेने दे । तेरे रूप के जाल में फँसकर अब हम छूटकर भागना भी नहीं चाहते हैं ।।

"सरचारिक चारु बनाय कसे; कटि पानि सरासन सायक लै ।
बनखेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि को ।।
अवलोकि अलौकिक रूपमृगी, मृग चौंकि चितै चितवैं चित दै ।
न डगैं न भगैं जियजानि सिलीमुख, पंचधरे रतिनायक है ।। २७ ।।

उधर नभचारी पक्षीगण उड़ना छोड़कर रूप छटा का अवलोकन करते हैं, तो उद्भिज योनि में पड़े हुये वृक्ष बनस्पति आदि उनका स्पर्श पाने को समुत्सुक हैं। ऐसा कौन प्राणि या पदार्थ है जो राघवेन्द्रका स्पर्श पाकर परमधन्य न हो जावे ॥ "नयनवंत रघुवरहिं बिलोकी । पाय नयनफल होहिं विशोकी ।। परसि चरनरज अचर सुखारी । भये परमपद के अधिकारी" ।। १३९ दो० ।। सात्विक भावापन्न खग मृग वनस्पति की बात छोड़कर घोर क्रूरकर्मा सहज तामस स्वभाववाले साँप और बिच्छू को गतिविधि का अवलोकन करें । सर्पिणी अपने ही बच्चों को खाकर ही अपनी छुधा (भूख) को शान्त करती है, तथा जो बिच्छू अकारण ही प्रत्येक बस्तु पर अपने डंक की चोट मार करके आतंकित करने का गुमान रखता है । शेष सहस फन विष धरैं, तऊ न चलैं उतंक । एक बूँद बिच्छू धरै, चलत उठाये डंक ।। ऐसे साँप और बिच्छू भी जिन चरणारविन्दों की कोमलता देखकर ठगे से रह गये । वे अपने विष से किसी न किसी भाँति मुक्ति पा लेना चाहते हैं । ताकि निर्विष होकर फिर वे भी इन चरण कमलों का परम सुखद स्पर्श पाने का सौभाग्य लाभ प्राप्त कर सकें ॥

लगातार १३६ तथा १३७ दो० में—विदा किये शिरनाय सिधाये । प्रभुगुन कहत सुनत घर आये ॥ तक इनके प्रेम की झलक है । इन कोल किरातों ने तो श्रीराम दर्शन से अपने को सपरिवार धन्य माना ही है । अब यह देखिये कि वनके पशु एवं पक्षियों पर श्री रामरूपमाधुरी का कैसा प्रभाव पड़ा ॥ "फिरत अहेह राम-छवि देखी । होहिं मुदित मृगबृन्द विशेषी ॥ इन बन पशुओं का चित्र गोस्वामी जी ने कवितावली में बहुत ही सुन्दर ढंग से खींचा है । वहाँ पर दिखाया गया कि वे मृग स्पष्ट देख रहे हैं कि-कोई शिकारी हमारे प्राण लेने के लिये आ रहा है धनुष पर वाण संधान किये है । हमे मार ही देना चाहता है । तथापि इस शिकारी के रूप की मोहनी ने हमें पहले ही घायल कर दिया है । अब इनको निहारते रहने के अतिरिक्त हमे चैन ही कहाँ है ? प्यारे प्राण लेता है तो ले ले, परन्तु अपने रूप-माधुरी की एक झलक जी भरकर देख लेने दे । तेरे रूप के जाल में फँसकर अब हम छूटकर भागना भी नहीं चाहते हैं ॥

"सरचारिक चारु बनाय कसे; कटि पानि सरासन सायक लै ।
बनखेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि को ॥
अवलोकि अलौकिक रूपमृगी, मृग चौंकि चितै चितवैं चित दै ।
न डगैं न भगैं जियजानि सिलीमुख, पंचधरे रतिनायक है ॥ २७ ॥

उधर नभचारी पक्षीगण उड़ना छोड़कर रूप छटा का अवलोकन करते हैं, तो उद्भिज योनि में पड़े हुये वृक्ष बनस्पति आदि उनका स्पर्श पाने को समुत्सुक हैं। ऐसा कौन प्राणि या पदार्थ है जो राघवेन्द्रका स्पर्श पाकर परमधन्य न हो जावे॥ "नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी । पाय नयनफल होहिं विशोकी ॥ परसि चरनरज अचर सुखारी । भये परमपद के अधिकारी" ॥ १३९ दो० ॥ सात्विक भावापन्न खग मृग वनस्पति की बात छोड़कर घोर क्रूरकर्मा सहज तामस स्वभाववाले साँप और बिच्छू की गतिविधि का अवलोकन करें । सर्पिणी अपने ही बच्चों को खाकर ही अपनी छुधा (भूख) को शान्त करती है, तथा जो बिच्छू अकारण ही प्रत्येक बस्तु पर अपने डंक की चोट मार करके आतंकित करने का गुमान रखता है । शेष सहस फन विष धरैं, तऊ न चलैं उतंक । एक बूँद बिच्छू धरै, चलत उठाये डंक ॥ ऐसे साँप और बिच्छू भी जिन चरणारविन्दों की कोमलता देखकर ठगे से रह गये । वे अपने विष से किसी न किसी भाँति मुक्ति पा लेना चाहते हैं । ताकि निर्विष होकर फिर वे भी इन चरण कमलों का परम सुखद स्पर्श पाने का सौभाग्य लाभ प्राप्त कर सकें ॥

"जिनहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं विषम विषतामस तीछी" ॥ अयो० कां० २६२ दो०॥ केवल थलचरों पर ही नहीं, आगे जलचरों पर भी इस रूपमाधुरी की मोहनी ने विलक्षण जादू किया है। लंका कां० दो० नं० ४ में—
"मकर नक्र नाना झष ब्याला। सतजोजन तन परम विशाला ॥लंका कां० ४ दो०॥ ऐसेउ एक तिनहिं जे खाहीं। एकन के डर तेपि डराहीं ॥ प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे। मन हर्षित सबभये सुखारे ॥ तिनकी ओट न देखिय बारी। मगनभये हरिरूप निहारी" ॥ नलनील द्वारा निर्मितपुल बानरींसेना के बाहुल्य से बहुत छोटा पड़ रहा था। समुद्र में जलके ऊपर अनेक जलजन्तु तैरते हुये श्री रामजी की रूपसुधामाधुरी का पानकर रहे थे। अनेक बानर उन जलजन्तुओं की पीठ पर पैर रखकर जा रहे थे, परन्तु वे सब जलजंतु श्रीरामरूपमाधुरी पान करने में इतना अधिक रस पा रहे थे कि वानरों के पीठपर चढ़ने से टस से मस भी नहीं हुये।

सेतुबन्ध भइ भीरअति; कपि नभ पन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरनि ऊपर; चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं ॥ लंका कां० ४ ॥

इस प्रकार जल थल नभ में रहनेवाले जीवमात्र को श्रीरामरूपमाधुरी एकबार दृष्टिगोचर होते ही सर्वदा के लिये विनामोल के ही खरीदकर अपना वनालेती है। परन्तु वह जादू ही क्या, कि जो मायावियों पर भी अपनी मायाका प्रभाव न डाल पावे ? अस्तु अब आप महामायावी दुष्टप्रकृतिवाले निशाचरों की स्थिति पर भी अपनी दृष्टिपात करें। जिनके विषयमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि—दया धर्म से से उन्हें स्वप्न में भी नाता नहीं रहता है। यथा—
"कामरूप जानहिं सबमाया। सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया" ॥ वा० कां० १८१ दो० ॥

जनस्थान वासी मायावी राक्षसों का शासन करनेवाली रावण की बहिन शूर्पणखा तो प्रथम दृष्टि में ही इनको अपना हृदय समर्पित कर वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने को तैयार हो गई। किन्तु अपने को असफल होते देख वलपूर्वक प्रयास करने में अपने कान नाक कटवा बैठी। तब अपनेभाई खरदूषण त्रिशिरा के पास जाकर अपने कान एवं नाक काटने के प्रसंग में झूठी बातें वनाकर प्रभु पर दोषारोपण किया। सुनते ही क्रोध में भरकर चौदह हजार राक्षसी सेना लेकर मारने पर उतारू हुआ खरदूषण जब श्री राम जी के सामने गया। जटाजूट कसकर खड़ेहुये धनुषधारी तपस्वी वेष में प्रभु को मंगलमय मंजुल मूर्ति का दर्शन करते ही, उनक्रूरकर्मा निशाचरों के हृदय में करुणारस का संचार हो गया। वे पलमात्र के दर्शन से ही पिघले

जा रहे थे । शरीर रोमांचित हो रहा था, न जाने कि उनका रौद्रभाव कहाँ चला गया । यह कैसा रसपरिवर्तन ? अप्रतिम सौन्दर्य मूर्ति ने रौद्ररस को पिघलाकर करुणारस का संचार कर दिया था । उन सबों के अस्त्र शस्त्र सब कुंठित जैसे हो गये थे । इसके पूर्व जीवन में कभी भी उन राक्षसोंने करुणारस का स्वपन भी नहीं देखा था । वे निर्दय हृदयवाले तो दूसरे के प्राणलेने में ही आनन्दित होते थे । इसी विश्वास पर रावण ने उन्हें अपनी सीमापर नियुक्त किया था । एक से एक सुन्दर नरमुनि गन्धर्व किन्नर उनके हाथ से मारे जा चुके थे । किन्तु यह सौन्दर्य का मूर्तिमान हि तपस्वी बिग्रह उन नरभक्षी राक्षसों के फौलादी तन मन पर भी छा गया । प्रभु के रूपसुधा का पान करके सेना समेत खरदूषण थकित हो गया ।

प्रभुविलोकि शर सकहिं न डारी । थकित भई रजनीस्चर धारी ॥

तव मन्त्रियों को पास बुलाकर खरदूषण ने कहा कि—आपलोग विचार दीजिये—

नाग असुर सुर नरमुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥ किन्तु—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखीनहिं असि सुन्दरताई ॥भैया इन्होंने-

यद्यपिभगिनी कीन्हि कुरूपा । (तथापि) बधलायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

आप लोग इनसे जाकर कहो कि—आप पर मुझे दया लगती है । अस्तु—आप अपनी स्त्री हमको देकर बन में जायकर छिप जाओ । तभी तुम दोनों भाई जीवित घर लौट सकते हो । अन्यथा हम मार डालेंगे ॥ अ० कां० १९ दो० ॥ मोरकहा तुम ताहि सुनावहु । तासुबचन सुनि आतुर आवहु ॥ दूतन कहा रामसन जाइ । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥ कि—हमक्षत्री वन मृगया करहीं । तुम से खलमृग खोजत फिरहीं ॥ प्रभु के इस कठोर उत्तर को सुनकर पुनः हृदयमें क्रोध आने पर भी उन्होंने मार डालने की आज्ञा नहीं दी । उसने कहा कि इसको पकड़ लो । उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाये विकट भट रजनीश्चरा । वे विचारे निशाचर करते ही क्या ? श्रीराम रूपमाधुरी ही तो उनके निशाचरत्व को भुलाकर उनमें प्रेमरस संचार करनेवाली प्रेरकशक्ति थी । महामायावी मारीच परभी तो इसी रूपमाधुरी ने मोहनीमन्त्र फूंक दिया था । जिससे वह प्राण खोने का संकट मोल लेकर भी उनके दर्शन को आकुल व्याकुल हो उठा था ।

मन अतिहरष (किन्तु) जनाव न तेही । आज देखिहौं परमसनेही ॥

निज परमप्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं ।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्वानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहिं बशकरी ।
निजपानि शर सन्धानि सो मोहिं बधिहि सुख सागर हरी ॥
मम पाछे धर धावत धरे शरासन बान ।
फिरिफिरि प्रभुहिं विलोकिहौं धन्य न मो सम आन ॥२६॥

अनेक भैंसा खाकर घट (घड़ा) मद्य पान करनेवाले कुम्भकरण की बात सुनिये वह रावण से कहता है कि—

अब भरिअंक भेंटु मोहिं भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ॥
श्यामगात सरसीरुहलोचन । बदनमयंक तापत्रय मोचन ॥
रामरूप गुन सुमिरत, मगन भयेउ छन एक ॥ लंका कां० ६३ ॥

क्यों न हो ? त्रिलोकी में जहाँ भी शोभा का आकर्षण है, वह रूप का चमत्कार है । सौन्दर्य की छटा है । वह नन्हीं सी सौन्दर्य सिन्धु के एकविन्दु का भास मात्र है । औरों की तो बात छोड़िये, अब स्वयं इन्ही नटनागर की एक झाँकी देख लीजिये । मणिमय अंगनाई में बालकरूप में राघवेन्द्र घुटुरुवन दौड़ रहे हैं । अनायास शारदीय चन्द्रछवि को तिरस्कृत करनेवाली मुखचन्द्रछटा की छवि के प्रतिविम्ब पर दृष्टि पड़ी । शोभाधाम उस बालछवि को देखकर आश्चर्य चकित से रह गये । अपने मन विचारने लगे कि-अहा यह बालक कितना सुन्दर है । यह तो मेरे मन को बरबस आकर्षित करता है । यह न जाने किस देव दानव मानव यक्ष किन्नर गन्धर्व का बालक है ? क्या यह मेरे साथ सख्यभाव स्थापित कर लेगा ? क्या मैं इसका सदा सान्निध्य प्राप्त कर सकूँगा ? इस सुन्दरता के सदन बालक के साथ बालक्रीड़ा में भला कितना आनन्दप्राप्त हुआ करेगा । इन्हीं विचारोंमें डूबे हुये राघवेन्द्र का मस्तक आनन्दातिरेक में झूम उठा । सोचने लगे कि-अरे यह नीलाभबालक भी मेरे समान ही हाथ पैर आदि अंगों का संचलन कर रहा है । तो क्या यह मेरा ही प्रतिविम्ब तो नहीं है ? अरे क्या मैं सचमुच इतना सुन्दर हूँ ? सच्चिदानन्द आनन्दकन्द श्री रघुनन्दन अपनी ही रूपमाधुरी पर रीझकर स्वयं नाच उठे ।

रूपरासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी ॥उ० कां० ७७॥

परब्रह्म स्वयं जिस रूपराशि पर रीझ रहा हो । उसके वर्णन में किसी भी

मर्त्य की लेखनी कहाँ सक्षम हो सकती है ? भला असीम का वर्णन कोई ससीम कर पायेगा ? यह विषय तो गणेश, शेष, शारदा, वेद पुराण सब की गति से परे है ॥

रूप सकहि नहिं कहि श्रुतिशेषा । सो जानै सपनेहुँ जेहि देखा ॥

श्रीरामरूपमाधुरी के पश्चात् पाठक श्री जानकी रूपमाधुरी का कुछ ही शब्दों में रसास्वादन करें । जिन भगवान् श्री राम जी के रूप सौन्दर्य को देखकर चराचर जगत मुग्ध होकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है । वह श्री राम जी जिन श्री जानकी जी की रूपमाधुरी पर बिना मोल ही विके रहते हैं । इससे ही पाठक श्री जानकी जी की रूपमाधुरी का अनुभव करें । गोस्वामीजी ने लिखा है कि-गर्व करहु रघुनन्दन जनि मन माहिं । आपन रूप विलोकिय सिय जु कि छाँहिं ॥ वरवै रामायण ॥ और रा० च० मा० वा० कां० में लिखा है कि—सियमुखशशि भये नैन चकोरा ॥ परिणामतः प्रात दर्शन के बाद शाम को संध्या करना भी भूलकर चन्द्रमा के व्याज से श्री जानकी जी के मुखचन्द्र माधुरी की प्रशंसा करने लगे ।

—:❋:—

* प्राक्कथन *

"श्री जानकी स्तवराज" ग्रन्थ, रामभक्ति की मधुरोपासना का परम रहस्य ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ रसिकाचार्यों का परम ज्ञेय एवं ध्येय है। विगत माधव मास में श्री मिथिलाधाम की मंगलयात्रा में, श्री अवध-धाम के, परम रसिक एवं उज्ज्वलरस के परमाराधक सन्त १०८ श्री सीताशरन जी महाराज ने श्री जनकपुर-धाम में उक्त ग्रन्थ की अर्वाचीन भाषा में इन पंक्तियों के लेखक से, टीका का अनुरोध एवं आदेश किया। प्रत्येक श्लोक के साथ विशेषार्थ देने का भी निर्देश किया। कार्य के निमित्त ग्रन्थ की दो पुरानी टीकायें भी श्रीरामानन्दाश्रम जनकपुर धाम से उपलब्ध करा दी गई। कियत काल-पर्यंत ग्रन्थ चुपचाप प्रतिष्ठि रहे आये किन्तु सन्त के दृढ संकल्प ने स्वयं प्रेरणा करके जिस किसी रूप में कार्य को सम्पन्न ही करा लिया। ग्रन्थ में, दास ने भाषा की दृष्टि से सर्वथा नूतन कलेवर दिया है। यत्र तत्र अन्वय में भी प्राप्त बुद्धि की प्रेरणा से परिवर्तन हुये है। पद्यानुवाद भी नये छन्दो एवं आधुनिक खड़ी भाषा मे हुये हैं।

ग्रन्थ की पूर्ति मे मेरे अभिन्न अन्तःकरन श्री मैथिली रमण दास (पं अभिलाषप्रसाद जी त्रिपाठी व्याख्याता) एवं परम-रसिक,प्रोफेसर सुरेन्द्रकुमार जी (अजयगढ़) के प्रेमिक-अनुरोध बरावर प्रेरणा देते रहे। ग्रन्थ में मेरा अपना कुछ भी नही; मैं तो यंत्र मात्र की भांति रहा,और अब भी हूं मैं श्रीराजकिशोरी जू का हूं अतः समस्त मेरेपन में उनकानिसर्गसिद्ध- सत्व है समर्पण किसे, और किस अधिकार से यह जो कुछ भी है जैसा कैसा भी हैं श्री जू का तथा उनके जनों का हुं। कभी श्री चरणरति प्राप्त हो जाय, कोई ऐसा आशर्वाद दे दे।

गणेश चतुर्थी
दि० ६-६-७५

श्री बैष्णव-पदाश्रितानां
किंकरः
अवध किशोर दासः

श्री रामः शरणं मम"

"श्री जानकी-स्तवराज,,

मूल- तांध्याये स्तवराजेन प्रोक्तरूपां परात्पराम् ।
आह्लादिनीं हरेः कांचिच्छक्तिं सात्वत-सेविताम् ॥१॥

अन्वय- (अहं) प्रोक्तरूपाम् परात्पराम् आह्लादिनीम् सात्वतसेविताम् हरे कांचित् शक्तिम् स्तवराजेन ध्याये ।

अनुवाद- मैं (श्रुति स्मृति पुराणादि में) वर्णित स्वरूप वाली, पर से भी पर आनन्द-स्वरूपिणी, सन्तजन सेवित, हरि की उस किसी शक्तिका इस स्तवराज द्वारा ध्यान करता हूं ।

पद्यानुवाद-

आहलादमयी सात्वतसेव्या; वेदों में गीत कीर्तिवाली ।
श्री हरि की किसी शक्तिका; मैं करता हूँ ध्यानभाग्यशाली ॥
जो परम-परात्पर मोदमयो, जो पराशक्ति अनुभवगम्या ।
इस स्तवराज दिव्य द्वारा; कर रहा स्तवन हूँ रम्या ॥

विशेष- प्रोक्तरूपाम्- स्तवराजकार, स्तवन के पूर्व प्रोक्तरूपां कहकर श्री राज-किशोरी जू के ऐश्वर्य-वैभव एवं काय बैभव को श्रुति स्मृति एवं पुराणों इतिहासों तथा नाटकों में वर्णित होने का संकेत करते हैं । श्री राजकिशोरी जू के उभय-वैभव वैशिष्ट का निगदन पदे पदे प्रतिभासित हैं यथा

वेदों में- १- इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु । सा नः पयस्वतो दहामुत्तरामुत्तरां समांम् ॥ ऋग्वेद ४।५७'७ अथर्वं० ३।१७।४)
२- घृतेन सीता मधुना समक्ता; विश्वैर्दवैरनुमता मरुद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्या-ववृत्स्वोर्जस्वती घतवत् पिन्वमाना॥ अथर्व ३ १७-६ ३- हेमाभयादिभुजयार्सत्र लिंकारयान्विता श्लिष्टःकमलधारिण्या पुष्टः कौशलजात्मजः (पूर्वं रामताप०४- उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्व देहिनाम् । सा सीता भवति ज्ञेयामूल प्रकृति संज्ञिता॥ (रामोत्तरतापनी
५- जनकस्य राज्ञः सद्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपराऽऽनन्दमूर्तिः गायन्ति मुन योऽपिदेवाश्च कार्यं कारणाभ्यामेवपरा तथैव कार्यकारणर्थो शक्तियस्य ।ःविधात्रो श्री गौरींणां सैव कर्त्री रामानन्द स्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिव भाति (अर्थर्ववेदंपरिशिष्ट की श्रुति) ६- अर्वाचो सुभगे भवसीते वन्दामहेत्वा । यथा नःसुभगा ससि यथा नः मुफलाससि ॥ (अथर्व०४,५७,६) उपनिषदों मे-१-निमेषोन्मेष सृष्टि स्थिति संहारातिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते । श्री सीतोपनिषद) २-भूर्भुवःस्वःसप्तदीपा वसुमतो त्रयोलोका अन्तरिक्षं सर्वेत्वयि निवसन्ति आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वास्त्वांत्रि संधत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्या प्रद

घात्रित्वां सर्गे वयं प्रणममहे प्रणममाहे(श्री मैंथिली महोपनिषद) काव्येतिहास में—वेदोपबृंहण-रूप इतिहासोत्तम आदिकाव्य श्री मद्वाल्मीकि रामायण में तो आदिकवि की घोषणा ही हैं कि यह समस्त महाकाव्य" सीतायाश्चरितं महत्" हैं कुछ प्रमाण—
१-अपराधिनी राक्षसियों को अभय प्रदान करतो हुयी श्री जू श्री हनुमान जी से सुन्दरकाण्ड में कहती हैं—पापानां वां शुभानां बा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न काश्चन्नापराध्यति ॥ एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा, उवाच धर्म सहितं हनुमन्न यशास्विनी । राज्य संश्रय वश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद बानरोत्तम । श्री राजकिशोरी जू ने कपोत का दृष्टान्त देते हुए आगे कहा कि अयं व्याघ्र समीपे तु पुराणं धर्म संहितः ऋक्षेण गीतः श्लोकों में तन्निबोध-प्लवङ्गम् । न परः पापमादत्ते परेषां पाप कर्मणाय । समयो रक्षित व्यस्तु सन्तश्चारित भूषण ॥ श्री हनुमानजी को चिबवध प्रतिज्ञा को सुनकर श्री जू ने उनकी इस प्रकार रक्षा की । २- भर्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया राघवाद्धि भयं घोरं राक्षानामुपस्थितम् । प्राणिपातं प्रसन्नाहि मैथिलो जनकात्मजा । अलमेषा परित्रातं राक्षस्यो महतो भयात् ॥ राक्षसियों का यह विचार स्वगोष्ठी गत ही रह गया श्री जू ने स्वयं ही उदघोष कर दिया- ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजय हर्षिता अवोचधादित्तथ्यं भवेयं शरणं हिवः । इस प्रकार सर्वत्र हो महानुभावों ने श्री विदेहराजतनया जू के मंगलमय स्वरूप की चर्चा की इसी लिए ग्रन्थकार प्रारम्भ में ही कहते हैं कि श्री राजकिशोरी जू प्रोक्तरुपा हैं ।

परात्परास-भगवती श्री जानको पर से भी पर तत्व स्वरूपा हैं । वागर्थ एवं जल-वीचि की तरह श्री सोता और श्रा रामतत्व परस्पर अभिन्न है । समस्त आदिकाव्य में दुग्ध में घृत की भांति श्री राम परत्व में श्रो सीता-परत्व अन्तर्निहित हैं ।

आह्लादिनीम्-प्रभु की 'सन्धिनी, संवित त्वय्येका सवसंस्थितौ-बिष्णु पुराण(१-१२-६६)

मूल- **कीदृशः स्तव राजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर ।**
कथ्यतां कृपया देव, जानकीरूप-बोधकः ॥२॥

अन्वयः- सुरेश्वरः! जानकी रूप बोधकः अयम् स्तवराजः कीदृशः केन प्रोक्तःदेव ! कृपया कथ्यताम् ।

अनुवाद- हे सुरों के स्वामो! श्री मिथिलेशराजनन्दिनो जू के स्वरूप का वोध कराने वाला यह स्तवराज कैसा हैं ? तथा यह किसके द्वारा कहा गया हैं ? हे देव कृपा करके इसका बर्णन करें ।

पद्यानुवादः- श्रुति ने पूछा हे संकर्षण हे देव सुरेश्वर बतलावें ।
कैसा यह स्तवराज इसे; किसने था गाया समझावें ॥
यह श्री सीता स्वरूप बोधक; इसको सम्पूर्ण सुना दीजै ।
होगी यह परम कृपा प्रभु की; अमृतरस दान दया कीजै ॥२॥

विशेषः- मूलतः यह स्तवराज भूतमनभावन भगवान महेश्वर के द्वारा गाया गया है। स्तोत्रों की परम्परा के अनुसार इसके श्रवण की जिज्ञासा भगवती श्रुति करती है और इसका वर्णन संकर्षण स्वयं शेष करते हैं। श्रुति एवं शेष की वार्ता के रूप में महर्षि अगस्त ने इस लीला रहस्य का अपनी संहिता में गायन किया।

मूल- ब्रवीमिं स्तवराजं ते; श्री-शिवेन प्रभाषितम्। श्रुतं श्री वक्त्रतो दिव्यं; पावनानां च पावनम् ॥३॥

अन्वयः- श्री वक्त्रतः श्रुतम् श्री शिवेन प्रभाषितम् दिव्यम् पावनानाँ च पावनम् स्तव राजम् ते ब्रवीमि।

अनुवादः- (श्री राघवेन्द्र के) श्री मुख से सुना हुआ एवं श्री शिव जी के द्वारा कहा गया दिव्य एवं पवित्रों को भी पवित्र करने वाले, इस स्तवराज को तुमसे कहता हूं।

पद्यानुवादः- बोले संकर्षण सुनो देवि; श्री महाशम्भुकृत गीत अहा श्री राघवेन्द्र श्री मुख-वर्णित; यह स्तवराज सु दिव्य महा॥ पावन को भी पावन ता दे; गा रहा बड़ी स्तवन-मंत्र। सुनना हो संयत सारभूत; रस-सिद्धि प्रदाता परमतंत्र ॥३॥

विशेषः- मूल स्तवन में श्री वक्त्रतः शब्द से श्री राघवेन्द्र के श्री मुख से वर्णित यह अर्थ लिया गया हैं क्योंकि आगे के श्लोक संख्या ७-८ में स्वयं श्री रघुनन्दन के द्वारा इस स्तवराज के द्वारा श्री स्तवन की बात का निर्देश स्पष्ट हैं।

मूल- चकाराराधनं तस्य मंत्रराजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रुपं ज्ञातुमिच्छुर्हरे परम् ॥४॥

अन्वयः---हरेः परम् रूपम् ज्ञातुम् इच्छुः श्री शिवः कदाचित् भक्तितः तस्य मंत्रराजेन आराधनम् चकार।

अनुवादः- हरि (श्री राघवेन्द्र) के सर्वोत्कृष्ट-रूप को जानने की इच्छा रखने वाले, श्री शिव ने किसी समय, भक्तिभाव भावित होकर उनका (श्री राम का) मत्रंराज के द्वारा आराधन किया।

पद्यानुवादः- श्री शिवशङ्कर ने किसी समय अत्यंत, भक्ति भावीत उर से। श्री मत्रराज द्वारा मंजुल; आराधन किया शास्त्र सुर से॥ श्री हरि का सर्वोत्कृष्ट रुप; भावना भाव्य मैं पा जाऊं। इस भव्य भाव में हो निमग्न; सोचा कैसे रस सरिन्हाऊँ॥४॥

विशेष:-"हरेः परमरूपम्", से यहाँ तात्पर्य व्यापक विराट निर्गुण निर्विकार, विभु एवं कूटस्थ स्वरूपों से नहीं, ,बल्कि इन सभी का परम कारण, रसिक-भक्तों के द्वारा आस्वाद्य स्वरूप से है। क्योंकि इस स्वरूप के ज्ञान का प्रयास 'भक्तितः किया जा रहा हैं। इस रूप का निरुपण तर्क शास्त्रियों के व्यायाम से साध्य नहीं है।

मूल- दिव्य वर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं; रहस्ये स्थित चेतसा ॥५॥

अन्वयः- रहस्ये, विधिवेदिना; स्थितचेतसा, वेद-विधिना दिव्य वर्षशतम्, परम जाप्यम् जजाप।

अनुवाद :- एकान्त में, विधि को जाननेवाले (श्री शिवजी ने) स्थिरचित होकर वेद की विधि के अनुसार, दिव्य सौ वर्ष परमजाप्य (मंत्रराज) का जप किया।

पद्यानुवाद;-तब उन विधिज्ञ ने स्थिर चित; वेदों की बर्णित विधि द्वारा। शत -दिव्य- वर्ष तक किया मुदित उस परम जाप्य का जप प्यारा ॥ होकर एकान्त देश बासी; काशीवासी वे अविनासी। मन्त्राराधन में लीन हुये; मन्त्रार्थ-विज्ञवर -विश्वासी

विशेषः- 'विधि-वेदिना 'शब्द का अर्थ साकेतवासी सन्त १००८ पं श्री रामबल्लभा शरण जी महाराज, "आचार्य से सीखी हुयी विधि द्वारा 'करते हैं। मंत्र,वेद-विदित हो और आचार्योपदिष्ट हो, तभीं उसका अनुष्ठान सफल होता है। श्री शिव जी ने मंत्र का आराधन, वेद-बिधिना' अर्थात् वेद की विधि से आचार्यानुमोदन प्राप्त कर किया, यह भाव परिलक्षित होता है।

प्रसन्नो भूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः। मन्त्राराध्येनरूपेण, भजनीयः सतां प्रभुः॥६॥

अन्वय- तदा सतां भजनोयः प्रभुः करूणाकरः श्रीरामः देवः मंत्राराध्येन रूपेण प्रसन्नः अभूत॥ अनुवाद- तव सज्जनों (भक्तों या श्री वैष्णव जनों) से भजनीय समर्थ, करुणा निधान देव श्री रघुनन्दन मंत्राराध्यरूप से प्रसन्न हुये॥

हो गये प्रसन्न दयालु देब करूणाकर श्री मद्रघुनन्दन। आराध्यरूप मंत्रों वाले भजनीय भक्त जन उर चन्दन॥ वोले हे भोला नाथ सुना मैं हूँ प्रसन्न बतलाता हूँ। रसिकों की दिव्य दृष्टि पथ में मैं किस प्रकार से आता हूँ॥

विशेष -"मंत्राराध्येन रूपेण "से प्रभु प्रगट हुये। यद्यपि जहाँ कामना है वहाँ बिधि है। श्री शिव जी की तथा कथितकामना यद्यपि सात्विक है। फिर भी मंत्रानुष्ठान से प्रभु प्रगट हुये। ग्रन्थकार का मन माना मचल उठा और उन्होंने निर्घोष किया कि

मन्त्रों के द्वारा आराध्य तो यह नील सुन्दर वपुष ही हैं। अन्य रूपों के दर्शन निमित्त मन्त्राराधन तो श्रम मात्र ही हैं। श्री राम जी ने कहा कि-

दृष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्। आह्लादिनीं परांशक्ति स्तूयाः सात्वत सम्मताम् ॥७॥

अन्वयः- यतमदीयं भावनास्पदं रूपं दृष्टुम् इच्छसि सात्वत सम्मतां में आहलादिनीम् परां शक्ति स्तूयाः ॥ अनुवाद- जो भव्य भावनास्पद मेरा, हैं रूप देखना चाहे रहे। जिसकी शुभ दर्शन इच्छा के वह पावन प्रेम प्रवाह रहे ॥ उसके अवलोकन हेतु परम आहलादिनि पराशक्ति भूपा। सात्वत जन-सेवित देवी का आराधन करें भाव रूपा ॥ विशेष- भावनास्पदं रूपं से तात्पर्य पंचरसों के क्रम से भावनीय स्वरूप से है। रसिकाचार्य शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं शृंगार रसों के क्रम से किसी भी रस विशेष में स्थित होकर प्रभु के जिस स्वरूप की भावना करते हैं। वह स्वरूप ही भावनास्पद है। उस स्वरूप का दर्शन श्री जानकी जू की कृपा के बिना होना सम्भव नहीं है। यथा- मिथिला बिन नाते नहिं दर से। पढ़े लिखे समुझे समुझाये पोथी लादे खर से ॥७॥

तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया बिना। तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥८॥

अन्वयः- हे शम्भो ! (अहम्) तत् आराध्यः तत् आरामः तत आधीनः तया बिना क्षणम् न तिष्ठामि। मम परमं जीवनं (अस्ति) ॥ अनुवाद—हे शिव जी ! मैं उन्हीं (श्री जानकी जू) सहित ही आराध्य हूँ। वही मेरी आराम भूता हैं। उनसे रहित मैं क्षण भर भी सुख से नहीं रह सकता। मैं उन्हीं के आधीन हुं। क्यों कि वह मेरी परम जीवन हैं। हे शम्भु सदा आराधित मैं उनपराशक्ति के संग सत्य। मेरी वे महारामभूता उनके सँगथितिः मदीय नित्य ॥ आधोन सदा ही मैं उनका मेरी वे सदा प्रान-भूता। क्षणमपि रह सकता हूं न कभी उनसे विहीन किसको छूता॥ विशेषः- रस निकुंज देश में सर्वेश्वर श्री रघुनन्दन को सर्वदा प्रिया-प्रेमवश्यता का स्वरूप स्पष्ट है। अन्यत्र भी श्री राघव कहते हैं - कि-पूर्णेन्दु सुन्दरमुखी चपलायताक्षी, सा चेत कृपां न कुरुते मयि राजपुत्री। तत्किं फलं प्रवरया ममराजलक्ष्म्या, किम्वानया मृदुल यौवन सम्पदा च ॥

(श्री जानकी गीतम्)

इत्युक्त्वादेवदेवेश वशीकरणमात्मनः। पश्यतस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौप्रभुः ॥९॥

अन्वयः- देवदेवेशः प्रभुः आत्मनः वशीकरणम्, इत्युक्त्वा तस्य शिवस्य पश्यतः स्वम्

रूपम् अन्तर्द्धानं दधौ ।। अनुवाद-देवादि देवेश सर्व समर्थ प्रभु (श्री राम जी) ने अपने आत्मवशीकरण का उपाय इस प्रकार बतलाकर, उन शिव जी के देखते देखते ही अपने उस स्वरूप को अन्तर्हित कर लिया ।।

कहकर यों वशोकरण निजका वे देवों के देवेश परम् । श्री राम परमकरुणासागर, योगीन्द्र वृन्द के ध्येयचरम् ।। देखते देखते हो उनके, कर अन्तर्द्धान स्वरूप लिया । शंकर मानस को विद्युत सा, देकर प्रकाश जागरित किया ।। विशेषः- देवदेवेशः कहकर ग्रन्थकार ने श्री राघवेन्द्र का परत्व प्रतिपादित किया यथा -वालमीकीये- ब्रह्मास्वयम्भूश्चतुराननो वा त्रातुम न सकता युधिराम बध्यम् । इस प्रकार श्री राम जी सब देवताओं के स्वयं सिद्ध ईश हैं ।।

श्रुत्वारूपं तदा शंभुः तस्याः श्री हरि वक्त्रतः । अचिन्तयत्समाधाय मनःकारण मात्मनः ।। १० ।।

अन्वयः—तदाशंभुः तस्याः (श्री जानक्याः) रूपं श्रो हरि वक्त्रतः श्रुत्वा आत्मनः कारणं मनः समाधाय, अचिन्तयत् ।। अनुवाद—तब श्रो शंकर जी ने उन श्री मिथिलेश-नन्दिनी जू के रूप को श्री राघव के मुख से सुनकर अपने कारण रूप मन को एकाग्र कर ध्यान प्रारम्भ किया ।।

उन पराशक्ति का श्री मुख से, सुनके स्वरूप मंगलकारी । अपने कारण स्वरूप मन को, केन्द्रित कर बैठे त्रिपुरारी ।। करने लय गये स्वरूप ध्यान, परमाराध्या सुख-कारी का । आह्लादिनि परम कृपा रूपा, रस की रसिका दुखहारी का ।। विशेष- "आत्मनः कारणं मनः व्यक्ति का मन ही उसके सर्वविधि व्यक्तीकरण का कारण है यथा- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" अतः श्री शिव जी ने उस मन को एकाग्र कर ध्यान करना प्रारम्भ किया ।।

अस्फुरत्कृपया तस्यरूपं तस्याः परात्परम् । दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम ।। ११ ।।

आश्रयं सर्वलोकानांध्येयं योगिविदां तथा । आराध्यं मुनि मुख्यानां सेव्यंसं-यमिनां सताम् ।। १२ ।।

अन्वयः- दुर्निरीक्ष्यं सात्वतां हृदयंगमम् सर्वलोकानां आश्रयम् योगिविदामध्येयं, मुनि मुख्यानां आराध्यम् संयिनां सतांसेव्यं, तस्याः (जानक्याः) परात्परं रूपं कृपया तस्य (शिवस्य) अस्फुरत । अनुवाद- दुलर्भ दर्शना दुराराध्या जिनकी आराधना कठिन हैं भक्त जन हृदय निवासिनी सर्वलोकाश्रयभूत योगिवर्य जनों को ध्येया मुनिमुख्यों की

आराध्या, जितेन्द्रियों की सेव्या श्री विदेहराजनन्दिनी जू का परात्पर स्वरूप उन्हीं की कृपा से श्री शिव जी के समक्ष प्रत्यक्ष प्रगट हो गया।

जो दुर्निरीक्ष्य जो दुराराध्य, जो श्री वैष्णव जन भावनीय।जो सर्व लोक आश्रय भूता, योगीन्द्रध्येय मुनि माननीय॥ संयमियों की सन्तत सेव्या, जो रूप परात्पर द्युतिकारी। स्फुरित होगया तब समक्ष, होगये मगन डमरू धारी॥

विशेष:-"दुर्निक्ष्यं दुराराध्यं" कह कर ग्रन्थकार ने श्री जनक राजकिशोरी जू की महामहिमा का संकेत किया। यथा-जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोय। बड़े बड़े देवेन्द्र मुनीन्द्र बृन्द के द्वारा वंदित और आराधित हुई भी जिन श्री जू का दर्शन उन्हें सुलभ नहीं होता। वे श्री राजकिशोरी जी प्रगट हुईं। भाव यह है कि यह श्री तत्त्व साधन साध्य नहीं। अपितु कृपैक साध्य है। "दुर्निरीक्ष्य" पद से उनके दर्शन की दुर्लभता एवं दुराराध्य पद से उनकी असाध्यता प्रगट हुई॥१२॥

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वंरूपं तस्याः सुरेश्वरः। तुष्टावजानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं प्रभाविनीम्॥१३॥

अन्वय:-सुरेश्वर: (श्री शिव:) तस्या: (जानक्या:) आश्चर्यमयं सर्वं रूपं दृष्ट्वा भक्त्या मूर्तिमतीम् प्रभाविनीं (जानकीम्) तुष्टाव॥ अनुवाद-सुरेश्वर श्री शिव जी ने उन श्री जानकी जी आश्चर्य पूर्ण सम्पूर्ण रूप को देख कर, मूर्तिमती एवं प्रभाव शालिनी श्री जू को भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे॥ यह देख सुरेश्वर श्री शंकर, आश्चर्य पूर्ण श्री अंग सुभग। नख से शिख तक द्युतिमन्त परम, पुलकाये मंगलमय रग रग॥ सुषमा वह मूर्तिमती लखते, गूँजे डमरू के नव्य घोष। हो गये प्रार्थना में तत्पर, खुल गये भाव के भव्य कोष॥ विशेष-नख से शिख तक आश्चर्य पूर्ण, उनका वह मधुर स्वरूप देख। देवेश्वर उन शिव शंकर के, मुदगये नयन निज भाग्य लेख॥ फिर परम भक्ति की परवशया, उन प्रभामई सुकुमारी का। करने स्तवन पुनीत लगे, इस भाँति विदेह कुमारी का॥ १३॥ स्तुति-प्रारम्भ—

वन्दे विदेह तनया पद-पुण्डरीकं, कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम्। हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यं; सन्मान सालिपरिपीतपराग पुञ्जम्॥ १४॥

अन्वय:-(अहं) कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम् त्रितापं हन्तुं अनिशं मुनिहंस सेव्यं सन्मान सालिपरिपीतपराग-पुञ्जम् विदेहतनया पद-पुण्डरीकं वन्दे॥

अनुवाद—अपने नित्य कैशोर सौरभ से (नित्य नूतन सुगन्ध से) योगिजनों के चित्त को अपहरण करने वाले, त्रिताप अपहरण के निमित्त सर्वदा परमहंस पद प्राप्त मुनियों से संसेव्य, भक्तजनमानस भ्रमरावलि द्वारा पीतपराग वाले (अर्थात भक्तों के मन रूपी

भ्रमरों ने जिनके पावन पराग का पान किया है) श्री विदेहराज नन्दिनी जू के चरण कमलों की (मैं शंकर) वन्दना करता हूँ ॥

कैशोर सुसौरभ से सन्तत, जो आहृत करते योगिचित्त । त्रैताप विनाशन हेतु सदा, मुनिहंसजनों के सेव्य वित्त ।। वैष्णव जन मानस भ्रमरों से सन्तत परिपीत पराग पुञ्ज । वन्दन करता वैदेही के ऐसे पद पावन दिव्य कञ्ज ।। विशेष–सन्मानसालि परिपीत पराग-पुञ्जम् कहकर ग्रन्थकार ने श्री जू के पद-पंकजों को रस पराग का परम अधिष्ठान निर्दिष्ट किया । रसिक जन मन भ्रमर तो उस पराग का पान करते ही हैं । स्वयं श्री रसिक शेखर भी इस रस पराग के अनुराग में भ्रमर बन जाते हैं । रसिकों का तो अनुभव सिद्ध सत्य हैं कि-श्री जनकलली के पदकमल जबलगि उर नहिं बास । राम भ्रमर आवत नहीं तब लौं ताके पास ।।१४।।

पादस्य यावकरसेन तलं सुरक्तं, सौभाग्य भाजनमिदं हि परं जनानाम् ।
युक्तीकृतं सुभजतां तवदेवि नित्यं; दत्ताश्रयं सुमनसां मनसानुरागम् ।।१५।।

अन्वयः—हे देवि ! तव पादस्य तलं, यावकरसेन सुरक्तं हि इदं जनानाम् परम सौभाग्य भाजनम । सुमनसां नित्यं सुभजतां (तव) दत्ताश्रयं, मनसा अनुरागं युक्तीकृतम् अनुवाद हे देवि ! आपके श्री चरणतल, यावक रंजित होने के कारण अत्यन्त अरुणारे हैं । अवश्य ही यह भक्त जनों के परम सौभाग्य अधिष्ठान हैं । सुन्दर मन से नित्य भजन निरत प्रेमी जन आपके आश्रय प्रदत्त मनके द्वारा उनमें अनुराग करते हैं।। अरुणाभ परम पद के तल की, यावक रसरंजित रम्य कान्ति सौभाग्य सुभाजन भक्तों की अरुणाई देती पुण्य शान्ति ।। सद् भजन निष्ठ जनके मन से, भजनीय चरण पंकज कोमल । मानों अनुराग अरुणिमा से, होगये अरुण तरवे पद तल ।। विशेष-'मनसानुरागम्" श्री राजकिशोरी जू के श्री चरणतल स्वाभाविक ही अरुण हैं । स्तवकार उस अरुणिमा में प्रेमी भक्तों के अनुराग की उत्प्रेक्षा करते हैं । भाव यह है कि यह लालिमा श्री चरणों के अनुरागियों के अनुराग की लाली है, जो महावर के रूप में शोभित है । साहित्य में अनुराग का रंग भी लाल माना गया है।

पादाङ्गुली नखरुचिस्तव देविरम्या; योगीन्द्रबृन्द मनसा विशदा विभाव्या ।।१५।।
त्रैताप क्लान्त्युपशमाय शशाङ्ककान्तिः दोषेण किं समुपयाति तुलां युतासा ।।१६।।

अन्वयः—हे देवि ! योगीन्द्र बृन्द मनसा विभाव्या, तव पादाङ्गुली नख रुचिः विशदा, रम्या, किम् दोषेण युत सा शशाङ्क कान्ति, त्रैताप क्लान्त्युपशमाय तुलामि याति (नयातिइत्यर्थः) अनुवाद-हे देवि ! श्रेष्ठ योगियों के मन से सेवित आपके चरणांगुलि नखों की कान्ति स्वच्छ और अत्यन्त सुन्दर है । क्या दोष से युक्त वह चन्द्र कान्ति

त्रिताप विनाशन के वैशिष्ट के सन्मुख कभी भी समानता को प्राप्त हो सकती है। अर्थात् नही ॥ योगींन्द्रबृन्द मानस विभाव्य, पादांगुलि नख की नव्य कान्ति। चन्द्रद्युति कहाँ तुल्य होगी, त्रैताप हर्तृ लख दिव्य शान्ति ॥ विशदा रम्या प्रकाश निलया, जब मंजु छटा छहराती है। शशिकान्ति हो दोषमयी, सकुचाती छिप छिप जाती है ॥ विशेष-'त्रैताप क्लान्त्युपशमाय" भाव यह कि-श्री जू के पद नख में चन्द्र-कान्ति से अधिक, रम्यता, निर्मलता और प्रभा तो है ही दैहिक; दैविक भौतिकतापों के भी उपशमन का जो वैशिष्ट है उसकी तुलना में तो बेचारा चन्द्र कभो आही नहीं सकता "पदनखद्युति विनमित चन्द्रे निजपतिपद परिचरण वितन्द्रे" कहकर सर्वत्र ही पद नखों की कान्ति से चन्द्र को लज्जित कहा गया है ॥

मञ्जीर धीर निनद कलहंसकाली, हा साय सा भवति भावयति त्वदीय।

किञ्चापरं रसिकमौलि मनोनियन्तु; दृष्टं मया परमकौशलमत्र तस्य ॥१७॥

अन्वयः-हे देवि ! सा कलहंसकाली, त्वदीयं मञ्जीर धीर निनदं भावयदि हासाय भवति। रसिकमौलि मनः नियन्तुम् किञ्च अपरम अत्र मया तस्य परम कौशलम् दृष्टम् ॥ अनुवाद-हे देवि ! सुन्दर हंसों की पंक्ति, आप के नूपुरों के गम्भीर ध्वनि की समानता करती हुई उपहास की पात्र होती है, रसिक मौलि (श्री रघुनन्दन) के मनका नियमन रूप कृत (इन नूपुरों में) यहाँ मैने कुछ और परम चातुर्य देखा ॥ करने चलती कलहंस पंक्ति मंजीर धोर ध्वनि की समता। तव सहज हास्य योग्या होती, उसकी समता की अक्षमता ॥ कर लेती रसिक मौलि मनका, इसकी ध्वनि सहज नित्य नियमन। कलकौशल और लखा इनमें, पायेगो हंस पंक्ति क्या कन ॥ विशेष-'दृष्टं मया परं कौशल मत्रतस्य" भाव यह की हंसों की पंक्ति इन नूपुरों की शुभ्रता में भले ही समता करले, किन्तु इनकी ध्वनि को श्रवण करते ही वह उपहास बन जायेगी। हस पंक्ति की ध्वनि भी यदि रम्य होती, तो भी इनकी ध्वनि में श्री रसिकेश्वर के जो वशीकरण की जो वैशिष्ट है उसकी तुलना ता कदापि हो ही नहीं सकती थो ॥१७॥

सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ; पादारविन्दु युगलौ जनतापवर्गौ।

विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि भाव सिद्धिं; ध्यायन्ति ये निखिल सौभगभानु भाजौ ॥१८॥

अन्वयः हे त्रिभुवनेश्वरि ! ये सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ जनतापवर्गौ, निखिल सौभग भानु भाजौ ते पादारविन्द युगलौ ध्यायन्ति, ते भावसिद्धि विन्दन्ति ॥ अनुवाद-हे तीनों लाकों की स्वामिनि ! जो (व्यक्ति) श्रीराम जी की श्रेष्ठमति को प्रसन्न करने वाले, गूढ़ गुल्फों से युक्त, जनों के (भक्त जनों के) ताप के विनाशक,

तथा सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्यरूप, आपके दोनों चरणारविन्दों का ध्यान करते हैं, वे भाव की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ जो ताप विनाशक भक्तों के, सिद्धीशबुद्धि रंजनकर्ता। मंजुल गुल्फों से युक्त युगल, पादारविन्द दुख के हर्ता ॥ उन परम सुसौभग भानुरूप, चरणों को जो ध्याया करते। हे हे त्रिभुवन की महाईश, वे भाव सिद्धि पाया करते ॥ विशेष-"निखिल सौभग भानु भाजो," पद का अर्थ सन्त श्री गोविन्द दास जी सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्य श्री राम जी की सेवा में रहने वाले करते हैं। जब कि अनन्त श्री पं० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज "सम्पूर्ण सौन्दर्य के प्रकाश स्थान" यह अर्थ करते हैं। इसी प्रकार जनतापवर्गौ पद की व्याख्या प्रथम सन्त (जनता अपवर्गौ) भक्तजनों के मोक्षरूप करते हैं। जबकि श्री पं० जी महाराज (जनताप वर्गौ) भक्तजनों के ताप विनाशक करते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को द्वितीय भाव ही अभीष्ट है ॥१८॥

हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितं ते; त्रैलोक्य तेज इव मञ्जुल पुञ्ज भूतम् ।
भावस्मि सुन्दरि पदं सरसीरुहाभं, भीताभयप्रदमनन्त मनोभिध्येयम् ॥१९॥

अन्वयः-हे सुन्दरि ! (अहं) हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितम् त्रैलोक्य तेजइव मञ्जुल पुञ्ज भूतम्, सरसीरुहाभम् भीताभयप्रदम् अनन्त मनोभिध्येयम् ते पदम भावास्मि (भावितुं इच्छामि) ॥ अनुवाद-हे सुन्दरि ! (मैं) सुवर्ण रचित विभूषणों से शोभित तीनों लोकों के (पुञ्जीभूत) तेज की भाँति सौदर्य्यमय कमल की सी आभा वाले (संसार शोक) भयभीत प्राणियों के अभय प्रदाता अनन्त (श्री राम जी) के मन के द्वारा ध्येय, आपके युगल श्री चरणों की भावना करने की इच्छा करता हूँ ॥ उन हेम भूषणों से भूषित, त्रैलोक्य तेज के पुञ्जभूत। श्रीराघवेन्द्र के मनोध्येय, कमलारुण मंजुल परम पूत ॥ भवताप तीव्र के अभयदानि, चरणों को उर में धार रहा। हे सुन्दरि ! उन पद कंजों को, भावना भव्य स्वीकार रहा ॥ विशेष-"अनन्त मनोभिध्येयम्" श्री प्रिया जू के पद कमल प्राणवल्लभ के भी ध्येय हैं तभी तो रसिकाचार्य जन कहते हैं कि-विहरत सदा रसिक रघुनन्दन, लली चरन रज परसे। यही जानि सुखमानि वसी सब, कंचन वन रस अरसे ॥ (श्री युगल प्रिया जी) ॥१९॥

चक्राभहारि सुनितम्ब युगं भवत्या, ध्येयं सुधीभिरनिशं रसनाभिपक्तम् ।
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसोमुनीनां, भावैकगम्यममरेश नताङ्घ्रिपद्मे ॥२०॥

अन्वयः-हे अमरेश नताङ्घ्रिपद्मे ! (अहम्) चक्राभहारि, सुधीभिः अनिशं ध्येयम् रसनाभिषक्तम रघुपतेः मनसः ध्यानास्पदम् मुनीनां भावैकगम्यम् भवत्याः सुनितम्वयुगं भावयामि ॥ अनुवाद-हे इन्द्रादिकों से नमस्कृत चरण कमल वाली (अहम्) मैं चक्र

को हरण करने वाले, बुद्धिमानों द्वारा, अहर्निशि ध्येयः क्षुद्रघंटिका से युक्त, राघवेन्द्र जू के ध्यान के स्थान, मुनिजनों के केवल भाव करने योग्य, आपके युगल नितम्बों की (विशुद्ध भाव से) भावना करता हूँ ॥ अमरेश नतांघ्रि युग्मपद्म ! जो सुधावृन्द के ध्येय रूप । चक्रद्युतिहारि नितम्ब युगल, रसना से मण्डित अति अनूप ॥ ध्याना-स्पद राघवेन्द्र मनके, जो श्री मुनीन्द्रजन भाव गम्य । भावना कर रहा मैं उनको, वे वदेही के अंगरम्य ॥ विशेष—"चक्राभहारि" पद की व्याख्या में अनन्त श्री पं० राम वल्लभाशरण जी महाराज चक्र की गोलाई को हरन करने वाले यह अर्थ करते हैं ॥२०॥

कौशेयवस्त्र परिणद्धमलंकृतं ते; कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकैः ।
रत्नोत्तमै रसनया ग्रहकान्ति मद्भिर्भास्वन्ति निर्मिततया स्वधियन्ति मध्यम् ॥२१॥

अन्वयः-(हे देवि ! भक्ताः) कौशेयबस्त्र परिणद्धम् कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकै ! अलंकृतम् ग्रहकान्तिमद्भिः रत्नोत्तमैः निर्मिततया रसनया भास्वन्ति, ते मध्यम स्वधि-यन्ति ॥ अनुवाद—हे देवि ! भक्तजन कौशेय (रेशमी) वस्त्र से सुशोभित स्वर्ण एवं हीरक प्रभृति मणियों से अलंकृत, कान्तिमान ग्रहों के समान श्रेष्ठ रत्नों से विरचित, (बने हुये) रसना (कटि अलंकरण जो क्षुद्र घंटिकाओं से निर्मित होता है) से युक्त, सूर्य की भाँति दीप्तिमान, आपके कटिदेश को ध्यान में भावना करते हैं ॥ कौशेय-वसन परिणद्ध अहो, हीरक सुवर्ण मणि की शोभा । अतिकान्तिमन्त नक्षत्रोंवत, रत्नों की रसना मनलोभा ॥ इस भाँति भानु सा दीप्तिमंत, भवदोय सु मंजुल कटि-प्रदेश । हे देवि ! रसिक जन के मनका, होता 'सु' ध्यान से ही प्रवेश ॥ विशेष—'ग्रह-कान्तिमद्भिः,' कटि प्रदेश की अलंकार-भूता रसना रत्नों से विनिर्मित है । वे रत्न गगन मण्डल के नक्षत्रों की भाँति कान्तिमान हैं, यह भाव है ॥२१॥

अस्वत्थ पत्रनिभमम्ब धियोदरन्ते; भाव्यं भवाब्धितर केवल काल नाशे ।
भूयो न भावि जननी जठरे निवासः स्तेषां मनोधरणि जेऽत्र सुलग्नमासीत् ॥२२॥

अन्वयः—हे भवाब्धितरि ! हे केवल कालनाशे, हे धरणिजे, अम्ब, अस्वत्थ पत्र-निभम धियाभाव्यम ते (तव) उदरं येषां मनः अत्र सुलग्नम् आसीत् तेषां जननी जठरे निवासः भूयः न भावि ॥ अनुवाद—हे संसार सिन्धु की तरणि स्वरूपिणी (नौका रूप) हे एकमात्र काल की बिनासिनी, हे भूमिनन्दिनो ! हे माँ आप का श्री उदर पीपल पत्र की भाँति [सुचिक्कन] एवं सूक्ष्म तथा सद्बुद्धि से ध्यान करने के योग्य हैं । जिनका [भक्तों का] मन यहाँ एकाग्रता पूर्वक लग गया, उनका पुनः माता के गर्भ में निबास नहीं होगा । अर्थात आवागमन छूट जायेगा ॥ हे भवसमुद्र तरणी रूपे, हे काल बिनासिनी भूमिसुते । अस्वत्थपत्र निभ उदरमयी, हे विधि हरिहरादि

शक्ति नुते ॥ सद्बुद्धि भाव्य तब उदर देश, जिनके मनमें निवास पाता । जननी का जठर निबास अहो, उनका सदैव को मिट जाता ॥ विशेष—"जननो जठरे निवास:" भाव यह कि जिनका सूक्ष्म मन श्री जू के चिन्मय बपुष के ध्यान में लग गया, उनकी भौतिक वासनायें नष्ट हो जाने के कारण पुनर्जन्म होना सम्भव नहीं ॥२२॥

नाभीह्रदं हरिमनः करिणः कृशांशोः पुष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवली तरङ्गम् ।
राजीसुशैलनिभं अभिभूतरोम्णां, शान्त्यै तव त्रितपतामतिभावयामः ॥२३॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) त्रितपतां शान्त्यै हरिमनः करिणः कृशांशः पुष्टिप्रदं त्रिवली तरङ्गम् प्रचलितम् अभिभूतरोम्णाम् राजीसुशैलनिभं तव नाभी ह्रदयम् अतिभावयामः ॥ अनुवाद—हे देवि ! हम सब तीनों तापों की शान्ति के लिये, श्री रघुनन्दन के मनः करि की (मन रूपी हाथी की) कृशता को पुष्टि देने वाले, त्रिवली तरंग से युक्त (जिनमें त्रिबली रूपी तरंगे चल रही हैं) तथा सेवार की भाँति रोमावर्ति से सुशोभित (जहाँ आवर्त रूप रोमों की पक्तियाँ हैं) ऐसे नाभिकुण्ड की अतिशय भावना करते हैं ।

आवर्त रोम्ण युत नाभि कुण्ड, शैवल समान शोभा वाली । हरि के कृशकाय मनो करि की, पीनत्व प्रदात्री छविवाली ॥ त्रिवली तरंग से जो चंचल, श्री नाभिकुण्ड को हे माता । त्रैताप बिनासन हेतु आज, संयमित चित्त से मैं ध्याता ॥ विशेष—रसिकाचार्य अनन्त श्री रामचरण दास जी (श्री करुणासिन्धु जी) महाराज नाभि देश-सुषमा का वर्णन कितनी रससिक्त वाणी में कर रहे हैं ॥ "नाभि दिव्य द्विजराज, अमीह्रद अलि जिमि । रबि नन्दिनि छवि भ्रमर, करैं छवि तहँ किमि ॥ त्रिवलि रेख छवि सीवं सूत्र किंकिनि रुचि । मनहुँ महा छवि देखि, हँसति त्रिभुन छवि ॥" प्रस्तुत पंक्तियाँ अपने आप में पूर्ण एवं रस की उद्गाता हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मूल श्लोक का सटीक अनुवाद हो रस सिद्ध सन्त की वाणी में उतर आया है ॥२३॥

नीलाभकञ्चुकमणीन्द्र समूह निष्कैः वक्षोजयुग्ममति तुङ्ग मलंकृतन्ते ।
हारैर्मनोहर तरैस्तरुणि ! क्षितीजे; सौन्दर्य वारिनिधि वारितरङ्गसङ्गम् ॥२४॥

अन्वयः—हे क्षितीजे ! हे तरुणि ! (वयम्) नीलाभ कञ्चुक मणीन्द्र समूह निष्कैः मनोहर तरैः हारैः अलंकृतं अति तुंगं सौन्दर्य वारिनिधि वारितरंग संगम् ते वक्षोज युग्मम् (भावयामः) अनुवाद—हे भूमि जे ! हे तरुणि ! हम नीलकान्ति वाली कञ्चुक और श्रेष्ठमणिसमूह से रचित निष्कों (कण्ठाभूषणों) एवं परम मनोहर हारों द्वारा सुशोभित अति ऊँचे सौन्दर्य रूपी समुद्र के तरंग-संगमवत् आपके युगल वक्षोज का हम ध्यान करते हैं ॥ नीलाभकंचुकी से एवं, गुम्फित मणीन्द्र युत कंठमाल

अति रम्य महाई सुहारों से, भूषित सुतुंग बक्षोज जाल ॥ सौंदर्य वारिनिधि लहरों के, संगम समान शोभाशाली। हे तरुणि मणे ! हे भूमि सुते ! करते हम ध्यान प्रेमपाली ॥ विशेषः—"बक्षोज युग्मगति" भावना के जिस स्तर में आरूढ़ हो, रसिक मानस श्री प्रिया प्रीतम के शृंगार महोदधि का अवगाहन करता है। वहाँ दृष्ट एवं श्रुत विषय गंध तो दूर "ताको नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे" की स्थिति होती है। रसिकाचार्य श्री हित हरिवंश महाप्रभु की राधा सुधानिधि के इसी सन्दर्भ में ये 'विन्दु' अवगाह्य हैं। महाप्रभु श्री जू के युग्म बक्षोज का कितने श्रद्धा से नमन करते हैं। क्रीड़ासरः कनक पंकज कुड्मलाय, स्वानन्द पूर्ण रस कल्पतरोः फलाय। तस्मै नमो भुवन मोहन मोहनाय, श्री राधिके ! तव नवस्तन मण्डलाय ॥ श्री छन्दसंख्या ३३,३४,३५ एवं ३६ विशेष रूप से अवलोकनीय हैं ॥२४॥

बाहू मृणाल मद खण्डन पण्डितौ ते, भीताभयप्रद वदान्यतमौ जनानाम्।
रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कितमुद्रिकौ तौ; हैरण्य कङ्कण धृतावलयौ भजामः ॥२५॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) मृणालमद खण्डन पण्डितौ, जनानाम् भीता भयप्रद-वदान्य तमौ, रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कित मुद्रिकौ, हैरण्य कङ्कण धृतौ ते तौ बाहू भजामः॥ अनुवादः—हे देवि ! हम मृणाल दण्ड के मद खण्डन में पण्डित (दक्ष-प्रवीण) भक्तजनों को संसार भय से अभय करने में अत्यन्त उदार स्वर्ण कंकण एवं वलय (चूड़ियाँ) विभूषित आपकी युगल बाहु का भजन करते हैं॥ पंडित खंडन मृणाल मद के, भक्तों के सदा अभयकारी। भव भय प्रभीत जग जीवों के, जो दुखहर्ता मंगल कारी॥ टंकित रुक्मागंद-युक्त स्वर्ण, चूरी सु मुद्रिका मनहारी। हे देवि ध्यान पथमें आवें, वे युगल बाहु सब सुखकारी॥ विशेष—"मृणाल मद खंडन पंडित" शब्द से भुजाओं का परम सौकुमार्य एवं "भीताभयप्रद" पद से उनका सर्व सामर्थ्य व्यक्त हुआ। भगवती श्री सीता जी का सर्व सामर्थ्य गायन करते हुये उपनिषद् कहते हैं कि निमेषोन्मेष सृष्टिस्थिति संहारतिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्ति सामर्थ्यात्साक्षात्छक्ति-रितिगीयते। (श्री सीतोपनिषद्) ॥२५॥

कण्ठं कपोततरुणीगलकान्तिमोषं; भूषैर्नैकविध भूषितमम्ब तुभ्यम्।
ध्यायेम मानस विशुद्धिकृते कृपालो; योगीन्द्र भावित पदे शमदेशरण्ये ॥२६॥

अन्वयः—हे कृपालो ! हे योगीन्द्रभावितपदे ! हे शमदे ! हे शरण्ये ! हे अम्ब ! (वयम्) मानस-विशुद्धिकृते, कपोत तरुणीगलकान्ति मोषम् भूषैर्नैकविध भूषितम् तुभ्यं (तव कण्ठं) ध्यायेमः॥ अनुवाद-हे कृपालु ! हे योगीन्द्र जनभावित चरणो ! हे शान्ति प्रदात्री ! हे शरण्ये ! हे माँ ! हम मन की शुद्धि के निमित्त कपोती की कण्ठ

कान्ति के अपहारक, विविध विभूषणों से विभूषित, आपके कण्ठ-देश का ध्यान करते हैं ॥ हे योगिबृन्द भावित चरणे, हे परम शरण्ये ! हे माता। तव विविध भूषणों से भूषित, श्री कंठ देश को मैं ध्याता ॥ जो कंठ कपोत तरुणि की भी, ग्रीवा की शोभा हरण करे; हे शमदे ! कंठ त्वदीय वही मेरे मानस का वरण करे ॥
विशेष–"मानसविशुद्धिकृते" कहकर स्तवकार ने श्री राजकिशोरी जू के कंठ-देश का ध्यान विशेष रूप से मनः शुद्धि कारक निरूपित किया ॥२६॥

वक्त्रेन्दुमिन्दु चय खण्डित मण्डितांशुं, खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशम्।
सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं वरेण्यं; रामाक्षितारक चकोरमहं भजे ते ॥२७॥

अन्वयः– अहं इन्दुचय खण्डित मण्डितांशुम् खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशं सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं, वरेण्यं, रामाक्षि तारक चकोरम् भजे ॥ अनुवाद–मैं चन्द्रज्योत्स्ना के मद-विखण्डक, किरण-मण्डित पण्डितों के (न्यायशास्त्र के पण्डितों के) मनको परिदण्डित करने वाले, भक्तजन मानस कमल के आनन्दमय प्रकाशक, वरेण्य (वरण करने योग्य) श्री रघुनन्दन नेत्र चकोरों के चन्द्र रूप आपके श्री मुख का ध्यान करता हूँ ॥

मंजुल सुज्योत्स्ना से मण्डित परिदण्डित करता पण्डित मन। रामाक्षि सुतारक बनि चकोर, लखते जिनका श्री चन्द्रबदन ॥ चन्द्रद्युति होती म्लीन चूर सज्जन मन कैरव खिल जाते। वक्त्रेन्दु दिव्य वह ध्याता मैं मिथिलेशलली का हर्षाते ॥
विशेष–"पण्डितमनः परिदण्डिताशं," पंडित-मन का तात्पर्य न्यायशास्त्र के पंडितों का मन" यह अर्थ करते हुये अनन्त श्री पं० रामवल्लभाशरण जी महाराज कहते हैं कि न्यायशास्त्र में अनुमान करते करते, जब कहीं, श्रीकिशोरीजीके मुखचन्द्रको उन्होंनें देख पाया उस समय वे न्यायशास्त्रज्ञ यही कहते हैं कि हमनें उस न्याय में व्यर्थ ही परिश्रम किया ॥२७॥

ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्तपङ्क्तिः; प्रद्योतिताधरमधः कृतबिम्बरागम्।
ईषत्स्मितद्युति कटाक्ष विकाशिताशं; वक्त्रं परेश नयनास्पदमाभजे ते ॥२८॥

अन्वयः–(हे देवि ! अहं) ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्त पङ्क्ति प्रद्योतिताधरम अधः कृत बिम्बरागम् ईषत्स्मित द्युति कटाक्ष विकाशिताशम् परेशनयनास्पदम् ते वक्त्रम् आभजे ॥

अनुवादः–हे देवि ! मैं ताम्बूलराग से रंजित दन्त पङ्क्ति से प्रकाशित, बिम्बाफल की अरुणिमा के अधोकर्ता अधर पल्लवों वाले, मन्दस्मित (मधुर मुसुक्यान) की द्युतियुक्त कटाक्ष से सम्पूर्ण दिशाओं को विकसित करने वाले, श्री राम जी के नेत्रों

के विश्राम स्थान, आपके श्री मुख का ध्यान करता हूँ ॥
ताम्बूलराग से परिरंजित, दन्तावलिद्योतित अरुणारे। बिम्बाफल लाल म्लीन होते, लखते अरुणाधर वे प्यारे ॥ मन्दस्मिति-कान्ति कटाक्ष छटा, भर देती प्रभा दिशाओं में। ध्यानास्पद राघव नयनों का, ध्याता मुख कंज प्रभाओं में ॥
विशेषः—"परेशनयनास्पदम्" प्रियतम श्री रघुनन्दन की, प्रियामुखचन्द्रानुरक्ति की ओर संकेत किया। स्वामी श्री हरिदास जी के शब्दों में प्रभु कहते हैं। प्यारी जू जब जब देखौं तेरो मुख, तव तव नयो नयो लागत। ऐसो भ्रम होत मैं कबहूँ देख्यो न री, दुति को दुति लेखनी न कागज तथा-ज्यों ज्यों देखौं त्यों त्यों नयनन को तृष्णा होत, प्यारी जू को रूप मानो प्यास ही को रूप है। इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री जू की रूप माधुरी (मुखछबि) परेश की नयनास्पद है ॥

नासाग्रमौक्तिकफलं फलदं परेशे; ध्यायन्तिनिज जाड्यबिनाश हेतो।
त्रैलोक्यनिर्मलपदं सुखदं त्वदीयं; स्वेच्छाभिकांक्षिण इदं बहुशो रसज्ञाः ॥२६॥

अन्वयः—(हे देवि) ये बहुशो रसज्ञाः त्वदीयम् सुखदम् त्रैलोक्य निर्मल-पदम् स्वेच्छाभिकांक्षिणः भवन्ति, ते जाड्य विनाशाय हेतोः परेशे-फलदम् इदम् नासाग्र मौक्तिक-फलम् ध्यायन्ति ॥
अनुवादः—हे देवि जो विविध रसों के वेत्ता (रसिक जन) भवदीय, परम सुखद एवं त्रैलोक्य-निर्मल (तीनों लोकों में निर्मल अर्थात् परम निर्मल) पदकी स्वेच्छा से अभिलाषा करते हैं। वे अपनी जड़ताके विनाशके निमित्त, परेश (श्रीरामजी) में फल (प्रेमाभक्ति) को देने वाले, आपकी इस नासिकाके अग्रभागके मौक्तिकफलका ध्यान करते हैं॥
बहु भाँति रसों के जो रसज्ञ, तव पावन पद के प्रत्याशी। त्रैलोक्य-अमल निर्मल सुखप्रद, रहते जिस पद के अभिलाषी ॥ वे भी निज जाड्य बिनाश हेतु, श्रीराम प्रेम फल के दाता, तवनासा मौक्तिक को ध्याते, जानता सत्य मैं हूँ माता ॥ विशेष भाव यह कि श्री जू की नाशामणि का ध्यान, जीव की जड़ता का विनाशक है ॥२६॥

ज्ञानं निरंजनमिदं विवदन्ति ये ते; मुह्यन्ति सूरि निवहास्तरुणी कटाक्षैः।
नालोकयन्ति नितरां तवदेवितावद् दीर्घायुषाक्षि युगमंजनरंजितं ते ॥३०॥

अन्वयः—(हे देवि) ये सूरिनिवहाः इदम् निरंजनम् ज्ञानम् विवदन्ति, ते (यावत्) अंजन रंजितम् तव अक्षियुगम् नितरां न आलोकयन्ति, तावद् ते दीर्घायुषा (अपि) तरुणीकटाक्षैः मुह्यन्ति ॥ अनुवाद—हे देवि ! जो पंडित बृन्द, निरंजन ज्ञान ऐसा है, वैसा है इस प्रकार विवाद करते रहते हैं। वे जब तक आपके अंजन रंजित युगल-नयन का पूर्णतया दर्शन नहीं पाते, (अर्थात् आपकी कृपा का आश्रय नहीं लेते)

तब तक वे दीर्घायु-पर्यंत अर्थात् कल्पों की आयु तक साधन करते हुये भी, तरुणियों के कटाक्ष से मोहित होते रहते हैं ॥ वेदान्त निष्ठ विद्वानवर्य, जो ज्ञान निरंजन के भासी। अद्वैत अलक्ष ब्रह्मवार्ता, करने के सन्तत अभ्यासी ॥ अंजन अनुरंजित अक्षि-युगल, जब तक न देवि तव लख पाते। तब तक सुदीर्घ कालावधि तक, तरुणी कटाक्ष में उलझाते ॥ विशेष—भाव यह कि आप की कृपा कटाक्ष के आश्रय के बिना उन्नतम साधन भी आत्यन्तिक बिषय-निबृत्ति कर पाने में समर्थ नहीं हो पाते। बार बार बिषयों में फसते रहते हैं ॥३०॥

भ्रूवल्लरी बिलसितं जगदाहुरीशे; व्यासादयो मुनिवरास्तुत एव नित्यम्।
नाशाय तस्य तरुणी तिलके त्वदीया; पाशीकृताहरिमनोमृग बन्धनाय ॥३१॥

अन्वयः—हे तरुणीतिलके, हे ईशे! व्यासादया मुनिबराः नित्यं स्तुत एव आहुः त्वदीया भ्रूवल्लरी जगत् विलसितम् नाशाय, हरिमृगमनो बन्धनाय पाशीकृता ॥ अनुवाद—हे तरुणीशिरोमणी! हे समर्थे! श्री व्यासादि मुनिश्रेष्ठ नित्य स्तुति करते हुये कहते हैं कि आपकी भ्रूवल्लरी, जगत् के विलास और नाश की कारण तथा श्री राम जी मनरूपी मृग को बाँधने के लिये पाश की भाँति हैं।

विशेषः—"भ्रूवल्लरी विलसितं" भाव यह कि श्री जू का भृकुति विलास संसार की उत्पत्ति, रक्षण और संहार का कारण है। यथा-उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीं, सर्व श्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ "हरिमनोमृग बन्धनाय" 'सिनोत्यतिगुणैः कान्त्यैः" इत्यादि से स्पष्ट है।

हे तरुणि तिलक हे महाईश, स्तुति करते व्यासादि नित्य।
भ्रू युगल आपके पास रूप, बन्धन को हरिमृत रूप चित्त ॥
जिनके विलास से श्रृष्टि सकल, उद्भव विनाश की गति पाती।
वे भृकुटि युगल भवदीय देवि, मेरी मति मोद मगन ध्याती ॥

भालं विशालमति सौभग भाजनं ते, सिन्दूर विन्दु रुचिर द्युति दीप्तिमन्तम्।
पिण्डीकृतः किमुत राग इतीव तस्मिन्; प्रद्योतते जननि जागत् जन्म भाजाम् ॥३२॥

अन्वयः—हे जननि! सिन्दूर-विन्दु रुचिरद्युति दीप्तिमन्तम् अति सौभग भाजनम् ते विशालम् भालम्. किमुत, जागत् जन्मभाजाम् रागः तस्मिन पिण्डीकृतः इतीव प्रद्योतिते ॥ अनुवाद—हे माँ सिन्दूर विन्दु की सुन्दर कान्ति से प्रकाशमान, अत्यन्त सौन्दर्याधिष्ठान, आपका विशाल भाल है। संसार में जो भाग्यशाली पुरुष हैं, क्या उनका राग (प्रेम) ही स्वरूप धारण करके, स्थिर नहीं होगया है। जो अत्यन्त प्रकाशमान है ॥

हे अम्ब विशाल तेरा, सिन्दूर विन्दु द्युति से द्योतित । अत्यन्त सुसौभगका निवास है परम प्रभा से जो ज्योतित ॥ मानों समस्त जग जीवों की, पिण्डीकृत प्रीति निवास थली । ध्याते वह परम प्रकाश उत्स, खिल रही मंजु उर कंज कली ॥

विशेष—स्तवकार श्री जू के भाल देश में, प्रतिष्ठित सिन्दूर विन्दु में भक्तजनों के पिण्डी भूत राग की उत्प्रेक्षा करते हैं ॥

आदर्श वर्तुल कपोल विलोल लोलं, कर्णावतंस युगलं जन जाड्य नाशम् ।
सूर्यादि कान्तिहरमाश्रयमोजसांते; तीव्रंधिया धरणिजे स्वधियन्तिधीराः ॥३३॥

अन्वयः—हे धरणि जे ! धीराः आदर्शं वर्तुल कपोल बिलोललोलं जनजाड्य नाशम् सूर्यादिकान्तिहरम् ओजसाम आश्रयम् ते (तव) कर्णावतंसयुगलं तीव्रं धिया स्वधियन्ति

अनुवाद-हे भूमि नन्दिनी श्री जानकी जी ! धीर-पुरुष मुकुर कपोलों में झूलते हुये, भक्तों के अज्ञान विनाशक, सूर्यादिग्रहों की कान्ति के अपहर्ता, तेजों के आश्रयभूत आपके युगल कर्णभूषणों को विशुद्ध भाव पूर्वक सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान करते हैं ॥

दर्पण द्युतिमय गोल गोल, सुकपोल युगल में छबि भारी । कर्णावतंस जनजाड्य हरण, सूर्यादिग्रहों के द्युति हारी ॥ तेजों के भी जो परमाश्रय, धीरों की धी के ध्येय चरम (हे धरणि सुते ताटंकयुग्म, मेरे वे आश्रयभूत परम ॥

विशेष—"तीव्रं धिया स्वधियन्ति" भाव यह कि प्रज्ञ सन्त हैं । वे भी अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्वस्थिति बुद्धि से जब श्री जू के ताटंक युगल का ध्यान करते हैं, तभी उनके आत्यन्तिक जाड्य का नाश होता है ॥३३॥

कालोविभेति जगतामतिभक्षकस्ते; जैवातृको भवदशीमगुणोयतो सौ ।
सर्वातिवल्लभतया भजनीयरूपे, मन्यामहे हरिरितिश्रुति भूषसारम् ॥३४॥

अन्वयः—हे भजनीय रूपे ! जगताम् अतिभक्षकः कालः ते विभेत, यतः असौ जैवातृक हरिः सर्वाति वल्लभतया असीम गुणः श्रुतिभूषसारम् अभवत् इति मन्याम् हे ॥

अनुवाद—हे भजन करने योग्य स्वरूप वाली देवि ! जगत् मात्र का अति भक्षक काल भी आप से डरता है । इस लिये जीवन दाता (हरिः) चन्द्रमा सभी को अति प्रिय होने के लिये निःसीम गुणों से युक्त आपके श्रवणों का अति श्रेष्ठभूषण बना हुआ है, ऐसा हम मानते हैं ॥

भजनीय स्वरूपे हे देवी, अति भक्षक जगका महाकाल । भयभीत आप से है रहता, रहता सुन्दर लै पास जाल ॥ इसलिये चन्द्र जीवन दाता श्रुति भूषण सार स्वरूप बना । श्री कर्ण देश का आश्रय ले, कर लिया भाग्य वर्द्धन अपना ॥ विशेष-"कालो विभेति" भाव यह है कि श्री राज किशोरी जू अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली हैं ।

काल जगत मात्र का भक्षक होनेके कारण. अपनी कर्म कर्कशता का बिचार करके श्री राजकिशोरी जू से डरता रहता है। क्योंकि श्री जू तो अपराधीके प्रति भी सकरुण ही रहती हैं। चन्द्रमा ने अवसर का लाभ उठाया, अपने तापापहारक कर्म को श्री चरणों में सुनाया, फलतः भोरी श्री राजकिशोरी जू ने उसे अपना कर्ण भूषण बना लिया ॥३४॥

सीमन्तम्बतव सुन्दरतातिसीमं, मुक्ताविभूषितमलं सममागभाजाम्।
निःसीमतापदकृते यतयो यतन्ति; जानीमहे महितवन्दितसीममूर्ते ॥३५॥

अन्वयः-हे महितवन्दितसीममूर्तें ! हे अम्ब ! सममागभाजाम् मुक्ताविभूषितम् सुन्दरतातिसीमम् तव सीमन्तम् यतयः निस्सीमतापदकृते अलम् यतन्ति। (इतिवयम्) जानकीमहे ॥ अनुवाद-हे पूजनीय की परमवन्द्यमूर्तें ! हे माँ समभाग में विभक्त मौक्तिक विभूषित, सौन्दर्य की सीमारूप, आप की माँग (केश सीमा) का सनकादि मुनिश्रेष्ठ, अनन्त पद की प्राप्ति के लिये, अत्यन्त प्रयास पूर्वक नित्य ध्यान करते हैं यह हम जानते हैं ॥

हे महामहिम्न बृन्द वन्दित, हे वन्द्य पदोंकी सीममूर्ति। सनकादि यतीन्द्रों की होती, निस्सीम परम पद की सुपूर्ति ॥ ध्याते जब वे सीमन्त देश, हे अम्ब तुम्हारा छविशाली समभाग विभाजित मौक्तिक से, भूषित सीमन्त प्रभावाली ॥

विशेषः-'निःसीमतापदकृते" कह कर अनन्तपद अथवा दिव्य श्री साकेतधाम की ओर संकेत किया गया। यथा-सुनहु वेद निष्वेद धाम गुनतीत परम शुचि। वर्णाश्रम सुख दुःख, तहाँ नहिं पाप पुण्य रुचि ॥ अति निर्मल निर्वान, परम पद महाचयनपुर। महादिव्य अति अचल, अगम है ब्रह्मादिक सुर ॥ (रसिकाचार्य अनन्त श्रीस्वामी करुणासिन्धु जी महाराज) ॥३५॥

कालाहिभीति भजतामहिभोगभिन्ना; पायात्परेश्वरि सतामवती सदानः।
एणी दृशस्तव विशालतरानु वेणी; दर्भाग्रभाग सदृशी सुदृशां त्रिलोक्याः ॥३६॥

अन्वयः-हे परेश्वरि ! कालाहि भीति भजताम् सताम् अवती अहि भोगभिन्ना दर्भाग्र भाग सदृशी, त्रिलोक्याः सुदृशाम् एणीदृशः तव विशाल लतरानु वेणी नः सदा पायात् ॥ अनुवाद-हे परेश्वरी ! काल के भय से भजन करने वाले सज्जनों की रक्षा करने वाली, सर्प के शरीर सदृश (समान) कुशाग्रभाग के समान त्रिलोकी की सुनेत्रा देवियों के मध्य मृगी के समान नेत्र वाली, आपकी विशाल तराबेणी हमारी सर्वदा रक्षा करे ॥ जो काल व्याल से भीत जीव, तब भजन निरत साधनशाली। उन सज्जन जन की तव वेणी, वह कठिन क्लेश हरने वाली ॥ दर्भाग्र तुल्य

नागिन तुल्या, कृष्णा कमनीया वेणी की। करते हम ध्यान मृगाक्षि देवि, त्रैलोक्य सुनेत्रा श्रेणीकी ॥ विशेष-स्पष्ट है। भजन निष्ठ साधक काल भय से मुक्त हो जाते हैं ॥३६॥

साटीसुसूक्ष्मतराति गतानि नीला; सौवर्णसूत्रकलिता कृपयावृताते।
भर्तुः स्वरूपमनुभावयतां जनानां; प्रीत्यैकरोषि परदेवि यदापिधानम् ॥३७॥

अन्वयः– हे परदेवि ! भर्तुः स्वरूप अनुभावयतां जनानां प्रीत्यै यतत्वं अपिधानं करोषि, सा साटी ते कृपयावृता, सौवर्णसूत्र कलिता अति नील सु सूक्ष्म तरातिगता॥ अनुवाद–हे परदेवि ! भर्ता श्री राघवेन्द्र के भजननिष्ठ जनों की प्रीति के हेतु आप जिस साटिका (साड़ी) को धारण करती हैं। वह अत्यन्त कृपा से पूर्ण, स्वर्णसूत्र विरचित अत्यन्त नील एवं अत्यन्त ही झीनी है।

हे परम देवि ! तुम्हरे तनकी; साटिका नील सूक्ष्मा रम्या। सौवर्णसूत्रग्रथिता दिव्या, भावुक मन भव्य भाव गम्या ॥ श्री रामस्वरूप ध्यानकर्ता, भक्तों को परम प्रीति दात्री। तव परम कृपा की मूर्ति रूप, हे करुणामयी महद्धात्री ॥

विशेष–परदेवि' कहकर स्तवकार ने श्री जू का परदेवित्व गान किया। सभी महान देवियाँ भी श्री जू की सेवा में निरत रहती हैं। यथा–यस्मिनशैलसुतालिकेन्दु-कलिका कल्याण माल्यायते। वाग्देवी कवरी विभूषणमणिग्रामः धलस्तोमिति ॥ नासामौक्तिक रस्मयस्मर सरोजाक्ष्यास्तुषारत्त्य हो। मैथिल्या चरणां शुपल्लव चयः शय्यास्तु मच्चेतशः ॥ श्री जानकी चरण चामरे ॥ तथा सिया जू रानिन में महरानी गौरा पान लगावति हँसि हँसि, रमा खबावति बानी ॥ इत्यादि आचार्य वाणियों से स्पष्ट है ॥

पारेगिरां गुणनिधेश्रुतियो वदन्ति, रूपं त्वदीयमपरं मनसोप्यगम्यम्।
साक्षात् कथं सरसिजाक्षि भवेद्दते ते, बुद्धौ कृपामनु कृशोदरि मा दृशांतत् ॥३८॥

अन्वयः–हे गुणनिधे ! हे सरसिजाक्षि ! हे कृशोदरि ! श्रुतयः त्वदीयम् अपरं रूपं गिरां पारे मनसा अपि अगम्यम् वदन्ति। तत् ते कृपाम् ऋते माद्दशाम् बुद्धौ कथम् साक्षात् अनुभवेत ॥ अनुवाद-हे गुणनिधे ! हे सरसिज (कमल) नयने ! हे कृशोदरि ! वेद आपके अपार रूप को वाणी से परे, और मन से भी अगम्य कहते हैं। वह रूप आप की कृपा के बिना हम जैसों की बुद्धि में कैसे अनुभूत हो सकता है ॥ हे सरसिजाक्षि सद्गुणनिलये, हे देवि कृशोदरि कल्याणी। श्रुतिगीत आप का रूप परम, वर्णन कर सकती कब वाणी ॥ जो मनसे सदा अगम्य रम्य, वह रूप महाँ मंगलकारी। अनुभूत बुद्धि से हो सकता, हम जैसों के मंगलकारी ॥ विशेष-भाव यह है कि श्री राजकिशोरी जू के काम वैभव का वेदों में गायन है। उनका वह रूप उनकी कृपा

के बिना मन से भी परे हैं ॥३८॥

किं चित्रमत्र जननि ! प्रभया प्रकाश्यं; विश्वं वदन्ति मुनियस्तव देवि ! देवाः।
जाताश्रयस्त्रिभुवनैर्गुणतोभिवन्द्य; स्त्राणादि कर्म विभवं परमस्य यस्याः ॥३९॥

अन्वयः—हे देवि ! हे जननि ! मुनयः देवाः विश्वम तव प्रभया प्रकाश्यम् वदन्ति। अस्य त्राणादि कर्मस्याः परम विभव (तदा) ॥ अनुवाद-हे देवि ! हे माता ! मुनिगण एवं देववृन्द, विश्व को आपकी कान्ति से प्रकाशित कहते हैं। इस विश्व के रक्षणादि कर्म को जिनका सर्वोत्कृष्ट वैभव बतलाते हैं, तब आपका आश्रय लेने वाला जन, उत्तमोत्तम गुणों से त्रैलोक्य में वन्दनीय हो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ हे अम्ब देवि मुनिगण कहते, है विश्व प्रकाश प्रभा तेरी। त्राणादि कर्म वैभव विशिष्टः उत्कृष्ट देवि ! तेरे हैं री ॥ जो चरणों का आश्रय ले ले, बन जाय त्रिलोकी वन्दनीय आश्चर्य नहीं कुछ भी इसमें, हे मान्यों की भी माननीय ॥ विशेष-"त्राणादिकर्मः परम विभवम" त्राणादि कर्म से तात्पर्य, उद्भव, स्थिति, संहारादि" कर्म जिनके सर्वोत्कृष्ट वैभव हैं यथा- उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहंरामवल्लभाम् ॥कहकर मानसकार ने गायन किया है ॥३९॥

वेदास्तवाम्ब ! विवदन्ति निज स्वरूपं; नित्यानुभूति भवभाव पराः परेशैः।
निर्णेतुमद्य यतयस्तपसा यतन्ते; बोधाय पाद सरसीरुह युग्म भृङ्गाः ॥४०॥

अन्वयः—हे अम्ब ! वेदा परेशैः नित्यानुभूति भवभाव परा, तव निज स्वरूपम् विवदन्ति, तत् बोधाय निर्णेतुम यतयः पादसरसीरुह युग्म भृङ्गाः अद्य तपसा यतन्ते ॥ अनुवाद—हे माँ वेद ईश्वरों के सहित आपकी नित्यानुभूति के भाव में परायण हो, आपके निज स्वरूप का वर्णन करते हैं। (वर्णन के उस विवाद के) निर्णयार्थ एवं ज्ञानार्थ मुनिगण युगल चरणपंकजों के भ्रमर रूप हो आज (भी) तपस्या के द्वारा यत्न में लगे हैं ॥ हे अम्ब ईश्वरों सहित वेद नित्यानुभूति के भाव भरे। भवदीय स्वरूप सुनिगदन में, रहते निमग्न रस के अगरे ॥ उस रूप विमल के बोध हेतु निर्णय पा लेने को विचार। सनकादि मुनीन्द्र आज भी हैं, तप निरत त्वरा में भर उदार ॥ विशेष—"परेशैः" भाव यह है कि-ब्रह्मादि त्रिदेव ये ईश कहे जाते हैं। श्री राजकिशोरी जू अन्य देवी देवताओं से तो वन्दित हैं ही, इन त्रिदेवों से भी जो ईश्वर कोटि के हैं, इनसे भी परम वन्द्य हैं ॥४०॥

जातं त्वदेव नितरां जगतां निदानं; मन्यामहे तदिदमम्ब कृतं श्रुतीनाम्।
सर्वं यतः खलु विचेष्टितमाशुशक्तेः; कार्यं हि कारण गुणानवलम्ब विद्यात् ॥४१॥

अन्वयः—हे अम्ब ! नितरां निदानं, त्वत् एव जातम् तदिदम् श्रुतीनां कृतम् मन्यामहे, सर्वं खलु शक्तेः आशु विचेष्टितम्, यतः हि कार्यंहि कारण गुणान् अवलम्ब विधान॥ अनुवाद-हे माता ! संसार का परम आदि कारण (महत्तत्व) आप से ही उद्भूत है। हम इसे श्रुतियों का अभिप्राय मानते हैं। यह समस्त दृश्य शक्ति की ही त्वरित चेष्टा का ही स्वरूप है। क्योंकि निश्चय ही कार्य कारण गुणों के अवलम्ब से स्थित होता है॥

अम्बे ! जगकारण महत्तत्व, उद्भूत आप से श्रुति गाते। सम्पूर्ण दृश्य संसार आप की, त्वरित चेष्टा बतलाते॥ सच भी है प्रत्येक कार्यकारण के गुण अपनाता है। इस लिये चराचर जड़ चेतन, सीतामय ही दिखलाता है॥ बिशेष—सांख्य शास्त्र के अनुसार, मूल प्रकृति ही महत्तत्व की आदि कारण है पुनः महत्तत्व से ही पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच तन्मात्राओं का विस्तार हुआ है। इस प्रकार संसार कार्य और श्री तत्त्व कारण हुआ, अस्तु सम्पूर्ण विश्व ही श्री सीतामय हुआ॥ ४१॥

जानीमहे जननि! तेनयनारविन्द स्योन्मीलिनेऽजनि जगत् त्वयस्तन्निमीलात्।
वैषम्य शून्य समतां समुपागते यत्स्यादस्य पालनमसंशयमस्य नूनम्॥४१॥

अन्वयः—हे जननि ! ते नयनारविन्दस्य उन्मीलने जगत् अजनि, तत् निमीलात् अस्यक्षयम् स्यात् यत् वैषम्यशून्य समताम् समुपागते सति, अस्य असंशयम् पालनम् इति नूनम् जानीमहे॥ अनुवाद—हे जननी ! आपके नयनारविन्द के उन्मीलन (खोलने) से संसार का उद्भव और उनके निमीलन (बन्दकरने) से इसका (संसार का) नाश होता है, और उनकी वैषम्यशून्य समता (अर्थात उन्मीलन निमीलन क्रिया से शून्य एक रस अवलोकन) से इस संसार का पालन होता है, ऐसा हम निश्चय ही जानते हैं॥ माता ! दृग के उन्मीलन से, संसार प्रभव हो जाता है। करते ही नेत्र निमीलन के, उसका विनाश दिखलाता है॥ वैषम्यशून्य समता से ही, पालन सदैव होता रहता। निश्चयही यही परमसत है' अन्तरतम अपना बतलाता॥ विशेष-'वैषम्शून्य समता" अर्थात दृष्टि सामयावस्था। भाव यह है कि जब दृष्टि का न उन्मीलन होता और न निमीलन केवल एक रस अवलोकन होता है, तब विश्व का भरण पोषण होता है॥४२॥

ज्ञातं त्वदीयमपरं चरितं विशालं; भावंभवे ननुनिजे प्रकटी करोषि।
प्रेम्णैवतैः प्रथमतः परमानुभावं भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतस्ते॥४३॥

अन्वयः—(हे देवि !) त्वदीयं अपरं चरितं (अस्माभिः) ज्ञातम्, ननुनिजे भवे विशालं

भावं प्रकटी करोषि । अतः तैः स्वजनैः प्रथमतः परमानुभावम् ते पदाब्ज अनिशं प्रेम्णैव भाव्यम् ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपका एक और चरित्र भी हम जानते हैं (वह यह) कि आप अपने चिन्मय स्वरूप में भक्तों के हृदय में महाभाव का प्राकट्य करती हैं। इसी लिये वे प्रथम से ही परम प्रकाश वाले आपके श्री चरणों की प्रीति पूर्वक निरन्तर भावना (ध्यान) करते हैं ॥ इस से भी भिन्न चरित्र एक जानते आपका हे देवी ! पाजाते महाभाव चिन्मय, वपु में तेरे जो पद सेवी ॥ अतएव भक्तजन प्रागेव, पदपंकज पूर्ण प्रकाश भरे । अत्यन्त प्रीति से अहर्निशा, ध्याते अपने उरबीच धरे ॥ विशेष- "विशालं भावं प्रकटी करोषि" भाव यह है कि महाँभाव का उदय, महाँभाव की घनीभूत प्रतिमा श्री विदेहराज नन्दिनी जू की कृपा से ही सम्भव है। आहलादिनी शक्ति के घनीभूत विलाशका नाम ही प्रेम है। प्रेम की प्रगाढ़तम अवस्था का नाम ही महाभाव है। वह महाँभाव ही श्री राजराजेश्वरी श्री जू का अपना स्वरूप है।

येषामदः परमवस्तु च तज्जनानां, प्रद्योतते जनकजा चरणारविन्दम् ।
सर्वं समीक्ष्य इह कर्ममनोवचोभिः ब्रह्म स्वरूपमति दुर्लभतानु सेव्यम् ॥४४॥

अन्वयः—(हे देवि !) येषां अदः जनकजा चरणारविन्दम् परम वस्तु प्रद्योतते, तज्जनानां, इह कर्म मनो वचोभिः सर्वं समीक्ष्य अति दुर्लभतानु सेव्यम् ब्रह्म स्वरूपम् भाति ॥ अनुवाद—(हे देवि ! आपके कृपापात्र) जिन भक्तों को श्री चरणारविन्द ही परम वस्तु (परम पुरुषार्थ स्वरूप) प्रकाशित हो गये, उन्हें इस संसार में, कर्म वचन और मन से ब्रह्म स्वरूप (निर्गुण निराकार कूटस्थ रूपों वाला) सब देखते हुये अत्यन्त दुर्लभता से सेव्य प्रतीत होता है ॥ जिन रसिक जनों के अन्तर में, (श्री) चरणों का परम प्रकाश हुआ । परम चरम पुरुषार्थ रूप, यह प्रसरित भाव विकाश हुआ उनको मन बचन कर्म से भी, दुसेव्य ब्रह्म भी हो जाता । उनका मन भृंग विश्वभर में, रस की न गन्ध किंचित पाता ॥४४॥

किं दुर्लभं चरण पङ्कज सेवयाते, पूर्णा रमन्ति रमणीय तया त्रिलोक्याम् ।
वस्तु प्रकाशविशदं हृदये त्वदीयं; तेषामहो किमुत साधन कोटि यत्नैः ॥४५॥

अन्वयः—हे देवि ! ते (तव) चरणपङ्कज सेवया किं दुर्लभं (तव भक्ताः) रमणीयतया पूर्णा रमन्ति (येषाम्) हृदये प्रकाश विशदं वस्तु (त्वदीयं चरणारविन्दं विद्योतते) तेषां अहो साधन कोटि यत्नैः किमुत ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपके श्री चरण कमलों की सेवा से क्या दुर्लभ है ? आपके भक्त जन रमणीयता से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं । जिनके हृदय में स्वच्छ एवं प्रकाशमय वस्तु (आपके श्रीचरणारविन्द)

प्रतिष्ठित हैं। अहः उन्हें करोड़ों (अनेक प्रकार के) साधनों से क्या प्रयोजन ॥ हे देवि श्री चरण सेवा से दुर्लभ दुष्प्राप्य भला क्या है। यह सोच आपके भक्तों को, मिल जाता भला नहीं क्या है ॥ हो गये प्रतिष्ठित हृदयों में, जिनके श्री चरण प्रकाश धाम। उनको साधन के कोटि कोटि, यत्नों से फिर क्या रहा काम ॥ विशेष— "रमणीय तया पूर्णा रमन्ति" रमणीय तया से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं भाव यह है कि उन्हें श्री चरणों की सेवा की रमणीयता के रस में निरन्तर निमग्न हो त्रैलोक्य में रमते रहते हैं ॥४५॥

धन्यास्त एव तवदेवि ! पदारविन्दं; स्यन्दाय मान मकरन्द मर्हानिशं ये।

भृङ्गायमानमनसो नितरां भजन्ते, भावाव बोध निपुणाः परदेवतायाः ॥४६॥

अन्वयः—हे देवि ! भावाववोधनिपुणाः ये परदेवतायाः तव स्यन्दायमान मकरन्दम् पादारविन्दम् अहर्निशं भृङ्गायमान मनसा नितराम् भजन्ते ते एव धन्याः ॥ अनुवाद- हे देवि भाव सम्बन्धी ज्ञान में निपुण (दक्ष) जो भक्त परदेवता स्वरूप आपके मकरन्द स्यन्दित श्री चरणारविन्दों में अपने मनको भ्रमर बनाये हुये, रातदिन सर्वदा पूर्णतया भजन परायण रहते हैं वे ही धन्य हैं ॥ भावाववोध में निपुण सन्त, स्यन्दाय मान मकरन्द चरण। अरविन्द अनूपम का अनुदिन, मनसे करते बनि भृङ्ग वरण ॥ निर्भर नितान्त होकर रहते, अनुरक्त भजन में निरत महाँ। हैं धन्य वही जगतीतल में, होगी तुलना कब भला कहाँ ॥ विशेष—"भावाववोधनिपुणाः" कहकर रागानुगाभक्ति के मर्मज्ञ सन्तों की ओर संकेत किया गया है। नवधा एवं गौणी भक्ति के द्वारा जिस रूप को झलक प्राप्त होती है; रसिक जन उससे सन्तुष्ट नहीं होते। वे तो रसात्मक सम्बन्ध की ही कामना करते हैं ॥४६॥

पादाब्जराग परिरञ्जित चित्तभृङ्गाः; येषां समीक्ष्य इह जातमिदं स्वरूपम्।

तेषां न किं प्रवदते परितां वरिष्ठं, साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत् ॥४७॥

अन्वयः—हे देवि ! इदं स्वरूप समीक्ष्य इह येषाम् पादाब्जराग परिरञ्जित चित्त भृङ्गः जातम्, तेषां परितो वरिष्ठम् किं न प्रवदते। (पुनः तेषां) इह परत्र अन्यत् किञ्चित न अनुवाद-हे देवि इस स्वरूप को देखकर आपके चरणारविन्दों के अनुराग से इस संसार में, जिन भक्तों का चित्त अनुरक्त भृङ्गवत् हो गया, उनके लिये इस से अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु कौन बता सकता है। (वस्तुतः) उनके लिये इस लोक और परलोक में अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है ॥ अवलोक आपका यह स्वरूप, जो चरण कमल अनुरक्त हुये। जिनके मंगलमय चित्त भृंग पी पद पराग उन्मत्त हुये ॥ इससे फिर

श्रेष्ठ त्रिलोकी में क्या और कोई बतलावेगा। प्राप्तव्य पदार्थ और कोई, कैसे तुलना में आवेगा। विशेष--'परितो वरिष्ठम् किम्" भाव यह है कि सम्पूर्ण साधनों के द्वारा परम साधन कैवल्यपद और कैवल की भी निस्सारता प्रेमाभक्ति की उपलब्धि में प्रतीत होती है। उस प्रेमाभक्ति के परम आश्रय अधिष्ठान श्री प्रिया जू के पद कमल हैं। अस्तु इससे श्रेष्ठ वस्तु कोई भी क्या बतलावेगा। सम्भवतः इसी भाव भूमि में प्रतिष्ठित गो० श्री हित हरिवंश जी महाराज कहते हैं। क्रि—अलं विषय वार्त्तया नरक कोटि वीभत्सया, वृथा श्रुति कथादयो बत् बिभेमि कैवल्यतः। परेश भजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः, परं तु मम राधिका पदरसे मनो मज्जतु ॥४८॥

चुम्बन्ति चिद्घन महोमकरन्दमस्या, देवैर्मुनीन्द्रनिचयैरति दुर्लभं ते।
पादाब्जयोरति विकाश विलास बोधः; स्यादेव देवि तव कान्तनिजस्वरूपे ॥४८॥

अन्वयः– हे देवि ! (ये रसिकाः) देवैः मुनीन्द्र निचयैः अति दुर्लभं अस्यास्ते पादाब्जयोः चिद्घनम् मकरन्दम् चुम्बन्ति (तेषाम्) तव कान्त निजस्वरूपे अतिविकास विलास बोधः स्यादेव। अनुवाद—हे देवि ! जो रसिकजन. देवता और मुनीन्द्रवृन्द को भी दुर्लभ आपके श्री चरणकमलों के चिद्घन मकरन्द को पान करते हैं। उन्हें आपके कान्त श्री रघुनन्दन के स्वरूप में अत्यन्त प्रकाश यक्त विलास का वाध होता ही है। देवेन्द्र मुनीन्द्रों को दुर्लभ; चरणों का चिद्घन कमलराग। जो रसिक शिरोमणि पीते हैं, पावन पदाब्ज का मधुपराग। श्री राघवेन्द्र के निज वपु का, मिलता है उन्हें विलास वोध। एकान्तिक चारुचरित्रों का, हो जाता स्वयं प्रकाश शोध। विशेष—"अति विलास वोधः स्यादेव" भाव यह है कि श्री राज राजेश्वरीजू के श्री चरणानुरागी रसिकों को श्री राम जी की दिव्यातिदिव्य एकान्तिक बिमल लीलाओं की अनुभूति स्वयं ही हो जाती है। उन्हें अलग से किसी साधना की आवश्यकता नहीं है ॥४८॥

यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे; नस्याद्रतिस्तरुनवाङ्कुर खण्डताशे।
तावत् कथं तरुणिमौलिमणे जनानां; ज्ञानं दृढ़ं भवति भामिनि रामरूपे ॥४९॥

अन्वयः—हे तरुणिमौलिमणे ! हे भामिनि ! यावत् ते तरुनवांकुर खण्डिताशे सरसिजद्युतिहारिपादे रतिः न स्यात् तावत् जनानां रामरूपे दृढं ज्ञानम् कथं भवति। अनुवाद—हे नागरिशिरोमणि ! जब तक आपके किसलय कान्ति विमोचक, पद्म-प्रभापहारक श्री चरणकमलों में रति का उदय नहीं होता, तब तक भक्तों को श्री राम स्वरूप का दृढ ज्ञान कैसे सम्भव है। हे तरुणिमणे ! जबतक जनकी, रति श्रीचरणों

में हुई नहीं। किसलय कमनीय कमल द्युति के, हारक में मति गति छुई नहीं। तब तक श्री रघुवर रूप ज्ञान, दृढ़वर कैसे हो पायेगा। श्री चरण शरण के बिना भला, कोई उनको पाजायेगा। विशेष—भाव यह है कि श्री राघव के रसात्मक वपु का पाना श्री मिथिलेश किशोरी जू की कृपा के विना सर्वथा असम्भव है ॥४९॥

साक्षात्तपोव्रत यमैर्नियमैः समीहे, त्कर्तुं कृपामृतमिह प्रसभंस्वरूपम्।
नाथस्यते श्रुतिवचोविषयं कथं स्यान्मूढ़ो वृथोत्सृजतिदेवि सुखान्यमूनि ॥५०॥

अन्वयः—हे देवि ! श्रुतिवचोविषयम् कृपामृत ते नाथस्य स्वरूपम् इह तपोव्रतयमैः नियमैः प्रसभम् साक्षात्कर्तुम् समीहेत् मूढः अमूनि सुखानि वृथा उत्सृजति कथम् स्यात्। अनुवाद—वेदवाणी के भविष्य, कृपामृत पूर्ण आपके स्वामी (श्री राम जी) के स्वरूप का, यहाँ तपोंव्रतों, यम नियमों द्वारा जो हठ पूर्वक प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा करता है, वह मूर्ख यहाँ के (भी) सुखों को व्यर्थ ही छोड़ता है। (उस स्वरूप का साक्षात्कार आपकी कृपा के विना कैसे हो सकता है)। जो अविषय वेदवचन के भी वे कृपासिन्धु हैं तव स्वामी। तप और व्रतों यम नियमों से, हो सकते कब दृगपथ-गामी। जो साक्षात्प्रभु दर्शन हित, हठकरि लौकिक सुख त्याग रहा। वह मूर्ख दुराशा में मरता, हे देवि ! व्यर्थ हो भाग रहा। विशेष—भाव यह है कि भगवत्साक्षात्कार करने में जीव का किया हुआ अपना कोई भी प्रयास सक्षम नहीं है। श्री जू की कृपा ही उस तत्त्व के साक्षात्कार का एकमात्र परम साधन है ॥५०॥

योगाधिरूढ़ मुनियो हरि पादुपद्मे; ध्यायन्ति ये चरणपङ्कज युग्ममन्तः।
वाञ्छन्ति विघ्न शतसोप्य निवार्य्यमाणां; भक्ति भवाब्धितरणायकृपा पयोधे ॥५१॥

अन्वयः—वे कृपापयोधे ! यो योगाधिरूढ मुनयः भवाब्धितरणाय हरिपादु द्मे विघ्नशतसोपि अनिवार्यमाणाम् भक्ति वाञ्छन्ति (ते) तव चरणपङ्कज युग्मम् अन्तः ध्यायन्ति। अनुवाद—हे कृपानिधे ! जो योग में तत्पर मुनिजन भव समुद्र संतरण के निमित्त, सैकड़ों विघ्नों से भी निवारित न हो सकने योग्य भक्ति को चाहते है। वे आपके युगल श्री पादपंकजो का अन्तःकरण में ध्यान करते है। योगाधिरूढ मुनि-वृन्दवर्य, जो कांक्षी भवनिधि तरने के। अनिवार्य्य माणशत विघ्नों से रसमयी भक्तिउर भरने के। उस भक्ति विमल निधि प्राप्ति हेतु श्री चरणों को वे ध्याते हैं। दुर्लभ तम भी जगतीतल का, वे यहाँ सभी कुछ पाते हैं। विशेष— विघ्नशतसोप्यनिवार्य्यं माणाम्" भाव यह कि श्रीराम भक्ति जिस हृदय का वरन करना चाहती हैं, उसका वरण सैकड़ों विघ्नों के उपस्थित करने पर भी कर ही लेती हैं। ऐसी सर्वसमर्था

भक्ति के उपलब्धि के परम उत्स, भगवती श्री जानकी जी के युगल श्री चरण ही हैं। यह सोचकर मुनिजन उन्हीं का ध्यान करते हैं ॥५१॥

चार्वङ्गि ते चरण चारण वन्दि सङ्गं, मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वर विदां वरदे भवत्या; येनामुना तवधवे मम रञ्जनास्यात् ॥५२॥

अन्वयः--हे वरविदां वरदे ! हे चार्वङ्गि ! हे श्री विदेह तनये ! ते चरण चारण वन्दि सङ्गं मह्यं परिदेहि, येन अमुना तव धवे मम रञ्जनास्यात्। भवत्या अन्यं वरं न याचे। अनुवाद--हे श्रेष्ठ ज्ञानियों को वरदान देनेवाली ! हे सुन्दरांगी ! हे श्रीविदेह राजनन्दिनी जू ! अपने श्री चरणों के परिचारकों के चरणों की वन्दना करनेवालों का संग हमको दीजिये। जिस संग से आपके स्वामी श्री राम जी में मेरी स्वाभाविक अनुरक्ति हो। आपसे और कोई अन्य वर मैं नहीं माँगता। हे वर विद्वानों को वरदे ! चार्वङ्गि प्रार्थना सुन लीजै। श्रीचरण चारणों के चारण, जनका सत्संग मुझे दीजै। होजाये जिससे दृढाशक्ति, स्वामी श्रीअवधबिहारी में। वर इससे भिन्न न मांग रहा, बैठा हूँ इसी तयारी में। विशेष--"वर विदां" पराविद्या के ज्ञानी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। उन विद्याओं को भी आप श्री विदेहनन्दिनी जू वरदान देनेवाली हैं ॥५२॥

याचेऽहमम्ब रघुनन्दन मूर्ति भावं; सार्द्धं त्वयातिदृढमञ्जलिना विशेषम्।
त्वं देहि वेत्तृवरदे मुनि सङ्घ मुख्या; मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपतेभवन्तीम् ॥५३॥

अन्वयः--हे अम्ब ! मुनिसङ्घ मुख्याः भवन्तीं स्वपतेः वल्लभतरां मन्यन्ति। हे वेत्तृ-वरदे ! अहं त्वयासार्द्धं अविशेषं अतिदृढं रघुनन्दमूर्ति भावं अञ्जलिनायाचे त्वं देहि अनुवाद--हे माँ ! मुनिसमूहों के अधिपतिगण आपको अपने पति (श्री राम जी) की अतिवल्लभा मानते हैं। अतः हे सर्वज्ञों की वरदात्री ! मैं आपके सहित न्युनाधिक भाव रहित अति दृढ श्री रघुनन्दन जी की मूर्ति का भाव (अत्यन्त प्रेमाशक्ति) अंजलिबद्ध होकर माँगता हूँ। आप यह दीजिये। मुनि संघ मुख्यगण हे माता ! वल्लभा परम पति की गाते। हैं आप परमवेत्ताओं की, वरदायिनि ऐसा बतलाते। अतएव आपके संग सदा, रघुनन्दन की रति माँग रहा। करबद्ध द्वार में खड़ा हुआ, इस मति गति से अनुराग रहा। विशेष--"रघुनन्दन मूर्तिभावं" से तात्पर्य श्रीराघवेन्द्र की अष्टयाम सेवा की भावना से प्रतीत होता है। रसिक सन्त भावना करते हैं कि-सोदिन आइहैं कब फेरि। नित विलास विलोकिहौं, पिय संग प्रकृति निवेरि॥ आरती करि भोगवल्लभ, देखिहौं दृग देरि। विविधविधि नहवाय, साज सिंगारि आरति फेरि॥ पितहिं पिय सिय मातु मिलि, सँग छवि धलेऊ हेरि। लखन चौपड़ खेल दम्पति, छवि सुभोजन केरि। उठि जगाय सुकुंज केलि, अनेक हिये चितेरि॥

(श्री मंजुल पदावली) इस प्रकार आठों याम श्री प्रिया प्रीतम की सेवामय ध्यान भावना में निमग्न रहने की कांक्षा है ॥५३॥

एवं स्तुत्वा परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम् ।
उपरराम शान्तात्मा योगेश्वरः सदा शिवः ॥५४॥
निरीक्ष्य तन्मुखाम्भोजं भावयन्रूप मद्भुतम् ।
कांक्षं स्तस्याः परां भक्ति पादपंकज योर्दृढाम् ॥५५॥

अन्वयः--योगेश्वरः शान्तात्मा सदाशिवः जाड्यनाशनं श्री जानक्याः परं रूपं एवं स्तुत्वा तं मुखाम्भोजं निरीक्ष्य अद्भुतं रूपं भावयन् । तस्याः पादपंकजयोर्दृढां परां भक्ति कांक्ष्यं उपरराम । अनुवाद--जाड्य विनाशक श्री जानकी जी के पर रूप की इस प्रकार स्तुति करके शान्तात्मा, योगेश्वर भगवान शिव ने, उनके मुखकमल का दर्शन करके, अद्भुत रूप की भावना तथा उनके श्री चरणकमलों में; पराभक्ति की काँक्षा करते हुये, उपरामना प्राप्त की । स्तुति करके इस भांति परम, उन जाड्य विनाशनकारी का । मुख पंकज का दर्शन पाया, श्री पराशक्ति सुकुमारी का । ध्याते अद्भुत स्वरूप उनका मांगते हुये पद्कंज भक्ति । योगेश्वर शंकर शान्त हृदय, होगये मौन पा कृपा शक्ति । विशेष--"जाड्य नाशनम्" श्री जू 'सम्बित' शक्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं । जीव की जड़ता का नाश उन्हीं श्री जू की कृपा से सम्भव है । अनादि अविद्या ही जीव को जड़ बना रही है । साक्षात्पराविद्या श्री जू के प्राकट्य से अविद्या के विनाश के साथ ही जड़ता का बिनाश होना स्वाभाविक है ॥५४-५५॥

उवाच तं वरारोहा जानकी भक्तवत्सला ।
एवमस्तु महादेव यत्त्वयोक्तं च नान्यथा ॥५६॥

अन्वयः--भक्तवत्सला वरारोहा जानकी तं शिवं उवाच हे महादेव ! यत्वयोक्तं एवमस्तु अन्यथा न । अनुवाद--भक्तवत्सला, परमसुन्दरी श्री जानकी जी ने उन श्री शिव जी से कहा कि--हे महादेव जी ! आपने जैसा कहा वैसा ही होगा अन्यथा नहीं । सुन-कर ऐसा स्तवन दिव्य, वे भक्तवत्सला वैदेही । होगईं प्रसन्न वरारोहा, सर्वज्ञा भावुकजन नेही । बोलीं गद्गद हो एवमस्तु, हे महादेव ! अन्यथा नहीं । होगी मन कांक्षा पूर्ण सभी, बाणी हो सकती वृथा नहीं ॥ विशेष--"एवमस्तु च नान्यथा" स्तवन के अन्त में भगवती श्री मिथिलेश नन्दिनी जू का यह बरदान, भगवान शंकर के माध्यम से फल श्रुति के रूप में दिया गया है । तथा नान्यथा शब्द के द्वारा उसको

अवश्य फलरूपता व्यक्त की गई है। "भक्तवत्सला" विशेषण के द्वारा श्री किशोरी जू के भाव विगलित अन्तःकरण की ओर संकेत किया। यथा--हिमहुंलगे जो सी सी सिसकत, आपन नाम विचारी। देत परम रस रूप धाम निज, अचल अमल अविकारी॥ हे कारुण्यपूर्ण मृदु लोचनि, मोचनि दोष दवारी। क्षमामयी मंजुल मृदु मूरति, श्री मिथिलेश दुलारी॥५६॥

अन्यं ते कांक्षितं ब्रूहि दास्यामिदेव दुर्लभम्।

सत्यान्मयि कृपोन्मुख्यां न किंचितस्य दुर्लभम्॥५७॥

अन्वयः--ते अन्य यत् कांक्षितं तद्ब्रूहि देवदुर्लभम् अपिदास्यामिमयि कृपोन्मुख्यां सत्यां तस्य किंचित दुर्लभम् न। अनुवाद--(श्री जू ने आगे कहा है कि हे महादेव जी!) और भी जो आपका अभीष्ट हो, भले ही वह देवदुर्लभ भी क्यों न हो, आप कहिये मैं वह भी प्रदान करूँगी। मेरी प्रसन्नता के पश्चात् "दुर्लभ" नाम की कोई भी वस्तु नहीं होती। बोलीं श्री रामवल्लभा हे, शिवशंकर! हो निर्भीक मना। लें माँग और भी निज अभीष्ट वरदान भले हो परमघना॥ देवों को भी दुर्लभ है पर, कर सकती आज प्रदान सभी, मेरी प्रसन्नता शब्दकोष, रखता क्या दुर्लभ शब्द कभी॥५७॥

प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देवशिरोमणिः। ययाचे वरमात्मीयं रहस्यं भावबोधकः॥५८

प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम्।

वरं वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच सोहितम्॥५९॥

अन्वयः--देवशिरोमणिः स शिवः अपि प्रसन्न वदनां तां श्री जानकीं दृष्ट्वा भावबोधकं आत्मीयं रहस्यं वरं याचे॥५८॥ वदान्या सा तस्मै शिवाय यद्यन्मनसि कांक्षितं तत्तद्वरं प्रादात् पुनः स साक्षात् वरेश्वरी तं शिवं उवाच॥५९॥ अनुवाद--देव शिरोमणि श्री शिव जी ने भी प्रसन्नवदना उन श्री वैदेही को देखकर अपने भावबोधक रहस्य (एकान्तिक उपासना) का वरदान माँगा॥५८॥ परम उदार उन श्री जानकी जू ने शिव जी का जो जो भी मनोभिलाषित (मन का मनोरथ) था, वह वह वरदेकर, साक्षात् वरेश्वरी श्री राजकिशोरी जू आगे बोलीं॥५९॥ देवाधि देव ने इस प्रकार, उनको प्रसन्नमुख अवलोका। सब माँग लिया भावानुसार, एकान्तिक मन न रहा रोका॥ साक्षात् वरेश्वरि ने शिवको, उनका मनवांछित दान दिया। औदार्यमयी ने फिर आगे कहते ऐसा सन्मान किया॥ विशेष—छन्द संख्या ५९ में श्री राजकिशोरी जू ने श्री शिव जी को अभीष्ट तो प्रदान किया ही अब आगे स्वेच्छा से वरदान दे रही हैं॥५८-५९॥

अयं पवित्रमौलिर्मे स्तवराजः त्वयाशिव । प्रकाशितोति गोप्योपि मत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥
यः पठेदिदमग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः । तस्ये हा मुत्र किञ्चिन्न वस्तुस्याद्दृगगोचरम् ॥

अन्वयः--हे सुरोत्तम ! हे शिव ! पवित्र मौलिः अतिगोप्योपि यं मे स्तवराजः मत्प्रसादात् त्वया प्रकाशितः ॥६०॥ पूजा काले यः पुरुषः मे अग्रे इदं स्तवराजं प्रयत्नतः पठेत् तस्य अमुत्र च दृगगोचर किञ्चित् वस्तु न ॥६१॥ अनुवाद--हे सुरोत्तम शिव ! परम पवित्र, परमगोप्य, मेरा यह स्तवराज मेरे प्रसाद से आपके द्वारा प्रकाशित हुआ ॥६०॥ पूजा काल में जो व्यक्ति मेरे आगे इस स्तवराज का प्रयत्न पूर्वक पाठ करेगा उसे इस लोक और परलोक में कोई भी वस्तु अदृगगोचरम् अर्थात् अप्राप्य नहीं होगी ॥६१॥ पावन से पावनतम मेरा, अतिगोप्य सुस्तवराज तहाँ । मेरे प्रसाद से व्यक्त हुआ, भवदीय सु मुख से मंजु यहाँ ॥ पूजन वेला में कर प्रयत्न, जो सन्तत इसका पाठ करे । लौकिक परलौकिक ज्ञान सभी, उसके दृग मानस मध्य भरे ॥ विशेष--उपर्युक्त फलश्रुतिनिष्काम भाव से पाठ करने की कही गई ॥६०-६१॥

धनं धान्यं यशः पुत्रानैश्वर्यमति मानुषम । प्राप्येहामोदते भूयो मत्पदं तद्व्रजेत्सह ॥
यद्यल्लोकोत्तरं वस्तु त्रिषुलोकेषु दृश्यते । तत्सर्वमस्य पाठेन प्राप्नुयाद्भुवि मानवः ॥

अन्वयः--धनं धान्यं यशः पुत्रान् अतिमानुषं ऐश्वर्यं इह संसारे प्राप्य मोदते, भूयः स भक्तः हर्षेण तत् मत्पदं व्रजेत ॥६२॥ त्रिषुलोकेषु यत् यत् लोकोत्तरं वस्तु दृश्यते, तत्सर्वं अस्य पाठेन् भुवि मानवः प्राप्नुयात् ॥६३॥ अनुवाद—इस स्तवराज का पाठकर्ता भक्त, धन धान्य यश पुत्र एवं अतिमानुष ऐश्वर्य को इस संसार में प्राप्तकर प्रसन्न होगा, पुनः अत्यन्त हर्षपूर्वक मेरे उस परमपद को प्राप्त होगा ॥६२॥ तीनों में जो जो भी लोकोत्तर वस्तुयें देखने में आती हैं, वे सब पृथ्वी में ही इसके पाठ से मनुष्य प्राप्त कर लेगा ॥६३॥ धन धान्य सुयश से पुत्रों से वह व्यक्ति पूर्ण हो जायेगा । अति मानुष भोगैश्वर्य विपुल, इस जगतीतल में पायेगा ॥ आयुष्य पूर्ण फिर होने पर, उस परमधाम को जाता है । जिस पद को पाकर फिर कोई, इस भू पर लौट न आता है ॥६२॥ तीनों लोकों में जो जो भी, लोकोत्तर वस्तु दृष्टि आती। देखीया सुनीं गई जग की, जो भी उसके मन को भाती ॥ विधि पूर्वक पाठ सुकर्ता को, वे यहीं सुलभ हो जायेंगी । कृत कृत्य स्वयं हो जाने को उसको सेवा अपनायेंगी ॥६३॥ विशेष—प्रस्तुत छन्दों में इस स्तवराज के सकाम पाठ की फल श्रुति कही गई है ॥६२॥ इस छन्द से भी सकाम अनुष्ठान की फल श्रुति कही गई है ॥६३॥

इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुरसत्तम । न प्रकाश्यं त्वया शंभो सठायभाव द्वेषिणे ॥६४

अन्वयः—हे सुरसत्तम शम्भो ! इदं मे परमैकान्तं रहस्यं, भाव द्वेषिणो शठाय त्वया न प्रकाश्यम् ॥६४॥ अनुवाद—हे देव श्रेष्ठ शिव जी ! यह मेरा परमैकान्तिक रहस्य, दूषित भाव वाले मूर्खों के समक्ष (कभी प्रकाशित नहीं करेंगे। हे सुरसत्तम ! हे महाशम्भु ! यह परमैकान्त रहस्य युक्त। स्तवन न उसे व्यक्त करिये, जो हठी तथा शठ भाव युक्त ॥ विशेष—प्रस्तुत छन्द में इस स्तवराज को अनाधिकारियों के मध्य व्यक्त करने की आज्ञा नहीं है। जैसा अन्यत्र भी निर्देश है। यथा—-यह न कहिय शठ ही हठशीलहिं। जो मन लाय न सुनहरि लीलहिं ॥ (श्री रा०च०मा०उ०कां) ॥६४॥

भक्तिर्यस्याति देवेशे सर्वैश्वर्यै तथा मयि। गुरौ सर्वात्म भावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा ॥

तस्मै देयं त्वया शम्भो भावनाद्रं हृदे गुरौ। सर्वभूत हितार्थाय शान्ताय सौम्य मूर्तये ॥

अन्वयः--त्वया यस्य पुरुषस्य, सर्वैश्वर्यै देवेशे (श्री रामे) तथा मयि सर्वात्मभावेन भक्तिः स्यात् यस्य गुरौ उत्तमाभक्तिः विद्यते, सौम्यमूर्तये शान्ताय, सर्वभूत हितार्थाय गुरौ भावनाद्र हृदे तस्मै देयम् ॥ अनुवाद--जिस पुरुष की सर्वैश्वर्य सम्पन्न, देवों के स्वामी श्री राम जी में तथा मुझमें, सर्वात्म भाव से भक्ति हो, तथा जिसकी गुरु में उत्तमाभक्ति हो, उस सौम्यमूर्ति, शान्तचित्त वाले सर्वभूतों (प्राणिमात्र) के हित में परायण आचार्यभावना से प्रेमाद्र हृदय वाले भक्त को ही आप यह स्तवराज देना। "देवेश्वर राघवेन्द्र संयुत, मुझमे हो जिनकी दृढाशक्ति। जिनकी श्री गुरुपद कंजों मे निर्दम्भ सदा उत्तमाभक्ति ॥ आचार्य प्रीति से प्रेमिल उर, जो शान्त सौम्य चित वाले हों। उन सर्वभूत हित निरतों को, इसको शिव ! देने वाले हों" विशेष--इस छन्द में भी अधिकारी का निरूपण है। युगलनाम, लीला धाम के अनुरागियों को ही इस तत्त्व (श्री जानकी स्तवराज) अधिकारी स्वीकार किया गया है ॥६५-६६॥

इत्युक्त्वा भावनामूर्तिः सीता जनकनन्दिनी कृपापात्राय तस्मै सा पुनः प्रादाद्वरान्तरम्

अन्वयः--भावनामूर्तिः जनकनन्दिनी सा सीता कृपात्राय तस्मै श्री शिवाय इत्युक्त्वा पुनः वरान्तरं प्रादात् ॥६७॥ अनुवाद--भावनामूर्ति जनकनन्दिनी श्री सीता जी ने कृपापात्र श्री शिवजी से ऐसा कहकर, पुनः वरदान दिया ॥ पद्यानुवाद--भावना मूर्ति वैदेही ने श्री शिव से इतना बतलाकर, उन कृपापात्र को और और, बरदान दिया अति हर्षाकर ॥ होगये धन्य शंकर भोले, जीवन का परम लाभ पाया। मुद गये नयन वह गौर वपुष, ज्योतित अन्तर में प्रगटाया ॥ विशेष-- "भावनामूर्तिः" कहकर ग्रन्थकार ने श्री राजकिशोरी जू के रसात्मकस्वरूप (पंचरसात्मक) की ओर संकेत किया। श्री शिव जी के समक्ष अब श्री सीता जी किसी विशिष्ट "सम्बन्ध" भाव की पुष्टि पूर्वक प्रतिष्टित हैं ॥६७॥

मूल—सर्व दुःख प्रशमनं जानक्यास्तु प्रसादतः ॥६८॥

अन्वयः—तु जानक्याः प्रसादतः सर्वदुःख प्रशमनं अभूत ॥ अनुवाद—पुनः श्रीजानकी जी की कृपा से समस्त दुखों का शमन (नाश) हुआ ।

इति श्री अगस्त संहिता अन्तर्गत परम रहस्ये श्री जानकी स्तवराजः सम्पूर्णम् ॥

* श्री मिथिलेशकिशोरी जू का चरम शरणागत मन्त्र *

कृपारूपिणि कल्याणि रामप्रिये श्री जानकि । कारुण्यपूर्णनयने दयादृष्ट्यावलोकय ॥

* श्री किशोरी जू का व्रत *

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम् ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

* श्री मैथिली शरणागति पञ्चकम् *

सर्वजीव शरण्ये श्रीसीते वात्सल्य सागरे । मातृमैथिलि सौलभ्ये रक्षमां शरणागतम् ॥१॥ कोटिकन्दर्प लावण्यां सौन्दर्य्यैक स्वरूपताम् । सर्वमङ्गल माङ्गल्यां भूमिजां शरणं व्रजे ॥२॥ शरणागत दीनार्त परित्राण परायणाम् । सर्वस्यार्ति हरेणैक धृतव्रतां शरणं व्रजे ॥३॥ सीतां विदेह तनयां रामस्य दयितां शुभाम् । हनुमता समाश्वस्तां भूमिजां शरणं व्रजे ॥४॥ अस्मिन् कलिमला कीर्णे काले घोर भवार्णवे । प्रपन्नानां गतिर्नास्ति श्रीमद्राम प्रियां विना ॥५॥

* श्री जानकी स्तवराज के पाठ का विनियोग *

ॐ अस्य श्री जानकीस्तवराज स्तोत्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः—
वसन्ततिलका छन्दः श्री सीता देवता श्री युगल वर कमलयोरहेतु की भक्तिः प्राप्त्यर्थे श्री जानकीस्तवराजस्तोत्र पाठे विनियोगः ॥

श्रीरामवल्लभा ध्यानम्—रामां राजीवनयनां रामवक्षस्थलालयाम् । रामाङ्कपीठे राजन्तीं वन्दे श्री रामवल्लभाम ॥ विदेह तनयां देवी मन्दस्मित मुखाम्बुजाम् । इन्दीवर विशालाक्षीं वन्दे श्री रामवल्लभाम् ॥

* श्री जानकी गायत्री *

ॐ श्री जनकनन्दिन्यै विद्महे श्री रामवल्लभायै धीमही तन्नो सीता प्रचोदयात् ॥

टीका लेखक—"मानस केसरी" पं० श्री वाल्मीकिप्रसाद मिश्र एम० ए० एम० एड० रिसर्चस्कालर-रींवां विश्वविद्यालय-आवास – श्रीनिधिनिकुञ्ज – विराटनगर-शहडाल (म० प्र०)

प्रस्तावना
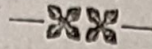
कोई भी जाति अपने दर्शनशास्त्र के आधार पर ही लौकिक पारलौकिक विषयों का विचार करती है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, जगत् का क्या स्वरूप है, इसको बताने वाला कौन है, यह जड़ है या चेतन, परमसुख शान्ति का स्वरूप क्या है उसका साधन कौन है इन बातों का विचार दर्शनशास्त्र में किया जाता है 'दृश्यते अनेन' अर्थात् जिसके द्वारा सत्यासत्य देखा जा सके उसे दर्शन कहते हैं। नित्यानित्य द्वारा जो मनुष्यों को प्रवृत्तिनिवृत्ति का उपदेश दे उसे शास्त्र (शासनकरण) कहते हैं यह शासन इसे करो इसे न करो दो प्रकार से ही सम्भव है। यथा—'प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ॥

यह दर्शनशास्त्र नास्तिक, आस्तिक भेद से दो प्रकार का है। नास्तिक उसे कहते हैं जो परलोक या ईश्वर को न माने अथवा वेद निन्दक हो। आस्तिक की सत्ता इससे विपरीत आस्था रखती है। नास्तिकों में चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक वैभाषिक, जैन हैं। आस्तिकों में भी षड्दर्शन हैं, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्वमीमांसा-वेदान्त। आस्तिकों में भी श्रुति मात्र प्रमाण मानने वाले श्रौत, तर्क से उपस्थापित अनुमान प्रमाण मानने वाले तार्किक हैं।

चार्वाकदर्शन में देह को ही आत्मा माना गया है, चारु=सुन्दर रमणीय आक=लक्षण को ही चार्वाक सिद्धान्त में स्वीकार किया है यथा—

अङ्गनालिङ्गनाजन्यं सुखमेव पुमर्थता। कण्टकादिव्यथाजन्यं दुःखं निरय उच्यये ॥१॥ लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशोनापरः स्मृतः। देहस्य नाशो मुक्तिरस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते ॥२॥ अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलः। चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यः चैतन्यमुपजायते ॥३॥ न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैववर्णा श्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्। बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥ ५ ॥ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति। स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्नहिंस्यते ॥६॥ मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्। निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम् ॥ ७ ॥ गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्। गेहस्थकृतश्राद्धेन पथितृप्ति खारिता ॥ ८ ॥ स्वर्गास्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्रदानतः। प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्नदीयते ॥ ९ ॥ यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्यदेहस्य पुनरागमनं कुतः॥१०॥ यदि गच्छेत् परंलोकं देहादेष विनिर्गतः।

कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥ ११ ॥ ततश्च जीवनो पायो ब्राह्मणै-विहितस्त्विह । मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद् विद्यते क्वचिद् ॥ १२ ॥ त्रयोवेदस्य कर्त्तारोभण्डधूर्त निशाचराः । जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥ १३ ॥ अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नी ग्राह्यं प्रकीर्तितम् । भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥ मांसानां खादनं तद्वत् निशाचर समीरितम् ॥

आजका मार्क्सवाद इसी चार्वाक सिद्धान्त पर स्थिर है । चार्वाक सिद्धान्त के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न इनके मत में कोई प्रमाण नहीं है ।

बौद्धदर्शन :—बौद्ध धर्म तीन मार्गों में विभक्त है, हीनयान, महायान, और वज्रयान । हीनयान मत वाले गौतम बुद्ध को एक महापुरुष मानते हैं । यह निवृत्ति प्रधान मार्ग है साधन द्वारा निर्वाण प्राप्त करना इनको अभीष्ट है । इनके आराध्य "अर्हत्" हैं । महायान भक्ति प्रधान मार्ग है इस मत के आराध्य 'बोधिसत्त्व' हैं । हीनयान मत के भावुक भक्तों ने ही इसका विस्तार किया इनका साहित्य संस्कृत भाषा में है । इनके मत में भगवान् बुद्ध अवतार हैं । बौद्धधर्म में तान्त्रिक साधनायें करने वाले व्यक्तियों की शाखा वज्रयान नाम से प्रसिद्ध है । दर्शन की दृष्टि से बौद्धधर्म के चार विभाग हैं । मध्यम दर्शन योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक ।

मध्यम दर्शन :—में सभी पदार्थ क्षणिक हैं किसी का कोई रूप स्थिर नहीं है । परमाणु भी क्षणिक हैं परमाणुओं की अविरल धारा आकृतियां बनाती हैं । क्षणिक होने के साथ सब दुःख रूप हैं । दृश्य जगत् कैसा है इसका बताना शक्य नहीं यह स्वलक्षण है जैसा है वैसा ही है । सब शून्य है किसी भी पदार्थ को सत् असत् नहीं कहा जा सकता । बौद्धिक ज्ञान सत्य है । बाह्य जगत् शून्य है । अप्राप्त की प्राप्ति के लिये शंकान्वित होना 'पर्यनुयोग' ही योग माना गया है । गुरू का उपदेश आचार है । गुरु पदिष्ट का अंगीकरण, उत्तम पर्यनुयोग का न करना अधम, अतः इनको 'माध्यमिक' नाम से प्रसिद्धि हुई । इनके मत में 'सब क्षणिक-क्षणिक है । सब दुःख दुःख है । सब स्वलक्षण स्वलक्षण है' सब शून्य-शून्य हैं । यह एक ही वस्तु में भावना चतुष्टय संभव हैं । यथा—

परिव्राट् कामुकशुनामे कस्यां प्रमदातनौ । कुणपः कामिनी भक्ष्यः इति तिस्रो विकल्पना ॥

ऊपर कथित भावना चतुष्टय से निखिल वासनाओं की निवृत्ति होने पर मोक्ष भी शून्य रूप सिद्ध हुआ । अर्थात् शून्यत्व, क्षणिक, दुःख रूपतादि की भावना करके शून्य में विलीन हो जाना ही मुक्ति है ।

योगाचार :—बुद्ध भगवान् के जिन शिष्यों को केवल आचार से सन्तोष न हुआ उन्होंने योग की भी साधनायें की अतः इनका नाम योगाचार हुआ। इनका दर्शन मानता है कि 'बुद्धिग्राह्य कोई पदार्थ नहीं है बाह्य रूप में बुद्धि ही मूर्त हुई है।

ग्रहण करने वाला, ग्रहण क्रिया, ग्राह्य पदार्थ परस्पर अभिन्न हैं अर्थात् एक हैं सब ज्ञान ही ज्ञान है। नानात्व की प्रतीति भेदवासना के कारण होती है इस वासना प्रवाह की धारा अविच्छिन्न है। पदार्थ के निराकार भाव से तृप्ति नहीं होती, तृप्ति, सन्तोष सदा साकार भाव से है। बाहर के पदार्थ शून्य हैं ज्ञान ही मात्र है बाह्य जगत् से निवृत्त होकर अन्तःकरण में ज्ञानोपलब्धि ही मुक्ति है। ज्ञान की सत्ता मानने के कारण ये विज्ञान वादी कहलाते हैं।

सौत्रान्तिक :-- इस मत के अनुयायी भुक्ति मुक्ति दोनों के साधक हैं। इस दर्शन की मान्यता है कि-भावजगत्-पदार्थों का बुद्धि स्थित रूप, और बाहर स्थित दृश्य रूप दोनों सत्य हैं। ज्ञान का शुद्ध रूप 'अहम्' है। 'इदम्' का ज्ञान जाग्रत तथा स्वप्न में रहता है सुषुप्ति में विलीन हो जाता है। अहम् का ज्ञान सुषुप्ति में भी रहता है अतः ये दोनों ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं ज्ञाता ज्ञेय नहीं हो सकता। इदम् से प्रतीयमान बाह्य जगत् भी शून्य नहीं है इदम् ज्ञान से ही बाह्य सत्ता का अनुमान होता है। आलय विज्ञान (अहम्) के रहते प्रवृत्ति ज्ञान (इदम्) रहता है अतः वह उससे भिन्न है। एक काल में दो रूपों में एक सत्ता नहीं रह सकती। राग द्वेषादि संस्कार समुदाय दुःख के साधन हैं "सब क्षणिक हैं" यह भावना ही इस दुःख से रक्षा कर सकती है। दुःख, दुःखायतन, दुःख साधन को रोककर विमल ज्ञानोदय मुक्ति है। सूत्र के अन्त भाग को पूछने के कारण इनका सौत्रान्तिक नाम हुआ। सूत्रं यथा—

"उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा स्थितैवैषां धर्माणां धर्मता धर्मस्थितिता धर्मनियामकताच प्रतीत्यसमुत्पादानुलोमता ॥ इति सूत्रान्तं पृच्छति ॥ पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ठक् ॥ इति ठक्प्रत्यये तत्सिद्धिः।

बुद्ध ने पहिले सबको शून्य कहा, विज्ञानवादी ने जगदान्ध्यप्रसंग का आपादन करते हुये सर्वशून्यत्व को असम्भव कहकर "ज्ञान मात्र" को स्वीकार किया। बाह्यार्थ के बिना ज्ञान कैसे हुआ अतः बाह्यार्थ के अस्तित्व को स्वीकार किया गया। एवं कियत्पर्यन्तं सूत्रस्यान्तो भवष्यतीति यैः पृष्टं ते सौत्रान्तिकाः ॥

वैभाषिक :--बाह्य, अन्तर, दोनों पदार्थों को मानता है चार्वाक के जड़वाद को यह दर्शन स्वीकार किया है। विज्ञेय, अनुमेय है इस विरुद्ध भाषा को वर्णन करने वाले वैभाषिक हुये। इस विज्ञेमानुमेयवाद में प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थ का अभाव

है अतः कहीं व्याप्ति गृहीत नहीं होगी इसलिये अनुमान प्रमाण भी अनुपपन्न हो गया। इस मत का सारांश यह है। यथा—

कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम्। विकल्पो वस्तु निर्भासादसंवादादुपल्लवः ॥ १ ॥ ग्राह्य वस्तु प्रमाणं हि ग्रहणं यदितोऽन्यथा। न तद्वस्तु न तन्मानं शब्दलिङ्गेन्द्रियादिजम् ॥ २ ॥

उपदेश के भेद होने पर भी तत्त्व भेद नहीं होता। तत्त्व शून्यता रूप एक ही है हीन मध्यम और उत्कृष्ट बुद्धि शिष्यों के कारण ही उसकी मान्यतायें भिन्न-२ प्रकार की हुई हैं। यथा—

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशय वशानुगाः। भिद्यन्ते वहुधा लोक उपायैर्वहुभिः पुनः ॥ १ ॥ गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभय लक्षणा। भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताद्वय लक्षणा ॥ २ ॥

बौद्धमत में द्वादशायतन पूजा ही सर्वश्रेयस्करी मानी गयी है यथा—

अर्थानुपार्ज्य वहुशो द्वादशायतनानि वै। परितः पूजनीयानि किं मन्यैरिह पूजितैः ॥१॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च। मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः ॥ २ ॥

विवेक विलास में बौद्धमत का संक्षेप इस प्रकार कहा गया है। यथा—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्। आर्यसत्याख्यया तत्त्व चतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ १ ॥ दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः। मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या कृमेण श्रूयतामतः ॥२॥ दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः। विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्चमानसम्। धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानितु ॥ ४ ॥ रागादीनां गणो यस्मात्समुदेति नृणां हृदि। आत्मात्मीय स्वभावाख्याः स स्यात् समुदयः पुनः ॥५॥ क्षणिका सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा। स मार्गइति विज्ञेयः स च मोक्षोभिधीयते ॥१६॥ प्रत्यक्षमनुमानञ्च प्रमाण द्वितीयं तथा। चतुष्प्रस्थानिकाः बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ७ ॥ अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण वहुमन्यते। सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न वहिर्मतः ॥ ८ ॥ आकार सहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता। केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥ ९ ॥ रागादि ज्ञान सन्तान वासनोच्छेद सम्भवा। चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥ कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्। संघो रक्ताम्बरत्वञ्च शिश्रिये बौद्ध भिक्षुभिः ॥ ११ ॥

जैनदर्शन :—संसार के पदार्थों को क्षणिक मानने पर कर्म के कर्त्ता को भी क्षणिक मानना पड़ेगा। क्षण भेद से वस्तु में भेद हो जाता है अर्थात् किसी कर्म को जो कर्ता था दूसरे क्षण में वह नहीं रहा अतः कर्म का फल किसे भोगना पड़ेगा, इसलिये क्षणिक पक्ष ठीक नहीं। फल भोगने वाला अपने पूर्वकृत कर्मों का स्मरण करता है इसलिये इसे स्थिर मानना चाहिये। क्योंकि स्मरण, अनुभव समानाधिकरण में ही सम्भव है अतः आत्मा स्थिर सिद्ध हुआ, यह जगत् अनादि है सत् क्षणिक नहीं है उत्पत्ति विनाश शून्य है।

जगत् में चिदचिद् ही दो तत्त्व हैं। इसके विचार को विवेक कहते हैं। यथा :—

चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद् विवेचनम्। उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः। हेयं हि कर्तृ रागादि तत्कार्यम विवेकिता। उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैक-लक्षणम्॥ २॥

अन्य वस्तु को अपने काम में लाने वाले को चेतन कहते हैं इससे ये भिन्न जड़ पदार्थ हैं। विश्व में पांच तत्त्व सत्ताधारी हैं, जीव, आकाश, धर्माधर्म और पुद्गल। मुक्त तथा संसारी भेद से जीव दो प्रकार का है। संसारियों में कुछ मन रहित (स्थावर) और कुछ मन सहित प्राणी हैं। अवकाश दाता आकाश है। मुक्ति का साधन धर्म और अधर्म उसका प्रतिबन्धक है। रूप रस वर्ण वाले को पुद्गल कहते हैं वह अणु स्कन्ध भेद से दो प्रकार का है पृथ्वी जल वायु तेज यही चार प्रकार का पुद्गल है। बौद्धमत के अनुसार ईश्वर के विषय में निम्नलिखित शंका की गई है। यथा—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः। दृष्टो न चैक देशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत्॥ १॥ न चागमविधिः कश्चिन्नित्य सर्वज्ञ बोधकः। न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्प्यते॥ २॥ न चान्यार्थप्रधानैस्तै तदस्तित्वं विधीयते। न चानुवदतुंशक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः॥ ३॥ अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्। कृत्रिमेणात्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते॥ ४॥ अथ तद् वचनेनैव सर्वज्ञोऽज्ञैः प्रतीयते। प्रकल्पयेत्कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः॥ ५॥ सर्वज्ञोक्त-तया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता। कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धिमूलान्तरादृते॥ ६॥ असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्। सर्वज्ञमवगच्छन्तः स्ववाक्यात् किं न जानते॥ ७॥

उक्त तर्कों का खण्डन करके आर्हत दर्शन में अनुमान प्रमाण द्वारा सकल पदार्थ साक्षात्कारी विलक्षण आत्मा (ईश्वर) की सिद्धि की गई है—

तदुक्तं वीतरागस्तुतौ—कर्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः। इमाः कुहेवाक विडम्बनास्युः तेषां न येषामनुशासकस्त्वम्॥ १॥

आस्तिक दर्शनों को शास्त्र कहते हैं षड्दर्शन या षड्शास्त्र पर्याय हैं। ये दर्शन शास्त्र अधिकारी भेद से तत्त्व प्रतिपादन करते हैं। सर्वज्ञ महर्षियों के तत्त्व ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। श्रुति पुराणादि में कथित समग्रदर्शन को समझ कर ही उनका प्रतिपादन हुआ है। अधिकारी के ही भेद से उनकी प्रतिपादन शैली भिन्न सी दिखलाई पड़ती है। जैसे प्रथम कक्षा के विद्यार्थी उत्तम कक्षा की बात को तत्काल नहीं समझ सकते उन्हें स्थूल से सूक्ष्म की ओर लाने में कुछ विलम्ब लगता है उसी प्रकार सूक्ष्म ग्रहण करने वाली जिसकी बुद्धि नहीं है उसके सामने स्थूल तर्क उपस्थित किये गये हैं। वे तर्क पुनः सूक्ष्म रूप से भी वस्तु विवेचन करते हैं !

वैशेषिक दर्शन :—महर्षिकणाद ने इस दर्शन को लिखा है इनके मत में ईश्वर, जीव ये दो ही नित्य तत्त्व हैं। अखिल विचारशील जन्तु दुःख छोड़ना चाहते हैं दुःख स्वभावतः प्रतिकूल वेदनीय सर्वानुभव सिद्ध है। दुःख छूटने का उपाय परमेश्वर का साक्षात्कार है। यथा—

न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्। उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता ॥ १ ॥ न्या० कुसु० ॥

अभ्युदय निःश्रेयस की सिद्धि प्रदान करने वाले धर्म का आचरण करना जीव का कर्त्तव्य है। धर्माचार का विधान वेद में है वेद ईश्वर की वाणी है। वेद, धर्म का वर्णन उद्देश लक्षण द्वारा करते हैं। द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव यही सात पदार्थ हैं। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं। रूप रस गन्ध आदि चौबीस गुण हैं इनमें रूप सात प्रकार का रस छह प्रकार का गन्ध दो प्रकार का है। बुद्धि भी संशय निश्चय भेद से दो प्रकार की है। निश्चयात्मिका बुद्धि प्रमा संशयात्मिका अप्रमा (अज्ञान) कहलाती है। प्रमा की उत्पत्ति प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा होती है। अप्रमा बुद्धि संशय, विपर्यय, स्वप्न भेद से तीन प्रकार की है। कर्म (क्रिया) उत्सर्पणापसर्पण आदि भेद से पाँच प्रकार का है। पदार्थों में एकता स्थापन करने वाले को सामान्य (जाति) कहते हैं। जीव ईश्वर आदि अतीन्द्रिय पदार्थ में भेद करने वाले को विशेष कहते हैं। पदार्थ के नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। अभावप्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्या भाव एवं अत्यन्ताभाव भेद से चार प्रकार का होता है। फल कामना रहित ज्ञान पूर्वक किये हुये कर्म से विशुद्ध कुल में उत्पन्न होकर दुःख विगमोपाय वाला जिज्ञासु आचार्य के समीप जाकर षड् पदार्थ के तत्त्व ज्ञान द्वारा अज्ञान निवृत्ति पूर्वक रागादि रहित होकर दग्धेन्धनअनलवत् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है इस दर्शन का प्रारम्भ इस प्रकार है। यथा—

"अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः।" "यतोऽभ्युदय निश्श्रेयस सिद्धिः स धर्मः ॥ तद्वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ वैशे० द० सूत्र १-२-३ ॥

न्यायदर्शन :—गौतम मुनि का बनाया न्यायशास्त्र है इनका दूसरा नाम अक्षपाद भी है अतः यह दर्शन अक्षपाददर्शन के नाम से भी विख्यात है। इसमें पाँच अध्याय हैं प्रत्येक अध्याय में दो-दो आन्हिक हैं। इस दर्शन का प्रथम सूत्र "प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयव तर्क निर्णयवाद जल्प वितण्डा हेत्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्श्रेयसाधिगमः" है। इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यथार्थ ज्ञान (प्रमा) के करण को प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द यही चार प्रमाण हैं। आत्मा, देह, इन्द्रिय, अर्थ (विषय) मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, और अपवर्ग इनका ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख तथा ज्ञान जीव के चिन्ह हैं। अर्थ सब परमाणु रूप हैं। पूर्वकृत कर्म से शरीर का निर्माण है ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच पञ्चमहाभूतों के सूक्ष्मांश से बनी हैं। मन का रूप अणु है वह भीतर की इन्द्रिय है। ज्ञानोपलब्धिमात्र बुद्धि है वह अनित्य है। जल्प, वितण्डा को यथार्थ समझकर उससे सावधान रहने की आवश्यकता है। जब कोई पुरुष अपने पूर्व पुण्य परिपाक समुद्भूत आचार्योपदेश से दुःखायतन, दुःखानुषक्त, इस प्रपञ्च को देखता है तभी हेय जानकर इससे निवृत्त होना चाहता है। इसकी निवृत्ति तत्त्वज्ञान से होती है। तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञान को हटाता है। मिथ्याज्ञान के नाश होने पर दोष अपने आप नष्ट हो जाते हैं। दोष के हटने पर प्रवृत्ति नष्ट होती है। प्रवृत्ति के अपाय से जन्म नहीं होते। जन्म न होने से दुःख अत्यन्त निवृत्त हो जाता है। आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्ति ही मोक्ष है। यथा—

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥ गौ० सू० १।१।२॥

सांख्यदर्शन :— महर्षि कपिलदेव प्रणीत सांख्यशास्त्र है यह शास्त्र छः अध्यायों में वर्णित है। इस दर्शन में मूलतः दो अनादि तत्त्व हैं। प्रकृति एवं पुरुष। जगत् में चार प्रकार के पदार्थ हैं प्रकृति, विकृति, प्रकृति-विकृति, तथा दोनों से भिन्न (पुरुष)। प्रकृति किसी का कार्य नहीं है अतएव वह केवल प्रकृति है। प्रकृति से महत्तत्त्व, उससे अहंकार अहंकार से पञ्च तन्मात्रायें उत्पन्न हुये। अतः महत्तत्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रायें प्रकृति विकृति स्वरूप हैं। ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय पञ्चमहाभूत और मन केवल विकृति हैं। उभयभिन्न पुरुष (जीव) है। यह निर्लिप्त उदासीन साक्षी है। प्रकृति अचेतन विश्व विचित्र रचना शालिनी है। पुरुष के समीप रहने से चेतन सी प्रतीत होती है। प्रकृति पुरुष के विवेक से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। यथा—

पञ्चविंशति तत्वज्ञः यत्र कुत्राप्याश्रमे वसन्। जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥ १॥

सत्त्व, रजः, तम की सम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं तीनों का धर्म क्रम से सुख दुःख, मोह है। यह सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणात्मक है। अहंकार भी तीन प्रकार का है उसके सात्विक अंश से पञ्चज्ञानेन्द्रिय, एवं मनउत्पन्न हुआ है। तामस अंश से पञ्चतन्मात्रायें उत्पन्न हुई' राजस अंश दोनों का सहायक है। पुरुष अनन्त हैं, क्योंकि यदि एक ही होता तो एक के जन्म होने पर सबका जन्म होता एक के मरने पर सभी मृत होते एक के बधिर होने पर सब बधिर हो जाते किन्तु ऐसा नहीं होता। यथा—

जन्ममरणकरणानां प्रति नियमादयुगपद्प्रवृत्तश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्य विपर्याच्चैव ॥ १८ ॥ सांकारिका ॥

यह पुरुष प्रकृति के कर्तृत्व को अपने में मानता है। पुण्योदय से जब पुरुष आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन त्रिविध दुःखों के नाश की इच्छा करता है तब प्रकृति उसकी इच्छा सफल करती है। पुरुष की भोगेच्छा न होने पर प्रकृति स्वतः शान्त हो जाती है। क्योंकि प्रकृति की समस्त चेष्टा पुरुष के उपभोग के लिये ही है, अपने लिये नहीं। अतः वासना नाश होने पर प्रकृति पुनः बन्धन उपस्थित नहीं करती। बौद्ध दर्शन में असत् से सत् की उत्पत्ति, न्यायदर्शन में, सत् से असत् की उत्पत्ति, सांख्यदर्शन में सत् से सत् की ही उत्पत्ति का प्रतिपादन हैं। यथा—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्व सम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणा-त्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥ सां का० ९ ॥

अतः इस दर्शन में सत्कार्यवाद का सिद्धान्त है। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" गीता के श्लोक द्वारा भी इसी वाद की पुष्टि मिलती है। प्रकृति पुरुष का सम्बन्ध पंगु अन्ध के समान हुआ है, पुरुष के मोक्ष के लिये ही प्रकृति की प्रवृत्ति है।

"वत्सविवृद्धि निमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य। पुरुष विमोक्ष निमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य" ॥ सां० का० ५७ ॥ "पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि सम्बन्धस्तत्कृतः सर्गः ॥ सां० का० २१ ॥

सांख्य सेश्वर तथा निरीश्वर भेद से दो प्रकार का है।

योगदर्शन :—इस दर्शन का दूसरा नाम साँख्य प्रवचन है यह पतञ्जलि मुनि प्रणीत है। इसमें चार पाद हैं, समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्य-पाद। पतञ्जलि मुनि सेश्वर सांख्य के प्रवर्तक हैं। प्रथमपाद में "अथयोगानुशासनम्" सूत्र से योगशास्त्रारम्भ की प्रतिज्ञा करके "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" से योग के लक्षण को कहकर समाधि का विस्तृत विवेचन किया गया है। दूसरे पाद में—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ २१ ॥

सूत्र से असमाहित चित्तवृत्ति वाले पुरुष के लिये यमादि पञ्च वहिरङ्ग साधन का उल्लेख है। तृतीय में--

"देशवन्धश्चित्तस्य धारणा" ॥ ३ । १ ॥

सूत्र से हृदयकमल रूप देश में चिन्तनीय एकाग्रता को धारणारूप से प्रतिपादन किया है। धारणा, ध्यान, समाधि इन अन्तरङ्ग साधनों को "संयम" पद से कहा गया है। संयम का मुख्यफल मोक्ष और अवान्तर फल ऐश्वर्य प्राप्ति है। चौथे पाद में--

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ पा० यो० सू० ॥ ४ । १ ॥ से जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि से जायमान सिद्धियों का निरूपण है यमनियमादि अष्टाङ्गयोग के द्वारा प्रकृति पुरुष के भेद का साक्षात्कार होता है।

उससे पुरुष के असङ्ग का ज्ञान होकर दुःखात्यन्ताभाव रूप मोक्ष की सिद्धि होती है। सांख्यदर्शन में कथित पञ्चविंशतितत्त्व पतञ्जलि मुनि को अभिमत हैं इनके अतिरिक्त क्लेश, कर्म विपाक, अन्तःकरण के संस्कार से अपरामृष्ट परमेश्वर को भी स्वीकार किया गया है। वह ईश्वर अपनी इच्छा से एक अथवा युगपद् अनेक शरीर धारण कर लेता है। वह लौकिक, वैदिक सम्प्रदाय का प्रवर्तक है। संसार रूपी अग्नि में (अविद्या, स्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश) में तपते हुये प्राणियों के ऊपर दया करने वाला है। समाधि (भावना) संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात, भेद से दो प्रकार की होती हैं।

सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन प्रकृतेः पृथक् ध्येयम् ॥ इति ॥

सम्प्रज्ञात, इससे विरुद्ध असम्प्रज्ञात है। इस सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं। यथा :—

'वितर्क विचारानन्दास्मिता रूपानुगमात्संप्रज्ञातः ॥ पा० यो० सू० १।१७।

इस दर्शन में दो प्रकार की मुक्ति मानी गयी हैं। महत्तत्व प्रभृति सूक्ष्मभूत पर्यन्त में लय, प्रकृतिकैवल्य है। बुद्धि तत्त्व से सम्बन्ध न होकर चितिशक्ति रूप जो पुरुष की स्वरूप प्रतिष्ठा है उसे पुरुष कैवल्य कहते हैं। इसके बाद जन्तु का जन्म नहीं होता क्योंकि क्लेश के बीज ही नष्ट हो गये। यथा—

"पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः ॥ पा० यो० सू० ४ । ३४ ॥

चिकित्साशास्त्र के जैसे चार अंग हैं रोग, रोग हेतु, आरोग्य, और औषधि इसी प्रकार योगशास्त्र में भी 'संसार, संसार का कारण, मोक्ष, मोक्ष के उपाय' इन चारों अंगों का विवेचन है। दुःखमय संसार हेय है, अविद्या ही संसार का बीज है। इसकी आत्यन्तिक की निवृत्ति ही मोक्ष है। इसका उपाय प्रकृति पुरुष विवेक का साक्षात्कार है।

जैमिनिदर्शन :—धर्मानुष्ठान से अभिमत धर्म की सिद्धि श्री जैमिनि मुनि ने मानी है। इस दर्शन का आदिम सूत्र "अथातो धर्म जिज्ञासा" है धर्म का क्या लक्षण है यह उनके सूत्र में ही देखें। यथा—चोदना लक्षणोऽर्थोधर्मः" १।२॥ सांख्य, योग और उत्तरमीमांसा में तत्त्वज्ञान के लिये पुण्यकर्म का उदय आवश्यक है, अतः कर्मों का विचार करने के लिये पूर्व मीमांसादर्शन की महर्षि जैमिनि ने रचना की। उत्तम कर्माधिकारी के लिये योग है, योग द्वारा कामनाहीन मुमुक्षु पुरुष वैराग्य तथा साधना के अभ्यास से समाधि तक पहुँचकर मुक्त हो जायेगा। किन्तु जो विरक्त नहीं है उसे उपभोग चाहिये उसके लिये पूर्वमीमांसा दर्शन कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह मीमांसा दर्शन कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह मीमांसा दर्शन बारह अध्यायों में वर्णित है। पहिले अध्याय में विध्यर्थवाद मन्त्र स्मृति नाम धेय शब्द राशि का प्रामाण्य कहा गया है। दूसरे में उपोद्घात-कर्म के भेद, प्रमाण, तथा अपवाद का वर्णन है। तीसरे अध्याय में श्रुति, लिङ्ग, वाक्य प्रकरण, स्थान, समाख्या, इन छः प्रमाणों का वर्णन करते हुये, एक स्थान पर प्रमाणद्वय की उपस्थिति होने पर पूर्व की अपेक्षा पर को दुर्वल इसलिये माना गया है कि अर्थ प्रतीति विलम्बोपस्थापित है। चतुर्थ अध्याय में प्रधान भूत अभिक्षा दध्यानयन की प्रयोजिका है या नहीं, तथा 'जुहू पर्णमयी' में फल के भावाभाव का चिन्तन राजसूय में अक्षयूतादि का विचार किया गया है। पाँचवें में श्रुत्यादि का क्रम तथा उनके प्रावल्य-दौर्वल्य का विचार है। छठें में अधिकारी, अधिकारी-धर्म, द्रव्य, मुख्याभावे प्रतिनिधि, कालातिक्रमण में प्रायश्चित्त आदि का विचार किया गया है। सातवें में प्रत्यक्ष वचन द्वारा अतिदेश, अतिदेश का शेष, नामातिदेश, लिङ्गातिदेश का विचार है। अष्टम में स्पष्ट लिङ्ग द्वारा अतिदेश, अस्पष्ट लिङ्गातिदेश प्रवललिङ्गातिदेश, आदि का विचार है। नवम में देवता, लिङ्ग, संख्यावाचक पदों का प्रयोग विशेष में परिवर्तन आदि का विचार किया गया है। दशम में वाध हेतु वाधकारण आदि का विचार है। एकादश में अनेक के उद्देश्य से एक वार कृतकर्म (तन्त्र) तन्त्रावाप, तन्त्र विस्तार का चिन्तन है। बारहवें अध्याय में प्रसङ्ग, तन्त्रिनिर्णय आदि का विचार किया गया है। इस दर्शन में वेद नित्य है, उनके मन्त्र ही देवता हैं। इस दर्शन का उद्देश्य शास्त्रों में निष्ठा उत्पन्न करके अधर्म की निवृत्ति', तथा धर्म में प्रवृत्ति करना है।

उत्तरमीमांसा दर्शन :—भगवान् वेदव्यास द्वारा प्रणीत इस दर्शन को "वेदान्त-दर्शन" कहते हैं। ब्रह्म की जिज्ञासा के लिये इस दर्शन की प्रवृत्ति है इसमें चार अध्याय, प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं "जन्माद्यस्य यतः" वे० सू० १।१।२॥ जिससे सृष्टि, स्थिति, प्रलय, होते हैं वह ब्रह्म है। समस्त दर्शन इसी ब्रह्म लक्षण की व्याख्या है। पुराणों में श्रुति द्वारा जो दर्शन आया है। उसी को सूत्र रूप से व्यवस्थित किया गया है। श्रीव्यासजी के इस उत्तरमीमांसा दर्शन (ब्रह्म-सूत्र) को लेकर आचार्यों ने अपने-अपने

सम्प्रदायानुकुल भाष्य किया है। ब्रह्मसूत्र (न्याय प्रस्थान) उपनिषद् (श्रुति प्रस्थान) और गीता (स्मृति स्थान) यही तीन ग्रंथ प्रस्थान त्रयी के नाम से विख्यात हैं। इन सब पर भाष्य करके तथा उसका समुचित प्रचार प्रसार करके ही सम्प्रदाय चले हैं। आज जैसे सम्प्रदाय पहिले भारत में नहीं चल सकते थे। अद्वैतवाद के अतिरिक्त समस्त वैष्णव दर्शन में उपासना की पुष्टि की गयी है अतः इनमें जगत् की सत्यता, तथा ब्रह्म के विशेष रूपका प्रतिपादन हैं। भाष्यरूप दर्शनों में मौलिक कोई भेद नहींहै। आचार्यों ने अधिकारी भेद से साधनों की पुष्टि के लिये ही भाष्यों का विस्तार किया है। अद्वैतवाद में 'ज्ञानयोग' वैष्णवदर्शन में 'उपासना' साधन के रूप में प्रतिपादित है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अनादि परम्परा मानता है। आद्याचार्य प्रस्थान त्रयी पर भाष्य करके प्रचार करने वाले महापुरुष को कहते हैं। उन्होंने सिद्धान्त को बनाया यह न तो आचार्य ही मानते हैं और न उनके अनुयायी ही मानते है। सत्य के अनेक भेद नहीं है वाणी द्वारा व्यक्त करते समय दृष्टि भेद से वह विविध रूपों को धारणकर लेता है। अचिन्त्य रूपा मायाशक्ति, अवाङ्मनस गोचर परम तत्त्व, यह सब कोई मानता है। इनकी उपलब्धि तथा अनुभूति के मार्ग भिन्न भिन्न हैं अधिकार भेद से पुराणों में जैसे परतत्त्व कहीं शिव, कहीं शक्ति, कहीं विष्णु हैं। उसी प्रकार आचार्यों के सिद्धान्त का भेद अधिकारी के भेद का ही द्योतक है। वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है।

अद्वैतवाद :– जिस समय बौद्धधर्म के प्रचार प्रसार ने वामतंत्र की साधनाओं को अपना लिया था। दर्शन जड़वादी बन चुका था। साधनायें अनाचार दुराचार पापाचार का रूप धारण करली थीं। वैभाषिक बौद्धदर्शन का आधार जड़ को ही सत्य मानता था। इसी वातावरण में भगवान् शंकर शंकराचार्य के रूप में अवतीर्ण हुये। बौद्धदर्शन जिसे सत्य मानता था उसके विरुद्ध "यह मिथ्या है' 'प्रतीति मात्र है" "पारमार्थिक असत्य है" यह प्रतिक्रिया उत्थित की गयी। अतः बौद्धदर्शन से इस दर्शन का भेद केवल इतना ही रहा कि श्रुति, शास्त्र एवं आस्तिकता की प्रतिष्ठा के साथ आचार की अपेक्षा ज्ञान को महत्ता दी गई। उस समय उच्छृङ्खलतायें जो आचार के नाम पर समाज में पनप रहीं थी उनका समूलोन्मूलन इसी वाद द्वारा किया गया। अतः इस दर्शन में दृश्य जगत् को केवल प्रतीति मात्र माना गया। इस प्रतीति का कारण अज्ञान है, अज्ञान भाव रूप है। निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निर्विशेष एक ही चेतन सत्ता है। प्रतीयमान यह जगत् उससे भिन्न नहीं है ब्रह्मसत्ता में ही अध्यस्त है। दृश्य जगत् परिणामी और अनित्य है। सबका द्रष्टा एक है ज्ञेय भी ज्ञाता का सोपाधिक रूप है। जगत् नाम रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नाम रूप की प्रतीति माया से है। माया अनिर्वचनीय है। अनादि होते हुए भी ज्ञान के द्वारा उसका अंत होता है अतः उसकी सत्ता नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद शून्य है। जगत् की

प्रतीति रस्सी में सर्प के समान भ्रम द्वारा होती है, यही विवर्तवाद है (अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा)। इस दर्शन में अजातवाद, दृष्टि सृष्टिवाद, जगत् की प्रतीति लेकर ही टिके हैं बौद्ध दर्शन की तर्कों का भी प्रकारान्तर से प्रयोग किया गया है।

इस दर्शन में ज्ञान, चैतन्य, ब्रह्म पर्याय हैं अतः प्रत्यक्ष प्रमा चैतन्य ही है प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ये ही छः प्रमाण हैं। प्रमाण चैतन्य का विषयावच्छिन्न चैतन्य से अभेद होना ही प्रत्यक्ष है। घटाद्यवच्छिन्न चैतन्य को विषयावच्छिन्न चैतन्य कहते हैं। अन्तःकरण वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य को प्रमाण चैतन्य तथा अन्तःकरणावच्छिन्न, चैतन्य को प्रमातृचैतन्य कहते हैं। तीनों चैतन्यों का एकदेशस्थ होना ही ज्ञानगत प्रत्यक्ष का प्रयोजक है। जैसे तालाब का पानी नाली द्वारा खेत में जाकर क्षेत्र के आकार से परिणत हो जाता है उसी प्रकार तैजस अन्तःकरण चक्षुरादि द्वारा निकलकर विषय देश में जाकर घटादि विषयाकार रूप से परिणत हो जाता है, इसी परिणाम को वृत्ति कहते हैं। विषयावच्छिन्न चैतन्य, अन्तःकरण वृत्त्यव-च्छिन्न चैतन्य का जहाँ अभेद होता है वहीं अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने पर प्रत्यक्ष हो जाता है। जैसे अपरिच्छिन्न आकाश का घटशरावादि द्वारा परिच्छेद होता है उसी प्रकार अनवच्छिन्न चैतन्य का प्रमातृ-प्रमाण, प्रमेय द्वारा परिच्छेद होता है। जगत् के समस्त पदार्थ इन्हीं तीनों में अन्तर्भूत हैं। वस्तुतः चैतन्य आकाशवद् एक ही है अतः अद्वैत श्रुति से विरोध नहीं होता। जीव ब्रह्म का ऐक्य प्रमेय है वह "तत्त्व-मसि" इत्यादि महावाक्य द्वारा ही सम्भव है। घटादिसत्ता व्यावहारिकी, रज्जु में सर्प प्रातिभासिक तथा ब्रह्म की सत्ता परमार्थिक है। सच्चिदानन्द अर्थात् "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है, जगज्जन्मादि कारणत्व तटस्थ लक्षण है। शुद्ध चैतन्य ब्रह्म ही समष्टि रूप से माया अविद्या संवलित होकर ईश्वर, हिरण्यगर्भ, वैश्वानर संज्ञा को प्राप्त करता है, और वही व्यष्ट्यवच्छिन्न होकर प्राज्ञ, तैजस, विश्व नाम से प्रसिद्ध हुआ है ये परस्पर तीनों अभिन्न हैं केवल औपाधिक भेद हैं और इन तीनों का शुद्ध चैतन्य से भी अभेद हैं। अन्तः "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह श्रुति चरितार्थ हुई। पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, दश इन्द्रिय से समन्वित सत्रह तत्त्व का लिंग शरीर अपञ्चीकृत भूत से उत्पन्न हुआ माना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर, हिरण्यगर्भ का पर तथा हम लोगों का अपर, है। हिरण्यगर्भ का महत्त्व का है और हम लोगों का अहंकार का है। तमोगुण युक्त पञ्चीकृतभूत से भूलोकादि सात ऊपर के, अतलवितलादि सात नीचे के तथा जरायु-आदि चार प्रकार के स्थूल शरीर एवं इनके उपयुक्त अन्नपानादि उत्पन्न हुये हैं। सात्त्विक सूक्ष्मतन्मात्राओं के व्यस्त से पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मिलित से अन्तःकरण चतुष्टय उत्पन्न हुआ है। राजस पञ्चतन्मात्राओं के व्यस्त से पञ्चकर्मेन्द्रिय, मिलित से पञ्चप्राणों की उत्पत्ति है। भगवान् शंकराचार्य ने "ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैत वासना:" कहकर ईश्वर

की कृपा अपेक्षित मानी है। उपासना, भक्ति तथा आचार को महत्त्व दिया है। संसार कल्पना है पर समष्टि के संचालक की। जीव की कल्पना अहं और मम है। अहं मम को छोड़ना जीव के बश की बात है और समष्टि का लय समष्टि कर्ता के आधीन है अतः ईश्वर कृपा सापेक्ष मोक्ष है। जब पारमार्थिक सत्य किसी प्रतीति का साक्षात्कार कर लेगा, व्यावहारिक बन्धन उसके नहीं रह जायेंगे अतः मोक्ष हो जायेगा।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त :— इस सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक वृत्तिकार भगवान् बोधायन श्री पुरुषोत्तमाचार्य, श्रीशुकदेव जी महाराज के अव्यवहित शिष्य हैं। वृत्ति ग्रन्थ का श्रीरामनुजाचार्य जी ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य श्रीभाष्य में स्मरण किया है। उनके समय वह वृत्ति ग्रन्थ था आज वह ग्रंथ अनुपलब्ध है। अतः इस सम्प्रदाय के आचार्यद्वय श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीरामानन्दाचार्य हैं। अद्वैतवेदान्त में श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि द्वारा अपरोक्षानुभूति कही गई है। आचार से ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है। इन्द्रियों द्वारा विषय सेवन व्यवहार माना गया। जीव, नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म है उसे कोई आचार वाधित नहीं कर सकता। विषय भोगादि कल्पना है अज्ञान को प्रतीति मात्र है, सदाचार उपासनादि भी व्यावहारिक हैं। अतः आचार की प्रतिष्ठा के लिये यह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त प्रवृत्त हुआ। इस दर्शन में चिद् जीव भोक्ता है, अचिद् जगत भोग्य भोगोपकरण, भोगायतन हैं, और इन दोनों का नियामक ईश्वर है। अतः नित्य, भिन्न ये तीन ही पदार्थ हैं। चिद् अचिद् ब्रह्म के विशेषण हैं, चिद चिद् विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है चिद चिद् दोनों ही ईश्वर के शरीर हैं ईश्वर शरीरी है। चिद चिद् विशिष्ट ब्रह्म होने से ही इसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं। चिद् शब्द वाच्य जीव ईश्वर से सदा भिन्न रहता है। कार्य कारण रूप से परिणत होने वाला अचित्-तत्त्व विकारी है। कारणावस्थापन्न सूक्ष्म चिद-चिद् विशिष्ट का स्थूल चिद-चिद् विशिष्ट से अभेद है। ब्रह्म के ही चेतन अंश को चिद् जीव और अचित जड़ को प्रकृति कहते हैं जीव ब्रह्म का ही अंश है, धार्य है, नियाम्य है। ब्रह्म अंशी (शेषी) धारक एवं नियामक है। भगवान् ही समस्त जड़ चेतन सत्ता के स्वामी हैं निरस्त निखिल दोष, अनवधिकातिशत असंख्येय कल्याण गुणगुणनिलय ब्रह्म ही "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" वे० सू० १।१ का जिज्ञास्य विषय है। इस सूत्र में अथ शब्द आनन्तर्य अर्थ में प्रयुक्त है, अतः शब्द वृत्त के हेतु को कहता है। जिसने साङ्गसशिरस्क वेद का अध्ययन किया है उसको ही धर्म और ब्रह्म के विचार का अधिकार है। पूर्वमीमांसा में कर्म का फल अल्प, अस्थिर है। इसके अन्तर ही स्थिर और अनन्त फल वाले ब्रह्म की जिज्ञासा होती है। बृहत्त्व गुणयोगी होने से ब्रह्म सगुण तथा साकार ही है, इसी में श्रुति स्मृति का समन्वय किया गया है। इस मत में जीव, ईश्वर, प्रकृति तीनों तत्त्व सत्य तथा अनादि हैं। संसार के सभी पदार्थ सत्य हैं। शुक्ति में रजतज्ञान भी कारण सत्तातया सत्य है मिथ्या ज्ञान

होता ही नहीं है। ये तीनों तत्त्व सम्बन्धित होते हुये भी परस्पर भिन्न हैं। परमात्मा सजातीय-विजातीय स्वगत भेद सहित है। भेद होने पर भी शरीर विशिष्ट के एक होने के कारण यह विशिष्टाद्वैतवाद है।

जीव ज्ञाता है। ज्ञान जीव का धर्म है, वह ज्ञान स्वरूप नहीं है। यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान को ही प्रमा कहते हैं। निर्विकल्पक, सविकल्पक ज्ञान विशेषतायुक्त पदार्थ के ही होते हैं। जिसमें कोई विशेषता न हो उसका ज्ञान नहीं होता। आत्मा का मन से, मन का इन्द्रिय से, इन्द्रिय का विषय से संयोग होने पर ही प्रत्यक्ष होता है। इस मत में परिणामवाद ही माना गया है। उपासना द्वारा अज्ञान की निवृत्ति जीव का प्रयोजन है। ब्रह्म योगमाया शक्ति से समन्वित होकर कर्म फलदाता, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी हैं। यह ब्रह्म पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतार भेद से पांच प्रकार का माना गया है। प्रमाण यथा—

वासुदेवः स्वभक्तेषु वात्सल्यात्तत्तदीहितम्। अधिकार्यानुगुण्येन प्रयच्छति फलं वहु ॥ १ ॥ तदर्थं लीलया स्वीयाः पञ्चमूर्तीः करोति वै। प्रतिमादिकमर्चा स्यादवतारास्तु वैभवाः ॥ २ ॥ संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः। व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मं सम्पूर्णषड्गुणम् ॥३॥ तदेव वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निगद्यते। अन्तर्यामी जीव संस्थो जीव प्रेरक ईरितः ॥ ४ ॥ य आत्मनीति वेदान्त वाक्यजालैर्निरूपितः। अर्चोपासनया क्षिप्ते कल्मषेधिकृतो भवेत् ॥ ५ ॥ विभवोपासने पश्चाद् व्यूहोपास्तौ ततः परम्। सूक्ष्मे तदनुशक्तः स्यादन्तर्यामिणमीक्षितुम् ॥६॥

भगवान के अवतार कर्म के कारण नहीं होते वे स्वेच्छा से ही अवतार ग्रहण करते हैं। जीव-देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान से भिन्न स्वयं प्रकाश ज्ञानाश्रय, कर्ता, भोक्ता ब्रह्म का शरीर तथा दास है। जीव कभी ब्रह्म नहीं हो सकता या अभिन्नता कभी भी नहीं है। अप्राकृत चिन्मय शरीर से भगवद्धाम की प्राप्ति ही मुक्ति है यथा—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम शाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ भा० गी० ८।१५॥ स्वभक्तं वासुदेवोऽपि संप्राप्यानन्दमक्षयम्। पुनरावृत्ति रहितं स्वीय धाम प्रयच्छति ॥

यह मुक्ति भगवान् की कृपा से भक्ति प्रपत्ति द्वारा ही सम्भव है। पूर्व पूर्वमूर्ति उपासना द्वारा, दुरितक्षय होने पर सूक्ष्म उपासना पर्यन्त ही इसका पर्यवसान है। सायण माधवाचार्य प्रणीत सर्वदर्शन संग्रह में रामानुज दर्शन प्रकरण में कहा है—

तदेतत्सर्वं हृदि निधाय भगवद्बोधायनाचार्य कृतां ब्रह्मसूत्र वृत्तिं विस्तीर्णामालक्ष्य रामानुजः शारीरकमीमांसा भाष्यमकार्षीत् ॥

धीरे-२ यह आचार्य मत के बदले आचारियों का मत कहा जाने लगा प्रपत्ति शरणागति का भाव गौड़ हो गया, जाति विशेष के व्यक्तियों को ही अधिकारी समझा गया। बाह्याचार अपनी सीमा को पार कर गया उपासना जो लक्ष्य थी वह क्रियाओं में फँसकर संकीर्ण हो गई। इस स्थिति में अन्य वैष्णवमत मार्ग प्रदर्शक हुये।

माध्वदर्शन :—महाप्रभु श्रीमाध्वाचार्य द्वारा सञ्चालित द्वैतवाद ही पूर्ण प्रज्ञ दर्शन कहलाता है। इस मत में जीव, ब्रह्म, यही दो तत्त्व हैं। जीव अणु और दासभूत है ब्रह्म सगुण साकार सविशेष तथा स्वतन्त्र है। जीव का परम लक्ष्य सालोक्यादि मुक्ति प्राप्ति में है। जीव को ब्रह्म समझना दोष तथा अपराध है। दृश्य जगत् सबसे अभिन्न है। विकारी, परिणमनशील होते हुये भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि असत्य का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय से सम्बद्ध है। ज्ञान, चिन्तन पदार्थ से भिन्न नहीं है। ज्ञान सविकल्पक पदार्थ का ही होता है। ज्ञान अपेक्षाकृत है। ज्ञान ही ज्ञेय का बोधक एवं प्रमाण है। ब्रह्म का ज्ञान केवल शास्त्र द्वारा ही होता है। वह वाणी द्वारा नहीं जाना जा सकता। इस मत में भेद को पाँच प्रकार का रूप दिया गया है। जीव से ईश्वर का भेद, जड़ से ईश्वर का भेद, जीव का जड़ से भेद, जीवों का परस्पर भेद, जड़ का परस्पर भेद। ये भेद सदातन हैं नाश नहीं होते अतः अनादि तथा सत्य हैं। ये भेद भ्रम द्वारा उत्थित नहीं है अतः इनकी निवृत्ति नहीं होती। भाववस्तु, गुण, क्रिया, जाति, विशेषत्व विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव ये दश पदार्थ इस सिद्धान्त में प्रमाण तथा युक्ति द्वारा सिद्ध किये गये हैं। भाव वस्तु दो प्रकार की है, चेतन तथा अचेतन। परमतत्त्व ब्रह्म भगवान् विष्णु हैं। भक्ति, त्याग तथा ध्यान द्वारा जीव इनको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। यही इस मत का संक्षेप है।

द्वैताद्वैतवाद :— इस वाद का प्रकाश करने वाले महाप्रभु श्रीनिम्बार्काचार्य हैं। इनके मत में द्वैत, तथा अद्वैत स्वाभाविक है श्रुतियों में द्वैत का प्रतिपादन है, अतः द्वैत, अद्वैत दोनों सत्य हैं।

जगत् ब्रह्म का परिणाम है। ब्रह्म में परिणाम होने पर भी वह विकृत नहीं होता। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है उसका सगुण साकार भाव ही मुख्य है। जीव भी ब्रह्म का ही परिणाम है। जीव और जगत्, ईश्वर से पृथक् भी हैं और ईश्वर में रहकर इनकी अपृथक् भी सत्ता है। जगत् के रहने पर ब्रह्म निर्गुण निराकार है। ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का अंशभूत है, उससे भिन्न भी है और अभिन्न भी। जीव अणु स्वरूप वाला है। उपासना के द्वारा ही जीव मुक्त होता है। मुक्त जीव ब्रह्म से अपनी अभिन्नता का अनुभव करता है। इस मत में विशिष्टाद्वैत को सिद्ध करने वाली भेदवादिनी श्रुति तथा अद्वैतवाद को सिद्ध करने वाली अभेदवादिनी

श्रुतियों को प्रमाण रूप से ग्रहण करके द्वैत और अद्वैत दोनों को एक में मिलाने की युक्तियां दी गई हैं।

शुद्धाद्वैतवाद :— इस मत के प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य हैं इस वाद में जगत् के मिथ्यात्व का खण्डन किया गया है। इस दर्शन में एक ही ब्रह्म तत्त्व है वह निर्गुण नहीं है सगुण है। भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता निर्विकार, गुणातीत, आदि समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रयभूत, संसार के धर्म से रहित जगत् के उपादान कारण हैं। जगत् सत्य है, कार्य है, ब्रह्म से अभिन्न इसका परिणाम है। ब्रह्म परणामी होकर भी विकारी नहीं है। पदार्थों का आविर्भाव, तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणु रूप है। ब्रह्म के प्रति अनुराग ही जीव का श्रेष्ठमार्ग है। इस अनुराग की चरमावस्था पतिभाव द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति है। यह भाव भगवदनुग्रह से ही उदय हो सकता है। ब्रह्म का विवेचन शास्त्र द्वारा ही हो सकता है। अतः इस मत नें उपासना की ही पुष्टि की गई है।

अचिन्त्य भेदाभेदवाद :—श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रीगोस्वामिपादों ने इसे दार्शनिक रूप दिया है। श्रीमद्भागवत को ही गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र का भाष्य महाप्रभु ने माना था। अतः प्रस्थानत्रयी पर भाष्य न करके भागवत् के भाष्य से ही यह मार्ग पुष्ट किया गया है। अब ब्रह्मसूत्र पर भी भाष्य उपलब्ध है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म ये पाँच तत्त्व हैं। ईश्वर का ज्ञान शास्त्र से ही होता है। सगुण सविशेष भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म तत्त्व हैं। वे स्वतन्त्र सर्वज्ञता आदि गुणनिलय जीव को भुक्ति मुक्ति देने वाले हैं। निर्गुण हैं अर्थात् प्राकृत गुण रहित हैं। सच्चिदानन्द प्रभु श्रीकृष्ण की संवित् सन्धिनी और ह्लादिनी ये तीन शक्तियां हैं। जगत ब्रह्म का परिणाम है। यह सत् होते हुये भी अनित्य है। ईश्वर, जीव, काल, और प्रकृति ये चारों तत्त्व नित्य हैं। प्रकृति ब्रह्म की शक्ति है त्रिगुणात्मिका है। कर्म जड़ हैं, ईश्वर की शक्ति रूप हैं। जीव अणु है ईश्वर का भोग्य है। प्रेम के द्वारा ईश्वर (श्रीकृष्ण) का सन्निध्य प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है। समस्त वैष्णवदर्शन उपासना की सिद्धि के लिये हैं। अतः जगत् की सत्यता तथा ब्रह्म का सविशेष रूप ही प्रतिपादित है।

इन दर्शनों के अतिरिक्त भारतीय अन्य दर्शन भी ईश्वरवादी हैं विस्तार के भय से केवल उनका नाम मात्र ही दिया जाता है। जैसे "नकुलीश पाशुपत दर्शन", "शैव-दर्शन", "प्रत्यभिज्ञा-दर्शन", "रसेश्वर-दर्शन" पाणिनि-दर्शन" "पाशुपत-दर्शन" "शिवाद्वैत-दर्शन" "शक्ति-दर्शन" "भक्ति-दर्शन" "वैद्यक-दर्शन" "ज्यौतिष-दर्शन"। भारतीय दर्शन की यही विशेषता है कि एकत्व में अनेकता की अभिव्यक्ति और अनेकत्व में एकता का दर्शन। हाँ अनेकता में एकत्व का व्यवहार ठीक नहीं चल सकता। पशु

विवाह के पश्चात् श्रीराघवेन्द्र श्रीजनकनन्दिनी को लेकर जब श्रीअवध आये तब उन्होंने श्रीअवधधाम में ऋतु के अनुकूल बहुत काल तक विहार किया-- "रामस्तु सीतया सार्द्धं विजहार बहून् ऋतून्। मनस्वी तद्गतस्तस्या नित्यं हृदि समर्पितः॥ प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति। गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत॥ पूर्व में यह कहा गया कि श्रीरामजी अपने पिता की आज्ञा से पुरवासियों के प्रिय एवं हितसाधक कार्यों को करते हैं। गुरु, ब्राह्मण, पिता-माता एवं समस्त पुरवासीगण श्रीराघवेन्द्र के शीलगुण से उनके बशमें रहते हैं। अब श्रीकिशोरीजी के साथ उनकी विहार लीला को महर्षि वर्णन करते हैं— "रामस्तु सीतया सार्द्धं।" श्रीरामभद्र ने तो श्रीसीताजी के साथ बहुत ऋतुओं तक केवल विहार किया। 'तु' शब्द से पूर्वके कार्यों से विहार लीला की बिलक्षणता कही गई है। जिन्होंने पूर्व में देव गुरु पितृ प्रजाराधन किया, वे ही अब अपनी प्रेयसी पाणि गृहीता श्रीसीताजी के साथ धर्मानुकूल वात्स्यायन शास्त्रानुसार प्रेमरस का रसास्वादन कर रहे हैं। यहाँ श्रीसीता में तृतीया विभक्ति है। अप्रधान में तृतीया बिभक्ति होती है। यहाँ विहारलीला में श्रीकिशोरीजी भी कभी-कभी मुग्धावस्था धारण कर लेती हैं। श्रीगुणरत्नकोष में श्रीपराशर स्वामी ने भी कहा है— "भोगस्रोतसि कान्तदेशिक करग्राहेण गाहक्षमाः।" 'सीता' नाम से "अयोनिजा होने से स्वाभाविक सौन्दर्य माधुर्यसार सर्वस्व विग्रह वाली होती हुई भी भोगरस सागर के प्रवाह में अप्रधान हो गई यह सूचित किया गया। यहाँ रसिकशिरोमणि श्रीराघवेन्द्र की विदग्धता सूचित है। 'विजहार' इस परस्मैपद की क्रिया से विहारलीला की समाप्ति का निषेध है। यदि विहारलीला का आश्रय श्रीरघुनन्दन होते तो आत्मनेपद होता।

इस प्रकार चिरकाल तक विहारलीला होने पर भी ऐसा अनुभव हो रहा है कि अभी विहारलीला प्रारम्भ हुई हो। रसिक सन्तों ने लिखा है— नहिं आदि न अन्त विहार करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।' अर्थात् अनन्तकाल विहार करने के पश्चात् भी श्रीप्रिया प्रियतम आपस में एक दूसरे को अभी पहिचान भी नहीं सके। श्रीविद्यापतिजी ने भी लिखा है—'जनम अवधि हम रूप निहारल नैन तृपित नहिं भेल।' संस्कृत के मनीषियों ने भी रमणीयता का लक्षण कुछ ऐसा ही किया है - 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' क्षण क्षण में जो नित्य नवीन प्रतीत हो वहीं रमणीयता वास्तविक सुन्दरता है। श्रीसीतारामजी जिस प्रकार सच्चिदानन्द विग्रह हैं, उसी प्रकार उनका विहार भी सच्चिदानन्दमय है। श्रीराघवेन्द्र की प्राणबल्लभा श्रीसीताजी उनके समान ही अभिन्न ब्रह्मतत्व हैं। ऐश्वर्य एवं माधुर्यके भेद से ब्रह्म द्विधा स्थित है। श्रीसीताजी को श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने ब्रह्म श्रीराम की स्वरूपशक्ति एवं अभिन्न रस विग्रह कहा है। 'ऋतून्'-ऋतून् के स्थान पर 'वर्ष' भी कहा जा सकता था। ऋतून् की जगह 'संबत्सरान्' भी सम्भव था किन्तु 'ऋतु शब्द' से ऋतु

के अनुकूल विहार करते हैं यह अर्थ अभिप्रेत है। रसिकाचार्यों की बाणी में ऋतुओं के अनुकूल विहार का वर्णन है। वर्षाऋतु में तदनुकूल तथा शरद् शिशिर वसन्त आदि ऋतुओं में उन्हीं के अनुकूल विहार करते हैं। ऋतून् में द्वितीया विभक्ति अत्यन्त संयोग में है--'अत्यन्त संयोगे द्वितीया' इससे विहारलीला का निरन्तर रसानुभव एवं किसी प्रकार की भी बाधा का अभाव सूचित होता है। 'मनस्वी'--यहाँ 'भू मा' (व्यापक) अर्थ में मत्वर्थीय प्रत्यय है। श्रीकिशोरीजी जिस प्रकार विहार करना चाहती हैं, जितनी मात्रा में विहार करना चाहती हैं, उनसे अधिक मात्रा में प्रभु उनके संकल्पों को पूर्ण करते हैं--"संश्लेषदशायाम् सीता संकल्पमप्यतिशय्य भोगस्रोतः प्रवर्तयिता।'

'तद्गतः' -- तस्यां गतः तद्गतः -- 'सप्तमी' इसमें योग विभाग समास है जिस प्रकार वस्तु में जाति एवं गुण अभेद सम्बन्ध से सदा एक रस विद्यमान रहता है उसी प्रकार श्रीकिशोरीजी के साथ श्रीरामभद्र सदा एक रस अभिन्न रूप से विद्यमान रहते हैं। 'शुक्लः घटः' 'सफेद वस्त्र' इस वाक्य में वस्त्र से सफेदी तथा घटत्व उसकी जाति जिस प्रकार अभिन्न रहती है उसी प्रकार श्रीसीतारामयुगल एक दूसरे से अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध से एक हैं 'तस्या नित्यं हृदि समर्पितः' श्रीराघवेन्द्र जिस प्रकार श्रीकिशोरी जी में अपना मन लगाये रहते हैं उसी प्रकार श्रीकिशोरीजी भी श्रीराघवेन्द्र पर अपना सर्वस्व न्योछावर किये रहती हैं। 'प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।' श्री-किशोरीजी में श्रीरघुनन्दन का ऐसा अलौकिक प्रेम क्यों है? इसका उत्तर महर्षि देते हैं। 'प्रिया तु' अर्थात् श्रीजनकराजनन्दिनी, विदेह वंश वैजयन्ती श्रीकिशोरीजी श्रीराघवेन्द्र की 'प्रिया दारा पितृकृता' हैं। पितृकृता विशेषण से श्रीकिशोरीजी को पाणि गृहीता, स्वकीया, प्रिया दारा का महान् गौरव प्राप्त है। इस प्रकार सभी अवतारों की अपेक्षा श्रीराघवेन्द्र की आल्हादिनी शक्ति श्रीसीताजी को जो गौरव प्राप्त है वह किसी भी अव-तार में नहीं है इसी का संकेत-'प्रियातु' इस श्लोक में किया गया है। 'पितृकृता' का यह भी अर्थ है कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, बामदेव जाबालि आदि ऋषि मुनियों ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रभृति त्रिदेवों एवं श्रीदशरथ श्रीमिथिलेश सहित कोटि-कोटि महापुरुषों के समक्ष लोक-वेद विधानके अनुसार श्रीसीताजी के साथ विवाह किया इसीलिये श्रीसीता-जी श्रीराम की पितृकृता प्रिया दाराहै। द्वितीय विशेषता यह हैकि श्रीकिशोरीजी रूप गुणों में भी अनुपमहैं-'गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत।' गुणात्-वेद शास्त्रोंकेअगाध ज्ञान, संगीत एवं चौंसठ कलाओं सहित समस्त विद्यायें श्रीकिशोरीजी में विद्यमान् हैं। जिसप्रकार 'स च सर्व गुणोपेतः कौशल्या नन्दवर्धनः' समस्त सद्गुणोंके सागर श्रीरामजी हैं उसी प्रकार श्री किशोरी जी भी 'सर्व लक्षण सम्पन्न नारीणामुत्तमा वधूः।' सभी दिव्य लक्षणों से सम्पन्न उत्तम वधू-नायिका हैं। केवल गुणों के कारण ही श्रीकिशोरी जी अनुपम नहीं है उनका रूप भी लोकोत्तर है--'रूपगुणाच्चापि'। श्रीकिशोरीजी के श्री-विग्रहका असमोर्ध्व सौन्दर्य भी असाधारण है। महर्षिजी ने श्रीरामरूप को पुरुष विमोहक

एवं असुर विमोहक स्थल-स्थल पर कहा है-'पुंसां दृष्टि चित्तापहारिणम् नहि तस्मान्मनः कश्चित् ॥' ऐसे विश्वविमोहन श्रीरामजी भी जिन श्रीकिशोरीजीको देखकर चकित रह जाते हैं इनकी सुन्दरता का वर्णन करना वाणी से परे है। तभी तो श्रीराघवेन्द्र कहते हैं :-- 'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पट तरौं विदेह कुमारी ॥' गुण एवं रूप के साथ ही कुल आदि भी श्री किशोरीजी का अनुपम है यह 'अपि' से सूचित कर रहे हैं। इस प्रकार सर्वगुण सम्पन्ना, रूप की अधिष्ठात्री देवता श्रीकिशोरीजी में श्रीराघवेन्द्र की प्रीति निरन्तर बढ़ती रहती है। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र ने श्रीकिशोरीजी के साथ षड्ऋतुओं के अनुकूल विहार किया पूर्वोक्त दोनों श्लोकों का अन्वय एक ही है। 'तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते। अन्तर्जातमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥ तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा। देवताभिः समारूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ॥' श्रीराघवेन्द्र में श्रीकिशोरीजी का भी असाधारण अनुराग है-अब इस बात की पुष्टि करते हैं--'तस्याश्च'-श्रीराघवेन्द्र की अपेक्षा श्रीसीताजी के हृदय में उनके प्रति अगाध अनुराग है। श्रीराघवेन्द्र का श्रीसीताजी के प्रति अनुराग पितृकृत एवं गुण-सौन्दर्यकृत है किन्तु श्रीकिशोरीजी का उनमें अनुराग गुण-सौन्दर्य मूलक नहीं किन्तु भर्तृत्वकृत है। श्रीराघवेन्द्र श्रीकिशोरी जी के प्राण धन जीवन-धन हैं प्रियतम के प्रति उनका अनुराग सहज है। इस प्रकार श्रीकिशोरी का राघवेन्द्र में गुणकृत अनुराग नहीं है किन्तु सहज सम्बन्धकृत अनुराग है। इस अनुराग को श्रीरामभद्र कैसे जानते हैं। इसका उत्तर देते हैं--"अन्तर्जातम्--यद्यपि श्रीकिशोरीजी पति प्रेम को हृदय में छिपाये रहती हैं फिर भी उनका गुप्त अनुराग बाह्य लक्षणों से प्रकट हो जाता है। श्रीकिशोरीजी के समीप श्रीरामभद्र सदा विराजमान रहते हैं। अतः उनके हार्दिक प्रेम को भली-भाँति जानते रहते हैं। श्रीकिशोरजी 'मैथिली' हैं मिथिला देश वासिनी हैं तथा 'जनकात्मजा' योगीराज श्रीजनक की बेटी हैं। अतः पवित्र देश तथा वंश में उत्पन्न होने के कारण श्रीरामभद्र की अपेक्षा भी उनके हार्दिक भावों को भलीभाँति जानती रहती हैं। श्रीरामभद्र की जैसी इच्छा होती है संकेत के बिना ही समझ जाती हैं फिर तो उनके अनुकूल बन जाती हैं। प्रियतम की रुचि में अपनी रुचि मिलाये रहती हैं। प्रियतम ने भी श्रीकिशोरीजी की रुचि मिला रखी हैं। श्रीकिशोरीजी देवता के समान चातुर्य सम्पन्ना हैं तथा रूप में साक्षात् मूर्तिमती श्री के समान रूपवती हैं। तया स राजर्षि सुतोऽभिरामया समेयिवानुत्तम राजकन्यया। अतीव रामः शुशुभेऽतिकामया विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ॥' श्रीसीतारामजी के परस्पर में असाधारण अनुराग कहा गया अब अंतिम पाँचवें श्लोक से दोनों के विहार की योग्यता का वर्णन करते हैं। श्रीराघवेन्द्र महाराजकुमार हैं तथा श्रीकिशोरीजी महाराजकुमारी हैं प्रियतम से भी ऐश्वर्यमें बढ़ी चढ़ी हैं। श्रीराम जगत् को रमण करानेमें समर्थ हैं तो श्रीकिशोरीजी भुवन विमोहन श्रीरामजी को भी रमण कराने में-परमानन्द प्रदान करने में समर्थ हैं।

❀ श्रीसीतारामाभ्यांनमः ❀

नत्वा रामञ्च सीताञ्च वायुसूनुं महाबलम् । आनन्दभाष्यकर्त्तारं रामानन्दार्य देशिकम् ॥१॥ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तं पुरायेन प्रकाशितम् । आचार्यप्रवरं वन्दे बोधायनं परं गुरुम् ॥ २ ॥ चित्रकूटालयं राम धनीदासेति संज्ञकम् । तस्यानुचरभूतोऽहं वन्दे मन्त्र प्रदायिनम् ॥ ३ ॥ श्रीरामस्तवराजस्य परमाचार्य सम्भताम् । भाषावस्तु प्रचाराय कुर्वे तात्पर्य बोधिकाम् ॥ ४ ॥

ॐ अस्य श्रीरामस्तवराजमन्त्रस्य सनत्कुमार ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता श्रीसीताबीजं हनुमान् शक्तिः, श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥ १ ॥

ॐ सनत्कुमारऋषये नमः शिरसि । ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे । ॐ श्रीरामदेवतायै नमोहृदि । ॐ सीताबीजाय नमो गुह्ये । ॐ हनुमच्छक्तये नमः पादयोः । ॐ स्तवराजकीलकायनमः सर्वाङ्गे । इति ऋष्यादिन्यासः ॥

ॐ रामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सीतापतये तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ हनुमत्प्रभवे करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासः ॥ अथवा—

रां श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । रीं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः । रूं श्रूं मध्यमाभ्यां नमः । रैं श्रैं अनाभिकाभ्यां नमः । रौं श्रौं कनिष्ठकाभ्यांनमः । रः श्रः करतल पृष्ठाभ्यां नमः नमः । इति करन्यासः ॥

ॐ रामचन्द्राय हृदयाय नमः । ॐ सीतापतये शिरसे स्वाहा । ॐ रघुनाथाय शिखायै वौषट् । ॐ भरताग्रजाय कवचायहुम् । ॐ दशरथात्मजाय नेत्र त्रयाय वौषट् । ॐ हनुमत्प्रभवे अस्त्रायफट् । इति हृदयादि न्यासः ॥ अथवा—

रां श्रां हृदयाय नमः । रीं श्रीं शिरसे स्वाहा । रूं श्रूं शिखायै वौषट। रैं श्रैं कवचायहुम् । रौं श्रौं नेत्राभ्यां वौषट् । रः श्रः अस्त्रायफट् । इति हृदयादि न्यासः ॥

सभी भगवत प्रेमियों को विदित हो कि इस स्तोत्र का प्रथम भाष्य अनन्त श्री मधुराचार्य जी के कृपापात्र पूज्य श्रीहर्याचार्यजी महाराज ने संस्कृत में किया था। उसीके आधार पर द्वितीय वृहद् भाष्य श्री १०८ श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज ने किया था। जिसको श्री १०८ श्री पं० रामवल्लाशरण जी महाराज एवं श्रीबावनजी महाराजी और श्रीकोठेवाले महाराजजी ने प्रकाशित करवाया था। उसी भाष्य की छाया स्वरूप वर्तमान समय में संक्षिप्त करके मैंने हिन्दी में अनुवाद किया। हर्याचार्य-बोधायन आश्रम, श्रीजानकीघाट-श्रीअयोध्याजी।

इस प्रकार ऋष्यादिन्यास करके "अयोध्या नगरे रम्ये" से लेकर एवं संचिन्तयेद् विष्णुम्" यहां तक तेरह श्लोक में कथित ध्यान को करे। अथवा "वैदेही सहितं सुरद्रुम तले" इत्यादि श्लोक द्वारा श्रीसीता सहित श्रीराम जी का ध्यान करके छह हजार या एक हजार आठ, या एक सौ आठ, षडक्षरतारकसंज्ञक श्रीराम मन्त्र जपकरके श्रीरामस्तवराज का पाठ करे। इसके अनन्तर नीचे लिखे मन्त्रों से जपादि श्रीरामजी को अर्पण करे।

समर्पण मन्त्र :--साधु वा साधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं भगवन् राम गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥ १॥ गुह्याद् गुह्यस्य गोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् कृपानिधे ॥ २ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्म समर्पण मन्त्र द्वारा श्रीरामजी को अर्पण करदें। यथा :—

प्राणबुद्धि मनो देहाधिकारतः जागृत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्था सु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं सत्सर्वं ब्रह्मार्पणमस्तु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं श्रीरामचन्द्राय समर्पयामि।

श्रीरामजी को समर्पण करके भगवान् के मन्दिर में जाकर यथाधिकार पूजन कर हाथ जोड़कर निम्नलिखित आठ श्लोकों से प्रार्थना करे :—

"संसार सागरान्नाथौ पुत्र मित्र गृहात्कुलात्। गोप्तारौ मे दयासिन्धू प्रपन्नभयभंजनौ ॥ १ ॥ योहं ममास्ति यत् किं चिदिह लोके परत्र च। सत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥ २ ॥ अहमस्म्यपराधीन मालयस्त्यक्त साधनः। अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गती ॥ ३ ॥ तवास्मि जानकीकान्त कर्मणा मनसा गिरा। रामकान्ते तवैवास्मि युवामेव गती मम ॥४॥ शरणं वा प्रपन्नोऽस्मि करुणानिराकरौ। प्रसादं कुरुतां दासे मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥ ५ ॥ मत्समोनास्ति पापात्मा त्वत्समो नास्ति पापहा। इति संचिन्त्य देवेश यथेच्छसि तथा कुरु ॥६॥ अन्यथा हि गतिर्नास्ति भवन्तौ हि गतीमम। तस्मात्कारुण्यभावेन कृपां कुरु कृपा निधे ॥ ७ ॥ दासोऽहं शेषभूतोऽहं तवैव शरणं गतः। अपराधितोऽहं दीनोऽह पाहि मां करुणाकर ॥ ८ ॥

अवशिष्ट समय श्रीसीताराम जी के नाम जप में लगावे तो जिस किसी भी देह के अवसान में श्रीराम जी की प्राप्ति अवश्य होगी।

❁ श्रीरामस्तवराज स्तोत्र ❁

श्रीसूतउवाच :—

सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञं व्यासं सत्यवती सुतम् ।
धर्म पुत्रः प्रहृष्टात्मा प्रत्युवाच मुनीश्वरम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले—सर्वशास्त्रार्थ तत्त्वज्ञं=सभी शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्व को जानने वाले, सत्यवती सुतम=सत्यवती के पुत्र, मुनीश्वरम्=मुनियों में श्रेष्ठ, व्यासं=श्री व्यास जी को, प्रहृष्टात्मा=प्रसन्नचित्त, धर्मपुत्रः=राजा युधिष्ठिर बोले।

विशेष :- श्रीरामस्तवराज के प्राथमिक प्राकट्य व्यक्त करने के लिये श्रीव्यास युधिष्ठिर संवाद को ग्रंथ के अवतरण में दिया जा रहा है—श्रीव्यास जी ने सांख्यशास्त्र को पूर्व पक्ष बनाकर (ईक्षतेर्नाशब्दम् ब्र० सू०, १।१।५) आदि वेदान्त सूत्रों द्वारा श्रीरामजी के स्वरूप को ही सिद्धान्त माना है।

मुनीश्वर पद से (मन्तारो वेदशास्त्रतत्त्वावगन्तारो मुनयः तेषाम् ईश्वरः) श्रीव्यासजी के मतको सर्वजन उपादेय एवं व्यासजी को परब्रह्म निष्ठ व्यक्त किया। प्रहृष्टात्मा का भाव यह है कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु मेरे भाग्य से प्राप्त हो गये हैं, अब मेरे सभी संशय निवृत्त हो जायेंगे और अभिलषित इष्ट की अवाप्ति भी होगी, (सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पद से ब्रह्म निष्णात् सूचित किया)। "कारणन्तु ध्येयम्" इत्यादि शास्त्रों द्वारा सर्व कारणत्व को ध्येय ज्ञेय मोक्षदाता सुनकर, विभिन्न उपनिषद् पुराणादि में शिव रुद्र प्रजापति शब्द वाच्य कहीं निरञ्जन निराकारादि शब्द वाच्य कहीं विष्णु नारायण नृसिंह वासुदेव हरि कृष्णादि शब्द वाच्य को ही नित्य तथा सर्वकारणत्त्व सुना गया। अतः यह संशय स्वाभाविक है कि सबसे उत्कृष्ट कौन है इस संशय की निवृत्ति शब्द ब्रह्मनिष्ठ तथा परब्रह्म निष्ठ गुरू के द्वारा ही हो सकती है। श्रुतियों का यह घोष है "आचार्यवान्पुरुषोवेद" "तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्" "स विद्वान् प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम्" इत्यादि श्रुति कथित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरू व्यासजी को प्राप्तकर किं तत्त्वमादि तीन प्रश्न श्रीयुधिष्ठरजी ने किये॥१॥

युधिष्ठरउवाच=युधिष्ठिर बोले :-

"भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्व शास्त्र विशारद ।
किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्ति साधनम् ॥ २ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम् ।

युधिष्ठिर जी ने कहा :-

भगवन्=हे भगवान्। योगिनां श्रेष्ठ=(प्राकृत बाह्य विषयों से चित्त-वृत्ति निरोध को योग शब्द से कहा जाता है, वह योग जिसमें हो वह योगी है, उन योगियों में)

श्रेष्ठ=उत्तम। सर्व शास्त्रविशारद=वेदाङ्गादि सभी शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान्। किं तत्त्वं=तत्त्व क्या है। किं परं जाप्यं=सर्वोत्कृष्ट जपने योग्य क्या है। मुक्ति साधनं ध्यानं किम=मुक्ति प्रदान करने वाला ध्यान किसका है। मुनि सत्तम=हे मुनि श्रेष्ठ तत्सर्वं= इन तीनों प्रश्नों का सम्पूर्ण अर्थ, श्रोतुमिच्छामि=सुनना चाहता हूं। मे=मेरे लिए, ब्रूहि =आप बतलायें।

विशेष :- शब्द ब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वतीत नू। शब्द ब्रह्म तथा परब्रह्म भगवान के सनातन शरीर हैं। "शब्द ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णातः परे यदि। श्रमस्तस्य श्रमफलं ह्यधेनुमिव रक्षतः॥" केवल शब्द ब्रह्मनिष्णात से शिष्य का उपकार सर्वथा नहीं हो सकता, केवल परब्रह्म परायण से भी शिष्य यथेष्ट उपकृत नहीं होगा। उपासना दृढ़ करने के लिये शास्त्रीय शब्दावली अपेक्षित है, भगवान् वेद-व्यासजी में उभय नैपुण्य नैसर्गिक है। अतः प्रश्नत्रय किये गये। "किं तत्त्वम इस श्लोक में जाप्य का विशेषण जो परं पद है वह देहली दीपक न्यायेन तत्त्वं तथा ध्यानं से अन्वित है, क्योंकि उत्तर में "तदेव परमं तत्त्वं कहा गया है, परजाप्य वाच्य पर तत्त्व है और पर जाप्य वाच्य ही पर ध्यान भी उपपन्न होता है। इसी प्रकार मुक्तिसाधनम् पद का भी काकाक्षी गोलक न्यायेन तत्त्वं एवं जाप्यं के साथ अन्वय है। क्योंकि उत्तर में कैवल्य पद कारणं श्रुत है। तत्त्वों के मध्य में परमार्थभूत सर्वोत्कृष्ट सर्वमूल अनादि तत्त्व क्या है? सब जाप्य मन्त्रों में सबसे श्रेष्ठ जपने योग्य मन्त्र कौन सा है?। संसार विच्छेद पूर्विका श्रीराम पद प्राप्ति का साधनभूत उपाय स्वरूप ध्यान किसका है किस प्रकार ध्यान करने पर तत्त्व मुक्ति प्रदान करते हैं॥२॥

श्रीव्यास उवाच :--

"धर्म पुत्र महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ ३॥

श्रीवेदव्यास जी बोले--धर्मपुत्र=हे धर्म पुत्र। महाभाग=हे महाभाग, तत्त्वतः =यथार्थ। यक्ष्यामि=कहूँगा। शृणु=आप सुनें।

विशेष :- इस प्रकार परतत्त्व आदि जानने की इच्छा आप जैसे धर्मपुत्र महाभाग को ही हो सकती है; अतः मुक्ति का साधन जो परतत्त्व पर-जाप्य पर-ध्यान है, उसे हम स्पष्ट रूप से कहेंगे, सावधान होकर आप उसे धारण करें? तत्त्वतो वक्ष्यामि का अभिप्राय श्रीरामस्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीमद्हर्याचार्य जी महाराज ने अधोलिखित प्रकार से व्यक्त किया है। यथा—तत्तद्ग्रन्थों में, तत्तद्ग्रन्थकार तत्तद्ग्रन्थाधिष्ठातृ भगवद् विग्रह में कार्यकारण का अभेद दृष्टि द्वारा उन-उन स्वरूपों में परम कारण का निश्चय किया है। उपासक जनों ने "गुणातीत पर-ज्योति आदि शब्दों का परतत्त्व में ही पर्यवसान माना है। श्रुति समुदाय द्वारा—

"पुरुषएवेदं सर्वम् साक्षीचेतः केवलो निर्गुणश्च" तद्रूपमनामयम् "अत्रायं पुरुषो ज्योतिः" "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते"

"न तस्यप्रतिमास्ति" तथा युक्ति द्वारा स्वस्वोपास्य देवताओं में सर्वोत्कृष्टत्व का ज्ञापन भक्तजन करते हैं तथा कार्य कारण रूप से श्रूयमाण भगवान् के सभी रूपों में पूर्वोत्तर अवस्था का भेद होने पर भी वस्तुतः अभेद होने के कारण यह सब हो सकता है। किन्तु इन सब में, आदि कारण तत्त्व क्या है। इस बात को जानने के लिये युधिष्ठिर जी ने सर्व शास्त्रविशारद, योगिनां श्रेष्ठ इन दो पदों से सर्वज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ ज्ञापन द्वारा परतत्त्व को समझाने में समर्थ जानकर श्रीव्यास जी को आचार्यत्वेन वरण किया। वक्ष्यामि पद से भगवान श्रीवेदव्यासजी ने भी उपास्य देवताओं में जो आदि कारण है, उसको बतलाने की प्रतिज्ञा की ॥३॥

"यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम् ॥ ४ ॥

यत्परं=जो सबसे परे है, यद्गुणातीतम=जो प्रकृति के गुणों से असम्बद्ध है, यज्ज्योतिरमलं शिवम=जो कल्याणप्रद एवं शुद्ध ज्योति स्वरूप है, तदेवपरमं तत्वं=वही परमतत्व है, कैवल्य पद कारणम्=और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

विशेष :---यत्परं सर्वोत्कृष्ट "महतो महीयान" न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। "तं देवतानां परमं च दैवतम्" "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" इत्यादि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित है। वह कौन तत्व है स्वयं नारद जी ने "परात्परं राममहं भजामि" आदि शब्दों से कहा है। गुणातीत पद से सत्वादि गुणों का अतिक्रमण करके विराजमान है यह सूचित किया। जिसको श्रुतियाँ कहती हैं 'साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च"। गुणातीत का निर्विशेष अर्थ नहीं है क्योंकि श्रुतियाँ स्वरूपनिष्ठ साक्षी आदि गुणों का वर्णन करती हैं। "निदानं प्रकृतेः परम्" प्रकृति परत्व में ही गुणातीत का तात्पर्य है। सगुण निर्गुण शब्द से अनन्त दिव्य कल्याण गुणगणविशिष्ट, हेय प्राकृत गुण रहित का ही प्रतिपादन है। "अनन्त कल्याण गुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्धृत भूतसर्गः" "सत्वादयो न सन्तीशे यत्र चाप्राकृताः गुणाः"। महद् गुणानामाधारो रहितः प्राकृतैर्गुणैः"। अमल पद से माया मल रहित अर्थात् विशुद्ध सत्वगुणात्मक परविभूति स्वामी अर्थ की उपपत्ति हुई। शिवम् से सर्वदा मङ्गलरूप अर्थ सूचित हुआ। इस प्रकार जो परमतत्व हैं वही कैवल्यपद अर्थात् त्रिपादविभूति के प्रदाता हैं। यह "किं तत्वम्" इस प्रथम प्रश्न का उत्तर है, यत् कैवल्य पद कारणं तदेव परमं तत्वं श्रीरामेति। यहाँ श्रीराम पद पूर्वान्वयी है। देहली दीपकन्यायेन दोनों श्लोकों में इसका सम्बन्ध नहीं है॥४॥

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः॥५॥

श्रीरामेति तारकं परं जाप्यम्=(श्रीराम) यह तारक मन्त्र श्रेष्ठ जप के योग्य है, ब्रह्म संज्ञकम्=ब्रह्म का वाचक है, ब्रह्महत्यादि पापघ्नम=ब्रह्म हत्यादि पाप का नाश करने वाला है, इति वेदविदो विदुः=वेद के ज्ञाता इस प्रकार कहते हैं।

विशेष :– गुणातीत पर आदि सामान्य शब्द द्वारा विशेषरूप अभिव्यक्त न होने के कारण परमतत्व में सन्देह होना स्वाभाविक है इसलिए श्रीरामेति कहा गया। इति शब्द प्रथम प्रश्न की समाप्ति का द्योतक है। सच्चिदानन्द अर्थ वाला रामपद वाच्य ही परमतत्व है। "रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥" इस श्रुति में सत्यानन्द चिदात्मा में ही योगियों का रमण कहा गया है, अतः सच्चिदानन्दार्थक राम शब्द से दाशरथी राम ही परब्रह्म परतत्व कहे जाते हैं। नारद जी आगे स्वयं कहेंगे – "परात्परतरं तत्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम्॥" द्वितीय प्रश्न "किं परं जाप्यम् का उत्तर "तारकं ब्रह्म संज्ञकम" कहा गया। जो तारक मन्त्र श्रुति स्मृति में प्रसिद्ध है वही ब्रह्म वाचक तथा जपने योग्य है। हारीत स्मृति में लिखा है "श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एष महामनुः॥ अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेनतु समाः कृताः। अतः राम मन्त्र ही तारक मन्त्र है। पुराणों में भी राममन्त्र तारक के रूप में प्रसिद्ध है यथा—

श्रीराम रामेति ह्येतत्तारकमुच्यते। अतस्त्वं जानकीनाथ परं ब्रह्मासि निश्चितम्॥५॥

श्रीराम रामेति जना ये जपन्ति च सर्वदा। तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥६

श्रीराम रामेति=श्रीराम राम, ये जनाः=जो मनुष्य, सर्वदा=हर समय, जपन्ति=जपते हैं। तेषाम्=उन मनुष्यों को, भुक्तिः=सांसारिक सुख भोगों के पदार्थ, च=तथा, मुक्तिः=मोक्ष, भविष्यति=प्राप्त हो जाता है, न संशयः=इस विषय में संदेह नहीं है।

विशेष :– पहिले श्लोक में राम मन्त्र की महिमा कहकर अब राम नाम की महिमा कह रहे हैं। श्रीराम राम अक्षरद्वय नित्य जपने से अर्थात् शब्द मात्र के उच्चारण से ऐहिक सुख के सभी उपकरण धन स्त्री पुत्र गौ वाहन भूम्यादि तथा संसार विच्छेद पूर्विका सामीप्यादि मुक्ति अन्त में निस्सन्देह मिलती है यथा—

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा जपन्, जन्तुरुपैति मुक्तिम्॥ श्रीराम नाम स्मरणे मानसं यस्य वर्तते। तस्य वैवस्वतो राजा करोति लिपि मार्जनम्॥ द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा। राम रामेति यो वक्ति स मुक्तो नात्र संशयः॥इति ब्रह्म पुराण॥

यामल में भी इसी प्रकार नाम की महिमा गाई गई है, यथाः–

श्रीरामनामाक्षर मन्त्रबीजं संजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा। हालाहलं वा प्रलयानलम्बा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतोभीः ॥६॥

स्तवराजः पुराप्रोक्तो नारदेन च धीमता।

तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरः सरम् ॥७॥

पुरा=पहिले, धीमता=बुद्धिमान्, नारदेन=देवर्षि श्रीनारदजी ने स्तवराजः =स्तवराज नामक स्तोत्र को, प्रोक्तः=कहा है, तत्सर्वं=वह सब, हरिध्यानपुरः सरम् =भगवान श्रीहरि का ध्यान कथन पूर्वक, सम्प्रवक्ष्यामि=अच्छी प्रकार से कहूँगा।

विशेष :-- तारक राममन्त्र के जप के अन्त में जो अवश्य करणीय स्तव है, जिसे श्रीनारदजी ने कहा है वह श्रीरामस्तवराज है। च शब्द से श्रीसनत्कुमार प्रोक्त का भी समुच्चय समझना चाहिये, धीमता पद से छान्दोग्य निर्दिष्ट सनत्कुमार द्वारा प्राप्त पर विद्या सम्पन्न नारद जी "कृताञ्जली पुटो भूत्वा" इत्यादि तीन श्लोकों से नारद जी कथित ध्यान का वर्णन है, अतः काकाक्षि गोलकन्यायेन हरि ध्यान पुरः सरम् का स्तवराज में अन्वय है, स्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज ने कहा है-- "हरि ध्यान पुरः सरम् स्तवराजं प्रोक्तं नारदेन यत्तद्धरि ध्यान सहितं स्तवराजं सर्वं सम्पूर्णमहमपि हरि ध्यान पुरः सरं हरि ध्यान पूर्वकं वक्ष्यामि" इति। नारदजी कृत ध्यान 'चिन्तयन्नद्भुतं हरिम्" श्रीव्यास जी कृत ध्यान "अयोध्या नगरे रम्ये" इत्यादि रूप से ज्ञातव्य है। तापत्रयाग्नि शमनादि बारह नपुंसक लिङ्ग के विशेषण होने के कारण स्तवराज पद में भी नपुंसकत्व कल्पना है और यह आर्षत्वात्साधु है॥ ७॥

तापत्रयाग्निशमनं सर्वाघौघ निकृन्तनम्।

दारिद्र्य दुःख शमनं सर्व सम्पत्करं शिवम्॥ ८॥

तापत्रयाग्निशमनं=तापत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) रूप अग्नि को शान्त करने वाला, सर्वाघौघनिकृन्तनम् =सम्पूर्ण पापों के समूह को नष्ट करने वाला, सर्व सम्पत्करं=समस्त सम्पत्ति प्रदान करने वाला, शिवम् =एवं कल्याण देने वाला है।

विशेष :--श्रोतागण की प्रवृत्ति के लिये स्तवराज के फल को दिखाया जा रहा है। आध्यात्मिक दुःख शारीरिक तथा मानस भेद से दो प्रकार का होता है, वात पित्तादि के प्रकुपित होने पर ज्वर, अतीसार आदि दुःख शारीरिक हैं मानस दुःख प्रिय वियोग अप्रिय संयोग होने से मन में क्लेश होता है। आधिभौतिक दुःख, मनुष्य पशु पक्षी आदि चौदह प्रकार के प्राणियों द्वारा होता है। "अष्ट विकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्चपञ्चधा भवति"। मानुषकश्चैक विधः समासतो भौतिकः सर्गः। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज रूप

स्थूल शरीर वाले प्राणियों द्वारा प्राप्त दुःख ही आधिभौतिक दुःख है। आधिदैविक, दिवः प्रभव वात वर्षातपशीतोष्ण के कारण होने वाले दुःख को कहते हैं। इन तीनों प्रकार के तापों से उत्थित अग्नि का शामक, ब्रह्म हत्यादि महान् पापों का नाशक, सर्व सम्पत्ति प्रदायक, तथा सभी प्रकार के मंगल प्रदान करने वाला है॥ ८॥

विज्ञानफलदं दिव्यं मोक्षैक फल साधनम्।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णं जगन्मयम्॥ ९॥

विज्ञानफलदं=विज्ञान रूप फल दने वाला, दिव्यम्=प्राकृतहेय गुणरहित मोक्षैक फलसाधनम्=संसारविच्छेद पूर्वक मोक्ष रूप प्रधान फल के साधन, (अर्थात् मुख्यउपाय-भूत) जगन्मयं=संसार धर्म प्रधान, कृष्णं=इन्द्रनीलमणि के समान, रामं=परात्पर तत्व दशरथ पुत्र से प्रसिद्ध, नमस्कृत्य=नमस्कार करके, प्रवक्ष्यामि=श्रीरामस्तवराज को कहूँगा।

विशेष:—विज्ञान पद से विशेषण विशिष्ट ज्ञान, अर्थात् परिकर सहित श्रीरामजी के अनुरूप ज्ञानफल का देने वाला, मोक्षैकफल साधन श्रीरामजी के साक्षात्कार रूप मुख्य फल का उपायभूत है अर्थात् सम्पूर्ण वेदसार होने के कारण सब साधनों में श्रेष्ठ साधन है।

इस प्रकार के स्तवराज को जगन्मयम् जगद्धर्म प्रधान जगद्धर्म प्रचुर कृष्ण अर्थात् नीलमणिके आभा के सदृश,प्राणियों के चित्तापकर्षक परात्परतर सत्यानन्द चिदात्मक, राघवरघुनन्दनादि शब्द द्वारा अभिधीयमान भगवान् श्रीरामजी को नमस्कार करके श्रीरामस्तवराज को कहूँगा। नमस्कृत्य पद ध्यान का उपलक्षक है अतः "अयोध्या नगरे रम्ये" इस ध्यान के कथनान्तर ही स्तवराज को कहा गया, इसलिये प्रवक्ष्यामि की भविष्यत्कालिकी क्रिया भी उपपन्न हो गई। जगद्धर्म प्रधान या जगद्धर्म प्राचुर्य महारानी श्रीजानकी जी के विरहकाल में श्रीलक्ष्मण कुमार के मूर्छाकाल में अत्यन्त शोकाकुल होना श्रीरामजी का प्रसिद्ध ही है यथा—आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्॥ ९॥

अयोध्या नगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्न सिंहासनं शुभम्॥ १०॥

रम्ये=रमणीक, अयोध्यानगरे=श्रीअयोध्यापुरी में, रत्नमण्डलमध्यगे=रत्नों से बने मण्डप के मध्य भाग में, कल्पतरोर्मूले=कल्पवृक्ष के नीचे, शुभम्=सुन्दर रत्न-सिंहासनम्=रत्न जटित सिंहासन का स्मरण करे।

विशेष:—श्रीयुधिष्ठिर के दो प्रश्नों का उत्तर देकर, हरिध्यानपुरः सरस्तवराज के कहने की प्रतिज्ञा करके 'किं ध्यानं मुक्ति साधनम्' इस तृतीय प्रश्न के उत्तर में भगवान्

का ध्यान कहने के लिये श्रीअयोध्या जी में श्रीदशरथ पुत्र रूप से आविर्भूत हैं इस कथन के ज्ञापनार्थ आरम्भ में उनके धाम योगपीठ को दिखलाया जा रहा है। अविद्यादि दोष युद्ध करने में असमर्थ, ऐसी श्रीअयोध्या जी का स्मरण करे, अर्थात् परममनोहर श्रीअयोध्याजी का पहिले स्मरण करके, उनके मध्य रत्नमण्डप का स्मरण करे। रत्नमण्डप के मध्य में कल्पबृक्ष का स्मरण करे, कल्पबृक्ष के नीचे सुन्दर रत्न निर्मित सिंहासन का स्मरण (ध्यान) करे ॥ १० ॥

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नाना रत्नैश्च वेष्टितम् ।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्य तेजसम ॥११॥

तन्मध्ये = रत्नसिंहासन के मध्य में, अष्टदलं = आठ दल का रत्नमय, पद्मं = पद्मासन नानारत्नैश्च = अनेक जाति के बहुमूल्य रत्नों से, वेष्टितम् = आच्छादित, मध्ये = पद्मासन के मध्य में, दाशरथिं = श्रीदशरथ जी के पुत्र रूप से आविर्भूत, सहस्रादित्य-तेजसम् अनन्त सूर्य तेज सम्पन्न, श्रीराम जी का, स्मरेत् = ध्यान करे।

विशेष : ध्यान के प्रकरण की समाप्ति में "एवं सञ्चिन्तयेद् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं शिवम्" कहा है आदि में "यज्ज्योतिरमलं शिवं परमं तत्त्वम्" कहा उन्हीं श्री दशरथ राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी का अनन्त सूर्य तेज समान ध्यान करे। यहाँ सहस्रादित्यादि पद में सहस्र शब्द आनन्त्य अर्थ का वाचक है यथा—"शतं सहस्रमयुतं सर्वं ह्यानन्त्यवाचकाः।" आगे भी भानुकोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम्" में कोटि शब्द अनन्तवाचक है यहां कैमुत्कन्यायेन (अनन्त सूर्य तेज सदृश जिनका किरीट हैं उनकी विग्रह क्या वैसी नहीं होगी अवश्य होगी) यह अर्थ अभीष्ट है। लोक में सूर्य तेज ही सब तेजों से अधिक देखा जाता है इसलिये अगत्या सूर्य तेज की उपमा दी गई है। "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" श्रुतिघोषित श्रीरामजी ही श्रीरामजी के सदृश हैं। अर्थात जो अन्य तेजसे अभिभूत न हो सके। सहस्रादित्य सदृश तेज को धारण किए हैं यह अर्थ नहीं करना चाहिये क्योंकि, माधुर्य रस से विरोध होगा। यहाँ ऐश्वर्य गौण माधुर्य प्रधानपरक ध्यान है। यथा--

पितुरङ्कगतं राममिन्द्र नीलमणि प्रभम् कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम् ॥ भानु कोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ।

इस प्रकार परतत्त्व स्वप्रकाश ज्योतिःस्वरूप, अपने ऐश्वर्य तेज को छिपाकर सर्वजन नयन गोचरता प्राप्त पिता की गोद में विराजमान हैं। दशरथ राजकुमार रूप से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। श्रीराम स्तवराज भाष्यकार श्रीहरिदास जी महाराज ने माधुर्य किसी का विरोधी नहीं, युक्ति प्रमाण द्वारा सिद्ध करते हुवे माधुर्य का लक्षण किया है। यथा-"कदाचित्किञ्चित् किञ्चित् पारमैश्वर्य व्यक्ते सति सर्वदा मनुष्यरीत्या वर्तमानत्वम्"।

अंगुली के अग्रभाग से रावणादि के हनन की प्रतिज्ञा, अयोध्यावासियों को स्वधाम नयनादि में ऐश्वर्य अभिव्यक्ति स्पष्ट है। ऐश्वर्य प्रभाव प्रधान ही भगवच्चिन्तन मुक्ति साधक देवर्षि नारदजी के द्वारा सिद्धान्तित है यथा—"मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे" गीता में भी भगवान् ने स्वयं ऐश्वर्य विशिष्ट उपासना को ही श्रेष्ठ कहा है यथा—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विताः॥

व्यासजी का भी ध्यान ऐश्वर्य विशिष्ट ही है यथा—"तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम्॥" नारदजी का भी ध्यान परतत्त्वपरक ही है यथा:—

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम्॥

तब-"पितुरङ्कगतं" का ध्यान भगवान् की सरलता सुलभता एवं भक्तवत्सलता आदि अनन्त कल्याण गुणद्योतनार्थ है॥ ११॥

पितुरङ्कगतं राममिन्द्र नीलमणि प्रभम्।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्॥ १२॥

पितुरङ्कगतम=पिता श्रीचक्रवर्ती दशरथ जी की गोद में विराजमान, इन्द्रनीलमणि प्रभम्=इन्द्रनीलमणि की प्रभा के समान, कोमलाङ्गम्=मृदु शरीर वाले, विशालाक्षम्=विशाल नेत्र, विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्=विजली के सदृश श्रेष्ठ वस्त्र को धारण किये हुये रामम्=श्रीरामचन्द्रजी का (ध्यान करे)

विशेष :— भगवान् के ऐश्वर्य का निरूपण करके ऐश्वर्यगौण माधुर्य प्रधान वाल्यावस्थापन्न श्रीरामजी के ध्यान का निर्देश चार श्लोकों द्वारा किया जाता है। इन्द्रनीलमणिप्रभम् दृष्टान्त से श्रीरामजी के विग्रह में चिक्कन, स्निग्ध, अभेद्य, कान्तिमान सूचित किया। चिक्कन रूप उसे कहते हैं जिसके कारण भूषण भी भूषित हों, अर्थात् जिसके विना मणिभूषण भी शोभित न हो सकें। रूप का अर्थ है जो नयनानन्दजनक हो जिससे तृप्ति न हो। स्निग्ध जिसमें रूखापन न हो, अभेद्य जो वज्र के सदृश हो, व्रण रहित उज्ज्वल अवयवों से युक्त हो। कान्तिमान से सर्वाङ्ग समुदाय की शोभा को कहा गया। इसी को अन्यत्र लावण्य शब्द से भी कहा जाता है। यथा—

मुक्ता फलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

सौकुमार्य, माधुर्य, मार्दवादि गुण भी कोमलाङ्गम् पद से नित्य तथा श्रीराम जी के विग्रह में उपपन्न हैं व्यक्त किया। सौकुमार्य पुष्पहास्य तुल्य कोमलता को कहते हैं, माधुर्य अतृप्ति हेतुक गुण विशेष हैं, भूषणों के हिलने पर भी प्रस्वेद हो जाना मार्दव

कहलाता है। विशालाक्षम् विशाल कमल दल के समान जिसमें कुछ रक्तिमा गर्भित है इस प्रकार के श्रीरामजी के नेत्र हैं। विद्युद्वर्णाम्बरा-वृतम् से पीताम्बर का परिधान तथा उत्तरीय भी पीतवस्त्र का सूचित हुआ ॥ १२ ॥

भानु कोटि प्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ।
रत्नग्रवेय केयूर रत्न कुण्डल मण्डितम् ॥ १३ ॥

भानुकोटिप्रतीकाशम्=कोटि सूर्य के समान प्रभावान्, किरीटेन=किरीट (शिरोभूषण) विराजितम्=धारण किये हैं। रत्नग्रैवेयकेयूर=रत्नजटित ग्रीवा के भूषण हारादि तथा केयूर=हाथ के भूषण बाजूबन्द आदि, रत्नकुण्डलमण्डितम=रत्नों द्वारा निर्मित कुण्डल कर्णभूषण से सुशोभित हैं।

विशेष :---भानुकोटिप्रतीकाशम् में कोटि शब्द अनन्तवाचक है, अनन्त सूर्य सदृश प्रकाश सम्पन्न अर्थात् अपने परम ऐश्वर्य का प्रकाशन कर रहे हैं, भानुकोटिप्रतीकाशम् अन्य भूषणों का भी उपलक्षण है अर्थात् सभी भूषण केवल किरीट ही नहीं अनन्त सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं। अर्थात् अपने स्वरूपानुरूप किरीटादि विविध भूषणों से भूषित हैं ॥१३॥

रत्न कङ्कणमञ्जीर कटि सूत्रै र लङ्कृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥१४॥

रत्नकंकणमञ्जीर=रत्नजटित कड़ा, रत्ननिर्मित पायजेब, कटिसूत्रैरलंकृतम्= कटिबन्धन से शोभित, श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कम्=श्रीवत्सचिन्ह, कौस्तुभमणि वक्षस्थल शोभित मुक्ताहारोपशोभितम्=मुक्तामणि के हार से शोभायमान (हो रहे हैं)।

विशेषः—महापुरुषत्व का द्योतक वक्षस्थल में विराजमान पीतलोम के चिह्न विशेष को श्रीवत्स शब्द से कहा जाता है। श्रीवत्स, कौस्तुभमणि का भगवद् विग्रह में नित्य योग है, भगवद् विग्रह से भिन्न इनको अन्यत्र नहीं देखा गया। श्रीरामतापनीय में स्पष्ट है यथा—

इति रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथतत्त्वतः ॥१॥ रमन्ते योगिनोनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्मभिधीयते ॥ २ ॥

इन दो श्रुतियों द्वारा श्रीराम जी का अनादि रामनाम, एवं परब्रह्म का पृथ्वी में श्रीदशरथ गृह में अवतीर्ण होना प्रसिद्ध हुआ। यथा—

रघुकुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ॥ राक्षसायेन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा। रामनाम भुविख्यातम-भिरामेण वा पुनः ॥

इत्यादि श्रुति कथित कर्मनिमित्तक, गुणनिमित्तक रामनाम प्रसिद्ध हुआ। अपने चिह्न सहित आविर्भूत होने के कारण श्रीराम जी में परब्रह्मत्व उपपन्न हुआ इसी प्रकार ग्रीवा आदि के भूषण भी अपरिमित प्रकाश सम्पन्न हैं ॥१४॥

दिव्यरत्न समायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ।
राघवं द्विभुजं बालं राममीषत्स्मिताननम् ॥ १५ ॥

दिव्यरत्नसमायुक्तम=दिव्य रत्न निर्मित पदिक से युक्त, मुद्रिकाभिरलंकृतम= रत्नजटित अँगूठियों से शोभायमान, राघवम्=रघुकुल में प्रादुर्भूत, द्विभुजम्=दो भुजा वाले, बालम्=बाल्यावस्थापन्न, रामम्=मनोहर, ईषत्स्मिताननम्=थोड़ी मुस्कुराहट से युक्त मुख वाले।

विशेष :- द्विभुजपद से श्रीरामजी का आवर्जनीय रूप तथा परत्व प्रतिपादित हुआ पंचरात्र में यथा :—

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् । परन्तु द्विभुजं प्रोक्त तस्मादेतत् त्रयं यजेत् ॥ १ ॥ द्विहस्तमेक वक्त्रञ्च शुद्धस्फटिक सन्निभम् । सहस्रकोटि वन्हीन्दु लक्ष्य कोट्यर्क सन्निभम् मरीचिमण्डले संस्थं बाणाद्यायुध लांछितम् । किरीटहारकेयूर वनमाला विराजितम् ॥३॥ पीताम्बरधरं सौम्य रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

यहाँ भगवान् के द्विभुज रूप को ही आदि रूप कहा गया है। शिवसंहिता में भी भुजद्वय को ही भुक्ति मुक्ति प्रदाता कहा है। यथा—

रत्नकंकण केयूर शोभिताग्रभुजद्वयम् अखण्डब्रह्मणो! नित्याद्राघवान्नित्यविग्रहात् । चिदानन्दात् परानन्दात् साकेतनगराधिपात् ॥ १ ॥ भुक्ति मुक्ति प्रदानार्थं साधकानां पुनः पुनः । आनन्दवाचकः शब्दो विभूतिं संप्रयोजितः ॥२॥ अन्ते विष्णुं विजानीयात् प्रकृतेर्वशभागतम् ॥

इसी प्रकार श्रीसीताजी भी परा तथा ब्रह्मविग्रहात्मिका हैं। जीवों के अनुग्रहार्थ एक ही ब्रह्म दो विग्रह को धारण कर लिया है। यथा—

एवं ज्ञेया परानित्या सीता ब्रह्म सुविग्रहा । सर्व शक्तिमयी धात्री सर्व शक्ति परा तथा ॥१॥ अनुग्रहार्थमस्माकमेक ब्रह्मद्विधागतम् । आनन्दावयवाभिन्ना नित्यलीला सुविग्रहा ॥ २ ॥

भगवान् श्रीराम जी केवल स्त्री पुरुषों के चित्तापहारक नहीं हैं अपितु स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् के चित्त का अपहरण अपने सौन्दर्य माधुर्य से कर लेते हैं। श्रीअयोध्या जी से वन चले जाने पर श्रीअयोध्याकी दयनीय दशा की एक झाँकी श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में दर्शित है। यथा :-

विषये ते महाराज महाव्यसन कर्षिताः । अपिवृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पांकुर कोरकाः ॥ १ ॥ उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च । परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च ॥ २ ॥ न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च । रामशोकाभिभूतं सन् निष्कूंज मिवतद्वनम् ॥ ३ ॥ लीनपुष्कर पत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः । सन्तप्तपद्माः पद्मिन्योलीनमीन विहङ्गमाः॥४॥ जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्वलजान्यपि । न च मांत्यल्पगन्धीनि फलानि च यथा पुरा !।१५॥

तुलसी कुन्दमन्दार पुष्पमाल्यैरलंकृतम् ।
कर्पूरागरुकस्तूरी दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ १६ ॥

तुलसी कुन्दमन्दार पुष्पमाल्यैरलंकृतम् = तुलसीकुन्दमन्दार की पुष्प मालाओं से शोभायमान । कर्पूरागरुकस्तूरीदिव्यगन्धानुलेपनम् = कपूर अगर कस्तूरी चूर्ण के दिव्यगन्ध (अंगराग) से अनुलेपित हैं ।

विशेष :-विद्युद्वर्णाम्बरावृतम् यहाँ से लेकर दिव्यगन्धानुलेपनम् पर्यन्त श्रीरामजी की सुवेषता बतलाई गई । मणिभूषण वसन सुगन्ध कुसुमादि धारण को ही सुवेषता कहते हैं । यथोचित् सर्व शृङ्गार उत्तम शृङ्गार सम्पत्ति ही सुवेषता है । भगवान् श्रीरामजी की इस सुवेषता को देखकर महर्षिगण नेत्रों द्वारा उनकी रूप माधुरी कानों द्वारा बचनमाधुरी आदि को भोगने के लिये उत्सुक हो गये । पद्म पुराणे यथा--

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यबासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम् ॥ १६ ॥

योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेशं योगदायकम् ।
सदाभरत सौमित्रि शत्रुघ्नैरुपशोभितम् ॥ १७ ॥

योगशास्त्रेष्वभिरतम् = योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अथवा युज्यतेऽनेनेति योगो मैत्रीरसः तत्प्रतिपादकशास्त्रेष्वभिरतम् = पारङ्गतम्, योगशास्त्र में पारङ्गत, योगेशम् = चित्तवृत्तिनियमन के अथवा मैत्री रस के स्वामी, योगदायकम् = योग प्रदान करने वाले, सदा = सर्वदा भरतसौमित्रशत्रुघ्नैः = भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न द्वारा, उपशोभितम् = समीप में शोभायमान ॥ १७ ॥

विशेष :- तुलसीकुन्दमन्दारादि से अलंकृत दूसरे के द्वारा ही सम्भव है अतः स्वोपाय द्वारा शोभाधायकत्व का वर्णन किया जा रहा है, यम, नियम, आसनादि अष्टाङ्गयोग प्रतिपादक शास्त्र में संलग्न, अथवा मैत्रीरस प्रतिपादक शास्त्र में तत्पर अर्थात् अनालोचित पूर्व वृत्त सुग्रीवादि के साथ मैत्री करके वालिवधानन्तर भी तारा आदि को युक्ति तथा शास्त्र द्वारा निरुत्तर कर देना । तीनों पदों में योग शब्द उभयार्थक है योग-

दायकम् अर्थात् मैत्रीरस प्रदान करने वाले हैं विभीषण संग्रहण समय में भगवान श्रीराम जी स्वयं अपने मुख से विभीषण को अपरित्याग के योग्य निर्णय किया। यथा—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथं च न। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सता मेतदगर्हितम्॥ वा० यु० का० १८ स० श्लोक ३॥

मैत्रीरस के विशेष विज्ञत्व के उदाहरण को श्लोकार्ध में व्यक्त किया जाता है श्रीभरत लक्ष्मण शत्रुघ्न से सदा शोभित हैं अर्थात् क्षण भर भी नहीं छोड़ते अतएव श्री-लक्ष्मणजी के त्याग के अनन्तर श्रीलक्ष्मण जी के वियोग को न सहते हुये, अपने साथ में गमनोत्सुक श्रीअयोध्या वासियों को अपने धाम ले गये॥ १७॥

विद्याधर सुराधीशैः सिद्धगन्धर्व किन्नरैः।
योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम्॥ १८॥

विद्याधरसुराधीशैः = विद्याधर इन्द्र द्वारा, सिद्धगन्धर्व किन्नरैः = सिद्ध गन्धर्व किन्नरों द्वारा, योगीन्द्रैः = श्रेष्ठ योगियों द्वारा, नारदाद्यैश्च = नारदादि देवर्षियों द्वारा अहर्निशम् = दिन रात, स्तूयमानम् = स्तुति की जा रही है।

विशेष :—विद्याधरादि भगवान् श्रीराम जी की गान्धर्व क्रीडा से मोहित होकर निरन्तर सन्निधि में वर्तमान हैं। यथा-- गान्धर्वेषु भुविश्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः। वा० अयो०। इस श्लोक में भुवि पद तीनों लोक का उपलक्षण है। समाधिगम्य श्रीराम-तत्त्व को लौकिक प्रत्यक्षग्राह्य जानकर कृतकृत्य होकर योगीन्द्र दिनरात स्तुतिकर रहे हैं॥१८

विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनिभिः परिसेवितम्।
सनकादि मुनि श्रेष्ठैः योगिवृन्दैश्च सेवितम्॥१९॥

विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनिभिः = विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा, परिसेवितम् = समन्तात् सेवित, सनकादि मुनि श्रेष्ठैः = सनकादि मुनि श्रेष्ठ हैं जिनमें उनके द्वारा तथा योगिवृन्दैश्च = योगि समुदाय से सेवित।

विशेष :—योगिवृन्द से सेवित अर्थात् मनन निदिध्यासन द्वारा अवश्य साक्षात् करने के योग्य जो परतत्त्व है वह आज श्रीराम रूप से भक्तजनों को अपने सौल-भ्यगुण से चर्मचक्षु का विषय हो गया है अतः सुखसेव्य जानकर सर्वात्मना सर्वतोभाव से सेवा तत्पर हैं॥ १९॥

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेद विशारदम्।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीव लोचनम्॥ २०॥

रामम् = योगियों के अन्तःकरण में रमण करने वाले, रघुवरम् = रघुवंशियों में श्रेष्ठ, वीरम् = पराक्रमशाली, धनुर्वेदविशारदम् = अस्त्रशस्त्र के ग्रहण धारण संचा-

लन में विशेष कुशल, अर्थात् कब किस अस्त्र का प्रयोग अमोघ होता है इसमें विशेष चातुर्य सम्पन्न। मङ्गलायतनम्=मङ्गल के स्थान अर्थात् सभी को मङ्गल प्रदान करने वाले, देवम् देदीप्यमान, राजीवलोचनम् =कमलदल के सदृश नेत्र बाले, राम नाम, से ख्यात।

विशेष :--रघुबरं वीरमित्यादि विशेषणों द्वारा श्रीरामजी की किशोरावस्था व्यक्त हो रही है अतः यह ध्यान किशोरावस्था का है, किशोरावस्था पन्द्रह वर्ष के पूर्व ही होती है। यथा—

कौमारं पञ्चमाद्वान्तं पौगण्डमो दशमावधिः। कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनन्तु ततः परम् ॥ २० ॥

सर्वशास्त्रार्थ त वज्ञमानन्दकर सुन्दरम् ।
कौशल्यानन्दनं रामं धनुर्वाणधरं हरिम् ॥ २१ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञम् =शम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्वों के ज्ञाता, आनन्दकर सुन्दरम् = आनन्दप्रद तथा सुन्दर, कौशल्यानन्दनम् = श्रीकौशल्या जी के आनन्ददाता, हरिम् = दुःख पापनाशक, धनुर्वाणधरम् = धनुष तथा बाण के धारण करने वाले, रामम् = श्रीरामचन्द्र जी को।

विशेष :- सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञम् - सर्वेषां शास्त्राणामर्थं तत्त्वञ्च जानातीत्यर्थः, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, इन छः अङ्गों सहित वेद के अर्थ एवं तत्त्व के ज्ञाता, पूर्व मीमांसा, (धर्मशास्त्र) उत्तरमीमांसा (वेदान्त) न्याय, वैशेषिक, सांख्य–योगके अर्थ तथा सारांश के ज्ञाता। आनन्दकर सुन्दर का भावहै स्वसौन्दर्य द्वारा आनन्ददाता, कौशल्यामानन्दयति इति कौशल्यानन्दनम् न केवल कौशल्या अम्बा को ही आनन्द देते हैं अपितु सम्पूर्ण चर, अचर जगत् को, इस आशय से रामम्-रूपौदार्य गुणों द्वारा सबको रमण करने वाले अर्थात् आनन्द प्रद हैं। आगे जगत् को आनन्द देने वाले श्रीरामजी को नमस्कार किया जायेगा। यथा--"नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे। हरिम् पद से रूप औदार्य आदि गुणों से सबकी दृष्टि तथा चित्त के अपहरणकर्त्ता सूचित है अथवा 'दुःखानि पापानि स्वभक्तानाम विद्या पर्यन्तं हरतीति हरिः", यथा -"रूपौदार्य गुणैः सर्वदृष्टिचित्तापहारकम्" ॥२०॥

एवं सञ्चिन्तयेद् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं शिवम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा मुनिवर्यः स नारदः ॥ २२ ॥

एवम् = उपरिकथित रूप, विष्णुम् = व्यापक, या विशुद्ध, यज्ज्योतिः= जिसकी ज्योति, अमलम् =निर्मल, प्रकृतिगुण रहित, शिवम् कल्याणकर है (उसको) सञ्चिन्तयेद्=सम्यक् ध्यान करे--समुनिवर्य=प्रसिद्ध, मुनियों में श्रेष्ठ, नारदः=नारदजी प्रहृष्टमानसोभूत्वा=प्रसन्नचित्त होकर (श्रीरामजी की स्तुति की)

विशेष :- उपक्रम में 'दृग्ज्योतिरमलं शिवं' तदेव परमं तत्त्वं कैवल्पद कारणम्' कहा, अर्थात् सच्चिदानन्दार्थक राम पद वाच्य ही मुक्ति देने वाले हैं कल्याणगुणाकर तथा हेय गुण रहित हैं मुक्ति कामना से उन्हीं का ध्यान करे। श्रीमद्भागवत में भी परतत्त्व को ही मोक्ष कामनया भजे, यथा–

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रण भक्ति योगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥

परतत्त्व श्रीरामजी ही हैं, उपसंहार में धनुर्बाणधरं कौशल्यानन्दनम् आदि विशेषण द्वारा ध्येय एवं परतत्त्व माना है। श्रीअयोध्याजी के मध्य में विराजमान रत्न मण्डप के बीच कल्पवृक्ष के नीचे रत्न सिंहासन में पद्मासनस्थ, श्री दशरथ पुत्र के रूप में आविर्भूत अनन्त सूर्य तेज सम्पन्न, पिता की गोद में विराजमान इन्द्रनीलमणि आभा के सदृश, कमनीयविग्रह, अनन्तसूर्यकान्तिकमनीयरत्नकिरीट से सुशोभित, नाना विध रत्न जटित भूषणों से अलंकृत, श्रीवत्स कौस्तुभमणि से शोभायमान, तुलसी कुन्दमन्दारादि की पुष्प मालाओं से अलंकृत द्विभुज किञ्चिन्मुस्कुराहट से युक्त, कर्पूर अगरु कस्तूरी निर्मित अङ्गराग से अनुलिप्त, श्रीभरतादि भाइयों से शोभित, नृत्यगान विशारद विद्याधर तथा नारदादि द्वारा सतत् स्तूयमान, विश्वामित्र वशिष्ठादि मुनियों से सेवित मुनि श्रेष्ठ सनकादि द्वारा परिसेवित, धनुर्बाणधारी, राजीवलोचन, मङ्गलायतन, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, सर्वानन्दकर, कौशल्यानन्दन, सर्वदुःखहरण श्रीरामजी का ध्यान अपने-२ अभीष्ट विग्रह द्वारा करे ॥ २२ ॥

सर्वलोक हितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ।
कृताञ्जलि पुटो भूत्वा चिन्तयनद्भुतं हरिम् ॥ २३ ॥

सर्वलोकहितार्थाय = सम्पूर्ण लोक के कल्याणार्थ, कृताञ्जलिपुटः = दोनों हाथ की अञ्जलि, भूत्वा बांधकर, अद्भुतम = अघटित घटनाघटित अचिन्त्य पराक्रमशाली, हरिम् = भगवान् का चिन्तयन् = चिन्तन करते हुये रघुनन्दनम = रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्रीरामजी की, तुष्टाव = स्तुति की।

विशेष :- नारदजी कृत श्रीरामस्तवराज द्वारा सब लोग कृतार्थ हो जांय इस लिये यह स्तुति श्रीरामजी की गयी। सर्वलोकहितार्थायसर्वे च ते लोकाः सर्वलोकाः तेषां हितार्थाय = कल्याण सम्पादनाय, तुष्टाव = परतत्व परब्रह्म जानकर श्रीरामजी की स्तुति की। न केवल शास्त्रजनित परोक्ष ज्ञान द्वारा किन्तु अद्भुतं हरिं चिन्तयन् = मननिदिध्यासात्मिका परभक्ति द्वारा साक्षात् देखकर अर्थात् श्रीरामजी ही परात्परतरतत्त्व हैं यह जानकर स्तुति की। "कृताञ्जलिपुटो भूत्वा" से लेकर "अनन्तवीर्यं रामं ददर्श" तक पाँच शपथ करके, अर्थात् श्रीरामजी ही परतत्त्व हैं यथा—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते । रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥

कृताञ्जलि पुटो भूत्वा का "रामं ददर्श" इस दर्शन क्रिया में अन्वय है । "कृतः बद्धः अञ्जलि पुटो येन स" "अञ्जलिः परमामुद्रा सद्योदेवप्रसादिनी" अर्थात् श्रीरामजी की प्रसन्नता शीघ्र हो इसलिये कृताञ्जलि होकर स्तुति की ॥ २३ ॥

यदेकं यत्परं नित्यं यदनन्तं चिदात्मकम् ।
तदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम् ॥ २४ ॥

यदेकम् = जो एक है, यत्परम् = जो सबसे परे हैं, नित्यम् = सदा विद्यमान् यदनन्तम् = जिसका अन्त नहीं है, चिदात्मकम् = स्वरूप तथा गुण द्वारा स्वप्रकाश तथा ज्ञान के आकर हैं । तदेकम् = मुख्य हैं लोकव्यापकम् = लोक में व्यापक हैं अर्थात् लोक के बाहर भी हैं, तद्रूपं रूप्यते निरूप्यत इतिरूपम् परमतत्त्वम् अहं चिन्तयामि अर्थात् उस परमतत्त्व का ध्यान करता हूँ ।

विशेष :- चिन्तन का प्रकार कहा जा रहा है "यदेकम् अद्वितीय ब्रह्म" जिसे श्रुतियां :—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्यनाम महद्यशः ॥

इन विशेषणों के द्वारा निरूपण करती हैं । दो हाथ से लेकर हजार हाथ पर्यन्त परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी के ही अवतार हैं श्रीरामजी अवतारी हैं, अवतार की अपेक्षा अवतारी का पर होना स्वाभाविक है यथा—

रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिकल्पना । द्विचत्वारि षडष्टासां दश द्वादश षोडश ॥ अष्टादशमी कथिता हस्ताः शङ्खादिभियुताः सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहन कल्पना ॥

जितने भी परब्रह्म श्रीरामजी के विग्रह श्रुति स्मृतियों में सुने जाते हैं वे सब उन्हीं के अवतार हैं । श्रीमद्भागवत में यथा :-

अवताराह्यसंख्याता हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

जो नित्य हैं कालपरिच्छेद शून्य हैं अनन्त अर्थात् वस्तु देश परिच्छेद रहित हैं । इस श्लोक में एकं परं नित्यं मनन्तं चिदात्मकम् व्यापकम् पदसमुदाय का परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी में ही पर्यवसान होता है ॥ २४ ॥

विज्ञान हेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञान रूपं स्वसुखैक हेतुम् ।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥ २५ ॥

विज्ञानहेतुम=विज्ञान के कारण अर्थात् भगवद् विमुख होने के कारण जीव का जो धर्मभूत ज्ञान नष्ट प्राय: हो चुका है उसे अपने सम्मुखीन करके ज्ञान का प्रकाश करते हैं। विमलायताक्षम=विमल तथा दीर्घनेत्र। प्रज्ञानरूपम्=संकोच विकाश रहित ज्ञान के आधारभूत। स्वसुखैकहेतुम्=ब्रह्मानन्द रूप सुख के एकमात्र कारण अथवा स्वीय साक्षात्कार विषयक सुख के मुख्य कारण। हरिम्=दुःख तथा उसके कारण पाप के हरण करने वाले। आदिदेवम=त्रिपाद् विभूति तथा लीला विभूति में, स्वेच्छक्रीड़ापरायण अर्थात् उभयविभूति नायक। परात्परम्=सर्वावतारी, परावर। श्रीरामचन्द्रं=श्रीरामचन्द्र नाम है जिनका, रामम्=रामजी को, अहं भजामि, साक्षात्कार के लिये ध्यान कर रहा हूँ। परमतत्त्व साकार हैं, रामनाम है, आदि देव हैं इसके ज्ञापनार्थ विशेषण दिये जा रहे हैं:-

विशेष:— विज्ञानहेतुम=विशेष ज्ञान के कारण अर्थात् अपने अनादि कर्म द्वारा जीव भगवान् से विमुख होकर ("ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी" होते हुये भी "सो माया बश भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं ॥") अपना धर्मभूत ज्ञान नष्ट कर दिया है अपने पाप कर्म द्वारा भगवान् की प्रपत्ति नहीं किया। यथा—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

उन जीवों को सामुख्य प्रदान करके विशुद्ध बुद्धियोग देते हुये अपने को प्राप्त करा देते हैं। यथा—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्। ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजन्तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता ॥

विमलायताक्षम्=विमले उज्ज्वले आयते कर्णपर्यन्तमक्षिणी यस्य तमितिपरम तत्त्व का साकार रूप तथा उपासक के दुःखश्रवण योग्यत्व को व्यक्त किया। प्रज्ञानरूपम्=प्रशब्द से परिच्छेद रहित सूचित हुआ, अर्थात् परिच्छेद रहितं यज्ज्ञानं चित्स्वप्रकाशं तदेव रूपं विग्रहोऽस्यतम्। स्वस्वरूपभूत जो परमात्मरूप है उससे अभिन्नरूप अर्थात् देहदेही विभाग रहित सच्चिदानन्द विग्रह। स्वसुखैकहेतुम्=स्वं भगवदीयं यत्सुखं साक्षात्कार लक्षणं तस्य एकं मुख्यं हेतुं कारणम् तत्प्रदमित्यर्थः अर्थात् दर्शनाकांक्षी भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले, इससे स्वदर्शनदाता सूचित किया। यथा—नायमात्मा

प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना श्रुतेन। य मेवैषबृणुते स तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ अथवा स्वसुखं ब्रह्मानन्दलक्षणं तस्यैकं मुख्यं हेतुम्, इससे ब्रह्मानन्द कामुकों को भी श्रीरामजी ही उपाय हैं यह व्यक्त हुआ, यथा—

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यत्परब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः। यश्चाखण्डैक रसात्मा यश्च ब्रह्मानन्दामृतं यस्तारकं ब्रह्म यो ब्रह्माविष्णुरीश्वरो यो ब्रह्माण्डस्यांतर्बहिर्व्याप्नोति यो वासुदेवो यो महाविष्णुः यः सर्वदेवात्मा भूः॥

श्रीरामतापनीय के इस अन्तिम मन्त्र द्वारा नारायणादि रूपी होने के कारण सर्वावतारी ज्ञापित हुआ॥ २५॥

कविं पुराणं पुरुषं पुरस्तात् सनातनं योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयांसमनन्तवीर्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श॥ २६॥

कविम्=जो सर्वज्ञ, पुराणम्=प्राचीन, पुरुषम्=परमपुरुष, पुरस्तात्=पहिले भी वर्तमान। सनातनम्=अनादि, योगिनम्=योग वाले। अथवा अप्राप्त के प्रापण रूप अर्थात् अपने भक्त के अभीष्टपूरक। ईशितारम्=ईश्वर से भी स्वामितया आराध्यमान अथवा चित्तत्त्व, अचित्तत्त्व के नियन्ता। अणोरणीयांसम्= अणुपरिमाण से भी अति सूक्ष्म। अनन्तवीर्यम्=असंख्येयपराक्रम। प्राणेश्वरम्=भक्तों के प्राण से भी प्रिय। रामम्=सच्चिदानन्दार्थ राम पद से अभिधीयमान परब्रह्म दशरथ पुत्र के रूप में आविर्भूत, असौ=श्रीनारद जी, ददर्श=देखा।

विशेष :--झटिति देवप्रसादिनी अञ्जलि को बाँधकर दर्शनकामनया नारदजी श्रीरामजी का ध्यान कर ही रहे थे कि श्रीरामजी का साक्षात्कार हो गया। वे श्रीरामजी कैसे हैं :— कविम्=सर्वज्ञ, "यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञान मयं तपः" आदि श्रुति प्रसिद्ध। पुरुषम्—

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित्साकाष्ठा सा परागतिः॥

इस श्रुति द्वारा वर्णित परम पुरुष। परम पुरुष में पुराणत्व कारण है पुराण हैं अतएव परमपुरुष। पुरस्ताद् पूर्व में भी स्थित हैं यह भी परमपुरुषत्व का ही बीज है। सनातनम्=नित्य, अनादि। अणोरणीयांसम्= अणु परिमाण वाले जीवात्मा के भी व्यापक, यथा—

यत् किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।

अनन्तवीर्यम्=असंख्येय पराक्रम श्रीरामजी का विशेषण शरणागति के समय श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में प्रसिद्ध है। यथा—

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किं मेष रजनीचरः। सूक्ष्ममप्यहितं कर्त्तुमशक्तः कथं च न॥ पिशाचान्दानवान् यक्षान् पृथिव्यां ये च राक्षसाः। अंगुल्यग्रेण तान् हन्याभिच्छन् हरिगणेश्वर।

पृथ्वी के समस्त राक्षसों को अंगुलि से नहीं अपितु उसके अग्रभाग से हनन् ही श्रीराम जी का असंख्येय पराक्रम है। प्राणेश्वरम्=सभी इन्द्रियों को छान्दोग्य में प्राण शब्द से कहा गया है उनके ईश्वर अर्थात् नियन्ता अथवा प्राण के भी प्राण जीवनप्रद। यथा :—

चक्षुषश्चक्षुः श्रोतस्य श्रोत्रमुतप्राणस्य प्राणम्।

"रामम् यदेकं यत्परमित्यादि परतत्त्वबोधक" पचीस विशेषणों से विशेषित परात्पर रामपद वाच्य "रमन्ते योगिनोऽनन्ते" इत्यादि श्रुत्युक्त श्रीरामजी को श्रीनारदजी ने देखा॥ २६॥

श्रीनारद उवाच :—

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम्।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम्॥ २७॥

श्रीनारद जी बोले—

नारायणम्=जो नारायण, जगन्नाथम्=संसारवर्त्ति प्राणियों के द्वारा अर्थ, धर्म, काम मोक्ष भगवत्प्राप्ति रूप पुरुषार्थप्राप्ति के लिये प्रार्थनीय। अभिरामम्=सर्वांग-रमणीय अपने दर्शनमात्र से समस्त स्त्री पुरुष को आनन्द देने वाले। जगत्पतिम्=पति के सदृश धर्मान्तर का परित्याग करके सर्वतोभावेन भजन करने के योग्य। कविम्=सर्वज्ञ। पुराणम्=सनातन। वागीशम्=सरस्वती प्रेरक अथवा सरस्वती कान्त। रामम्=रमणीय विग्रह वाले, स्वरूप दर्शन मात्र से वीतराग महर्षियों के मन को भी मोह लेने वाले। दशरथात्मजम्=चक्रवर्त्ति दशरथ जी के पुत्र रूप से प्रसिद्ध।

विशेष :—नारायणमादि द्वितीयान्त विशेषण वाचक पदों का विशेष्यवाचक रघूत्तमम पद के साथ अन्वय है और रघूत्तमम् पद का प्रणमामि क्रिया पदके साथ अन्वय है, "मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम" कीदृशं रघूत्तमम् नारायणम्=सर्वतत्त्वों के अन्दर वर्तमान। यथा—

नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति विदुर्बुधः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

नर से उत्पन्न होने वाले तत्त्व को नाराणि और वह है अयन जिसका उसे नारायण कहते हैं। अथवा—"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। तायदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ जल अथवा नरसुनु (श्रीरामजी) को नार शब्द से कहा जाता

है और वह जिसका अयन निवास है उसे नारायण कहते हैं। अथवा कारणार्णव (क्षीर समुद्र) शायी को नारायण शब्द से कहा गया है श्रीमद्भागवते यथा:-

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतु हेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् । यन्नाभि जातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माविरासीद् यत एष लोकः ॥

श्रीमद्भागवत में अन्यत्र भी यथा—नारायणस्त्वं नहि किं नरभूजलाशयाद् ॥ नरशब्द (श्रीराम) वाच्य का ही नारायणावतार अवगत हुआ। विशेषण वाचक नारायण का विशेष्य श्रीराम पद को श्रीनारद जी ने कैसे कहा यह शंका उत्थित हुई इसका उत्तर श्रीरामस्तवराज भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदास जी महाराजकी गृहीतयुक्ति द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यथा- "पशुनायजेत्" यहाँ पर पशुत्व जाति नहीं है अपितु लोमलाङ्गूल वाले को पशु कहते हैं इससे गर्दभादि का भी यज्ञ में आलभन प्राप्त हुआ। "छागो वा मन्त्रवर्णात्" इस मन्त्र में याग का साधनभूत पशु छाग ही निर्णीत हुआ इसलिये यज्ञ में छाग का ही आलभन होता है। उसी प्रकार नर हरि नारायणादि विशेषण वाचक पदों का भी कहीं विशेष्यवाचक पदों में पर्यवसान होगा। अतः तत्सन्निहित सर्वोत्कृष्ट राम शब्द वाच्य परमेश्वर में ही पर्यवसान युक्तियुक्त है। अथवा कारणत्व हरिनरादि शब्द सर्व शाखा प्रत्यय न्यायेन परमतत्त्व सर्ववेदान्तगीत रामाख्य ब्रह्म में ही पर्यवसित हैं। पुनः "ब्रह्मणोरूपकल्पना" इत्यादि मन्त्र द्वारा श्रीरामाख्य ब्रह्म का ही नारायणादि अवतार भी कहा गया है। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में श्रीरामजी का ही नारायणावतार ब्रह्मा जी ने कहा है यथा—महार्णवे शयानोऽप्सुमां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ अतः नारायणादि श्रीरामजी के ही अवतार हैं। इसलिये नारायणादि विशेषणवाचक पद विशेष्यवाचक श्रीरामपद के साथ ही अन्वित होना श्रीनारद जी के द्वारा ज्ञापित हुआ। अभिरामम्=सर्वाङ्ग मनोहर यथा--"रूपौदार्य गुणैः पुंसां दृष्टिचित्ता पहारकम्" श्रीमद्वाल्मीकीय द्वारा तथा पद्मपुराण द्वारा सर्वोत्कृष्ट सुन्दरता वर्णित है यथा--"दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन सुविग्रहम्" "अभिरामेण वा पुनः" इस श्रीरामतापनीय मन्त्र द्वारा भी श्रीरामजी को सर्वलोक मनोहर कहा गया है। यथा--श्रीरामस्तवराज में भी भगवान् को आनन्द प्रदान करने वाला कहा गया है। यथा--नमोऽस्तुरामदेवाय जगदानन्दरूपिणे। जगत्पतिम्= पति के सदृश धर्मान्तर का त्याग करके सर्वतोभावेन भजन करने के योग्य। श्रीमद्भागवत में भगवान् ने स्वयं अपने मुख से प्राकृत पति के त्याग में पातकी बतलाया है। यथा--

दुश्शीलो दुर्भगोवृद्धो जडो रोग्यधनोऽपिवा। पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥

अतः नित्यपति श्रीराजी का सर्वदा भजन करना चाहिये। भागवते यथा--"स वै पतिः स्यादकुतो भयः" "स्वयं भयातुरं पातु जनं समन्ततः ॥" सामान्य धर्म का त्याग

करके धर्ममूल भगवान् की ही एकमात्र शरण ग्रहण भगवान् को अभीष्ट है। गीता में यथा —

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

कविम्=सर्वज्ञ । यथा--यः सर्वज्ञः सर्ववित् । परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च । इत्यादि श्रुति गीयमान ज्ञानादि सम्पन्न । न कहिये ब्रह्मादि भी जगत्पति तथा कवि सुने जाते हैं। इस पर कहा-पुराणम् अर्थात् सबसे प्राचीन ब्रह्मादि में सर्व प्राचीनत्व अप्रसिद्ध है। यथा--

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं हो देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये ॥ १ ॥ "हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभयासंयुनक्तु ॥

ब्रह्म गायत्री प्रतिपादित अर्थ से मुझे संयुक्त करें। "धियो यो नः प्रयोदयात्" गायत्री प्रतिपाद्य भी भगवान् श्रीरामजी ही हैं यथा-भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथमिति ॥२७॥

राजराजं रघुवरं कौशल्यानन्दवर्द्धनम ।
भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥ २८ ॥

राजराजम्=राजाओं के भी राजा अर्थात् सर्वराजेश्वर, रघुवरम् रघुवंशियों में श्रेष्ठ, कौशल्यानन्दवर्द्धनम्=माता कौशल्या के आनन्द बढ़ाने वाले भर्गम्=रविबिम्ब के प्रकाशक ज्योतिस्स्वरूप। वरेण्यम्=सभी तेजों में प्रकाशक होने के कारण श्रेष्ठ। विश्वेशम्=सब की बुद्धि के ईश अर्थात् शुभाशुभकर्माधीन प्रेरक, रघुनाथम्=रघुबंशियों के नाथ अर्थात् पालक। जगद्गुरुम्=प्रजा के अभ्युदय निःश्रेय के उपदेष्टा। (उनको मैं प्रणाम करता हूँ)।

विशेष :— "मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम्" इस दूरस्थ अगले श्लोक के क्रिया पद प्रणमामि में सभी द्वितीयान्त पदों का अन्वय है। राजराजम् सर्व राजेश्वर, रघुवरम्, रघुबंश श्रेष्ठ, स्वसमान, तथा अधिक कोई न होने के कारण कौशल्यानन्दवर्द्धन हैं। परब्रह्म बुद्धि से मुमुक्षुजन सेव्य हैं। ब्रह्म गायत्री प्रतिपाद्य हैं। भर्गम् रविबिम्ब के प्रकाशक तेजस्स्वरूप हैं। वरेण्यम्--सभी तेजो के प्रकाशक होने के कारण सबसे श्रेष्ठ हैं। आगे कहा गया है यथा--ज्योतिषां पतये नमः। श्रीमद्बाल्मीकीय रामायण में भी भगवान् श्रीराम जी को सूर्य के भी सूर्य कहा गया है यथा--सूर्यस्यापि भवेत्सूर्योह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः। श्रीरामस्तवराज में भी बार बार गायत्री प्रतिपाद्य तथा ब्रह्मगायत्री वाच्य दृढ़ किया गया है यथा--

आदित्यरविमीशानमादित्य मण्डल गतम् । सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम् ॥

पञ्चरात्र में भी द्विभुज भगवान् श्रीरामजी को ही गायत्री वाच्य स्वीकार किया गया है यथा—

द्विहस्तमेकवक्तृञ्च शुद्ध स्फटिक सन्निभम् । सहस्रकोटि वह्नीन्दु लक्ष-कोटयर्कसन्निभम् ॥१॥ मरीचिमण्डले संस्थं वाणाद्यायुध लाञ्छितम् । किरीट हार केयूर बनमाला विराजितम् ॥ २ ॥ पीताम्बरधरं सौम्यं रूप माद्यमिदं हरेः ।

इन्हीं भगवान् श्रीरामजी को ही श्रुतियाँ गायत्री प्रतिपाद्य तया सब जीवों को ज्ञान देने वाले कहती हैं। यथा—तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी। एवं "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं हो देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ विश्वेशम्— अभ्युदय निश्श्रेय साधन में सबकी बुद्धि प्रेरक होने के कारण वुभुक्षु मुमुक्षु सर्वजन चिन्तनीय । इस कथन के द्वारा ब्रह्मगायत्री के धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्" इस अंश के प्रतिपाद का निर्देश किया गया। इस प्रकार सर्वेश्वर होते हुये भी कारुण्यपारवश्येन धर्मिष्ठाग्रगण्यचक्रवर्ति नरेन्द्र के घर में आविर्भूत होकर इस लोक के सुख को प्रदान किये । यह "रघुनाथं जगद्गुरुम" इन दो पदों के द्वारा व्यक्त किया ॥ २८ ॥

सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकी वल्लभं विभुम् ।
सौमित्रि पूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम् ॥ २९ ॥

सत्यम=सदा एक रस से वर्तमान, सत्यप्रियम्=सत्य वचन वल्लभ, जानकी वल्लभम्=महाराणी श्रीजानकीजी के प्रिय, अथवा श्रीजानकी जी में प्रेम है जिनका। विभुम्=व्यापक। सौमित्रि पूर्वजम्=सुमित्रा के पुत्र श्रीलक्ष्मणजी के पूर्व में आविर्भूत अर्थात् लक्ष्मणकुमार के ज्येष्ठ भ्राता। शान्तम्=शान्त स्वभाव परमानन्द स्वरूप। कामदम्=भक्त की कामनाओं को पूर्ण करने वाले । कमलेक्षणम्=कमल के सदृश प्रसन्न उज्ज्वल तथा अरुणिमागर्भित नयन वाले ।

विशेष :-- इस श्लोक में श्रीरामजी के रूप को नित्य कहा जा रहा है। सत्यम्=तीनों काल में जिसका नाश न हो अर्थात् सदा एकरस। अथवा नाम रूप विभागानार्ह जिसे श्रुतियाँ "द्विहस्तमेकवक्तृञ्च ।

एवं--सहस्रकोटि वह्नीन्दु लक्ष कोटयर्क सन्निभम् । मरीचिमण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥

ऐश्वर्य रूप से नित्यविभूति में विराजमान, लीला विभूति में ऐश्वर्य छिपाकर माधुर्यरूप से द्विभुजादि होकर मानवीय मर्यादा का अनतिक्रमण करके विराजमान। सत्यप्रियम्=सर्वदा सत्य बोलने वाले, बाल्मीकीय रामायण में यथा।-- अनृतं नोक्त पूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन। सत्यवादी भगवान् श्रीरामजी सदा श्रीमहाराणी जी के साथ ही रहते हैं, और उनके भजन के बिना किसी प्रकार भी प्रसन्न नहीं होते। मन्त्र जपादि द्वारा

प्रसन्न होकर भी भावनामय अपने स्वरूप को नहीं दिखलाते अर्थात् भक्त को आनन्दप्रद नहीं होते। यथा--

चकाराराधनं तस्य मन्त्र राजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्री शिवोरूपं ज्ञातु मिच्छुहरेः परम् ॥१॥ दिव्यं वर्ष शतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थित चेतसा ॥ २ ॥ प्रसन्नोऽभूत्तदादेवः श्रीरामः करुणाकरः। मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः ॥ ३ ॥ द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्। अह्लादनीं परां शक्तिं स्तूयाः सात्वत सम्मताम् ॥ ४ ॥ तदाराध्य-स्तदारामस्तदधीनस्तया विना। तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥ ५ ॥

यह रहस्य श्रीराम जी के द्वारा कथित है अतः श्रीरामजी का वशीकरणोपाय तथा आनन्द प्रदत्व श्री नारद जी प्रकाशित कर रहे हैं, जानकी वल्लभमिति, जानक्याः वल्लभम् या जानकी वल्लभा यस्य ये दोनों अर्थ अभीष्ट हैं अतः भगवत्प्रसाद कामुकों को दोनों सरकार का भजन करना चाहिये। दोनों सरकार का कभी वियोग भी नहीं होता। वाल्मीकीय रामायण में यथा—अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा-- अनन्या राघवेणाहं प्रभा चन्द्रमसो यथा। न कहो कि जब दोनों तत्त्व अभिन्न हैं तब एक की ही आराधना से दोनों की आराधना सिद्ध हो गई। यह नहीं कह सकते "तदाराध्यः" इस श्लोक का अर्थ तया सीतया सह आराध्यः इति तदाराध्यः अर्थात् श्रीजानकी प्रसन्न-ताधीन श्रीरामजी की प्रसन्नता है। अर्थात् श्रीरामजी की आराधना श्रीजानकी जी की आराधना के बिना नहीं हो सकती। अतएव श्रीजानकी जी को पुरुषकार के रूपमें स्वीकार किया गया है। इतिहास श्रेष्ठ श्रीबाल्मीकीय रामायण में श्रीरामजी से श्रीजानकी जी का प्रथम वियोग अपनी कृपा प्रकाशनार्थ है। मध्यम विश्लेष पारतन्त्र्य प्रकाशनार्थ है और अन्तिम विश्लेष अनन्यार्हत्व प्रकाशन के लिये है। देव स्त्रियों को कारागार से मुक्त करने के लिये आप स्वयं रावण के कारागार में जाकर दव देवदिव्यमहिषी होते हुये भी कारागार वास निमित्तक नीचता को न देखकर "सीतायाश्चरितं महत्" महर्षि कथित अपने महच्चरित्र को प्रकट किया। जैसे बालक के कूप में गिर जाने पर उसके साथ कूदकर निकालने वाली माता। निरवधिक वात्सल्यगुण का प्रकाशन इस प्रथम विश्लेष से ज्ञापित हुआ। यही पुरुषकार वैभव है यथा--

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः। लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ॥

श्रीवचनभूषण में प्रथम विश्लेष को कृपा प्रकाशनार्थ ही कहा गया है यथा :- लक्ष्म्याः प्रथम विश्लेषः स्वकृपा प्रकाशनार्थम् ॥ ६ ॥ गर्भिणी अवस्था में श्रीजानकी जी का मध्यम विश्लेष भगवदधीनत्व को प्रकाशन करता है चाहे आप अन्तःपुर में रखें या तपोवन में छोड़ दें मैं आपकी इच्छा को दासी हूँ, यथा---पतिर्हि दैवतं नार्याः पतिर्बन्धुः

पतिर्गतिः प्राणैरपि प्रियं तस्मात् भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥ अन्तिम विश्लेष से श्रीरामजी का अनन्यार्हत्व प्रकाशित है। काषायवस्त्र को धारण करके श्रीरामजी के सामने उपस्थित श्रीजानकी जी के विषय में महर्षि वाल्मीकि द्वारा शपथ खाने पर साञ्जलि अधोमुखी होकर स्वयं शपथ ग्रहण करने लगीं। यथा :-

यथाहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ १ ॥

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्थये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ २ ॥ श्रीजानकीजी के इन बचनों को सुनकर पृथ्वी देवी अपने हाथों से दिव्य सिंहासन में बैठाकर रसातल में घुस गईं। यही अनन्यार्हत्व है। ये तीनों वियोग चेतन के कल्याणार्थ तथा अनुकरण एवं उपदेश के लिये हैं इसलिये कहा गया है श्रीवचन भूषण में यथा--संश्लेष विश्लेषयोरुभयोश्च पुरुषकारत्वं भासेत ॥१२॥ संश्लेषदशा में ईश्वर को वश में करके चेतन को भगवत्सम्मुख करती हैं जैसे जयन्तादि। वियोग दशा में चेतन को वश करके भगवत्सम्मुख करती हैं जैसे रावणादि। भगवान् को अपने सौन्दर्य से वश में करती हैं जीव को अपनी कृपा से वश में करती हैं ॥ २६ ॥

आदित्यरविमीशानं घृणिं सूर्यमनामयम्।
आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करूणामयम् ॥ ३० ॥

आदित्यरविम्=सूर्य के भी सूर्य (प्रकाशक) ईशानम्=नियन्ता। घृणिम्=द्युतिमान्, सूर्यम्=सूर्य विभूति वाले। अनामयम्=अविद्यादि दोष शून्य। अथवा भय प्रद अविद्या निवारक। आनन्द रूपिणम्=आनन्दप्रद, सुखात्मक विग्रहयुत। सौम्यम्=सुशील। राघवम् = रघुबंश में अवतीर्ण। करुणामयम् = करुणा ही रामरूप से आविर्भूत अर्थात् कृपाप्रचुर ॥ ३० ॥

विशेष :—श्रीरामजी ही ब्रह्मगायत्री प्रतिपाद्य हैं इसे दृढ़ करते हुये "विभुम्" में हेतु दिखला रहे हैं। आदित्यरविम्=आदित्यस्य जगत्प्रकाशकस्यापि रविम्=प्रकाशकम्। यह चन्द्रादि प्रकाशक का भी उपलक्षण है। श्रीरामचरितमानस में भी--जगतप्रकाश्य प्रकाशक रामू। एवं "सबकर परम प्रकाशक जोई" आदि। श्रुति में भी---

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः, तमेवभान्तमनुभातिसर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

स्वप्रकाशक कहकर प्रभा का आश्रय होने के कारण साकार रूप ही ज्ञापित है। अतएव "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्" से साकारत्व ही कहा गया केवल प्रभा नहीं अपि तु प्रभाश्रय तथा सूर्य के भी नियन्ता श्रीरामजी हैं अतएव ईशानम् अर्थात् नियमन करने वाले यथा----भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेतिसूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। आदित्यादि के प्रकाशन में हेतु है घृणिम् अर्थात् रश्मि,

प्रकाशक। सूर्यम्=सूर्य विभूति वाले, यथा "आदित्यादि ग्रहाः सर्वे त्वमेव रघुनन्दन। वाल्मीकीये यथा=सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः। आदित्यादिनियन्ता होने के कारण दुर्धर्ष, दुर्गम होते हुये भी सौलभ्य प्रकाशन "सौम्यं राघवं करुणामयम् आदि तीन पदों द्वारा सूचित किया गया। सौम्यं=सुशील, यथा वाल्मीकीये—

स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः। करुणामयम्=करुणैव श्रीरामरूपेणाविर्भूतेत्यर्थः। तदाह श्रीरामस्तवराज भाष्ये यथा---- निर्निमित्त परदुःख प्रहरणेच्छा खलु करुणोच्यते ॥

अर्थात् निष्कारण परदुःख नाश की इच्छा को करुणा कहते हैं, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में यथा—व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः। उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति। महर्षि कथित भगवान् श्रीरामजी करुणामय होने के कारण ही अपने भक्तों के प्रारब्ध भोग क्षीण होने पर दुःखमय संसार सागर से उद्धार करके आनन्दमय अपने आपको प्राप्त कराते हैं। श्रीरामस्तवराज में—नारायणं जगन्नाथमित्यादि ऐश्वर्य परक आदि में पद कहकर "रामं दशरथात्मजम्" इत्यादि मध्य में माधुर्य परक पदों को कहते हुये "भर्गं वरेण्यं विश्वेशमिति गायत्री प्रतिपाद्य भी उन्हीं श्रीरामजी को कहा। अर्थात् जो जगन्नाथ जगत्पति कवि पुराण वागीश हैं। वही दशरथात्मज हैं जो दशरथात्मज हैं वही भर्ग वरेण्यं आदि गायत्री प्रतिपाद्य हैं जो गायत्री प्रतिपादित हैं, वही रघुनाथ जगद्गुरु जानकीवल्लभ हैं जो जानकीवल्लभ हैं वही आदित्य रवि आदि शब्द बोध्य हैं। जो आदित्य रवि गायत्री वाच्य हैं वही राघव करुणामय हैं वही परात्पर रामसीता समन्वित सूर्य मण्डल मध्यस्थ हैं। इसी तरह पञ्चरात्र में भी श्रीरामरूप को ही आदि रूप कहा गया है यथा—

द्विहस्तमेकवक्त्रं च शुद्धस्फटिक सन्निभम्। सहस्रकोटि वन्हीन्दुलक्ष कोट्यर्क सन्निभम्॥ मरीचि मण्डले संस्थं बाणाद्यायुधलाञ्छितम्। किरीट हार केयूर वनमाला विराजितम्॥ पीताम्बर धरं सौम्यं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥३०॥

जामदग्निं तपोमूर्तिं रामं परशुधारिणम्।
वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम्॥ ३१॥

जामदग्निं तपोमूर्तिं=जामदग्नि की तपश्चर्या ही मूर्ति है जिसकी। रामं=परशुराम को, परशुधारिणम्=निरन्तर परशु धारण करने वाले। वाक्पतिम्=सरस्वती नायक। वरदम्=भक्तों के अभीष्टपूर्ण करने वाले। वाच्यम्=वेदोपनिषत्कारणवाक्यगत सभी शब्दों के वाच्य अर्थात् अर्थ प्रकाशक। श्रीपतिम्=लक्ष्मी स्वामी। पक्षिवाहनम्=गरुड़ वाहन।

विशेष :—श्रीरामजी को सर्वावतारित्व दिखलाने के लिये आदि में आवेशावतार रूप को प्रणाम करते हैं। भगवान् के शक्त्यावेश से ही परशुराम में भगवत्त्व है

वह्न्याविष्ट लोह खण्ड में अग्नि के सदृश। शक्ति आकर्षण कर लेने पर केवल ब्रह्मपिंडत्व मात्र अवशेष रह जाता है। श्रीरामजी को परमव्योमाधिपतित्व सिद्ध करने के लिये वाक्पति आदि विशेषण दिये गये। वाक्पतिम्=परापश्यन्ती मध्यमा वैखरी भेद वाली वाणी के पति अर्थात् पोषक तथा प्रकाशक, वाच्यम्=सम्पूर्ण पदों के अर्थ के प्रकाशक। यथा—

विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकः। तथापि मूल मन्त्रस्ते सर्वेषां वीजमक्षयम्। मननात्त्राणनान्मंत्रः सर्वत्राच्यस्यवाचकः॥

जीव प्रकृति तत् कार्यभूत सम्पूर्ण चराचर के वाचक श्रीरामजी को कहा गया है यथा बाल्मीकीये—जगत्सर्वं शरीरन्ते। सम्पूर्ण शरीरी श्रीरामजी में ही पर्यवसित होते हैं अतः सर्ववाचकत्व श्रीरामजी में ही उपपन्न होता है जैसे घटशरावादि शब्द मृत्तिका के एक देश के वाचक होने के कारण घटादि द्वारा उसके कारणभूत मृत्तिका में पर्यवसित हैं उसी प्रकार विष्णु नारायण नृसिंह कृष्णादि शब्द विष्णवादि व्यक्ति द्वारा विष्णुत्वादि परब्रह्मावस्था द्वारा अथवा व्यापकत्व, जलशायित्वादि तद् गुण द्वारा श्रीरामाख्य परब्रह्म में ही पर्यवसित हैं। यथा श्रीरामतापनीये—उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना। अतएव श्रीरामनाम का विष्णवादि अनेक सहस्र नाम तुल्यत्व, सर्ववेद सर्वमन्त्र जप पुण्य कोटि गुणाधिक पुण्य प्रदत्व, भी उपपन्न हुआ। यथा—

लौकिका वैदिकाः शब्दाः ये केचित्सन्तिपार्वति। नामानि रामचन्द्रस्य सहस्रं तेषु चाधिकम्॥ १॥ एकैकं रामचन्द्रस्य नाम सर्वाधिकं मतम्। सहस्रनाम फलदं सर्वाभीष्ट प्रदायकम्॥२॥ वैष्णवेष्वपिमन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः।

इत्यादि प्रमाणों द्वारा वेदव्यास भी श्रीरामजी को सर्वावतारी सिद्ध किया है। अवतारों की अपेक्षा अवतारी का आधिक्य श्रीमद्भागवत में ही प्रतिपादित है, यथा-अवतारा ह्यसंख्याता हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ जिस तालाब से हजारों जल बहने वाली नालियां निकलती हैं उनकी अपेक्षा सरोवर श्रेष्ठ ही सिद्ध हुआ॥ ३१॥

श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम्।
हलधृग्विष्णुमीशानं वलरामं कृपानिधिम्॥३२॥

श्रीशार्ङ्गधारिणम्=श्रीशार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले, रामम्=दशरथ पुत्र रूप से अवतीर्ण, चिन्मयानन्दविग्रहम्=चिदात्मक, आनन्दात्मक शरीर को धारण करने वाले। हलधृग्=हल को आयुध के रूप में धारण करने वाले, विष्णुम् व्यापक, ईशानम्=ईश्वर, कृपानिधिम्=अकारण कृपा सागर, बलरामम्=श्रीबलरामजी (को प्रणाम करता हूँ)॥ ३२॥

विशेष :--वाक्पति आदि सामान्य शब्दों द्वारा कहकर विशेष जिज्ञासा हेतु नाम, आयुध, विग्रह को दिखला रहे हैं। श्रीशार्ङ्गधारिणमित्यादि तीन पदों द्वारा द्विभुज

श्रीरामजी को ही कहा जा रहा है, क्योंकि आद्य एवं पररूप श्रीराम जी का ही है, यथा— स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम। परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत् ॥ १ ॥ पंचरात्रेऽपि-द्विहस्तमेकवक्तृष्ट्ररूपमाद्यमिदं हरेः। भगवान् श्रीरामजी चिद्घन, आनन्दघन हैं अतएव नित्य मुक्त जीवों से सेव्यमान हैं श्रीरामतापनीय में भी आपको चिन्मय कहा गया है यथा—

ॐ तत्सद्यत्परब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः।

अतएव चिन्मयानन्द विग्रहम् इति एकदेशानुमत्या, सच्चिदानन्द विग्रह अर्थ अभीष्ट है। उभयविभूतिनायक श्रीरामजी को संकर्षण रूप भी कहा जा रहा है हलभृगित्यादि पाँच पदों द्वारा, पद अनन्वित होने के कारण विष्णु शब्द का चतुर्भुज जगत्पालक अर्थ नहीं है अपितु व्यापक अर्थ है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, भगवान् की विभूति में आगे बतलाये जायेंगे ॥ ३२ ॥

श्रीवल्लभं कृपानाथं जगन्मोहनमच्युतम्।
मत्स्य कूर्मवराहादि रूप धारिणमव्ययम् ॥ ३३ ॥

श्रीवल्लभम्=लक्ष्मीपति, कृपानाथम्=दयावान्, जगन्मोहनम=मोहिनी, बुद्ध, आदि रूप से मोहित करने वाले या श्रीरामरूप से जगत् को मोहन करने वाले। अच्युतम् =धर्म तथा रक्षण से कभी च्युत न होने वाले, मत्स्य कूर्मवराहादि रूप धारिणम्= मीन कमठ सूकरादि रूपों को धारण करने वाले। अव्ययम्=विकार को प्राप्त न होने वाले ॥ ३३ ॥

विशेषः—श्रीरामजी ही क्षीरशायी आदि रूपों को धारणकरके सृष्टिचक्र का संचालन करते हैं इस श्लोक से दिखाया गया, अर्थात् सभी अवतारों के कारण हैं। बाल्मीकीये यथा—सक्षिप्य हि पुरालोकान् माययास्वयमेव हि। महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ १ ॥ अर्थात् श्रीरामजी अपने में बिलीन जीवों के कल्याणार्थ प्रलय के अन्त में प्रकृति को देखकर महदादि को उत्पन्न करके नारायण रूप से ब्रह्मादि को उत्पन्न करके जगत्सृष्टि करते हैं। भगवद्भक्ति पराङ्मुख जीवों को मोहित करते हैं अथवा श्रीराम रूप से जगत् को मोहित करते है वाल्मीकीये यथा—

रूप संहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्। ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्यवनवासिनः ॥१॥ चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम्। रूपोदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् ॥२॥ पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन सुविग्रहम् ॥ ३ ॥

सर्वथा विषय बासना रहित तत्त्वदर्शी महर्षिगण श्रीरामजी की परमकमनीय विग्रह को देखकर मुग्ध हो गये तो अन्य लोगों की बात ही क्या है। शूर्पणखा खरदूषण आदि भी श्रीराम रूप को देखकर मोहित हो गये। श्रीरामजी के बनगमन के अनन्तर

श्रीअयोध्याजी के चरअचर सभी प्राणी म्लान हो गये । यथा--अप्रहृष्टा मनुष्याश्च दीना नागतुरङ्गमाः । आर्तस्वरपरिम्लाना विनिः श्वसितनिः श्वनाः ॥ इससे भी श्रीरामजी का मोहन रूप सिद्ध हुआ । यद्यपि "व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः । श्रीअयोध्या वासियों के दुःखी होने पर श्रीरामजी अतीव दुःखी हुये, तथापि पिता की प्रतिज्ञा एवं विभीषणादि भक्तों का रक्षण करने से च्युत नहीं हुये इसीलिये अच्युत पद कहा गया। भगवान् श्रीरामजी ही मत्स्यादि अवतारों को धारण करते हैं और कभी भी विकार को नहीं प्राप्त होते अतः सभी अवतारों की अवतारभूमि हैं यथा, सर्वेषां ह्यवताराणामवतारी रघूत्तमः ॥ ३३ ॥

वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् ।
गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजन मनोहरम् ॥ ३४ ॥

वासुदेवम्=सब जगह वास करने वाले, जगद्योनिम्=जगत् के कारण, अनादिनिधनम्=उत्पत्ति विनाश रहित । हरिम्=अपने से ही उत्पन्न होने वाले प्रपञ्च को अपने में ही संहार करने वाले। गोविन्दम्=इन्द्रियों को वश में करने वाले, या वेदोपनिषद् के जानने वाले । गोपतिम् = वेदरक्षक, या इन्द्रियों के स्वामी, विष्णुम्=व्यापक, गोपीजन मनोहरम् = गोपास्त्रियों के मन को हरण करने वाले ॥३४॥

विशेष :--श्रीरामजी ही मत्स्यकूर्मवराह कृष्णादि रूपों को धारण करके अनेक प्रकार की लीलायें भक्तोंके कल्याणार्थ करते हैं इसको सूचित किया जा रहा है । वासुदेवम्--

वसति सर्वत्रेति वासुः, वसधातो रुणप्रत्ययः । दिव्यतीति देवः, नाना विधेषु दिव्येषु धामसु नित्यं निवसन् दीव्यते क्रीडतियः तमित्यर्थः। जगद्योनिम् = चिद्चिच्छरीरकाच्छ्रीरामादेव जगदुत्पत्तः यथा---यथैव वट वीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः । तथैव रामवीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

जैसे वटवीज में महावृक्ष स्थित है उसी प्रकार रामरूपी वीज में चराचर जगत् सर्वदा विराजमान रहता है ॥ ३४ ॥

गोपालं गोपरिवारं गोपकन्या समावृतम् ।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥ ३५ ॥

गोपालम्=गो पालन करने वाले, गोपरिवारम्=गावः परिवारोयस्य गौ परिवार हैं जिनके अर्थात् गोप्रिय । गोपकन्यासमावृतम्=गोप कन्यायों से सम्यक् आवृत अर्थात् गोपकन्या सेवित । विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशम्=समूह विजली के समान कान्तिमान। कृष्णम्=इन्द्रनीलमणि के समान प्रभा वाले। जगन्मयम्=चराचर रूप जगत् को उत्पन्न एवं अपने में ही लीन करने वाले, रामम्=धर्म संस्थापन एवं भक्तत्राण हेतु नाना रूप धारण करने वाले॥ ३५ ॥

गो गोपिका समाकीर्णं वेणुवादन तत्परम्।
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं विभुम् ॥ ३६ ॥

गोगोपिकासमाकीर्णम्=गौ तथा गोपबालाओं से वेष्ठित । (गो दोहन के बहाने दर्शनार्थ आई हुई गोपिकाओं से सम्यक् आकीर्ण-आच्छन्न) वेणुवादनतत्परम्=वंशी बजाने में संलग्न । कामरूपम्=कन्दर्प के भी मानको दूर करने वाले (नितान्त कमनीय रूप) कलावन्तम्=गोपिकाओं को सन्तुष्ट करने के लिये नृत्यगीतादि कला प्रदर्शन करने वाले। कामिनी कामदम्=गोपिकाओं के आलिङ्गनादि अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले। विभुम्=प्रत्येक गोपी के लिये अनेक विग्रह से आविर्भूत ॥ ३६ ॥

विशेष—कौशल खण्ड में स्पष्ट कहा गया है कि-- "आजुहाव ससीनेशस्ताः सर्वा जगदीश्वरः । गानेन वेणुनाशाकं सर्वचेतोपहारिण ॥" अर्थात् जगदीश्वर श्रीसीतापति श्रीराघवेन्द्र ने सभी के चित्त को हरण करने वाले वेणुगीत द्वारा सभी गोपियों का आह्वान किया । "गोपालं गोपरिवारं गोपकन्यासमावृतम्" इस श्लोक के भाष्य में भाष्यकार ने स्पष्ट कहा है कि इस श्लोक से दान लीला का वर्णन करते हैं—श्रीनारदजी की प्रेरणा से श्रीदशरथजी महाराज राक्षसों के विनाश के लिए एक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। प्रभु के वेणुनाद श्रवणकर उस यज्ञ में गोपियाँ घृत आदि हविष लेकर पधारीं तथा श्रीराघवेन्द्र से अपने हविका विशिष्ट मूल्य माँग रहीं हैं।

मन्मथं मथुरानाथं माधवं मकरध्वजम् ।
श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ॥ ३७ ॥

मन्मथम्=मनांसिमथ्नाति अर्थात् अपने अवलोकनादि द्वारा मनको क्षुब्ध करने वाले (मनोहरण करने वाले, मथुरानाथम्=श्रीशत्रुघ्नजी द्वारा मथुरा का पालन करने वाले। माधवम्=लक्ष्मीपति । मकरध्वजम्=मीनध्वजा में है जिसके-कन्दर्प स्वरूप । श्रीधरम्=श्री जी को धारण करने वाले अर्थात् श्री जी से चिह्नितवक्षस्थल । श्रीकरम्=ऐश्वर्य प्रकाशक । श्रीशंभ्=श्री के स्वामी । श्रीनिवासम्=श्री का निवास है जिनमें अथवा श्री के साथ निवास करने वाले। परात्परम्=पर (ब्रह्मादि) से भी परे अर्थात् ब्रह्मादि देवताओं के स्वामी । "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" यो वै ब्रह्माणं विदधाति" इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य (उनको मैं प्रणाम करता हूँ) इस श्लोक द्वारा श्रीराम गोपाल रूप से श्रीराम जी की रासलीला का निरूपण किया गया है। कौशल खण्ड में श्रीरामसहस्रनाम में 'सरयूकूल रासस्थः' यह एक नाम कहा गया है। गलदागादी के स्वामी श्रीहर्याचार्यजी ने भी अपने रामस्तवराज भाष्य में इसी प्रकार व्याख्या की है। स्वामी श्रीमधुराचार्यजी ने भी स्व रचित "सुन्दरमणि सन्दर्भ" में श्रीसीतारामजी के रास विलास का प्रतिपादन वाल्मीकि रामायण के प्रमाणों से विशद रूप से किया है।

भूतेशं भूपतिं भद्रं विभूतिं भूतिभूषणम्।

सर्व दुःख हरं वीरं दुष्ट दानव वैरिणम् ॥ ३८ ॥

भूतेशम=भूतानां प्राणिनाम् ईशम् इष्टम् अथवा सभी प्राणियों के स्वामी। भूपतिम्=पृथ्वी के भार को दूर करके उसके पोषक। भद्रम्=मङ्गलरूप अर्थात् पृथ्वी में मङ्गल करने वाले। विभूतिम=अणिमादिक सिद्धि द्वारा सेवित। भूतिभूषणम्=ऐश्वर्य के भूषणभूत अर्थात् "सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।" सर्वदुःखहरम् सम्पूर्ण दुःख दूर करने वाले, अथवा स्वाश्रितजनों के समय-समय पर होने वाले दुःखों को देखकर दुःखहरण मात्र के लिये आविर्भूत होकर दुःख नाश करने वाले। यथा पञ्चरात्रे "सर्वावतारूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरते यस्तु स रामः शरणं मम ॥ वीरम =प्रदीप्ततेज सम्पन्न दुष्टदानववैरिणम=दुःख देने वाले दानवजनों के नाशक ॥ ३८ ॥

श्रीनृसिंहं महाबाहुं महान्तं दीप्ततेजसम् ।
चिदानन्दमयं नित्य प्रणवं ज्योति रूपिणम् ॥ ३९ ॥

श्रीनृसिंहम=नरों में सिंह, महाबाहुम्=बिशाल भुजा वाले। (आजानुबाहु महान्तम्=पूज्य या श्रेष्ठ। दीप्ततेजसम्=प्रकृष्ट प्रताप। चिदानन्दमयम्=स्वप्रकाश तथा आनन्द स्वरूप। नित्यम्=सदा एकरस, उत्पत्ति विनाश रहित। प्रणवम=ओंकारस्वरूप, ज्योति रूपिणम=आदित्यादि प्रकाशक ॥ ३९ ॥

विशेष श्रीनृसिंहम्=नृसिंहः श्रीयुक्तश्चासौ नृसिंहस्तम् अर्थात् श्रीयुत् पुरुष-सिंह, मत्स्यकूर्मादि के सदृश नृसिंहावतार नहीं क्योंकि पहिले अवतार रूप से कहा जा चुका है। चिदानन्दमयम् पद में चिदानन्द शब्द के ही अर्थ में मयट् प्रत्यय हुआ है। नित्यम् पद का प्रागभावाप्रतियोगि, ध्वंसाप्रतियोगि अर्थात् जिसका प्रागभाव तथा ध्वंस न हो। ज्योतिरूपिणम्=आदित्य जगत् को प्रकाशित करने वाले, बाल्मीकीये यथा सूर्य-स्यापि भवेत्सूर्योह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः। अथवा ज्योतिस्वरूप, श्रीरामतापनीये यथा— स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते। जिसे मानस रामायण में "सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥" कहा गया ॥ ३९ ॥

आदित्य मण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् ।
भक्त प्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥ ४० ॥

आदित्यमण्डलगतम्=सूर्य मण्डल में विराजमान अथवा गायत्री प्रतिपाद्य। निश्चितार्थ स्वरूपिणम्=निश्चित है अर्थात् सिद्धान्त सिद्ध है अर्थ स्वरूप=परमार्थभूत भक्त प्रियम्=भक्तों के प्रिय, अथवा भक्त प्रिय है जिनको। पद्मनेत्रम्=कमल के समान विशाल अरुणिमागर्भित कर्णावलम्बिनयन। भक्तानामीप्सित प्रदम=भक्तों को अभीष्ट प्रदान करने वाले, न केवल वाञ्छित इष्ट, जिसके द्वारा भक्त का सर्वथा अभ्युदय होता रहे वही प्रदान करते हैं ॥

विशेष----आदित्यमण्डलगतम=जिसे "सूर्यमण्डल मध्यस्थम्" पद से कहा गया है जो वरेण्यं तथा भर्ग शब्दका अर्थ है। इसे बार-बार कहना श्रीरामजी गायत्री प्रतिपाद्य

हैं इसे दृढ़ करना है। निश्चितार्थस्वरूपिणम्—छान्दोग्ये यथा—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः आकाशात्मा, सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यासतोऽवाक्यनादः ॥ ३ । १४ । २ ॥

जिसे "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत।" श्वेता० उप० १ । १२ । में भी कहा गया है ॥ ४० ॥

कौशलेयं कलामूर्तिं काकुत्स्थं कमलाप्रियम् ।
सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम् ॥ ४१ ॥

कौशलेयम् = कौशलाया अयमधीश्वरस्तम, अयोध्याधिपति । कलामूर्तिम् = भगवान् की विग्रह मूर्ति, अवतार हैं जिनके, अथवा चौंसठ कला मूर्ति हैं जिनकी अर्थात इन सब कलाओं में अत्यन्त प्रवीण, काकुत्स्थम् = काकुत्स्थ वंश में प्रादुर्भूत । कमलाप्रियम् = श्रीलक्ष्मीजी के प्रिय । सिंहासने = सिंहासन में । समासीनम = विराजमान, नित्यव्रतम = धर्माचार परायण, मे अत्यन्त सावधान । अकलमषम् = दोष पाप आदि से रहित (श्रीरामजी को मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ ४१ ॥

विशेष----भक्तेप्सित प्रदत्व का निर्देश किया जाता है–कौशलेयम कौशलदेश के (श्रीअयोध्याजी) समस्त निवासियों को लेकर स्वधाम श्रीरामजी गये यथा–"कौशलास्तेयुस्तत्र यत्र गच्छन्ति योगिनः" । कमलाप्रियम् = निखिल सौन्दर्यनिधि कमला हैं उनके प्रिय अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी से अधिक कमनीय विग्रह श्रीरामजी हैं । सिंहासने समासीनम् पदसे श्रीरामजी परमसेव्य हैं यह ज्ञापित हुआ । अतएव अकल्मष पापादि दोषों से रहित हैं अर्थात् जिनके स्मरण मात्र से प्राणी निर्मल हो जाता है । श्रीमद्भागवते यथा –

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् । लोकस्य सद्यः विधुनोति कल्मषं तस्मैसुभद्रश्रवसे नमोनमः ॥ वर्तमानं च यत्पापं यद्भूतं यद् भविष्यति । तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानल कीर्त्तनम् ॥

मृत्युकाल में भगवन्नाम् सदृश पुत्र नाम कहकर अजामिल भी भगवद्धामको प्राप्त हुआ । श्रीमद्भागवते यथा - म्रियमाणो हरेर्नाम गृह्णन पुत्रोपचारितम । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धयागृणन ॥ ४१ ॥

विश्वामित्र प्रियं दान्तं स्वदार नियतव्रतम् ।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालन तत्परम् ॥ ४२ ॥

विश्वामित्रप्रियम = विश्वामित्रजी के प्रिय अथवा विश्वामित्रजी प्रिय हैं जिन्हें दान्तम = जितेन्द्रिय । स्वदारनियतव्रतम् = अपनी स्त्री ही में भोगनिष्ठा है जिनकी अर्थात् श्रीजानकीजी को छोड़कर अन्यत्र भोगेच्छा का सर्वथा अभाव । यज्ञेशम् = यज्ञ के स्वामी (अर्थात् यज्ञका फल श्रीरामजी को अर्पण किये बिना यज्ञकर्ता अपना कल्याण नहीं देखते)

यज्ञपुरुषम्=यज्ञ के द्वारा आराधनीय। यज्ञपालनतत्परम्==विश्वामित्रजी के यज्ञरक्षण में कटिबद्ध। विशेष--विश्वामित्र प्रियम् = सम्पूर्ण सत्कर्म करने का फल श्रीरामजी की प्राप्ति है वह श्रीविश्वामित्रजीको प्राप्त है इससे अधिक कोई लाभ है ही नहीं अतएव विश्वामित्रजी के प्रिय हैं। श्रीरामजी के अवतार का मुख्य प्रयोजन "मर्त्यावतारस्त्विहमर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः। श्रीमद्भाग०, मनुष्यों को शिक्षा देना मुख्य, गौड़ प्रयोजन दुष्टसंहार, इन दोनों प्रयोजनों की सिद्धि श्रीविश्वामित्रजी के द्वारा सम्पन्न होनी है। इसी प्रकार अवतार के अवान्तर प्रयोजन अहिल्योद्धार आदि के भी हेतु श्रीविश्वामित्र हैं अतः विश्वामित्रजी श्रीरामजी के प्रिय हैं। इस श्लोकमें स्वदारनियतव्रतम् की व्याख्या करते हुये भाष्यकार लिखते हैं कि— 'दाराः' शब्द नित्य बहुवचनान्त है इसीलिये श्रीरामजी ने श्रीभरतजी से कुशल प्रश्न पूछते हुये कहा कि क्या तुम्हारी स्त्रियाँ सकुशल हैं? "कच्चिन्त्ते सफला दाराः"। इस प्रकार श्रीरामजी एवं श्रीभरतजी में भी देवर्षिनारदजी बहु पत्नीत्व स्वीकार करते हैं। 'प्रमदामनोहर गुणग्रामाय रामात्मने' इस चौवनवें श्लोक में भी श्रीरामजीको प्रमदाओं के मनको हरण करने वाले गुणसमूह वाला कहा गया है।

महर्षि बाल्मीकिने जनकजी द्वारा सैकड़ों कन्यादान प्रदान करने की बात कही है—ददौपरमसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम्। समुद्रतट पर श्रीरामजी के शयन करते समय उनकी भुजाओं का वर्णन करते हुये महर्षिने कहा है कि श्रेष्ठकांचनकेयूर मुक्तादि विभूषणों से विभूषित परमनारियों की भुजाओं से श्रीरामजीकी भुजा अनेकबार मर्दित है वरकाञ्चनकेयूरमुक्तावर विभूषणैः। भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा। यहाँ परम नारी का अर्थ दासी या सैरन्ध्री नहीं है। उत्तरकाण्ड में भी अशोक-वाटिका विहार प्रसंग में "रामो रमयतांवरः" कहकर श्रीरामजी के रासविलास का विस्तृत वर्णन है। भगवान् के 'एकपत्नीव्रतधरः' इस श्लोक का अर्थ है एक मुख्य श्रीजानकी जी के साथ ही श्रीरामजी धर्मानुष्ठान व्रत आदि का अनुष्ठान करते हैं। "सहधर्मचरी" का भी यही तात्पर्य है। भोगपत्नियाँ तो उनकी अनेक थीं 'स्वदारनियतव्रतम्' का यही तात्पर्य है।

सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम्।
सर्व क्लेशापहरण बिभीषण बर प्रदम् ॥४३॥

सत्यसन्धम् = सत्य प्रतिज्ञा वाले अर्थात् जिनकी प्रतिज्ञा कभी भङ्ग न हो। जितक्रोधम् = जीत लिया है कोपको जिसने अर्थात् प्रसह्य क्रोध रहित (अबिनीत के प्रति भी क्रोधाभाव) शरणागतवत्सलम् = शरण में आये प्राणि मात्र का रक्षण भरण वत्स के सदृश। सर्वक्लेशापहरणम् = अविद्यास्मितरागद्वेषाभिनिवेश रूप जो पाँच क्लेश हैं उनके अपहरण (नाश) करने वाले। बिभीषणवरप्रदम् = बिभीषण को बरदान देने वाले।

विशेष :- सत्यसन्धम् = सत्य प्रतिज्ञा, वाल्मीकीये यथा-तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञोयदभिकां क्षितम्। करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ १ ॥ अप्यहं जीवितं जह्यांत्वां वा सीतेसलक्ष्मणम्। नहि प्रतिज्ञां प्रतिश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ २ ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।

जैसे व्रती अपने व्रत का पालन प्रयास पूर्वक कष्ट सहन करके करता है उसी प्रकार श्रीरामजी का अभय प्रदान व्रत है प्रत्येक अवस्थाओं में उसका पालन प्रयास पूर्वक कष्ट सहन करके भी करते हैं व्रत भङ्ग न हो इसके लिये सतत् जागरूक रहते हैं। बाल्मीकीये यथा—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेय कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥ १॥ आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणंगतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥२॥ स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति। एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानाम रक्षणे। स्वयाशक्त्या यथा सत्वं तत्पापं लोकगर्हितम्॥ ३॥ विनष्टं पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणागतः। आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥ ४॥ अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्य विनाशनम्॥ ५॥ द्विः शरं नाभि संधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्। द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभि भाषते॥ ६॥

भगवान् की शरण में आये हुये प्राणी का भगवत्कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। सर्वक्लेशापहरणम्=कलत्रपुत्र भृत्यादि में आत्मीय भाव को अविद्या कहते हैं उनके सुख दुःख से अपने को सुखी दुःखी मानना अस्मिता है। सुखानुशयी द्वेष तथा अभिनिवेश (मरणादि का भय, सुखादि नाश होने का त्रास) इन पांचों प्रकार के क्लेश (दुःख) को दूर करने वाले हैं। अथवा पुरुषार्थ चतुष्टय के साधनभूत जो क्लेशप्रद उपाय हैं उनका अपहरण जिससे हो अर्थात् साधन अनुष्ठान के विना भी शरणागत को अभीष्ट प्रदान करने वाले। यथा–या वै साधन सम्पत्तिः पुरुषार्थ चतुष्टये। तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः॥१॥ वात्सल्य का उदाहरण दे रहे हैं विभीषण वरप्रदम्—स्वशरणागत क्लेशापहरण द्वारा केवल मोक्षमात्र ही नहीं देते, अपि तु इस लोक के भी सभी अभीष्ट पूर्ण करते हैं। बाल्मीकीये यथा—

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्। राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥ १॥ रसातलं वा प्रविशेत् पातालं वापि रावणः। पितामह सकाशं वा न मे जीवन् विमोक्षते॥ २॥ अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रबल बान्धवम्। अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे॥ ३॥

अतः शरीर, वाणी, मन, धन, जन द्वारा भवशाप विमोचनी श्रीरामजी की। सेवा ही करनी चाहिये। सिद्धान्त दीपके यथा--कायेन वाचा मनसा धनेन च जनेन च। राम सेवा सदा कार्या भवपाश विमोचनी॥ सि० दी० २२॥ ४३॥

दशग्रीवहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम् ।
वालि प्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सित राज्यदम् ॥ ४४॥

दशग्रीवहरम=दशग्रीव (दश शिर) रावण का वध करने वाले। रुद्रम्=रौद्र-स्वरूप। केशवम्=ब्रह्मा विष्णु रुद्र को सृष्टि स्थिति संहार शक्ति प्रदान द्वारा उनकी योग्यता का सम्पादन करने वाले। केशिमर्दनम=केशि नामक दैत्य का वध करने वाले। वालि प्रमथनम्=बाली का बध करने वाले। सुग्रीवेप्सितराज्यदम्=सुग्रीव को अभीष्ट राज्य देने वाले। वीरम्=वीर पुरुष।

विशेष :--श्रीरामजी केवल अभीष्ट ही पूर्ण नहीं करते अपितु भक्त के विरोधी का नाश करके योगक्षेम का भी वहन स्वयमेव करते हैं यह दिखाया जा रहा है। दशग्रीव-हरम्=विभीषण के विरोधी रावण के दशशिर का छेदन करने वाले हैं। बाल्मीकीये यथा-गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः। पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्र हतो यथा ॥ युद्ध का० १११।२२॥ रुद्रम्=रावण के वधकाल में भी अतिशय क्रोधयुक्त। बाल्मीकीये यथा—स रावणाय संक्रुद्धोभृशमायभ्यकार्मुकम्। चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् ॥ यु० का० १११।१६ ॥ केशवम्=कः ब्रह्मा, अः=विष्णुः, ईशः, रुद्रः, केशाः=ब्रह्म विष्णु रुद्रः तान्=वासपति अर्थात् सृष्टि स्थिति संहार शक्ति प्रदान द्वारा तत्तदधिकार की योग्यता सम्पादक। स्कन्द पुराणे यथा—

मुख्यत्वाद् विश्ववीजत्वात तारकत्वान्महेश्वरः । त्वदंशै स्वीकृतं राम हयस्माभिर्नामते त्रिभिः ॥ १ ॥ भार्गवोऽयं पुराभूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः। विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना प्रभो ॥२॥ संकर्षणस्ततस्तेऽहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम् । एकमेवत्रिधा जातं सृष्टिस्थित्यन्त हेतवे ॥ ३ ॥ एवमादिसुराः सर्वे युक्ताः श्रीरामतेजसा। जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ॥ ४ ॥ वालि प्रमथनम् वाल्मीकीये यथा--अमोघाः सूर्य संकाशा ममैते निशिताः शराः । तस्मिन् वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः ॥१॥ यावत्तंनाभिपश्यामि तव भार्यापहारिणम् । तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्र दूषकः ॥२॥ आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नं त्वां शोक सागरे। त्वामहं तारयिष्यामि कामं प्राप्स्यसि पुष्कलम् ॥ ३ ॥ कि० का० १०।३३, ३४॥

बालि बध की इस प्रतिज्ञा को भगवान् श्रीरामजी करके बालिबध के लिये प्रस्तुत हो गये। बालमीकीये यथा--

मुक्तस्तु वज्र निर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः। राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥ १ ॥ ततस्तेन महातेजा वीर्योत्सिक्तः कपीश्वरः। वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥ २ ॥ कि० का० १७।३५।३६ ॥

सुग्रीवेप्सितराज्यदम्=सुग्रीव के राज्याभिषेक काल में श्रीहनुमान जी ने कहा। वाल्मीकीये यथा—भवत्प्रसादात्सुग्रीवः पितृपैतामहं महत्। वानराणां सुदुष्प्रापं प्राप्तो राज्यमिदं प्रभो ॥ १ ॥ कि० का० २६।४।४४ ॥

नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत् प्रियम्।
शुद्धं सूक्ष्मं परं शान्तं तारकं ब्रह्मरूपिणम् ॥४५॥

नरवानरदेवैश्च=मनुष्य वानर देवताओं से, सेवितम्=जुष्ट अर्थात् प्रेम-भाजन। हनुमत्प्रियम्=हनुमान्जी के प्रिय, या हनुमान् जी प्रिय हैं जिन्हें। शुद्धम्=प्राकृत गुण रहित सूक्ष्मम्=दुर्बोध। परम्=सबसे श्रेष्ठ। शान्तम्=आनन्द स्वरूप, तारकम =मुक्ति प्रदान करने वाले। ब्रह्मरूपिणम्=वृहद्गुण युत रूप वाले अर्थात् भगवान् से भिन्न भगवान् की विग्रह नहीं है, भगवान् की विग्रह अपृथक् सिद्ध विशेषण भगवान् का ही है ॥४५॥

विशेष :—सुग्रीवादि के स्वामी श्रीरामजी हैं इसको बतलाया जा रहा है—नरवानरदेवैश्च=मनुष्य वानर देवता आर्त जिज्ञासु अर्थार्थी भक्त हैं इनकी प्रीति श्रीरामजी में अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये है। अतएव इनके द्वारा सेवित मात्र कहा गया प्रिय नहीं कहा गया। श्रीहनुमान जी का अपना कोई प्रयोजन नहीं है इसलिये हनुमानजी प्रिय हैं। श्रीहनुमान् जी का स्नेह श्रीरामजी में ही है, स्नेह मनोधर्म है अतः एक श्रीराममनस्कत्व भी श्रीहनुमान जी में सिद्ध हुआ, इसीलिये उपाय उपेय दोनों श्रीरामजी को ही श्रीहनुमान् जी ने माना है। प्रपन्न के लिये जितने धर्म शास्त्र में कहे गये हैं वे सब श्रीहनुमान्जी में वर्तमान हैं गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पाप के तारतम्य से पापी प्राणी चार प्रकार के हैं जो मेरी प्रपत्ति नहीं करते, चार प्रकार के सुकृतिजन भी हैं जो मेरी शरण में आते हैं आर्त से अर्थार्थी श्रेष्ठ हैं। इससे जिज्ञासु और जिज्ञासु से ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है श्रीहनुमान्जी ज्ञानी भक्त से आगे हैं ज्ञानी भक्त को प्रारब्ध देह भोगने के बाद ही भगवान् की प्राप्ति होती है, ज्ञानी भक्त को भगवान् का केवल मानस प्रत्यक्ष ही होता है, हनुमानजी श्रीराम जी को परब्रह्म जानकर ही सब प्रकार से समयोचित कैंकर्य करते हैं, नित्यदर्शन करते हैं त्रिपाद् विभूति में भी श्रीरामजी की ही सेवा करते हैं भगवच्चरणों में प्रेम के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी नहीं चाहिये श्रीहनुमान्जी में अनन्यशेषत्व, अनन्योपायत्व, अनन्यभोग्यत्व, अनन्योपेयत्व, अनन्यदेवत्व, अनन्यमन्त्रत्वादि सभी प्रपन्न धर्म नियत-रूप से रहते हैं, श्रीहनुमान् जी ने स्वयं कहा है यथा—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयितिष्ठतुनित्यदा। मतिश्च नियता वीर-भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ १० ॥ यावद्राम कथा वीर चरिष्यति महीतले । तावच्छरीरे वत्स्यन्ति प्राणा मम न संशयः ॥२॥ वाल्मीकीये-७।४०।१६,१६॥

श्रीहनुमान् जी के समान प्रपत्ति अनेक जन्म के पुण्य का फल है यथा—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययाऽपहृत ज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ २ ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ ३ ॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥४॥ बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ ५ ॥ गीता ७।१५--१६॥

ब्रह्मरूपिणम्=ब्रह्मात्मकम् (बृहद्गुणयोगिरूपं विद्यते यस्य तम्) भगवान् का शरीर भगवान् का अपृथक् सिद्ध विशेषण है यथा श्रीराम ता० "अर्द्ध मात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥ विग्रह बृहद् गुण योगी होने के कारण ब्रह्मशब्दवाच्यता भी उसमें सिद्ध हुई ॥ ४५ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् ।
सर्व कारण कर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥ ४६ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्थम्=सर्वभूत-आकाशादि भूत भगवान् के शरीर रूप हैं। सर्वाधारम=सभी चिदचिद् वस्तु के आश्रय, सनातनम्=सर्वदा एकरस रहने वाले, अर्थात् नित्य ही सर्वाधार । सर्वकारणकर्त्तारम्=सर्वकारण प्रधानादि के कर्त्ता, अथवा निर्मित्तोपादान सहकारी कारण के कर्त्ता । निदानम्=आदिकारण । प्रकृतेः परम्=प्रकृति की परिधि से पर उत्कृष्ट, श्रेष्ठ अर्थात् प्रकृति विशेषण वाले विशेष्य । (श्रीरामजी को प्रणाम करता हूँ)

विशेषः—सर्वभूतात्मभूतस्थम्=सर्वे भूताः अकाशादिपञ्च भूताः, आत्मभूते तिष्ठन्ति आत्मभूतस्थः तं सर्वभूतात्म भूतस्थम्=अर्थात् आकाशादि पञ्चमहाभूत भगवान् श्रीरामजी के आत्मा मे स्थित हैं अर्थात् शरीर रूप हैं । यथा-जगत्सर्वं शरीरन्ते सर्वाधारम्=सर्वेषां चिदचिद् स्तूनामाधारम् अचिद् (भूतादि) के उपादान कारण, चिद् (जीव) के अन्तर्यामी होने के कारण आधार अर्थात् आश्रय । सर्वकारणकर्त्तारम्= सर्वेषां कारणानां । प्रधानादीनां निमित्तोपादन सहकारि कारणानां कर्त्तारम् । तत्तत्कार्यानुरूप शक्ति प्रदत्वेन प्रसिद्ध मित्यर्थः । जगत् की सृष्टि ब्रह्मा जी कुलाल के समान करते हैं वह शक्ति श्रीरामजी के प्रसाद से ही प्राप्त है महदादिज ड़वर्ग हैं भगवान् की चिद् शक्ति के बिना जगदाकार रूप से परिणाम असम्भव है । सृष्टिकाल के बिना भी सृष्टि असम्भव है अतः कालादि के अन्तर्गत होकर श्रीरामजी ही सहकारी कारण होते हैं। यथा - सः कालकालो गुणी सर्वविधिः" इत्यादि श्रुति प्रमाण है। इसी को "निदानं प्रकृतेः परम्" इस चतुर्थ चरण से कहा गया । निदानम आदिकारण हैं । यथा—एतस्माद्

आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः" इत्यादि प्रकृतेः परम् प्रकृति के लेप से रहित हैं ॥ ४६ ॥

निरामयं निराभासं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥४७॥

निरामयम्=जन्ममरण रूप संसार के रोग का निवारण करने वाले । निराभासम्=आभास (प्रतिविम्ब) भाव रहित । निरवद्यम्=दोष रहित । निरञ्जनम्=अज्ञान रहित । नित्यानन्दम्=सदाआनन्दादि गुण निलय । निराकारम्=प्राकृत आकार रहित अर्थात् दिव्य मंगल विग्रह । अद्वैतम्=चिदचिद् विशिष्ट रूप से भिन्न रूपाभाव । तमसः परम=जड़वर्ग प्रधानादि से पर अर्थात् प्रधानादि के कारण किन्तु उसके दोष से सर्वथा रहित ।

विशेष :-निर्गतः आमयो यस्मात्तमित्यर्थः । निराभासम्=निर्गतः आभासः प्रतिविम्वो यस्मात्तम् । परिच्छिन्न पदार्थ में ही प्रतिविम्व भाव देखा जाता है भगवान् देशकाल वस्तुत्रिविध परिच्छेद शून्य हैं । तमोगुण का कार्यभूत प्रधान कार्य आकाश भी परमात्मा शरीर का व्याप्य है इसलिये जलादि में उसका प्रतिविम्व स्वाभाविक है । व्यापक नीरूप पदार्थ का प्रतिबिम्ब सर्वथा असम्भव है। अद्वैतम=स्वसदृश द्वितीय रहित । यथा—

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" "न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः" चिन्मयस्या द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूप कल्पना" इत्यादिश्रुतिसिद्ध ॥४७॥

परात्परतरं तत्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ।
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४८ ॥

परात्परतरम=परशब्द वाच्य जगत्कारण प्रधानादि उससे परनित्यमुक्त जीव-समूह अतिशय पर अर्थात् नित्यमुक्त से सेव्यमान श्रीराम जी । तत्त्वम्=परमपुरुषार्थ रूप अर्थात् अर्थ धर्म काम मोक्ष रूप चतुर्विध फल प्रद । सत्यानन्दम्=सदा एक रस नित्य एवं आनन्द गुणयुक्त । चिदात्मकम्=चिन्मय, सबके प्रकाशक एवं स्वयं प्रकाश्य, मनसा=मन से, शिरसा=शिर से, रघूत्तमम=रघुबंशियों में, श्रेष्ठ श्रीरामजी को, नित्यम=सर्वदा, प्रणमामि=प्रणाम करता हूँ ।

विशेष :—परात्परतरमिति-परे ब्रह्मादयः तेभ्योऽपि परेमत्स्यकूर्मवाराहादयो भगवदवतारास्ते परात्पराः तेभ्योऽपि परं श्रीरामनामकं परब्रह्म । अर्थात् मत्स्य कूर्मवाराहादि रूप को धारण करने वाले श्रीरामजी ही हैं इसीलिये सर्वावतारी श्रीरामजी ही प्रसिद्ध हैं । यथा—एकमेवा द्वितीयम् "चिन्मयस्याद्वितीयस्य" "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इत्यादि श्रुति सिद्ध । परात्पर तत्त्व एक ही है उसके नाम अनन्त हैं ब्रह्म, परब्रह्म, विष्णु, महाविष्णु आदि परतत्त्व, व्यापकत्वादि गुणों के द्वारा श्रीराम जी में ही इनका

पर्यवसान होता है। नारायण क्षीराब्धि निवासी, वासुदेव सर्वभूताधिवासी, हरि स्वभक्त दुःखहारी भी कर्म तथा गुणों के द्वारा श्रीरामजी में ही पर्यवसित हैं। श्रीकृष्ण नाम भी सदानन्दादि गुण द्वारा श्रीराम वाचक ही है। इसी प्रकार अन्य भगवन्नाम भी गुण कर्म द्वारा श्रीराम जी को ही कहते हैं अतः ये सब नाम गौण (गुण द्वारा प्रसिद्ध होने के कारण) कहलाते हैं। यथा महाभारते – यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः। ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ श्रीमद्भागवतेऽपि—यस्यावतार गुण कर्म विडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति। अतः कुछ नाम गुण द्वारा भक्तवत्सल, करुणानिधि आदि प्रसिद्ध हैं कुछ नाम कर्म द्वारा, रावणारि कंसारि प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। व्यापकत्वादि भगवान् के गुण ही हैं स्वरूप नहीं अतः वे नाम गौण हैं श्रीराम नाम मुख्य है। ब्रह्म के समान रामनाम वर्ण भी सच्चिदानन्द पद वाच्य हैं। श्रीरामतापनीये यथा-

स्वभूज्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते" "जीवत्यनेनेदमों यस्य" "स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्येक चिन्मयः। तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरं स्मृतम् ॥

जैसे स्वाश्रित गुणों की अपेक्षा गुणाश्रित द्रव्य का आधिक्य होता है उसी प्रकार स्वाश्रित व्यापकत्वादि गुणाश्रय अपरिच्छिन्न चिद् द्रव्य का भी कोटि गुण आधिक्य उपपन्नतर हो गया। अतः विष्णु सहस्र नाम तुल्य, सर्ववेद सर्व मन्त्र जपफल से कोटि कोटि गुण अधिक फलप्रदत्व श्रीराम नाम को कहा गया है। यथा—

विष्णोरेकैक नामैव सर्ववेदाधिकं मतम्। तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनाम समं मतम् ॥१॥ जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति। तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं राम नाम्नैव लभ्यते ॥२॥ विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः। अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः ॥३॥ शान्तः प्रसन्नो वरदो ह्यक्रोधो भक्तवत्सलः। अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वापिन विद्यते ॥४॥

कोटि गुणाधिक फल प्रदान करने के कारण ही महद् यश सम्पन्न हुआ। यथा—न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः। इसलिये अप्रतिम, अनुपम, समाभ्याधिक रहितत्त्व श्रीरामजी में ही उपपन्न हैं। यथा—"न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" 'चिन्मयस्या द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना" अतः श्रीरामजी ही उभयविभूतिनायक हैं इसी को श्रीनारद जी ने परात्परतत्त्व शब्द से ज्ञापित किया। "नारायणं जगन्नाथमित्यादि" पदों के द्वारा श्रीराम जी को ही सर्वावतारी भी सूचन किया। नारदजी आगे भी श्रीरामजी को अक्षर परंज्योति आदि शब्द द्वारा परब्रह्म स्वीकार किया है यथा-त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वमेव तारकं ब्रह्मत्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥१॥ आपसे भिन्न कोई अक्षरादि शब्द वाच्य नहीं हैं अतः अन्य का निषेध भी नारद जी द्वारा किया गया है। इसी प्रकार श्रीव्यासजी भी तीन बार शपथ खाकर श्रीरामतत्त्व को ही परब्रह्म कहा है। यथा—सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते। रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥ १ ॥

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुत्तमम् । कहकर श्रीरामस्तवराज को वेदों का उत्तम सार (तत्त्वांश) कहा । पञ्चरात्र में श्रीरामजी को सर्वावतारी कहा गया है । यथा—

सर्वावतार रूपेण दर्शन स्पर्शनादिभिः । दीनानुद्धरते यस्तु स रामः शरणं मम ।

अवतारी अवतार में भेद नहीं है हाँ इतनी बात अवश्य है जिस अवतार में अधिक गुणों का दर्शन होता है अथवा भगवदीय सभी गुणों का दर्शन है वह पूर्णावतार है जिस अवतार में अल्प गुणों का प्राकट्य है वह अंशावतार (कलावतार) कहलाता है ऋषियों ने अल्पगुण प्राकट्य वहुगुण प्राकट्य ही अंशावतार पूर्णावतार में हेतु माना है न कि पूर्णांशाविर्भाव अल्पांशाविर्भाव । अखण्ड अपरिच्छिन्नचिदेक रस को भेदन करने में कोई समर्थ नहीं है अन्यथा विभेद परिच्छिन्नत्व की आपत्ति भगवत्स्वरूप में आ जायेगी । इसलिये भगवान् के सभी अवतार स्वरूप से गुणों से पूर्ण हैं । वहुगुण प्राकट्यहेतुक पूर्णावतार, अल्पगुण प्राकट्यहेतुक अंशावतार (कलावतार) कहलाता है । यथा—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य महात्मनः । हानोपादानरहिताः नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥१॥ परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्वतः । सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोष विवर्जिताः ॥ २ ॥ महावाराह पुरा० ॥

श्रीनारद पंचरात्रोऽपि, यथा—

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः । रूप भेदमवाप्नोति ध्यान-भेदात्तथाच्युतः ॥ १ ॥

अतः भगवान् की विग्रह में न्यूनाधिक्य दृष्टि को छोड़कर स्वाभीष्ट जिस किसी विग्रह में मन लगाकर सर्वतोभावेन भजन करना चाहिये । परात्परतत्त्व में हेतु प्रदर्शन किया जाता है सत्यानन्दं चिदात्मकमिति । नित्यआनन्द गुण वाले हैं, यह आनन्द पद अन्य गुणों का उपलक्षण है, विषय सेवनकाल में ही आनन्द नहीं है नहीं तो नित्यत्व का वाध हो जायेगा । स्वयं प्रकाशमान स्वरूप हैं । जीव मे चिदात्मक की अति व्याप्ति न हो इसलिये सत्यानन्द चिदात्मकम् श्रीराम विग्रह के लिये ही कहा गया है आगे भी श्रीरामजी को सच्चिदानन्द कहा गया है यथा—विरराम महातेजाः सच्चिदानन्दविग्रहः । इसी प्रकार के श्रीरामजी सिंहासन समासीन हैं यथा—सिंहासनं समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम्" इस पूर्व श्लोक में ही अन्वय है । मनसा शिरसा यह वचसा पद का भी उपलक्षण होते हुये अन्य अंगों का भी बोधक हैं क्योंकि प्रणाम करने का विधान आठ अंगों द्वारा कहा गया है यथा—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा सिरसा दृशा । मनसा वचसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥ १ ॥

मन के द्वारा परात्परतत्त्व को जानकर तथा चिन्तवन करते हुये प्रणाम करने से "श्रीरामजी ही नारदजी के उपास्य देव हैं" यह स्पष्ट हुआ। श्रीसीताजी के सहित श्रीराम जी ही उपास्य, ध्येय, पूज्य हैं तथा जपनीय तारकाख्य षडक्षर श्रीराममन्त्र है सर्वलोकहितार्थ उपदिष्ट सर्व वेदसार भूत श्रीरामस्तवराज का यही सारभूत उपदेश है। इस स्तवराज के उपक्रम में मध्य में एवं अन्त में ऐश्वर्य माधुर्य विशिष्ट श्रीरामजी ही कहे गये हैं। इस श्लोक में भी "परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्" से परमैश्वर्य का कथन, तथा "रघूत्तमम्" पद से परममाधुर्य का कथन स्पष्ट है। कल्पवृक्ष के नीचे रत्न-मण्डप मध्य विराजमान श्रीजानकी जी सहित श्रीरामजी हैं, योगीन्द्र नारदादि के द्वारा अहर्निशि संस्तूयमान, विश्वामित्र वशिष्ठ सनकादि द्वारा सेव्यमान भी युगलमूर्ति ही हैं। अतः "वैदेही सहितम्" "रामं सीतासमन्वितम्" "जानकीहृदयानन्दम्" आदि पद उक्तार्थ में परमप्रमाणभूत हैं ॥४८॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम् ॥ ४९ ॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थम् = आदित्य मण्डल के मध्य में विराजमान, सीतासमन्वितम् = श्रीसीताजी से सम्यक् निरन्तर युक्त श्रीरामजी, पुण्डरीकाक्षम् = कमल के सदृश प्रसन्न उज्ज्वल कर्ण पर्यन्त विशाल नयन युत। अमेयम् = सम्पूर्ण ज्ञान के अविषय (इयत्ता रहित) अर्थात् त्रिविध परिच्छेद शून्य। गुरुतत्परम् = वशिष्ठादि पूज्य वर्ग की सेवा में तल्लीन। रामम् = श्रीरामजी को। नमामि = नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

विशेष :--पूर्व श्लोक में श्रीनारदजी अपने अभीष्टार्थ को कहकर उत्तर श्लोक में भी उसी अर्थ को दृढ़करते हैं "द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति" इस न्याय से। सूर्यमण्डलमध्यस्थमित्यादि पद से श्रीनारद जी सीता सहित श्रीराम जी के उपासक हैं उनके शिष्य वेद व्यासजी उनके शिष्य सूतजी "वैदेहीसहितम्" का ध्यान अपने मुखसे कहाहै। "रामं भजे" इत्यादि पद्यों के द्वारा विश्वामित्र पराशरादि मुनियों से स्तूयमान कहकर सीता सहित श्रीरामजी उनके भी उपास्य हैं यह सूचित हुआ। यद्यपि व्यासजी ने अपने ध्यान में बाल्यावस्थापन्न श्रीरामजी का ध्यान कहा है उस समय श्रीरामजी अविवाहित हैं अविवाहितावस्था में वैदेही सहित का कथन अनुपपन्न है तथापि श्रीव्यासजी को भी श्रीजानकी सहित रामजीका ध्यान अभीष्ट होना चाहिये, गुरु श्रीनारद जी तथा शिष्य सूतजी को युगलमूर्ति का ध्यान करने के कारण। सूर्य मण्डल मध्यस्थ पद से श्रीसीता युत रामजी गायत्री प्रतिपाद्य हैं और वे ही कर्म प्रवर्तक, जगज्जीवन कारण, सर्वजीव बुद्धि प्रेरक हैं यह ज्ञापित हुआ। सीतासमन्वितम् = सीतया सम्यक् अनु-निरन्तरम् इतं युक्तम्। अमेयम् = मातुं ज्ञातुमशक्यम् इसके द्वारा श्रीरामजी का रूपसंहनन, सौकुमार्य, लावण्य, गुण, लीला आदि सभी इयत्ता रहित हैं मन-वाणी का विषय नहीं हैं। परमैश्वर्य विशिष्ट दर्शन

अत्यन्त दुर्लभ है अतः परममाधुर्य दर्शन द्वारा उसे अत्यन्त सुलभ ज्ञापित किया। अभेय-त्वेन परविभूतिनायक "सूर्यमण्डलमध्यस्थं तथा गुरुतत्परम्" से लीला विभूतिनायक सिद्ध किया गया। गुरुसेवा पारायण होने के कारण धर्मशिक्षक भी श्रीरामजी में सिद्ध हुआ। श्रीमद्भागवते यथा—मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्" पहिले श्लोक का "नित्यं" पद इस श्लोक में अनुवर्तित है अतः "नित्यं नमामि" इसके आगे भी नमामि पद से नित्य पद सम्बद्ध है। नित्यन रहने पर कदाचित्क के कारण एक स्वाम्युद्देशक, एक कर्तृक प्रणाम में परस्पर विरोध हो जायेगा ॥ ४६ ॥

नमोऽस्तुवासुदेवाय ज्योतिषां पतये नमः।
नमोस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे ॥ ५० ॥

वासुदेवाय=सम्पूर्णभूतप्राणियों में निवास करने वाले। नमोऽस्तु=नमस्कार है। ज्योतिषाम्=सूर्यादि प्रकाशकों के। पतये=नियन्त्रण करने वाले या उन्हें प्रकाश प्रदान करने वाले (श्रीरामजी) को नमः=प्रणाम करता हूँ। जगदानन्दरूपिणे=संसार को आनन्द प्रदान करने के कारण। रामदेवाय=अपने रूपौदार्यादि गुणों से सबको आनन्द देने वाले, अथवा योगियों के चित्त में रमण करने वाले। देवाय—सृष्टि पालन प्रलय रूप क्रीड़ा करने वाले अथवा समस्त चिद्वर्ग के उपास्य (श्रीरामजी) को। नमो-ऽस्तु=नमस्कार है ॥५१॥

विशेष :—श्रीरामजी के ऐश्वर्य को "वासुदेवाय ज्योतिषां पतये" इन पदों से पुनः प्रकट कर रहे हैं। जिनके भय से या नियन्त्रण में वायु चलता है सूर्य तपता है। श्रीमद्भागवते यथा—

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः मृत्युश्चरति मद्भयाद् ॥ १ ॥ न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥

इत्यादि श्रुत्युक्त पुरुष को नमस्कार है। रामदेवाय पद से श्रीराम जी का माधुर्य व्यक्त किया। बाल्मीकीये यथा—रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम्। "रामस्य लोक रामस्य" "रामोलोकाभिरामोऽयम्" 'मनांसि मनोहरत्येष" तथा तापनी-येऽपि" "रामनामभुविख्यातमभिरामेण वा पुनः" ॥ ५० ॥

नमो वेदान्तनिष्ठाय योगिने ब्रह्मवादिने।
मायामयनिरस्ताय प्रपन्नजन सेविने ॥ ५१ ॥

वेदान्तनिष्ठाय=वेद के अन्त (उपनिषद् भाग) में निष्ठा स्थिति है जिसकी अर्थात् उपनिषद् द्वारा प्रतिपादित श्रीरामजी के लिये। योगिने=वाह्य विषयों से चित्त-वृत्ति को हटाये हुये आत्माराम, अथवा भक्तजनों के प्रीतिरस के रसज्ञ के लिये, ब्रह्म वादिने=व्याकरणादि षडङ्गवेद के प्रवर्तक के लिये। मायामयनिरस्ताय=माया तथा

माया का जो समस्त परिवार है उससे सर्वथा पृथक्। प्रपन्नजनसेविने=शरणागति युक्त जनों द्वारा आराधनीय श्रीरामजी को। नमः=नमस्कार है।

विशेषः—वेदान्त द्वारा जानने के योग्य, सर्ववेद प्रतिपाद्य परतत्त्व श्रीराम जो ही हैं इसी को "वेदान्त निष्ठाय" इत्यादि पदों द्वारा कहा गया। ब्रह्मप्रकारी शेषी है निखिलहेय प्रत्यनीक, अनन्त ज्ञानानन्दैक स्वरूप, ज्ञानशक्त्यादि कल्याण गुणगणविभूषित, अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सृष्टि स्थिति संहारकर्त्ता, आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी, चारों प्रकार के भक्तजनों से सतत् आराध्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चतुर्विध फलप्रद, सौकुमार्य, लावण्य, यौवनादि सम्पन्न, विलक्षण विग्रह विशिष्ट उभयविभूतिनायक परब्रह्म पद वाच्य श्रीरामजी हैं। वे ही अज्ञ को ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, अशक्त को शक्ति, अपराधी को क्षमा, दुःखियों को कृपा, दोषयुक्त पर वात्सल्य, मन्दों को शील, कुटिल को कोमलता, दुष्टहृदय को सौहार्द, वियोगभीरु को मृदुता एवं दर्शन करने वालों को सुलभता वितरित करते रहते हैं। कल्याण गुणयुक्त होने के कारण ही दूसरे के दुःख को देख कर हाहाकार करके दुःख निवृत्ति में तत्पर हो जाते हैं। अनुपाय दशा में स्वयं उपायभूत होकर भक्त के पालन में दुष्कर व्यापार को करके उसके कल्याणार्थ अपेक्षित को प्रदान करते हैं। परमात्मा प्रकृति तथा जीव दोनों से विलक्षण तथा उभयशरीरक (चिदचिद् विग्रह) हैं। निर्गुण का कथन प्राकृत गुण रहित है।

'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' 'महतो महीयान्' 'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' 'एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' 'एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपालः।'

इत्यादि श्रुति वाक्य द्वारा परमात्मा सबका प्रेरक, अधिपति तथा सबका नियन्ता है। वैदिकमतावलम्बी प्रकृति, जीव तथा ईश्वर इन तीन तत्त्वों को अङ्गीकार किया है तीनों नित्य हैं अजन्मा हैं। प्रकृति को भी अजा शब्द से कहा गया है यथा—'अजामेकाम्' ज्ञाज्ञौद्वाजावीशानीशौ" जीव अल्पज्ञ तथा अनीश्वर है परमात्मा सर्वज्ञ तथा ईश्वर है दोनों अज हैं। नित्यों में नित्य चेतनों में चेतन एक परमात्मा ही है वही सबकी कामनाओं को पूर्ण करता है। यथा—'नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां विदधाति कामान्' ईश्वर का भी जो ईश्वर है वही ध्येय है— "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" प्रकृति रूप परस्थित जीव ब्रह्म दोनों साथ रहते हैं जीव अपने किये हुये कर्मों का फल दुःख सुख भोगता है ईश्वर केवल साक्षी रूप प्रकाशक हैं। जिस परमात्मा का पृथ्वी शरीर है जीवात्मा शरीर है जिसे पृथिव्यादि नहीं जानते यथा—यस्य पृथिवी शरीरम् यस्य आत्माशरीरम्"। जीवात्मा को पृथक् जानकर सबका प्रेरक स्वतन्त्र परमात्मा को जानकर जो शरणागति पूर्वक उसकी आराधना करता है वह मोक्ष को या भगवद्धाम को प्राप्त करता है। यथा—"पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा" इत्यादि। 'प्रपन्नजन सेविने" उपाय

उपेय श्रीरामजी को ही जानना यह शरणागति विवेकीजन ही कहते हैं। अपने को अपराधी मानना केवल भगवद्दर्शन के लिये ही प्रार्थना करना, भगवान् के भक्तों में यह स्वरूप शरणागति कहलाती है। साधन अनुष्ठान की सामर्थ्य रखना उसके कर्त्तृत्वपने का अभिमान न करना यह अकिञ्चनत्व शरणागति है। भगवान् से अतिरिक्त उपायाख्यगति न समझना, अन्य फल सम्बन्ध रूप गति से विहीन रहना अर्थात् अन्यफल की कामना न करना, इस शरणागति को शास्त्रकारों ने अनन्य शरणागति कहा है। यथा–

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञा यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते। आज्ञाछेदी ममद्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ॥ उपायत्व मुपेयत्व मीश्वरस्यैव यद्भवेत्। शरणापत्तिरित्युक्ता शास्त्र मानाद् विवेकिभिः ॥१॥ स्वापराधो क्तिपूर्वं यदात्म सात्वस्य प्रार्थनम् । स्वरूपं शरणापत्तेरित्युक्तं सात्वते खलु ॥२॥ साधनादिष्वनुष्ठानसामर्थ्यं विषयश्च यः। कार्तृत्वाद्यन हंकार आकिंचन्यतदुच्यते ॥३॥ भगवद् व्यतिरिक्ताया ह्युपायाख्या गतिर्नसा। यथान्य फल सम्बन्धरूपागति विहीनता ॥४॥

इत्यनन्यगति स्तत्रप्रोक्ताशास्त्रार्थ दर्शिभिः। इस शरणागति के छः भेद शास्त्रों में वर्णित हैं। यथा—आनकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्यवर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासी-गोप्तृत्व वरणं तथा। आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ॥१॥ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य भगवान बोधायन ने भी अपने प्रपत्तिषट्क में इसका उल्लेख किया है यथा—रामदीनोऽनुकुलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकूल्यवान्। त्वयि न्यस्यामिचात्मानं पाहिमां पुरुषोत्तम ॥ १ ॥

गीता के आनन्दभाष्य में श्रीरामानन्दाचार्य जी महाराज द्वारा भी यही उक्तार्थ स्पष्ट किया गया है यथा—प्रार्थनांशेन शरणागतिपदवाच्यः आत्मनिक्षेपांशेन न्यासपदवाच्यश्च प्रपत्तियोग एव । "आनुकूल्यस्य संकल्पः" इत्यादि का आचार्यों ने निम्नलिखित अर्थ किया है। श्रुतिस्मृति भगवान् की आज्ञा है उसका उल्लंघन करने वाला भगवान् का भक्त नही हो सकता ॥१॥ श्रीराम च० मा० यथा—"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" अतः भगवान् की आज्ञा समझकर श्रुति स्मृत्यनुरूप कर्मानुष्ठान करने पर भगवान् अनुकूल होते हैं। विपरीत आचरण से प्रतिकूल होते हैं सर्व धर्म परित्यागपूर्वक मन वचन शरीर के द्वारा भगवान का भजन (कैंकर्य) भगवान् की अनुकूलता (प्रसन्नता) के लिये होता है। भगवद्भजन न करने वाला यदि सर्व धर्म परित्याग करे तो वह भगवान् की प्रतिकूलता (नाराजी) को उत्पन्न करता है। अथवा प्राणी मात्र के अनुकूल आचरण करना ही आनुकूल्य है इसके विपरीत हिंसा ईर्ष्या आदि का त्यान करना शरणागति का दूसरा अङ्ग "प्रातिकूल्यस्य वर्जनम" है। कुछ लोग इसे मुमुक्षु मात्र का साधारण धर्म कहते हैं भक्त के लिये साधारण धर्म "सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १ ॥ भगवान् का भजन न करके यदि सामान्य धर्म का